Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj, Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

९९

सोमेश्वरकृत

मानसोल्लास : एक सांस्कृतिक अध्ययन

लेखक :—

डॉ० शिवशेखर मिश्र

एम० ए० (संस्कृत, अँग्रेज़ी तथा भारतीय संस्कृति),

एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

१९६६

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, संवत् २०२३
मूल्य : २५-००

© The Chowkhamba Vidyabhawan
Post Box 69, Varanasi. (India)
1966
Phone : 3076

901.954
म म

State Museum, Library, Lko.
3733
17/1/66

प्रधान कार्यालय—
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
गोपाल मन्दिर लेन,
पो० आ० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स ८, वाराणसी-१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

THE

VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA

99

SOMES'VARA'S

MĀNASOLLĀSA : A CULTURAL STUDY

By

Dr. SHIVA SHEKHAR MISHRA

M. A. (Sans., Eng., Sans. Cul.), LL. B., Ph. D., D. Litt.

Sanskrit Department, Lucknow University, Lucknow.

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI-1

1966

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

Thesis approved for the Ph. D. Degree in Sanskrit
by the University of Lucknow.

First Edition
1966
Price 25-00

901.954

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers & Antiquarian Book-Sellers
P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)
Phone : 3145

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समर्पण

जिनके चरणों में बैठ बैठ कर

संस्कृत एवं संस्कृति

का पाठ पढ़ा

उन्हीं सौजन्यमूर्ति

पूज्यपाद गुरुदेव

प्रो० को० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर

के करकमलों में

सादर एवं सप्रेम

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

"MĀNASOLLĀSA, A SĀṄSKRITIK STUDY"

I have gone through the pages of the above thesis with great interest and attention. It deals with the contents of Mānasollāsa, the encyclopaedic compilation of Raja Someśvara III of the Western Chalukya dynasty. Being a work of the 12th century (1129 A. D.) it gives a faithful and detailed picture of the Social life of India before the advent of the Muslim invaders.

The thesis is divided into several chapters, describing at length the Sanskaras, the concept of state and kingship and the various forms of amusement, entertainment and games prevalent in those days.

Under certain heads the writer has summed up practically the whole of contemporary social life, based on the contents of Someśvara's work out studied in respect of each important detail independently in comparison with the data furnished by other sources of knowledge. These sources comprise Sanskrit texts of different ages together with relevant modern works and Journals. Besides the printed editions of the time, the candidate has utilised MSS of the work available in different Indian Libraries.

On reading the thesis carefully, I am inclined to think that it is a valuable contribution, original and critical, to the cultural life of India during the pre-muslim period of its history. It is written in Hindi, in a graceful style far from the laxities and faults of loose penmanship.

I therefore recommend to the University that the Doctorate Degree, for which the candidate has supplicated, be awarded to him in recognition of the merit of his thesis.

2 A Sigra.
Banaras
13-5-57

Gopinath Kaviraj

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राक्कथन

गुप्त साम्राज्य की इतिश्री हो जाने के अनन्तर भारतवर्ष में अनेक स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना विभिन्न राजवंशों द्वारा हुई। इन्हीं राजवंशों में पश्चिमी चालुक्यों अथवा सोलंकियों के अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं विस्तृत राज्य की स्थापना हुई। यद्यपि इस राजवंश का विस्तृत प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं है तथापि इस वंश में अनेक ऐसे प्रतिभावान् राजा हुए जिनका यश आज भी महत्वपूर्ण ग्रन्थों के पृष्ठों में अंकित है। मानसोल्लास इसी कोटि के श्रेष्ठ ग्रन्थों में विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। मानसोल्लास के रचयिता महाराज सोमेश्वर तृतीय इसी पश्चिमी चालुक्य वंश के ख्यातनामा एवं विद्वान् शासक थे।

मानसोल्लास भारतीय संस्कृति का एक अनुपम, श्रेष्ठ एवं अनूठा ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ विशुद्ध हिन्दू संस्कृति का अन्तिम पृष्ठ है। चालुक्य वंश के राजा मुसलमानों के सम्पर्क से पूर्णतया अछूते रहे। मुसलमानों की संस्कृति का विकास होने के पूर्व ही इस राजवंश का अवसान हो गया था। १२०० ई० के लगभग जब चालुक्य वंश के अन्तिम सम्राट् सोमेश्वर चतुर्थ राज्य कर रहे थे उसी समय यादवों ने इनके राज्य के उत्तरी भाग तथा होयसलों ने दक्षिण भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था और इस प्रकार चालुक्य वंश की राज्य-श्री सदैव के लिए कान्तिविहीन हो गई।[1]

अतः मानसोल्लास की रचना मुसलमानी संस्कृति के अभ्युत्थान के पूर्व ही सम्पन्न हो चुकी थी। यदि इस ग्रन्थ को विशुद्ध हिन्दू संस्कृति का अन्तिम उपहार कहें तो अत्युक्ति न होगी।

मानसोल्लास का वर्ण्य-विषय बड़ा व्यापक और अत्यधिक उपयोगी है। सामान्यरूप से लेखक की दृष्टि राजजीवन और राजनीति पर ही केन्द्रीभूत

---

1. ".. . ...
......These places passed into the hands of the Hoyasalas and of the Yadavas about 1200 or even earlier, with the territories surrounding them, and the Chalukyan empire thus came to an end, having been absorbed on the north by the Yadava empire and on the south by the empire of the Hoyasalas".

Indian Antiquary Vol. 48–The Chronology of the Western Chalukyas–P. 6.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रही है परन्तु फिर भी ज्ञान-विज्ञान के अनेकानेक प्रसंगों की ओर भी उसने समान रूप से ध्यान दिया है। राजनीति और राजजीवन के वर्णन के साथ ही साथ महाराज सोमेश्वर ने ज्योतिष, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र, पाकशास्त्र आदि विज्ञानों एवं वास्तु, चित्र, संगीतादि ललित कलाओं का विस्तृत एवं महत्वपूर्ण विवेचन किया है। संगीत, पशुचिकित्सा आदि पर सोमेश्वर की यह रचना प्रामाणिक और उपयोगी मानी जाती है। कुछ लोगों ने इसका आभार स्वीकार भी किया है।

महाराज सोमेश्वर के अध्ययन, चिन्तन और सामान्य ज्ञान की व्यापकता को देखकर कभी कभी आश्चर्य होता है। इस प्रकार मानसोल्लास का एक एक विषय अपनी अलग अलग विशेषता रखता है और स्वतन्त्र अध्ययन का साधन है।

आश्चर्य का विषय है कि इतना महत्वपूर्ण ग्रन्थ होते हुए भी इसका अभी तक सुचारु रूप से अध्ययन नहीं हुआ है। इतना ही नहीं संस्कृत साहित्य के अधिकांश इतिहासों में इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ तथा इसके रचयिता सोमेश्वर के नाम तक का उल्लेख नहीं हुआ है। कतिपय विद्वानों ने तो केवल इस ग्रन्थ के नाम का ही उल्लेख कर दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी अभाव की पूर्ति करने का एक प्रयास है। ग्रन्थ में मानसोल्लास पर सांगोपांग विचार किया गया है। साथ ही यह भी प्रयत्न किया गया है कि ग्रन्थ की समस्त विशेषताएं इसके माध्यम से पाठकों तक पहुंच जायँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ का अध्ययन ६ अध्यायों में सम्पन्न हुआ है :—

१—मानसोल्लास की रचना एवं काल निर्णय
२—सोमेश्वर तथा संस्कार
३—सोमेश्वर तथा राज्यशास्त्र
४—सोमेश्वर तथा उपभोग
५—सोमेश्वर तथा विनोद
६—सोमेश्वर तथा क्रीड़ाएं।

संस्कृत साहित्य के कतिपय विद्वानों का मत है कि मानसोल्लास के रचयिता महाराज सोमेश्वर नहीं थे, वरन् उनकी राजसभा के किसी एक अथवा अनेक विद्वान पंडितों द्वारा यह ग्रन्थ लिखा गया था। प्रस्तुत अध्याय में लेखक ने तर्क पूर्ण ढंग पर इस बात की स्थापना की है कि मानसोल्लास की रचना चालुक्य-वंशीय सोमेश्वर तृतीय ही ने की। लेखक ने अपने इस मत के समर्थन में प्रमाणों का भी उल्लेख किया है। यह लेखक का सर्वथा मौलिक प्रयास है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कालनिर्णय प्रकरण में अन्तस्साक्ष्य तथा बहिस्साक्ष्य प्रमाणों के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि मानसोल्लास की रचना महाराज सोमेश्वर ने शक सम्वत् १०५१ अर्थात् सन् ११२९ ई० में की थी।

द्वितीय प्रकरण का शीर्षक है—सोमेश्वर तथा संस्कार। महाराज सोमेश्वर एक धर्मपरायण राजा थे और प्रत्येक कार्य में धर्म का ही आश्रय ग्रहण करना उनको मान्य था। मानसोल्लास के पुत्रोपभोग प्रकरण के अन्तर्गत सोमेश्वर ने बालक के संस्कारों का वर्णन किया है और उन्हें उचित रीति से वैदिक विधान द्वारा मनाने का आदेश दिया है। यद्यपि सोमेश्वर ने इन सभी संस्कारों के सम्बन्ध में स्मृति, पुराण, धर्मसूत्र तथा गृह्यसूत्रादि का ही आधार ग्रहण किया है, तथापि उन्हें गीत, वाद्य नृत्यादि के साथ पारिवारिक एवं तत्कालीन सामाजिक रीति रिवाजों के द्वारा मनाने का आदेश देकर उन्हें नवीनतम रूप प्रदान किया है। यह सोमेश्वर की अपनी विशेषता है। इसी का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में किया गया है। इस अध्याय की सामग्री लेखक के व्यापक अध्ययन और मौलिक चिन्तन का फल है।

तृतीय अध्याय की सामग्री दो खण्डों में विभाजित है :—

(१) राज्य–प्राप्ति के उपाय
(२) राज्य का स्थिरीकरण

प्रथम खण्ड में राज्य–प्राप्ति के बीस उपायों का उल्लेख है। इसके अन्तर्गत राजा के दो प्रकार के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है—

(१) निषिद्धाचरण
(२) विहित कर्तव्य

इनका आचरण शासक की आत्मसम्पत् का द्योतक है। सोमेश्वर की नीति राजा को लौकिक ऐश्वर्य के साथ ही साथ पारलौकिक आनन्द को प्रदान करने वाली है।

इसी तृतीय अध्याय का द्वितीय खण्ड राज्य के स्थिरीकरण से सम्बन्धित है। यद्यपि सोमेश्वर ने राजनैतिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति में स्मृति, पुराण, नीतिशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का आश्रय ग्रहण किया है, फिर भी इन सिद्धान्तों के ग्रहण करने की विधि में उनकी मौलिकता झलकती है। उक्त शास्त्रों का पूर्ण-रूपेण अध्ययन करके उनके सिद्धान्तों को तत्कालीन समाज की कसौटी पर कसकर उन्होंने उसके अनुकूल राजनीति के सूत्रों का सृजन किया। इनकी राजनीति तद्विषयक शास्त्रों का सार अंश है और साथ ही साथ उसमें राजा के हृदय की नीति झलकती है। यही उनकी राजनीति की विशेषता है। लेखक ने सोमेश्वर द्वारा प्रतिपादित सप्तप्रकृति राज्य, शक्तित्रय, षाड्गुण्य तथा उपाय-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चतुष्टय सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचनात्मक अध्ययन किया है। यह अध्याय पूर्ण रूप से मौलिक है।

चतुर्थ अध्याय राजा के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित बीस प्रकार के उपभोगों पर प्रकाश डालता है। राजजीवन का प्रभाव जन–जीवन पर पड़ना अनिवार्य है। अतः इनका अध्ययन उतना ही महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है जितना अन्य किसी विषय का। ये सभी उपभोग विशेष रूप से राजा के शृङ्गार, भोजन, स्वास्थ्य तथा मनोरंजन के साधन हैं। दैनिक कृत्यों में भी मनोरंजन एवं सौन्दर्य का दर्शन करना इस अध्याय का मुख्य लक्ष्य है। इस परिच्छेद की सामग्री पूर्णरूप से लेखक के मौलिक अध्ययन का परिणाम है।

पञ्चम अध्याय में बीस प्रकार के विनोदों का वर्णन है। ये विनोद राजा के साथ ही साथ जनसाधारण के भी मनोरंजन के साधन थे। इनमें शस्त्र, शास्त्र, गजवाह्याली, तुरगवाह्याली, अंक, मल्ल, कुक्कुट, लावक, मेष, महिष, पारावत, सारमेय, श्येन, मत्स्य, मृगया, गीत, वाद्य, नृत्य, कथा तथा चमत्कृत ये बीस प्रकार के विनोद हैं। इन विभिन्न विनोदों के सम्बन्ध में लेखक ने जो अध्ययन प्रस्तुत किया है वह पूर्णतया मौलिक है।

षष्ठ अध्याय में बीस क्रीडाओं का उल्लेख है जिनमें राजा स्वयं भाग लेता था। ये क्रीड़ाएं दो भागों में विभक्त हो सकती हैं–एकांगी क्रीड़ाएं एवं सामूहिक क्रीड़ाएं। विनोद एवं क्रीड़ाओं का यह प्रामाणिक ग्रंथ है। इनमें से कुछ के प्रसंग अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं किन्तु उनका विशद वर्णन कहीं उपलब्ध नहीं होता। लेखक ने इन क्रीड़ाओं की विवेचना सविस्तार की है। यह परिच्छेद लेखक की मौलिक गवेषणा का फल है।

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना श्रद्धेय गुरुवर प्रोफेसर को० अ० सु० अय्यर के संरक्षण और निर्देशन में हुआ है। यह ग्रन्थ उन्हीं की प्रेरणा और आशीर्वाद का फल है। निराशा और कठिनाइयों के क्षणों में उन्हीं की सहायता से कार्य अग्रसर हुआ। उन्हीं की प्रेरणा से लेखक प्रत्येक पग पर आगे बढ़ सका है। लेखक उनके प्रति श्रद्धा से अवनत है।

मानसोल्लास की छपी प्रतियों में केवल बीस उपभोगों एवं १५ विनोदों का वर्णन है। अन्तिम पांच विनोद तथा २० क्रीड़ाएँ अप्रकाशित हैं। मानसोल्लास की अप्रकाशित प्रतियों को प्राप्त करने में लेखक को अनेक कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ा। इसके लिए लेखक को विश्वभारती, शान्तिनिकेतन, बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी लायब्रेरी, मद्रास के गवर्नमेंट ओरियन्टल मैनस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, गवर्नमेंट ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बनारस के गवर्नमेंट संस्कृत कालेज की लायब्रेरी, महाराज जयपुर का पोथीखाना, टैगोर लायब्रेरी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लखनऊ, कलकत्ता विश्वविद्यालय लायब्रेरी आदि स्थानों पर जाना पड़ा। इस शुभ प्रयास में लेखक को एक स्थान पर सफलता मिली तो चार स्थानों से निराश लौटना पड़ा।

भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना में मानसोल्लास की दो हस्तलिपियां देवनागरी लिपि में प्राप्त हुईं। उनमें एक पूर्ण और दूसरी अपूर्ण है। उपर्युक्त सभी हस्तलिपियों का पूर्ण विवरण ग्रंथ सूची में हुआ है। गीत, वाद्य, नृत्य, कथा तथा चमत्कृत विनोदों तथा बीस क्रीड़ाओं का अध्ययन मानसोल्लास की भांडारकर इन्स्टीट्यूट पूना की पूर्ण हस्तलिपि के आधार पर किया गया है। यह हस्तलिपि अत्यन्त अशुद्ध तथा स्थान स्थान पर रिक्त प्रसंगों से पूर्ण है। लेखक ने उन सभी का पूर्णरूपेण मनन कर उसके श्लोकों को अन्तिम अवस्था तक शुद्ध करने का प्रयत्न किया है। इन उक्त विनोदों एवं क्रीड़ाओं में जो उल्लिखित उद्धरण हैं वे हस्तलिपि के ही शुद्ध किए हुए श्लोक हैं। यदि इन उद्धरणों में यत्र तत्र कोई त्रुटि रह गई हो तो लेखक उसके लिए क्षमाप्रार्थी है। यह खेद का विषय है कि क्रीड़ाओं पर प्राप्त होने वाला इतना विस्तृत एवं सुन्दर साहित्य अप्रकाशित होने के कारण अन्धकार के गर्त में पड़ा था। क्रीड़ा का प्रसंग वास्तव में सोमेश्वर के क्रीड़ा-प्रेम को प्रदर्शित करता है। इन क्रीड़ाओं में तिमिर, फणीन्द्र, सस्यक्षेत्र, ज्योत्स्ना आदि क्रीड़ाओं के नामों का भी उल्लेख कहीं नहीं हुआ है। इस प्रसंग में लेखक ने पुराण साहित्य, वात्स्यायन के कामसूत्र, बौद्ध साहित्य तथा अन्य क्रीड़ा एवं मनोरंजन सम्बन्धी ग्रंथों की छानबीन कर उसी से मिलती जुलती विभिन्न नामों वाली, कुछ समानता रखने वाली क्रीड़ाओं के प्रसंगों द्वारा उक्त क्रीड़ाओं का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का प्रयत्न किया है।

—शिवशेखर मिश्र

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन	१
प्रथम अध्याय : मानसोल्लास की रचना एवं काल का निर्णय	
मानसोल्लास के रचयिता–सोमेश्वर	१
काल निर्णय	५
द्वितीय अध्याय : सोमेश्वर तथा संस्कार	
सोमेश्वर तथा संस्कार	९
संस्कारों की संख्या	१०
संस्कारों का विभाजन	१२
ऋतु संगमन तथा गर्भाधान	१३
पुंसवन	१६
सीमन्तोन्नयन	१७
जातकर्म	२१
नामकरण	२३
अन्नप्राशन	२६
कर्णवेध	२८
चूडाकरण	२९
उपनयन	३०
विद्यारम्भ	३४
शिक्षा	३५
गोदान	३६
समावर्तन	३७
विवाह	३८
तृतीय अध्याय : सोमेश्वर तथा राज्यशास्त्र	
राज्य–प्राप्ति के उपाय तथा शासक की आत्मसम्पत्	४६
निषिद्धाचरण	५१
असत्यवर्जन	५१
परद्रोह-वर्जन	५३
अगम्यावर्जन	५४
अभक्ष्यवर्जन	५८
असूयावर्जन	६७
पतितसंगवर्जन	६८
क्रोधवर्जन	७१
स्वात्मस्तुतिवर्जन	७३
विहित कर्तव्य	७४
दान	७४
प्रियवचन	८२
इष्टापूर्त	८४
अशेषदेवताभक्ति	८७
गो–विप्रतर्पण	८९
पितृ-तर्पण	९३
विदेशों में श्राद्ध	९६
अतिथि–पूजन	९७
गुरु-शुश्रूषा	९८
तप	१०१
तीर्थस्नान	१०७
दीनानाथार्तबन्धुभृत्य-पोषण	१२८
शरणागत रक्षा	१३२
राज्य का स्थिरीकरण	१३४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर तथा सप्तप्रकृति–
राज्य १३४
स्वामी १३७
अमात्य १४४
पुरोहित १४९
सेनापति १५३
धर्माधिकारिसभाध्यक्ष १५६
कोशाध्यक्ष-गणक-लक्षण १५७
प्रतीहार १५८
सान्धिविग्रहिक-लक्षण १६०
लेखक १६२
सारथि-लक्षण १६२
सूद-लक्षण १६३
वैद्य-लक्षण १६४
राष्ट्र १६६
राष्ट्र का संगठन–दशमलव–
सिद्धान्त १६९
राष्ट्र की इकाई–ग्राम ,,
पुर १७१
कोष १७२
कोष की आवश्यकता ,,
कोष-संचय का उद्देश्य १७३
कोष संचित करने के सिद्धान्त १७४
कोष-संग्रह के साधन १८०
दुर्ग १८५
सैन्यबल १९०
चतुरंग-बल १९१
पदातिबल १९२
सेना के अस्त्र-शस्त्र १९५
सैनिकों का वेतन १९६
सेना में अश्व का महत्व १९६
अश्वबल १९९
सेना में गज का महत्व २००
गज-बल २०२
रथ-बल २०४
सुहृद् २०६
सोमेश्वर तथा शक्तित्रय २०८
प्रभु-शक्ति ,,
मन्त्रशक्ति २११
उत्साह शक्ति २१३
सोमेश्वर तथा षाड्गुण्य २१४
संधि २१६
विग्रह २१८
यान २२०
आसन २२२
आश्रय २२४
द्वैधीभाव २२६
सोमेश्वर तथा उपायचतुष्टय २२८
साम २२९
भेद २३०
दान २३२
दण्ड २३४
चतुर्थ अध्याय
सोमेश्वर तथा उपभोग : उपभोग,
विनोद एवं क्रीड़ाएँ २३८
गृहोपभोग २४१
स्नानोपभोग २४४
पादुकोपभोग २४९
ताम्बूलोपभोग २५१
विलेपनोपभोग २६३
वस्त्रोपभोग २६७
माल्योपभोग २७१
भूषोपभोग २७५
आसनोपभोग २८२
चामरोपभोग २८५
आस्थानभोग २८७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुत्रभोग २९१
अन्नोपभोग २९३
पानीय भोग २९८
पादाभ्यंगोपभोग ३०१
यानोपभोग ३०३
छत्रोपभोग ३०५
शय्योपभोग ३०७
धूपभोग ३१०
योषिद् भोग ३१२

पंचम अध्याय : सोमेश्वर तथा विनोद

शस्त्र-विनोद ३२१
शास्त्र विनोद ३३६
गजवाह्याली विनोद ३४०
वाजिवाह्याली विनोद ३५२
अंक विनोद ३५८
मल्लविनोद ३६३
कुक्कुट विनोद ३७४
लावक युद्ध ३८०
मेषयुद्ध विनोद ३८५
महिष विनोद ३८९
पारावत विनोद ३९०
सारमेय विनोद ३९३
श्येन विनोद ३९५
मत्स्य विनोद ३९९
मृगया विनोद ४०४
गीति विनोद ४१४
वाद्य विनोद ४२३
नृत्य विनोद ४३१
कथा विनोद ४४०
चमत्कृत विनोद ४४३

षष्ठ अध्याय : सोमेश्वर तथा क्रीड़ाएँ

भूधर क्रीड़ा ४४७
वन क्रीड़ा ४५३
आन्दोलन क्रीड़ा ४५६
सेचन क्रीड़ा ४५९
सलिल क्रीड़ा ४६२
शाद्वल क्रीड़ा ४६६
बालुका क्रीड़ा ४६९
ज्योत्स्ना क्रीड़ा ४७२
सस्य क्रीड़ा ४७६
मधुपान क्रीड़ा ४७८
प्रहेलिका क्रीड़ा ४८३
चतुरंग क्रीड़ा ४८७
अक्ष अथवा पाशक क्रीड़ा ४९३
वराटक क्रीड़ा ४९८
फणीन्द्र क्रीड़ा ५०१
पंजिका क्रीड़ा ५०३
तिमिर क्रीड़ा ५०५
वीर क्रीड़ा ५०९
प्रेम क्रीड़ा ५१३
रति क्रीड़ा ५१८

परिशिष्ट

Manuscripts seen ५२९
सहायक ग्रन्थ सूची ५३१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वरकृत—

मानसोल्लास : एक अध्ययन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रथम अध्याय

मानसोल्लास की रचना एवं काल का निर्णय

मानसोल्लास के रचयिता सोमेश्वर

मानसोल्लास की रचना के सम्बन्ध में अनुक्रमणिका में निम्नलिखित श्लोक प्राप्त होता है—

> चालुक्यवंशतिलकः श्रीसोमेश्वरभूपतिः ।
> कुरुते मानसोल्लासं शास्त्रं विश्वोपकारकम् ॥[१]

इसके अनुसार चालुक्यनरेश महाराज सोमेश्वर मानसोल्लास के रचयिता हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विंशति के अन्तिम श्लोक[२] में अनेक विशेषणों के साथ उस विंशति के रचयिता चालुक्यकुलोत्पन्न सोमेश्वर देव के नाम का उल्लेख है। यत्र-तत्र बीच में भी उनके नाम के प्रसंग आए हैं।[3]

इन प्रसंगों को देखने के पश्चात् मानसोल्लास के रचयिता के विषय में लेश मात्र सन्देह नहीं रह जाता। फिर भी यह आरोप लगाया जाता है कि मानसोल्लास के रचयिता स्वयं महाराज सोमेश्वर न थे वरन् इसकी रचना उनकी सभा के किसी विद्वान एवं सुशिक्षित व्यक्ति ने की जो राजा के परिवार, उसकी आवश्यकताओं आदि से भली भाँति परिचित था।[४] इस आरोप का मुख्य कारण यह बतलाया जाता है कि ग्रन्थ के रचयिता के नाम के साथ जो अनेक विशेषणों का प्रयोग हुआ है, विशेषतः जो सोमेश्वर ने सागर की तुलना अपने से की है,[५] यह कोई भी कवि अपने मुख से नहीं कर सकता।

संस्कृत के अन्य उच्च कोटि के ग्रन्थों का यदि सूक्ष्मावलोकन किया जाय तो यह आरोप निर्मूल सिद्ध होगा। नैषधीयचरित के रचयिता श्रीहर्ष द्वारा प्रत्येक सर्ग के अन्त में अपने लिए प्रयुक्त विशेषणों को देखकर हम इसी प्रकार उक्त महाकाव्य को श्रीहर्ष की रचना मानने में सन्देह करने लगेंगे। श्रीहर्ष ने

---

१. मानसोल्लास अनुक्रमणिका श्लोक ९।
२. वही १।२०।३०८, २।२०।१३००, ३।२०।१८२० इत्यादि।
३. वही २।३।२७१, २।४।४२३, ३।१।९२६ इत्यादि।
४. वही (गायकवाड़ सीरीज बड़ौदा), खंड १, भूमिका, पृ० ६।
५. वही २।४।३७१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नैषध में अपने को जितेन्द्रिय,[१] अमृत की वृष्टि करने वाले काव्य का रचयिता[२] आदि विशेषणों से विभूषित किया है। इसके अतिरिक्त श्रीहर्ष ने अन्य कवियों को चट्टान के तुल्य तथा अपने को क्षीरसमुद्र के तुल्य माना है।[३]

इसी प्रकार 'शिक्षकः सर्ववस्तूनां'[४] तथा 'जगदाचार्यपुस्तकः'[५] शब्दों द्वारा अपनी रचना को संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना बताने की उक्ति पर भी सोमेश्वर के इस ग्रन्थ के रचयिता होने में सन्देह किया जा सकता है किन्तु यह भी आरोप निराधार ही है क्योंकि जैसा ऊपर कहा जा चुका है श्रीहर्ष ने भी अपने काव्य को अमृत की वर्षा करने वाला बतलाया है।[६]

सोमेश्वर ने न केवल मानसोल्लास की वरन् अन्य ग्रन्थों की रचना करके भी अपनी कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। पत्तन भंडार में विक्रमांकाभ्युदय नामक ग्रन्थ की अपूर्ण हस्तलिपि उपलब्ध है जिसके रचयिता महाराज सोमेश्वर बतलाए जाते हैं।[७] इसके अतिरिक्त संगीतरत्नावली नाम के एक संगीत-विषयक ग्रन्थ के रचयिता भी महाराज सोमेश्वर माने जाते हैं।[८]

एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि मानसोल्लास में जो सोमेश्वर ने विविध विषयों पर प्रकाश डाला है, इन समस्त विषयों के सम्यक् ज्ञान के लिए उन्होंने भिन्न-भिन्न विशेषज्ञों की सहायता ली होगी।[९] यह बात भी अधिक

---

१. श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालंकारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।
नैषध १।१४५

२. यत्काव्यं मधुवर्षिधर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीश्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम्।
नैषध २२।१४९.४

३. दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां वमन्तु सरस्वतीं
तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम्।
स परमपरः क्षीरोदन्वान् यदीयमुदीयते
मथितुरमृतं खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम्॥ नैषध २२।१४९.२

४. मानसोल्लास अनुक्रमणिका श्लोक १०।

५. वही।

६. नैषध, २२।१४९.४।

७. मानसोल्लास (गायकवाड़ सीरीज़, बड़ौदा) प्रथम खण्ड, भूमिका, पृ० ६, टिप्पणी।

८. O. C. Gangoly—"Ragas and Raginis" P. 20.

९. अभिलषितार्थचिन्तामणि (मैसूर, १९२६) भूमिका, पृ० २३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संगत नहीं जान पड़ती क्योंकि मानसोल्लास में जितने भी विषयों का वर्णन मिलता है वे सब राजजीवन से सम्बन्धित हैं। अधिकांश विषयों का तो सोमेश्वर को व्यक्तिगत एवं व्यावहारिक ज्ञान तथा अनुभव था। संगीत का वह स्वयं प्रेमी था और जैसा ऊपर कहा जा चुका है एतद्विषयक उसने अन्य ग्रन्थ भी लिखा है। उपभोग, विनोद तथा क्रीड़ायें, जो ग्रन्थ का अधिकांश भाग घेरती हैं, उसके दैनिक जीवन से सम्बन्धित हैं। राजनीति तो राजा का प्राण ही है। कुछ विषयों का ज्ञान उसने तद्विषयक प्रामाणिक ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा अर्जित किया था। कहीं-कहीं पर उन ग्रन्थों का आभार प्रदर्शित भी किया है। उदाहरणार्थ इष्टापूर्ताध्याय में मयशास्त्र, मत्स्यपुराण आदि का अनुसरण करने का आदेश दिया है।[1] इसी प्रकार मन्त्रशक्ति के प्रकरण में शुक्र एवं चाणक्य को प्रमाण माना है।[2] पुराणों और स्मृतियों का सोमेश्वर ने विशेष अध्ययन किया था और उनके निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण भी करता था जैसा कि आगे के पृष्ठों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा।

इसके अतिरिक्त मानसोल्लास में अनेक वर्णन ऐसे प्राप्त होते हैं जिनको सिवाय राजा के अन्य व्यक्ति नहीं लिख सकता। प्रेमक्रीड़ा[3] तथा रतिक्रीड़ा[4] के प्रकरण में राजा के प्रेम एवं सम्भोग का विस्तृत वर्णन सिवाय राजा के अन्य व्यक्ति लिखने का साहस नहीं कर सकता।

अतः स्पष्ट है कि मानसोल्लास के रचयिता स्वयं महाराज सोमेश्वर ही थे, अन्य व्यक्ति नहीं।

कालनिर्णय

संस्कृत के अधिकांश महाकवियों ने अपनी रचनाओं में अपने जीवनकाल एवं ग्रंथों की रचना की तिथियों का उल्लेख नहीं किया है, जिससे संस्कृत के पाठकों का ज्ञान उनके काल के विषय में शून्य रहता है। उनके समक्ष वास्तव में यह एक बड़ी समस्या उपस्थित हो जाती है क्योंकि वे उस कवि की रचना के काल एवं तत्कालीन समाज के विषय में उचित रूप से ज्ञान नहीं कर पाते।

---

१. विश्वकर्ममतेनापि मयशास्त्रानुसारतः।
मत्स्यप्रोक्तविधानेन पिंगलामतमानतः॥
मानसोल्लास १।११।७६

२. गुरुशुक्रमतेऽप्येष चाणक्यादिमते तथा।
वही २।९।६९८

३. वही ५।१९।

४. वही ५।२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किन्तु यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि सोमेश्वर के मानसोल्लास के विषय में यह कठिनाई अधिक नहीं पड़ती, क्योंकि मानसोल्लास में प्राप्त अन्तः-साक्ष्य प्रमाणों द्वारा ही रचनाकाल का निर्णय हो जाता है। प्रथमतः तो ग्रंथ के रचनाकाल के विषय में सोमेश्वर ने स्वयं लिखा है—

षोडशभिर्हता षष्टिः प्रभवाद्यब्दसंयुता।
तानैरपि समायुक्ता शकभूपोद्गताः समाः॥
एकपंचाशदधिके सहस्रे शरदां गते ।
शकस्य सोमभूपाले सति चालुक्यमण्डने॥[1]

इस श्लोक के आधार पर निम्नलिखित रीति से मानसोल्लास की रचना के समय का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है—

१६×६० = ९६० (षोडशभिर्हता षष्टिः)
९६० + ४२=१००२ (प्रभवाद्यब्दसंयुता)[2]
तान=४९
१००२ + ४९=१०५१ (तानैरपि समायुक्ता)

इस प्रकार १०५१ शक संवत् प्राप्त हुआ।

१०५१ + ७८=११२९ ई०

अभिलषितार्थचिंतामणि[3] (मैसूर की प्रति) में निम्नलिखित गणित प्राप्त होता है—

१६ × ६० = ९६०
प्रभव से सौम्य तक = ४३
दाव = ४८
अतः ९६० + ४३ + ४८ = शक १०५१

यद्यपि उपर्युक्त गणित का फल शक संवत् १०५१ ही आता है, जो सोमेश्वर ने स्वयं दे दिया है। इसमें दाव = ४८ तथा प्रभव से सौम्य की गणना = ४३ त्रुटिपूर्ण है।

मानसोल्लास (गायकवाड़ सीरीज़, बड़ौदा, १९२५) के प्रथम खण्ड में

---

१. मानसोल्लास २।२।६१–६२।

२. प्रभव से सौम्य तक गणना करने पर ४२ संख्या प्राप्त होती है (देखिए-सूर्यसिद्धान्त–अध्याय १)।

मानसोल्लास की रचना का काल सौम्य संवत्सर था—

सौम्य-संवत्सरे……मानसोल्लास २।२।६४।

३. अभिलषितार्थ० पृ० ४२ टिप्पणी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१०५२ शक (११३१ ई०) समय दिया हुआ है।[1] यह भी त्रुटिपूर्ण है जैसा उपर्युक्त गणित से स्पष्ट है।

इस मुख्य अन्तःसाद्य प्रमाण के अतिरिक्त अन्य अन्तःसाक्ष्य प्रमाण भी मानसोल्लास में प्राप्त होते हैं, जिससे उपर्युक्त काल-निर्णय की पुष्टि होती है। भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट से प्राप्त मानसोल्लास के तृतीय खण्ड की हस्तलिपि में सोमेश्वर ने अपने को विक्रमादित्य का पुत्र माना है—

विक्रमादित्यपुत्रेण सोमभूपेन भाषितम्।[2]

इतिहास इस बात का साक्षी है कि चालुक्यनरेश विक्रमादित्य षष्ठ के बाद उनके पुत्र सोमेश्वर तृतीय (सन् ११२७ ई०) सिंहासनारूढ़ हुए जिन्होंने मानसोल्लास अथवा अभिलषितार्थचिन्तामणि नामक ग्रन्थ की रचना की।[3]

मानसोल्लास के पुत्रोपभोग प्रकरण में नामकरण संस्कार के सम्बन्ध में सोमेश्वर ने लिखा है कि क्षत्रिय के बालक का नाम राजवंश के अनुरूप सिंह, मल्ल, बाहु, पाल, वर्म, सेन, चन्द्र इत्यादि उपनामों से सुशोभित होना चाहिए—

सिंहं मल्लं तथा बाहुं पालं वर्म पराक्रमम्।
सेनं चन्द्रं तथा दिव्यसत्त्वं केसरिणं रथम्॥[4]

इस श्लोक में आये हुए पाल, वर्म तथा सेन शब्दों से पाल, वर्म तथा सेन राजवंशों की ओर संकेत प्रतीत होता है। इन राजवंशों से सोमेश्वर भली भाँति परिचित थे। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि महाराज सोमेश्वर के पिता विक्रमादित्य षष्ठ ने उत्तरी-पूर्वीय देशों की विजय-यात्रा की थी। उसमें वे बंगाल के पाल तथा सेन राजाओं के सम्पर्क में आए।[5] कामरूप में ग्यारहवीं शताब्दी में ब्रह्मपाल के पुत्र रत्नपाल का बड़ा प्रभुत्व था। इसके अतिरिक्त कामरूप के प्रसिद्ध शासक भास्करवर्मन्[6] का नाम उन्होंने सुना ही होगा। इस प्रकार सोमेश्वर पाल, वर्म तथा सेन उपनामों को धारण करनेवाले राजाओं के पराक्रम को देख सुन चुके थे।

उपर्युक्त अन्तःसाद्य प्रमाणों के अतिरिक्त अनेक बहिःसाद्य प्रमाण भी प्राप्त होते हैं जिनसे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। सोमेश्वर के समय का

---

१. मानसोल्लास प्रथम खण्ड, भूमिका पृ० ६।
२. वही ४।२०।१६४ चमत्कृतविनोद।
३. आर० जी० भाण्डारकर—अरली हिस्ट्री आफ़ दी डकन।
४. मानसो० ३।१२।१२६४।
५. आर० एस० त्रिपाठी—हिस्ट्री आफ ऐन्शेन्ट इण्डिया पृ० ३६३–६४।
६. वही पृ० ३५१–५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एक प्राचीन कन्नड़ का शिलालेख प्राप्त होता है जिसकी तिथि साधारण संवत्सर फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी तथा दिन रविवार दिया है।[1] साधारण संवत्सर सौम्य संवत्सर के पश्चात् आता है।[2] अतः यह शिलालेख सम्भवतः शक १०५२ अथवा ईसवी ११३० के समय का होगा।

इसी प्रकार अन्य शिलालेख प्राप्त होते हैं। उनमें से एक अब धारावार जिले की सीमा के अन्तर्गत लक्ष्मेश्वर के कचेरी नामक स्थान में सुरक्षित है। यह भूलोकमल्ल सोमेश्वर तृतीय के राज्यकाल के तीसरे वर्ष अर्थात् शक संवत् १०५१ का है।[3]

धारावार जिले के हांगल तालुका में नरेगल स्थान के सर्वेश्वर के मन्दिर में एक लेख प्राप्त होता है जिसमें दो तिथियां प्राप्त होती हैं। द्वितीय तिथि शक संवत् १०५३ है जो सोमेश्वर तृतीय के राज्यकाल का पंचम वर्ष है।[4]

अरलेश्वर नामक स्थान पर कदम्बेश्वर के मन्दिर के द्वार के एक स्तम्भ के लेख के अनुसार सोमेश्वर के शासनकाल का दसवां वर्ष शक संवत् १०५८ है।[5]

मद्रास प्रेसीडेन्सी में कृष्णा जिले के नरसरावुपेट तालुका के नादेण्डला नामक स्थान पर मूलस्थानेश्वर के मन्दिर के एक शिलालेख के अनुसार शक संवत् १०५० सोमेश्वर तृतीय के शासनकाल का द्वितीय वर्ष है।[6]

इन प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सोमेश्वर का शासनकाल शक संवत् १०४९ से १०५८-५९ अर्थात् सन् ११२७ ई० से ११३८ ई० तक रहा और मानसोल्लास की रचना उन्होंने शक संवत् १०५१ अर्थात् सन् ११२९ ई० में की जो उनके शासनकाल का तीसरा वर्ष था। इन तीन वर्षों में उन्होंने पूर्ण रूप से अपनी शासनसत्ता स्थिर कर ली होगी। इतिहास इनके समय की विशेष घटनाओं का उल्लेख नहीं करता जिससे उनके इस साहित्यिक कार्य में विघ्न पड़ता।

---

१. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी—ज़िल्द १०, पृ० १३२।
२. सूर्यसिद्धान्त अध्याय १।
३. इण्डियन ऐन्टीक्वेरी—जिल्द २२, पृ० २९७।
४. वही।
५. वही।
६. वही।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वितीय अध्याय

सोमेश्वर तथा संस्कार

हमारे धर्मशास्त्रों का मुख्य ध्येय व्यक्ति और समाज के अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति रहता आया है—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।[1]

व्यक्ति और समाज के अभ्युदय से तात्पर्य दोनों की सर्वाङ्गीण लौकिक उन्नति से है और निःश्रेयस का अर्थ आत्यन्तिक आत्मिक विकास से। धर्मशास्त्रों में संस्कारों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। संस्कारों द्वारा मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियों का विकास होता है और ये मनुष्य के आन्तरिक विकास के बाह्य प्रतीक हैं जिनके द्वारा व्यक्ति अपने को सामूहिक जीवन के उपयुक्त बनाता है। संस्कृत मनुष्य को समाज में एक नियत पद प्राप्त होता है। इस प्रकार संस्कार द्वारा व्यक्ति और समाज दोनों का विकास होता है।

मनुस्मृति के अनुसार गर्भाधान, जातकर्म, चूड़ाकरण तथा मौंजीबन्ध संस्कारों में किये हुए होमों से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के गर्भ और बीज के दोषादि की शुद्धि होती है—

बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।[2]

इसके अतिरिक्त वेदाध्ययन, व्रत, होम, इज्याकर्म, पुत्रोत्पादनादि तथा पंच-महायज्ञों एवं यज्ञों से ब्राह्मी तनु प्राप्त होता है—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥[3]

याज्ञवल्क्य ने गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन तथा जातकर्म संस्कारों का उल्लेख करने के पश्चात् कहा है कि इनके करने से बीज और गर्भ की अपवित्रता दूर होती है—

---

१. कणाद—वैशेषिक सूत्र १।१।२, वैशेषिकदर्शनम्—विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित, बनारस १९१९।

२. मनुस्मृति २।२७।

३. वही २।२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम् ।[1]

कुछ संस्कार आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक महत्व रखते हैं यथा उपनयन। उपनयन संस्कार द्वारा वैदिक अध्ययन के लिए द्वार खुल जाता है और कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, यद्यपि साथ ही साथ कुछ विशेष कर्तव्यों का भी पालन करना पड़ता है। नामकरण, अन्नप्राशन आदि कुछ ऐसे संस्कार हैं जिनके द्वारा पारस्परिक प्रेमप्रदर्शन तथा उत्सवादि करने का अवसर प्राप्त होता है। अन्त में विवाह द्वारा दो व्यक्तियों का मिलन होता है जिससे समाज का विकास होता है।

महाराज सोमेश्वर ने संस्कारों को शास्त्रोक्त विधान के साथ-साथ उत्सवादि के साथ मनाने का उल्लेख किया है। यद्यपि उन उत्सवादि का सम्बन्ध राजजीवन से है किन्तु राजजीवन का कुछ अंश तो जनजीवन में होता ही है। उन उत्सवों को प्रत्येक व्यक्ति यथासाध्य मना सकता है। अन्तर केवल मात्रा का हो सकता है। राजा यदि पुत्रोत्पत्ति के अवसर पर रत्न-हीरकादि लुटा सकता है तो निर्धन व्यक्ति भी यथाशक्ति अपनी अल्प धनराशि से अपनी मनोकामना पूर्ण कर सकता है। इसके अतिरिक्त पुत्र के जन्म पर पिता को तो आनन्द होता ही है, साथ ही वह समाज का एक अंग बन जाता है। अतः समाज को भी उसके जन्म पर उतना ही आनन्द होता है। इसी कारण पिता अपने सम्बन्धियों, मित्रों, पास-पड़ोस के लोगों को एकत्र करके उत्सव मनाता है और समाज नवागन्तुक पुत्र को समाज के सदस्य के रूप में स्वीकार करता है। इस प्रकार सोमेश्वर ने संस्कारों के निरूपण में शास्त्र और लोकाचार दोनों का सामंजस्य स्थापित किया है।

संस्कारों की संख्या

महाराज सोमेश्वर ने संस्कारों के विषय में कोई निश्चित संख्या नहीं दी है किन्तु मानसोल्लास के पुत्रोपभोग प्रकरण में निम्नलिखित संस्कारों का उल्लेख किया है—

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूड़ाकरण, मौञ्जीबन्ध अथवा व्रतबन्ध, विद्यारम्भ, गोदान, समावर्तन तथा विवाह।

संस्कारों की संख्या के विषय में धर्मग्रन्थों में बड़ा मतभेद है। इनकी संख्या ९ या १० से लेकर ४० अथवा उससे भी अधिक मिलती है। इनमें से आठ संस्कार ऐसे हैं जो लगभग सभी में मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. याज्ञवल्क्यस्मृति १।१३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल तथा उपनयन।

इन आठ संस्कारों के अतिरिक्त अन्य संस्कारों के विषय में भेद है। गौतम के धर्मसूत्र[1] में ४० संस्कारों का उल्लेख है। उनमें उपर्युक्त ८ संस्कारों के अलावा ४ वेदव्रत,[2] स्नान अथवा समावर्तन, विवाह, पंचमहायज्ञ,[3] सात पाकयज्ञ,[4] सात हविर्यज्ञ[5] तथा सात सोमयज्ञ[6] हैं।

वैखानस स्मार्त सूत्र में १८ शारीर संस्कार तथा २२ यज्ञों का उल्लेख है। शारीर संस्कारों में कुछ ऐसे संस्कार भी सम्मिलित हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है, यथा उत्थान, प्रवासागमन तथा पिण्डवर्धन। २२ यज्ञों को एक मानकर ७ पाकयज्ञों, ७ हविर्यज्ञों तथा ७ सोमयज्ञों का उल्लेख किया गया है।

अंगिरस ने २५ संस्कार माने हैं। वे इस प्रकार हैं—

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म अथवा कर्णवेध, नामकरण, विष्णुबलि, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौलकर्म अथवा कर्णवेध, उपनयन, ४ वेदव्रत, समावर्तन, विवाह, महायज्ञ, पार्वण श्राद्ध तथा ७ पाकयज्ञ।

आश्वलायन ने भी इन्हीं २५ संस्कारों को माना है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति तथा विष्णुधर्मसूत्र में संस्कारों की कोई निश्चित संख्या नहीं दी गई है। केवल इतना संकेत प्राप्त होता है कि ये संस्कार निषेक (गर्भाधान अथवा चतुर्थीकरण) से लेकर श्मशान (अन्त्येष्टि, अवसान) तक हैं।

अधिकांश धर्मग्रंथों में षोडश मुख्य संस्कार माने गये हैं किन्तु इन सोलह संस्कारों के विषय में भी मतभेद है। उदाहरणार्थ जातूकर्ण्य का उद्धरण देते हुए मित्रमिश्र ने निम्नलिखित १६ संस्कार गिनाये हैं[7]—

---

१. गौतम-धर्मसूत्र ८।१४–२४।

२. महानाम्नी व्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत तथा गोदान–आश्वलायनस्मृति।

३. देवयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ।

४. अष्टका, पावणीस्थालीपाक, श्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री तथा आश्वयुजी।

५. अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढपशु-बन्ध तथा सौत्रामासी।

६. अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशिन, वाजपेय, अतिरात्र तथा आप्तोर्याम।

७. आधानपुंससीमन्तजातनामान्नचौलकाः ।
मौंजी व्रतानि गोदानसमावर्त्तविवाहकाः ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, मौंजी (उपनयन), व्रत (चार), गोदान, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि। व्यास मुनि[1] ने भी १६ संस्कार माने हैं किन्तु उनकी सूची इससे कुछ भिन्न है। साधारणतया ये सोलह संस्कार इस प्रकार हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, विष्णुबलि, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, वेदव्रत, चतुष्टय, समावर्तन तथा विवाह[2]।

संस्कारों का विभाजन

संस्कार दो प्रकार के हैं—मलापनयन और अतिशयाधान[3]। मलापनयन का अर्थ है मल का साफ करना। जिस प्रकार चूने द्वारा दर्पण का मैल साफ किया जाता है उसी प्रकार इन संस्कारों द्वारा मनुष्य की शुद्धि होती है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौलकर्म ये आठ मलापनयन संस्कार हैं। ये पिता द्वारा सम्पादित होते हैं। अतः इन्हें पितृकर्तृकाः भी कहते हैं।[4] अतिशयाधान संस्कार आचार्य द्वारा सम्पादित होते हैं। अतः ये आचार्यकर्तृकाः भी कहे जाते हैं। किसी वस्तु को चमकीला व सुन्दर बनाने की क्रिया को अतिशयाधान कहते हैं। कर्णवेध, उपनयन, व्रतादेश, वेदस्वाध्याय, केशान्त, स्नान, विवाह, अग्निपरिग्रह ये आठ अतिशयाधान संस्कार हैं।

निष्क्रमण संस्कार को छोड़कर महाराज सोमेश्वर ने सभी मलापनयन संस्कारों का उल्लेख किया है। अधिकांश धर्मग्रन्थों के अनुसार निष्क्रमण संस्कार बालक के जन्म से चौथे मास में मनाया जाता है।[5] इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य बालक को सूर्य के दर्शन कराकर उसका दैवी शक्ति से सम्बन्ध जोड़ना है। अतिशयाधान संस्कारों में से सोमेश्वर ने कर्णवेध, उपनयन,

---

अन्त्यं चैतानि कर्माणि प्रोच्यन्ते षोडशैव तु।
मित्रमिश्र–वीरमित्रोदय संस्कारप्रकाश पृ० १३५

१. व्याससंहिता १।१३–१५।

२. तत्र संस्काराः। गर्भाधान······विवाहाश्चेत्यावश्यकाः।
षोडश प्रधानाः संस्काराः। स्मृत्यर्थसार पृष्ठ ३।

३. स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज—संस्कृति-विमर्श। हिन्दू संस्कृति अंक, गोरखपुर। पृ० ३५।

४. ब्रह्मपुराणम्। गर्भाधानादिसंस्कर्ता पिता श्रेष्ठतमः स्मृतः।
मित्रमिश्र—वीरमित्रोदय, संस्कारप्रकाश, पृ० १६५।

५. पा० गृ० सू० १।२२, मनु० २।३४, याज्ञ० स्मृ० १।१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

केशान्त अथवा गोदान, स्नान अथवा समावर्तन तथा विवाह संस्कार लिए हैं।

हारीत ने दो प्रकार के संस्कार माने हैं—ब्राह्म तथा दैव। गर्भाधान आदि संस्कार, जिनका उल्लेख स्मृतियों में मिलता है, ब्राह्म संस्कार की कोटि में गिने जाते हैं। इनको करने से मनुष्य संस्कृत होकर ऋषियों की समानता को प्राप्त होता है और उन्हीं के लोक में रहता है—

तथा हारीतः। द्विविधः संस्कारो भवति ब्राह्मो दैवश्च। गर्भाधानादिस्मार्तो ब्राह्मः।···ब्रह्मसंस्कारसंस्कृत ऋषीणां समानतां सलोकतां सायुज्यं गच्छति।

दैव संस्कारों के अन्तर्गत पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ तथा सोमयज्ञ आते हैं। इनके करने से मनुष्य देवों के लोक को प्राप्त कर उनकी समानता तथा सामीप्य को प्राप्त करता है—

पाकयज्ञहविर्यज्ञसौम्याश्चेति दैवाः।····दैवेनोत्तरेण संस्कृतो देवानां समानतां सलोकतां सायुज्यं गच्छति। इति।[१]

महाराज सोमेश्वर ने मानसोल्लास के पुत्रोपभोग प्रकरण में गर्भाधान से विवाह तक जिन संस्कारों का उल्लेख किया है वे ब्राह्म संस्कार की कोटि में आते हैं। उन संस्कारों की सूची में उन्होंने दैव संस्कारों का उल्लेख नहीं किया है। प्रथम विंशति के इष्टापूर्त प्रकरण में उन्होंने दैव संस्कारों में गिनाये हुए पांच यज्ञों तथा ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु उनका संस्कारों से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है जैसा उपर्युक्त कई धर्मशास्त्रों में हुआ है। सोमेश्वर ने इन्हें इष्ट के अन्तर्गत माना है।

ऋतु-संगमन तथा गर्भाधान

संस्कारों के क्रम के विषय में बड़ा मतभेद है। गृह्यसूत्रों में दो प्रकार का क्रम मिलता है। अधिकांश गृह्यसूत्रों में संस्कारों की सूची विवाह से आरम्भ होती है और समावर्तन पर समाप्त होती है। हिरण्यकेशि, भारद्वाज तथा मानवगृह्यसूत्रों में संस्कारों का आरम्भ उपनयन से किया गया है। स्मृतियों में अधिकांशतः गर्भाधान संस्कार ही सर्वप्रथम लिया गया है। महाराज सोमेश्वर ने भी यही क्रम अपनाते हुए अपनी सूची का आरम्भ गर्भाधान से किया है।

वैखानस स्मार्तसूत्र में गर्भाधान के पूर्व ऋतुसंगमन नाम के एक संस्कार का उल्लेख है।[२] सूत्रकार ने इसका दूसरा नाम निषेक भी दिया है—

---

१. स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० १३।

२. वैखानस स्मार्तसूत्र १।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऋतौ संगमनं निषेकमित्याहुः[१]।

मनुस्मृति,[२] याज्ञवल्क्यस्मृति[३] तथा विष्णुधर्मसूत्र[४] में गर्भाधान तथा निषेक एक ही माने गये हैं। शांखायन गृह्यसूत्र[५], पारस्कर गृह्यसूत्र[६] तथा आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[७] में गर्भाधान के स्थान पर चतुर्थीकर्म या चतुर्थीहोम नामक संस्कार का उल्लेख है। बौधायन गृह्यसूत्र[८], काठक गृह्यसूत्र[९] तथा गौतम धर्मसूत्र[१०] ने गर्भाधान शब्द का उल्लेख किया है।

सोमेश्वरदेव ने इस संस्कार का कोई नाम नहीं दिया है। सर्वप्रथम "ऋतुकालमनुल्लङ्घ्य पुत्रार्थी सङ्गमाचरेत्"[११] पंक्ति से ऋतुसंगमन नाम अधिक उपयुक्त लगता है किन्तु इनका 'ऋतुसंगमन' वैखानस स्मार्तसूत्र के 'ऋतुसंगमन'[१२] की भांति गर्भाधान से भिन्न संस्कार नहीं है क्योंकि सोमेश्वर ने स्मृतियों में वर्णित गर्भाधान संस्कार की क्रियाओं का ही उल्लेख किया है। अतः 'गर्भाधान' नाम देना ही उपयुक्त होगा।

मानसोल्लास के अनुसार पुत्र की कामना करनेवाला पुरुष ऋतुकाल (१ से १६ दिन तक) में अपनी पत्नी के साथ संभोग करे किन्तु विशेष रूप से द्वितीया तथा चतुर्थी तिथि को छोड़ दे क्योंकि ये वर्जित तिथियां हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार गर्भाधान संस्कार स्त्री के ऋतु से पवित्र होने के चौथे दिन करना चाहिए। उस दिन प्रातःकाल पितृयज्ञ में पिण्डका यज्ञ कर मध्यम पिण्ड पत्नी को पुत्र की इच्छा से खिलाए। तत्पश्चात् रात्रि के समय प्रजापति, अश्विन, ब्रह्म आदि देवताओं की स्तुति करके "असिंचतु प्रजापतिर्द्धाता गर्भं दधातु ते। गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुक। गर्भं तेऽश्विनौ

१. वै० स्मा० सू० ६।२।
२. मनुस्मृति २।१६ और २६।
३. याज्ञवल्क्यस्मृति १।१० और ११।
४. विष्णु धर्मसूत्र २।३ तथा २७।१।
५. शांखायन गृह्य० १।१८-१९।
६. पा० गृ० सू० १।११।
७. आपस्तम्ब गृह्य० ८।१०-११।
८. बौधायन गृह्य० ४।६।१।
९. काठक गृह्य० ३०।८।
१०. गौतमधर्मसूत्र ८।१४।
११. अभिलषितार्थचिन्तामणि ३।१२।१३०२।
१२. वै० स्मा० सू० ६।२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

देवावाधत्ता......"[१] आदि मन्त्र पढ़कर मेधावी गर्भ धारण करवाने की इच्छा से स्त्रीप्रसंग करे। फिर भी यदि गर्भ धारित न हो तो चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र में रहने पर भटकटैया के श्वेत पुष्प को पानी में पीसकर रात्रि के समय पत्नी की दाहिनी नाक में "अस्याऽहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम"[२] यह मन्त्र पढ़कर निचोड़े। ऐसा करने से पत्नी अवश्य ही उत्तम गर्भ को धारण करती है।

महाराज सोमेश्वर का कथन है कि रजोदिन से सोलह दिन तक अर्थात् ऋतुकाल में सम रात्रियों में संभोग करने से पुत्र तथा विषम रात्रियों में संभोग करने से कन्या उत्पन्न होती है। अतः विषम रात्रियों को छोड़ देना चाहिए—

समासु रात्रिष्वन्यासु भक्तिमान् पुत्रवाञ्छया।
विषमासु भवेत्कन्या तस्मात्ताः परिवर्जयेत्॥[3]

किन्तु द्वितीया तथा चतुर्थी तिथियों को यत्न से छोड़ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त रक्त की अधिकता से कन्या तथा शुक्र के आधिक्य से पुत्र उत्पन्न होता है—

रक्ताधिक्याद्भवेत्कन्या शुक्राधिक्याद्भवेत्सुतः।[४]

अतः शुक्र की वृद्धि के लिए पौष्टिक भोजन करना चाहिए—

तस्माच्छुक्रस्य वृद्ध्यर्थं वृष्यं भुञ्जीत भोजनम्।[५]

ये प्रसंग कवि के ज्योतिष एवं वैद्यकसम्बन्धी ज्ञान को प्रकट करते हैं।

सोमेश्वर ने इस संस्कार के सम्बन्ध में केवल वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक पक्ष का अनुसरण किया है। वैद्यक सम्बन्धी प्रसंग देकर उन्होंने स्वस्थ सन्तान की उत्पत्ति पर ध्यान दिया है। स्वस्थ सन्तान परिवार की समृद्धि में सहायक होती है। अस्वस्थ सन्तान भारस्वरूप हो जाती है। ज्योतिष का विचार सन्तान तथा परिवार के अभ्युदय के लिए किया जाता है। परिवार के अभ्युदय से समाज का अभ्युदय होता है। इस प्रकार गर्भाधान संस्कार पर व्यक्ति तथा समाज का अभ्युदय निर्भर है।

गर्भ को धारण करने के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने स्त्री के शारीरिक लक्षणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भ धारण कर लेने पर स्त्री का

---

१. पा० गृ० सू० १।१५।
२. वही।
३. अभिलषितार्थचिन्तामणि। ३।१२।१३०५।
४. वही ३।१२।१३०६।
५. वही ३।१२।१३०७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कपोल मण्डल पाण्डुवर्ण का हो जाता है, उसके चूचुक कृष्णवर्ण के हो जाते हैं तथा उदर प्रदेश भी थोड़ा उन्नत हो जाता है।[1]

पुंसवन

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत पुत्र परिवार का बहुत ही पवित्र एवं श्रेष्ठ अंग माना गया है क्योंकि पुत्र का ही आश्रय लेकर नरक में पड़े पितृगण मुक्त होते हैं। महाराज सोमेश्वर ने भी पुत्र को पितरों को नरक से मुक्त कराने का कारण माना है।[2] पुत्र ही पिता के पितृऋण को चुकाने में समर्थ होता है। इसी कारण पत्नी के गर्भ धारण करने के पश्चात् माता-पिता की यही तीव्र आकांक्षा होती है कि गर्भ में स्थित जरायु को वह पुत्र रूप में प्राप्त करे और इसीलिए पुंसवन संस्कार किया जाता है।

मानसोल्लास के अनुसार श्रवण, मृगशीर्ष, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु तथा मूल ये पुंस नक्षत्र हैं। इन्हीं में गर्भ से तीसरे मास के लगने पर पुंसवन संस्कार करना चाहिए। साथ ही साथ यह ध्यान रहे कि रविवार, मंगलवार तथा बृहस्पति का दिन हो।[3]

पुंसवन संस्कार का उल्लेख प्रायः सभी गृह्यसूत्रों में मिलता है किन्तु इसके क्रम और विस्तार के विषय में बड़ा मतभेद है। आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि तथा भारद्वाज गृह्यसूत्रों में पुंसवन संस्कार का उल्लेख सीमन्तोन्नयन के बाद मिलता है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र के अनुसार पुंसवन संस्कार तब करना चाहिए जब गर्भ प्रकट होने लगे। शांखायन गृह्यसूत्र[4] के अनुसार इस संस्कार का सम्पादन तिष्य नक्षत्र अथवा श्रावण में करना चाहिए। भारद्वाज गृह्यसूत्र[5] के अनुसार यह तिष्य, हस्त, अनुराधा, उत्तरा अथवा प्रोष्ठपदा में होना चाहिए। पारस्कर तथा बैजवाप के अनुसार जब चन्द्रमा पुंस नक्षत्र में हो तब यह संस्कार करना चाहिए। रत्नकोष के अनुसार हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरस् तथा पुष्य ये पुंस नक्षत्र हैं। संस्कारमयूख में नारदीय० के आधार पर रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा

---

१. जाते गर्भे भवेत् स्त्रीणां पाण्डुरं गण्डमण्डलम्।
कुचयोश्चूचुकं कृष्णं जठरं किञ्चिदुन्नतम्॥
अभिलषित० ३।१२।१३०७–८

२. विष्णुरुद्रसमाभासं नरकत्राणकारणम्।
पुत्रं गात्रात्समुत्पन्नमीक्षन्ते पुण्यभागिनः॥
मानसोल्लास ३।१२।१२७७–७८

३. मानसोल्लास ३।१२।१२५१।

४. शांखा० गृ० सू० १।२०।

५. हिर० गृ० सू० १।२२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा उत्तराभाद्रपदा ये पुंस नक्षत्र माने गए हैं। वशिष्ठ के अनुसार स्वाती, अनुराधा तथा अश्विनी भी पुंस नक्षत्र हैं। हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र[1] के व्याख्याकार मातृदत्त का कथन इस प्रकार है—"अश्वयुक्पुनर्वसू तिष्यो हस्तः शतभिषक् प्रोष्ठपदा इति पुंनामधेयानि नक्षत्राणि।"

पारस्करगृह्यसूत्र में दूसरे अथवा तीसरे मास में इस संस्कार को करने का आदेश दिया गया है। इस अवसर पर स्त्री को स्नान कराकर श्वेत तथा नवीन वस्त्र पहना कर रात्रि के समय न्यग्रोध (बरगद) की जड़ तथा टहनियों को पानी में पीसकर पत्नी की दाहिनी नाक में निचोड़े। इसके करने से गर्भ में स्थित जरायु अवश्य ही पुत्र रूप में परिणत हो जाता है।

बरगद की जड़ों एवं टहनियों को पीसकर इसलिए नाक में डाला जाता है कि बरगद में सोमांश अधिक होता है और यह सोमांश पुत्र-प्राप्ति में सहायक होता है। बरगद के स्थान पर कुछ आचार्यों का मत है कि कुशकण्टक तथा सोमलता को पीसकर नाक में डाले। कुश के ऊपर के हिस्से में सोम का अंश अधिक रहता है। यदि पिता वीर्यवान् पुत्र की इच्छा करे तो इस अवसर पर पत्नी की गोद में जल से पूर्ण सकोरा अथवा कछुए की पीठ के ऊपर का हिस्सा रखे और उसके गर्भाशय को छूकर "सुपर्णोऽसीति प्राग्विष्णु क्रमेभ्यः"[3] यह मन्त्र जपे। इस प्रकार करने से पुत्र वीर्यवान् तथा मेधावी होता है।

संस्कारसम्बन्धी क्रियाओं के विषय में महाराज सोमेश्वर का कथन है कि दूसरे मास के मध्य में घी से युक्त जौ स्त्री को चटाए और वेदमंत्र का उच्चारण करे।[4] वाजसनेयी संहिता के अनुसार इस समय हिरण्यगर्भ मन्त्र का उच्चारण होता है।[5] यह पुत्रोत्पत्ति से सम्बन्धित मन्त्र है। यह संस्कार गर्भ के हिलने-डुलने के पूर्व ही किया जाता है। इसके अतिरिक्त बृहदारण्यक उपनिषद् में भी जो पुत्र-मंत्र का उल्लेख हैं उसके द्वारा भी पुत्रप्राप्ति हो सकती है।

सोमेश्वर ने इस संस्कार की विधियों का विशेष विवरण न देकर केवल निम्नलिखित तीन बातों पर ध्यान दिया है —

१. नक्षत्र, वार आदि का विचार,
२. पत्नी को घृतयुक्त जौ चटाना,
३. वेद मन्त्र का उच्चारण।

सीमन्तोन्नयन

महाराज सोमेश्वर ने इस संस्कार को बहुत महत्व दिया है। यह बड़े

---

१. हिर० गृ० सू० १।१।५। २. पा० गृ० १।१६।
३. वा० सं० १२।४–५। ४. मानसोल्लास ३।१२।१२५२।
५. वा० सं० २१।१३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समारोह के साथ मनाया जाता है। नाना प्रकार के मंगल गानों तथा वाद्यों की ध्वनि से समस्त वातावरण पूरित रहता है। ब्राह्मण तथा निर्धनों को पर्याप्त धन दिया जाता है और इस प्रकार समाज के प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति इस अवसर के आनन्द का लाभ उठाता है।

इस संस्कार का उल्लेख सभी धर्मग्रन्थों ने किया है। याज्ञवल्क्य[1] ने इस संस्कार के लिए केवल सीमन्त शब्द का प्रयोग किया है। गोभिल,[2] मानवगृह्यसूत्र[3] तथा काठकगृह्यसूत्र[4] ने इसका नाम सीमन्तकरण दिया है। जैसा कि इस संस्कार के नाम से स्पष्ट है, पत्नी के केशों (सीमन्त) को ऊपर कर यह संस्कार किया जाता है—"सीमन्तम् ऊर्ध्वं विनयति"।[5]

मानसोल्लास में गर्भधारण के छठे अथवा आठवें मास में पुंस नक्षत्र में इसके करने का विधान है।[6] याज्ञवल्क्यस्मृति[7] तथा पारस्करगृह्यसूत्र[8] में भी इस संस्कार का यही समय दिया हुआ है। आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार इसका विधान चौथे, लौगाक्षि के अनुसार तीसरे, आपस्तम्ब के अनुसार चौथे, बैजवाप के अनुसार चौथे, पांचवें अथवा छठे, शांखायन के अनुसार सातवें, काठकगृह्यसूत्र में तीसरे, मानवगृह्यसूत्र में तीसरे, छठे अथवा आठवें, हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र[9] में चौथे, गोभिल[10] के अनुसार चौथे या छठे, खादिर के अनुसार चौथे, छठे या आठवें, पारस्कर के अनुसार छठे या आठवें, विष्णुधर्मसूत्र में छठे[11] या आठवें, वैखानस के अनुसार आठवें तथा वेदव्यास के अनुसार आठवें महीने में इसका विधान है। शंख का आधार लेकर स्मृतिचन्द्रिका[12] ने लिखा है कि गर्भ के हिलने-डुलने के समय से लेकर बच्चा होने तक यह संस्कार कर डालना चाहिए। इतना मतभेद होने के कारण स्मृतिचन्द्रिकाकार ने लिखा है कि अपने-अपने गृह्यसूत्र के अनुसार इस संस्कार का सम्पादन करना चाहिए।

पारस्करगृह्यसूत्र के अनुसार जब चन्द्रमा पुंस नक्षत्र में होता है तब तिल तथा मूंग को मिलाकर उनका स्थालीपाक बनाकर अग्नि के पश्चिम की ओर

---

१. याज्ञ० स्मृ० १।११। २ गोभिल० २।७।१।
३. मानव गृ० सू० १।१२।२। ४. काठक गृ० सू० ३११
५. पा० गृ० सू० १।१७। ६. मानसोल्लास ३।१२।१२५३–५४।
७. याज्ञ०—"षष्ठे अष्टमे वा सीमन्तः"।
८. पा० गृ० सू० "अथ सीमन्तोन्नयन···गर्भमासे षष्ठेऽष्टमे वा" १।१७।
९. हिर० गृ० सू० २।१। १०. गोभिल० २।७।२।
११. वि० ध० सू० २७।३। १२. स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० १७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बैठकर प्रजापति का हवन किया जाता है। तत्पश्चात् स्त्री के केशों को ऊपर कर (दो युग्म) बिना पके हुए गूलर के फलों के गुच्छों, तीन दर्भ के मूठों, तीन स्याही के कांटों, वीरतर लकड़ी के खूंटे तथा चरखे में लगे हुए तकुवे को लेकर स्त्री के केशों के चारों ओर तीन बार कच्चे धागे से बाँध कर 'ऊँ भूः भुवः स्वः' यह महाव्याहृति मंत्र पढ़े।[१] यह सब कार्य उसका पति ही करता है। इसमें जितनी वस्तुयें हैं सभी आसुर प्राण वाली हैं। यह संस्कार छठे अथवा आठवें मास में इसलिए किया जाता है कि छठे अथवा आठवें मास में ही बालक में प्राण संचरण होता है। कभी-कभी बालक में माता के प्राण का तथा माता में बालक के प्राण का संचार होने लगता है। इससे गर्भपतन हो जाने का भय रहता है। इन्द्रविद्युत् (देवप्राण) का प्रसार उस मास में शिखा के द्वारा ही स्त्री में होता है और यही गर्भपात का कारण बन जाता है। इसी कारण शिखा में आसुर प्राण वाली वस्तुओं को छुआ देने से इन्द्रविद्युत् मूर्च्छित पड़ जाता है और गर्भ-पतन का भय नहीं रहता।

सोमेश्वर ने उदुम्बर फल से गुथी हुई माला द्वारा स्त्री के कण्ठ को विभूषित करने का आदेश दिया है। पश्चिमी भारत में अब भी लोग आठवें मास में एक संस्कार करते हैं जिसको मराठी में आठंगुलम् कहते हैं। इस अवसर पर वे उदुम्बर की माला धारण कराते हैं। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने स्याही के पुच्छ से निकले कांटों के अग्रभाग को शिर पर रखकर स्त्री के केशों को ऊपर करके उसका सीमन्तोन्नयन करने की विधि बतलाई है। इस प्रकार आसुर प्राण के संचार द्वारा इन्द्रविद्युत् को मूर्च्छित कर गर्भपात के भय का निवारण किया है।

इस धार्मिक कृत्य के पश्चात् सोमेश्वर ने अष्टमंगल नाम के महान् उत्सव को मनाने का आदेश दिया है। मंगल ध्वनियों में उन्होंने सर्वप्रथम वीणावादियों द्वारा सोमराग का गायन आवश्यक बतलाया है। इस सोमरोग के विषय में मानसोल्लास में कहा गया है—

अवरोहे सगन्धारः सोमरागस्तु षाडवः।

किन्तु संगीतरत्नाकर में इस सोमराग के विषय में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

---

१. तिलमुद्गमिश्रं स्थालीपाकं श्रपयित्वा प्रजापतेर्हुत्वा पश्चादग्नेर्भद्रपीठ उपविष्टायां युग्मेन सटालुग्रप्सेनौदुम्बरेण त्रिभिश्च दर्भपिञ्जूलैस्त्रेण्या शलल्या वीरतरशंकुना पूर्णपात्रेण च सीमन्तमूर्ध्वं विनयति भूर्भुवःस्वरिति, प्रतिमहाव्याहृतिभिर्वा—पा० गृ० सू० १।१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

षड्जे षाड्जीभवः षड्जग्रहांशान्त्यनिगोत्कटः ।
सोमरागः स्मृतो वीरे तारे मध्यस्थमध्यमः ॥[१]

स्वरमेलकलानिधि के अनुसार इसकी गणना अधम रागों में की गई है और उसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

सन्यासः सग्रहश्चैव सांशः सम्पूर्ण एव च ।
सोमरागः सदा गेयो मन्द्रमध्यमभूषितः ॥

लक्ष्यसंगीत ने भी इसका उल्लेख किया है—

अवरोहे गसंयोगे सोमरागस्य नोद्भवः ॥

यह प्रथा शास्त्रों में वर्णित प्रथा से भिन्न है । हो सकता है कि यह सोमराग का गायन सोमेश्वर की पारिवारिक परम्परा हो । शास्त्रों में वीणावादियों द्वारा सोम देवता के मन्त्रों के गाने का प्रसंग प्राप्त होता है ।[२] इसके अतिरिक्त वे वीणा पर ही किसी महान् प्रतापी राजा की कथा को गाते थे जिसमें वे पवित्र नदी का भी नाम लेते थे जिसके समीप स्त्री रहती हो ।[३]

सोमराग के गायन के अतिरिक्त महाराज सोमेश्वर के अनुसार ब्राह्मणों द्वारा शुभ अक्षर वाले साममन्त्रों का उच्चारण तथा पटहादि का मधुर शब्द होना चाहिए और साथ ही साथ पंचमहाशब्दों की ध्वनि होनी चाहिए । पंचमहाशब्दों से तात्पर्य पांच भिन्न-भिन्न वाद्यों से उत्पन्न मधुर तथा मंगल ध्वनि से है । ये वाद्य सम्भवतः भेरी, शंख, काहल, मृदंग तथा कांस्यताल हैं । इनके माधुर्य की निम्न पंक्ति प्रमाण है—

वीणाभेरिमृदंगकाहलकलागीतं च नृत्यं तथा ।[४]

इस प्रकार के अष्टमंगलात्मक उत्सव के अन्त में महाराज सोमेश्वर ने ब्राह्मणों को गो, भूमि, वस्त्र, स्वर्ण आदि देकर उन्हें संतुष्ट करने का उल्लेख

---

१. सं० र० अ० २–१६७ ।

२. आश्वलायन–वीणागाथिनौ संशास्ति सोमं राजानं संगायेताम् इति ।
आपस्तम्ब–गायतमिति वीणागाथिनौ संशास्ति ।
हिरण्यकेशी–सोम एव नो राजा याहुर्ब्राह्मणीः प्रजाः ।

३. पारस्कर–अथाह वीणागाथिनौ राजानं संगायेतां यो वाप्यन्यो वीरतर इति । नियुक्तामप्येके गाथामुपोदाहरन्ति । सोम एव नो राजेमा मानुषीः प्रजाः । अविमुक्तचक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यमसाविति यां नदीमुपावसिता भवति तस्या नाम गृह्णाति ।

४. शि० मा० पू० स्तोत्र ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया है। शास्त्रों में ब्राह्मणभोजन का उल्लेख है। यह प्रसंग राजा की दानशीलता एवं ब्राह्मणों के प्रति उसकी श्रद्धा को प्रकट करता है।

जातकर्म

महाराज सोमेश्वर ने पुत्र के उत्पन्न होते ही जातकर्म संस्कार करने का विधान बतलाया है—'सम्पूर्णे नवमे मासे जाते पुत्रे मनोहरे, जातकर्म प्रकुर्वीत…।' वास्तव में संस्कार की आवश्यकताओं को देखते हुए तथा जैसा इसका नाम जातकर्म है, यह संस्कार जन्म के बाद ही तुरन्त होना चाहिए।

इस संस्कार के समय के विषय में सूत्रों में थोड़ा मतभेद है। आश्वलायन[1] के अनुसार माता तथा दाई के अतिरिक्त दूसरे किसी व्यक्ति द्वारा छुए जाने के पूर्व यह संस्कार होना चाहिए। पारस्कर ने[2] नाल कटने के पूर्व इसका विधान बतलाया है। गोभिल[3] तथा खादिर[4] के अनुसार नाल कटने तथा बालक के स्तन स्पर्श करने के पूर्व इस संस्कार का सम्पादन करना चाहिए।

यह बहुत प्राचीन संस्कार ज्ञात होता है। तैत्तिरीयसंहिता[5] में पुत्र के उत्पन्न होने पर वैश्वानरेष्टि के करने का आदेश किया गया है—

वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत्पुत्रे जाते...यस्मिंजात एतामिष्टिं निर्वपति पूत एव तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवति।

शतपथ ब्रा० में नाल कटने के पूर्व एक संस्कार का उल्लेख किया है।[6]

बृहदारण्यकोपनिषद्[7] में जातकर्म का विस्तृत विधान दिया है। उसके अनुसार जातकर्म संस्कार के अन्तर्गत छः क्रियाओं का उल्लेख है—

१–होम, २–पुत्र के दाहिने कान में तीन बार वाक् शब्द का उच्चारण करना, ३–सोने के चम्मच अथवा अंगूठी से दधि, मधु तथा घृत चटाना, ४–बच्चे का एक गुप्त नाम रखना, ५–स्तन स्पर्श कराना, ६–मां को मन्त्रों द्वारा सम्बोधित करना।

शतपथ ब्रा० में विभिन्न दिशाओं से आए हुए पांच ब्राह्मणों द्वारा अथवा स्वयं पिता द्वारा बच्चे के ऊपर सांस छोड़ने की क्रिया का भी उल्लेख है।

गृह्यसूत्रों में इस संस्कार की विस्तृत क्रियाओं के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ में तो उपर्युक्त सातों क्रियाओं का समावेश है। कुछ में इनमें से एक-दो

---

१. आश्व० १।१५।२। २. पार० गृ० सू० १।१६।

३. गोभिल० २।७।१७। ४. खादिर० २।२।३२।

५. तै० सं० २।२।५।३–४।

६. Sacred Books of the East (ed. by Max Muller) vol. 44 p. 129.

७. बृहदारण्य० ६।४।२४–२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का अभाव है और कुछ में इनके अतिरिक्त दो एक क्रियाओं का उल्लेख है। बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि तथा वैखानस में बालक को स्नान कराने का विधान है। हिरण्यकेशि तथा वैखानस में उसे पत्थर पर लिटाने का उल्लेख है। हिरण्यकेशि, पारस्कर तथा भारद्वाजगृह्यसूत्रों में इस संस्कार का बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है किन्तु आपस्तम्ब, शांखायन आदि में इसका संक्षिप्त उल्लेख प्राप्त होता है।

सोमेश्वर ने इस संस्कार के विषय में तीन विशेष क्रियाओं का उल्लेख किया है—

१. सोने की मुद्रिका से मधु और घृत का चटाना।
२. माता के स्तन से दुग्धपान कराना।
३. सुवर्ण द्वारा आभ्युदयिक श्राद्ध का विधान।

इन सब वर्णनों से समय की गति के साथ क्रमशः इस संस्कार के महत्व के कम होने का प्रमाण मिलता है, यहां तक कि ग्यारहवीं, बारहवीं शती में इसका महत्व बहुत कम हो गया। सम्भवतः लोगों ने विस्तृत क्रिया द्वारा हानि का ध्यान रखते हुए इनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर लिए होंगे क्योंकि पैदा होने के समय बालक की दशा क्षीण होती है और जरा भी असावधानी से उसे हानि पहुँच सकती है, जैसे पैदा होते ही बच्चे को स्नान कराना अथवा उसे पत्थर पर लिटाना।

इस संस्कार के विषय में सोमेश्वर केवल 'स्वगृह्योक्तेन कर्मणा'[1] कहकर चुप हो गये हैं। अन्य संस्कारों की भाँति न तो ज्योतिषादि पर विचार किया है न विशेष क्रियाओं पर विस्तृत प्रकाश डाला है। उन्होंने उत्पन्न हुए बालक को सुवर्ण की मुद्रिका से आलिप्त अनामिका द्वारा घृत तथा मधु चटाने का आदेश दिया है। इससे विदित होता है कि उस समय व्यक्ति अपनी-अपनी गृहपरम्परा के अनुसार कार्य करते थे। बृहदारण्यकोपनिषद्[2] में सोने के चम्मच से दधि, मधु आदि चटाने का उल्लेख है। शास्त्रों में इसका विस्तार-पूर्वक वर्णन हुआ है। कुछ सूत्रों के अनुसार बालक के उत्पन्न होने पर उसका नाल कटने के पूर्व आयुष्करण तथा मेधाजनन संस्कार होता है जो बालक का पिता उसे दीर्घजीवी एवं मेधावी बनाने के ध्येय से करता है। तत्पश्चात् बालक को मन्त्र पढ़कर माता का स्तनपान कराया जाता है।

सोमेश्वर ने इस अवसर पर आभ्युदयिक श्राद्ध करने का आदेश दिया है। अधिकांश सूत्रों के अनुसार आभ्युदयिक श्राद्ध किसी शुभ अवसर पर किया

१. मानसोल्लास ३।१२।१२५९। २. बृहदा० ६।४।२४–२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जाता है जैसे पुत्रजन्म, चौल, उपनयन, विवाह अथवा पूर्त कर्म (कुआं आदि खुदवाना) के आरम्भ में। यह श्राद्ध साधारणतया प्रातःकाल किया जाता है किन्तु पुत्रजन्म के अवसर पर तुरन्त कर डालना चाहिए। सोमेश्वर का भी कथन है कि जातकर्म के अवसर पर प्रातः-सायं सन्ध्याओं तथा रात्रि में भी इस सुखप्रद श्राद्ध को करना चाहिए। इस श्राद्ध में ब्राह्मणों के भोजन कराने पर विशेष महत्व दिया जाता है किन्तु ब्राह्मणों की संख्या सम होनी चाहिए। सोमेश्वर का कथन है कि राजा को सुवर्ण द्वारा आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिए। सोमेश्वर महादानी राजा था जैसा उसके ग्रन्थ के कई स्थलों पर स्पष्ट है। अतः सुवर्ण द्वारा श्राद्ध करने का तात्पर्य ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् सुचारु रूप से दान देने का प्रतीत होता है।

इस प्रकार आभ्युदयिक श्राद्ध करने पर विशेष बल देखकर महाराज सोमेश्वर ने ब्राह्मणादि को भोजन कराकर एक विशेष उत्सव के साथ जातकर्म संस्कार मनाने का उल्लेख किया है।

नामकरण

बालक के जन्म से बारहवें दिन के पश्चात् नामकरण संस्कार करने का प्रसंग मानसोल्लास में प्राप्त होता है। इस संस्कार को करने के लिए मृग, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, रोहिणी, रेवती, स्वाती, मूल, पुष्य, आदि शुभ नक्षत्रों के भी नाम आए हैं। इन्हीं नक्षत्रों में शुभ दिन, तिथि तथा लग्न देखकर बालक की राशि के अनुकूल इस संस्कार को करना चाहिए।[1] पारस्कर-गृह्यसूत्र में दसवें दिन नामकरण संस्कार करने का विधान दिया हुआ है।[2]

बृहदारण्यकोपनिषद्, आश्वलायन, शांखायन तथा काठकगृह्यसूत्र[3] के अनुसार जन्म के दिन ही बच्चे का नाम रखना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण द्वारा इस मत का समर्थन होता है—

तस्मात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्पाप्मानमेवास्य तदपहन्त्यपि द्वितीयमपि तृतीयम्।[4]

महाभाष्यकार पतंजलि ने भी इसी मत का प्रसंग दिया है।

लोके तावन्मातापितरौ पुत्रस्य जातस्य संवृतेऽवकाशे नाम कुर्वाते देवदत्तो यज्ञदत्त इति। तयोरुपचारादन्येपि जानन्तीयमस्य संज्ञेति।

---

१. मानसोल्लास ३।१२।१२६२–६३।

२. दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति—
पा० गृ० सू० १।२२।

३. काठक गृ० सू० ३४।१। ४. शतपथ ब्रा० ६।१।३–९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पारस्कर के अतिरिक्त आपस्तम्ब, बौधायन तथा भारद्वाज ने जन्म के दसवें दिन, याज्ञवल्क्य[1] ग्यारहवें दिन, मनु दसवें अथवा बारहवें दिन जब पुण्य तिथि, मुहूर्त अथवा नक्षत्र हो, बौधायनगृह्यसूत्र दसवें अथवा बारहवें, वैखानस दसवें अथवा बारहवें तथा हिरण्यकेशि ने बारहवें दिन नामकरण करने का आदेश दिया है। गोभिल[2] तथा खादिर के अनुसार जन्म से दस रात्रि, सौ रात्रि अथवा एक वर्ष बाद किसी दिन नामकरण करना चाहिए—'जननादूर्ध्वं दशरात्राच्छतरात्रात्संवत्सराद्वा नाम कुर्यात्।'[3] 'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामधेयकरणम्।'[4] भविष्यत् पुराण के अनुसार दसवीं अथवा बारहवीं रात्रि के पश्चात् अथवा अठारहवें दिन अथवा एक मास के पश्चात् नामकरण करना चाहिए। बाण ने कादम्बरी में लिखा है कि तारापीड़ ने अपने पुत्र चन्द्रापीड़ का नाम जन्म के दसवें दिन शुभ मुहूर्त में और उनके मन्त्री शुकनास ने अपने पुत्र वैशम्पायन का नाम उसके दूसरे दिन रखा—

प्राप्ते दशमेहनि पुण्ये मुहूर्ते......चन्द्रापीड इति नाम चकार।
अपरेद्युः शुकनासोपि......वैशम्पायन इति नाम चकार।[5]

सोमेश्वर ने सम्भवतः इस सम्बन्ध में भविष्यत् पुराण को आधार माना है क्योंकि भविष्यत् पुराण के अनुसार बारहवें अथवा अठारहवें दिन के पश्चात् नामकरण हो सकता है। सोमेश्वर द्वारा रचित मानसोल्लास की बड़ौदा की छपी प्रति में 'द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वं' पाठ मिलता है जिससे बारहवें दिन के पश्चात् नामकरण होना चाहिए किन्तु मैसूर से मुद्रित अभिलषितार्थचिन्तामणि नाम की प्रति में 'दिवसाष्टादशादूर्ध्वम्' पाठ मिलता है जिसके अनुसार अठारहवें दिन के पश्चात् यह संस्कार होना चाहिए। शुद्ध प्रति के अभाव में यह कहना कठिन है कि सोमेश्वर को कौन सा दिन मान्य था। सम्भवतः अन्य प्रतियों में भविष्यत्-पुराण में उल्लिखित अन्य दिवसों का भी प्रसंग हो। किन्तु उपर्युक्त दो प्रसंगों से भविष्यत् पुराण का ही आधार स्पष्ट होता है।

पुत्र का नाम रखने के लिए धर्मशास्त्रों में विधिपूर्वक विधान दिया हुआ है कि बालक का नाम द्वि अक्षर, चार अक्षर वाला घोषवत् हो, विसर्ग अन्त में हो, कृत्प्रत्ययान्त हो तथा शर्मा, वर्मा, गुप्त क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के नामों के आगे लगा हो।[6] बालिकाओं का नाम सुनने में मधुर हो, मंगलकारी

१. याज्ञ० स्मृ० १।१२। २. गोभिल० २।८।८।
३. खादिर० २।३।६। ४. अपरार्क।
५. कादम्बरी पूर्वभाग, पैरा ६८।
६. पा० गृ० सूत्र १।२२, आ०गृ०सू० १।१५।४–५, मनुस्मृति २।३१–३३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हो, दीर्घ स्वर अंत में हो, नाम के आगे देवी लगा हो। सोमेश्वर ने बालक के नाम के आगे सिंह, मल्ल, बाहु, पाल, वर्म, पराक्रम, सेन, चंद्र, दिव्यसत्व, केसरी आदि लगाने को बताया है। इन शब्दों से यह विदित होता है कि उन्होंने उसमें वंशपरम्परा का आश्रय ग्रहण किया है क्योंकि उनका नाम भी भूलोकमल्ल था जो नाम वंशपरम्परा के अनुसार था।

इस सम्बन्ध में सोमेश्वरदेव ने सम्भवतः मनु का कुछ आधार लिया है क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण का नाम मंगलकारी, क्षत्रिय का बल से युक्त, वैश्य का धन से युक्त तथा शूद्र का दास्य से युक्त होना चाहिए—

मंगल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्॥[1]

इसके अतिरिक्ति ब्राह्मण के नाम में शर्मा, क्षत्रिय का रक्षायुक्त, वैश्य का पुष्टि से युक्त तथा शूद्र का सेवा से युक्त होना चाहिए—

शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्॥[2]

इस आधार पर यदि विचार किया जाय तो सिंह, मल्ल, बाहु, पाल, वर्म, पराक्रम, सेन, चन्द्र, दिव्यसत्व, केसरी, रथ आदि प्रत्यय बल तथा रक्षा के द्योतक हैं।

महाभाष्यकार ने राजन्य तथा वैश्य के नामों के इन्द्रवर्मन् तथा इन्द्रपालित दो उदाहरण दिए हैं। अपरार्क ने यम के आधार पर ब्राह्मणों के नाम में शर्म अथवा देव, क्षत्रियों के नाम में वर्म अथवा त्रात, वैश्यों के भूति अथवा दत्त तथा शूद्रों के नामों में दास जोड़ने को कहा है—

यमः—शर्मा देवश्च विप्रस्य वर्मा त्राता च भूभुजः।
भूतिदत्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत्॥

पुराणों में भी इसी प्रकार के नियम मिलते हैं, यथा—

शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंश्रयम्।
गुप्तदासाह्वयं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः॥[3]

इस सम्बन्ध में स्मृतिचन्द्रिका में बैजावाप का जो मत दिया है उसका पालन मानसोल्लासकार ने किया है, ऐसा प्रतीत होता है। बैजावाप के अनुसार पिता पुत्र का नाम एक अक्षर, दो अक्षर, तीन अक्षर, चार अक्षर तथा असी-

---

१. मनुस्मृति २।३१। २. वही २।३२।
३. विष्णु पु० ३।१०।९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मित अक्षर वाला रखता है। किन्तु पहला घोष वर्ण जैसे वर्ग का तीसरा या चौथा अक्षर होना चाहिए और बीच में अन्तःस्थ जैसे य, र, ल, व होना चाहिए। भूलोकमल्ल नाम पवर्ग के चतुर्थ अक्षर भ से आरम्भ होता है और मध्य में ल अक्षर मिलता है। इसके अतिरिक्त कुलदेवता, नक्षत्र, अथवा कुल के दूर के पूर्वज के आधार पर नाम रखने की भी स्वतन्त्रता बैजावाप ने दी है। राजा का सो–मे–श्वर नाम इस नियम के अन्तर्गत आ जाता है क्योंकि ये अपने कुल में सोमेश्वर नाम के तीसरे राजा थे। इनके दो पूर्वज इसी नाम से हो चुके थे।

अन्नप्राशन

गोभिल तथा खादिर गृह्यसूत्र में इस संस्कार का उल्लेख नहीं है। मानसोल्लास में बालक का अन्नप्राशन संस्कार छठे मास में करने का आदेश दिया गया है। अधिकांश स्मृतियों ने छठा मास ही कहा है। मानवगृह्यसूत्र में पांचवें अथवा छठे मास में तथा काठक में छठे मास में अथवा दांत निकलने पर इसके किए जाने का उल्लेख है। शंख के आधार पर अपरार्क का कथन है कि एक वर्ष के अन्त में अथवा कुछ के अनुसार छठे मास के अन्त में इसका संपादन करना चाहिए—

संवत्सरेऽन्नप्राशनमर्धसंवत्सर इत्येके।[1]

सोमेश्वर ने इस संस्कार को रेवती, रोहिणी, हस्त, पुष्य, उत्तरा नक्षत्रों तथा चन्द्रवार एवं बृहस्पतिवार को करने का आदेश दिया है।[2] ये सभी नक्षत्र तथा दिन ज्योतिष के विचार से अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। इससे विदित होता है कि सोमेश्वरदेव ज्योतिष के बड़े ज्ञाता थे। वे प्रत्येक संस्कार के करने के लिए उसके आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक बल देते थे। व्यावहारिक पक्ष पर उनका अधिक ध्यान न था। उनका विचार था कि शुभ लग्न, तिथि तथा नक्षत्र में संस्कार सम्पादित होने पर बालक के लिए अधिक लाभदायक होते हैं। इसी कारण प्रत्येक संस्कार के वर्णन के साथ-साथ वह उसे संपादित करने के लिए अनेक शुभ नक्षत्रों, तिथि, लग्न एवं वारों का नाम गिनाते हैं जिससे समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुविधानुसार संस्कारों को कर सके।

अन्नप्राशन संस्कार की विधि के विषय में सोमेश्वर ने अधिक वर्णन नहीं किया है। उनके कथानुसार अन्नप्राशन संस्कार का छठे मास में सम्पादन धर्मशास्त्रों के आधार पर है।[3] इस अवसर पर बालक को खिलाए जाने वाले

१. अपरार्क, पृष्ठ–२८।   २. मानसोल्लास ३।१२।१२६६।

३. याज्ञ० स्मृ०—षष्ठेऽन्नप्राशनम्, ब्रह्मचारिप्रकरण १२ तथा पार० गृ० सू०—षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् १–२४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्न के विषय में मानसोल्लास में कुछ भी नहीं बताया गया है। सम्भवतः उनके समय में बालक को खिलाने के लिए किसी विशेष वस्तु का प्रयोग न होता था। साधारणतः खीर का ही प्रयोग होता होगा।

गृह्यसूत्रों[1] में इस अवसर पर खिलाने के लिए कुछ वस्तुओं का विशेष-रूप से प्रयोग करने का आदेश दिया गया है। पारस्करगृह्यसूत्र में अन्न के साथ-साथ बालक को मांस खिलाने का आदेश दिया गया है जिसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की मछली तथा पक्षियों का मांस सम्मिलित है। ये सब प्रकार के मांस बालक में किसी शक्ति को उत्पन्न करने के हेतु खिलाये जाते थे—उदाहरणार्थ शुद्ध वाणी के उच्चारण के हेतु भारद्वाज पक्षी का मांस, अन्न तथा धनादि के लिए कपिंजल पक्षी (मोर, तीतर) का मांस, शीघ्रगामी बनने के लिए मछली का मांस, दीर्घायु होने के लिए केकड़े का मांस तथा ब्रह्मवर्चस्-प्राप्ति के लिए आट्या पक्षी का मांस एक साथ थोड़ा लेकर अथवा एक-एक बार चटावे।[2] इस सबके चटाने से बालक में ये सभी गुण आ जाते हैं।

अन्नप्राशन के समय बालक को अन्न उत्तम वाणी प्राप्त करने के हेतु चटाया जाता है क्योंकि यही वह समय होता है जबसे बालक कुछ अस्फुट शब्दों का प्रयोग करना आरम्भ करता है। इसी कारण इस समय वाग्देवी की ही स्तुति होती है। उनको धेनुरूप में मानकर बालक के लिए उनसे अन्न, धन, आयु, यश, वाणी प्रदान करने के लिए स्तुति की जाती है।[3] इस अवसर पर बालक को सभी प्रकार के अन्न तथा सुगन्धियुक्त पदार्थ खिलाये जाते हैं और स्तुति कर बालक के लिए मन्त्र पढ़े जाते हैं कि मैं प्राणों से अन्न का, अपान से गन्ध का, चक्षु से रूप का तथा श्रोत्र से यश का अनुभव करूं। यह अन्न मेरी समस्त कामनाओं को पूर्ण कर समस्त वस्तुयें प्रदान करे।[4] इस प्रकार अन्नप्राशन के अवसर पर चटाया हुआ दुग्धादिपूर्ण अन्न बालक को आयुष्मान्, मेधावी, वाक्पटु तथा ब्रह्मवर्चस् से पूर्ण बनाता है।

सोमेश्वरदेव ने इसी संस्कार के प्रसंग में लिखा है कि शुभ दिन, तिथि

---

१. शा० गृ० सू० १।२७।२, आश्व० गृ० सू० १।१६।३।

२. भारद्वाज्या माᳫंसेन व्वाक्प्रसारिकामस्य कपिञ्जलमाᳫंसेनान्नाद्यकामस्य मत्स्यैर्जवनकामस्य......सर्व्वकामस्यान्नपर्य्याय वा—पा० गृ० सू० १।२४।

३. सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्व्वागस्मानुपसुष्टुतैतु स्वाहा।

पा० गृ० सू० १।२४।

४. प्राणेनान्नमशीय स्वाहापानेन गन्धानशीय स्वाहा चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा श्रोत्रेण यशोशीय स्वाहेति—पा० गृ० सू० १-२४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा लग्न में बालक की अस्फुट वाणी को सुने।[१] इस प्रकार सम्भवतः वे भी इसी प्रमाण को मानते हैं कि अन्नप्राशन के अवसर पर खिलाया जाने वाला अन्न बालक को उत्तम वाणी तथा ज्ञान प्रदान करता है। इसी कारण उन्होंने यह संस्कार बृहस्पतिवार तथा चन्द्रवार को करने का आदेश दिया है।[२] बृहस्पति तथा सोम का दिवस ज्योतिष के विचार से विद्याप्राप्ति तथा वाक्-विद्वत्ता के लिए अत्युत्तम है।

साथ ही सोमेश्वर ने हृदय तथा मन में उल्लास उत्पन्न करने वाली बालक की क्रीड़ाओं का विस्तृत उल्लेख किया है।[३] अन्नप्राशन संस्कार के समय तक बालक इतना बड़ा हो जाता है कि वह टूटे-फूटे शब्दों का उच्चारण करने में समर्थ हो जाता है, घुटने के बल चलने लगता है और नाना प्रकार के हाव-भावों द्वारा माता-पिता के मन को मोहित करने लगता है।

कर्णवेध

सोमेश्वर ने पहले अथवा दूसरे वर्ष के अन्त में बालक का कर्णवेध संस्कार करने का आदेश दिया है—

एकद्विवत्सरस्यान्ते कारयेत्कर्णवेधनम्।[४]

सम्भवतः यह उनकी गृह-परम्परा का ही प्रभाव विदित होता है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में चूड़ाकर्म के पूर्व ही कर्णवेध संस्कार होता था। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार कर्णवेध संस्कार तीसरे या पांचवें वर्ष[५] में किया जाता है और इसके पूर्व में चूड़ाकरण संस्कार होता है।

अधिकांश प्राचीन स्मृतियों में इस संस्कार का उल्लेख नहीं है। वेदव्यास-स्मृति,[६] बौधायन गृह्यशेषसूत्र[७] तथा कात्यायन सूत्र में इसका प्रसंग प्राप्त होता है। बौधायन गृह्यशेषसूत्र में इसका विधान सातवें-आठवें मास में किया गया है। बृहस्पति के आधार पर संस्कारप्रकाश[८] में इसका विधान जन्म से दसवें, बारहवें या सोलहवें दिन अथवा सातवें या दसवें मास में किया गया है।

स्मृतिचन्द्रिका में कर्णवेध पर संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है। गृह्यपरिशिष्ट के अनुसार पिता पूर्व की ओर मुख करके सर्वप्रथम पुत्र के दाहिने कान को

---

१. मानसोल्लास ३।१२।१२६७।

२. वारे चेन्दोर्बृहस्पतेः— मानसोल्लास ३।१२।१२६६।

३. वही ३।१२।१२६८—७७। ४. वही ३।१२।१२७८।

५. अथ कर्णवेधनं वर्षे तृतीये पंचमे वा—पा० गृ० सू० २।२।

६. वेदव्यासस्मृति १—१९। ७. बौ० गृ० शे० सू० १।१२-१।

८. वीरमित्रोदय खण्ड १, संस्कारप्रकाश।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सम्बोधित करके ऋग्वेद के मन्त्र का[1] उच्चारण करता है, फिर बायें कान के साथ यही करता है। यदि लड़का चिल्लाता है तो उसे मधु दिया जाता है। इस कृत्य के अन्त में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

वर्तमान समय में साधारणतया एक स्वर्णकार को बुला लिया जाता है जो कान के नीचे के भाग को नुकीले सोने के तार से छेदकर उस तार को गोल कर देता है। लड़कियों का बायां कान पहले छेदा जाता है।

चूड़ाकरण

मानसोल्लास में चूड़ाकर्म संस्कार दो वर्ष के पश्चात् अर्थात् तीसरे वर्ष में करने का प्रसंग प्राप्त होता है—

वत्सरद्वितयादूर्ध्वं चूडा कार्या यथाकुलम्।[2]

किन्तु अपने कुल की रीति के अनुसार भी यह हो सकता था। सोमेश्वर द्वारा कथित यह 'यथाकुलम्' की भावना 'यथामांगल्यं वा'[3] तथा 'यथाकुलधर्मं वा'[4] से मिलती-जुलती है। इसके अतिरिक्त मनु ने भी चूड़ाकर्म के विषय में कुल की रीति को प्रधानता दी है।[5]

इस संस्कार का उल्लेख प्रायः सभी स्मृतियों तथा धर्मसूत्रों में मिलता है। अधिकांश सूत्रों यथा आपस्तम्ब, गोभिल, हिरण्यकेशि, काठक, खादिर आदि ने तीसरे वर्ष में इस संस्कार के करने का आदेश दिया है। बौधायन गृह्यसूत्र,[6] पारस्कर गृह्यसूत्र,[7] मनुस्मृति[8] तथा वैखानस[9] के अनुसार यह प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में होना चाहिए। आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा वाराहगृह्यसूत्र के अनुसार यह तृतीय वर्ष में अथवा जिस वर्ष में कुल की प्रथा हो, होना चाहिए। पारस्कर ने भी कुल-परम्परा का उल्लेख किया है। याज्ञवल्क्य ने कोई वर्ष न देकर कुल-परम्परा को ही महत्व दिया है। अपरार्क ने यम के आधार पर प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय वर्ष में इसको करने की अनुमति दी है। शंख तथा लिखित संहिता ने तृतीय अथवा पंचम वर्ष माना है। आश्वलायन के व्याख्याकार नारायण तथा संस्कारप्रकाश में उल्लिखित षड्गुरुशिष्य का कथन है कि कुछ लोग उपनयन के अवसर पर यह संस्कार करते थे।

---

१. ऋग्वेद १।८९।८।
२. मानसोल्लास ३।१२।१२८०।
३. पा० गृ० सू० २।१।
४. आश्व० गृ० सू० १।१७।१, या० व० ब्रह्म० प्र० श्लो० १२।
५. मनु० २।३५।
६. बौधा० गृ० सू० २।४।
७. पार० गृ० सू० २।१।
८. मनु० २।३५।
९. वैखानस० ३।२३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस संस्कार को करने के लिए पुनर्वसु, धनिष्ठा, रेवती, श्रवण, मृग, तीनों उत्तरायें[1], हस्त, चित्रा, पुष्य तथा अश्विन नक्षत्रों का उल्लेख मानसोल्लास में हुआ है।[2] आपस्तम्ब गृह्य[3] के अनुसार यह संस्कार तब करना चाहिए जब चन्द्रमा पुनर्वसु में हो। मानवगृह्यसूत्र के अनुसार मास की नवमी तिथि को यह संस्कार कदापि न करना चाहिए। मानसोल्लास के अनुसार इसको करने में शुभ दिन, तिथि तथा लग्न का भी विचार करना चाहिए।[4] गृह्यसूत्रों एवं धर्मशास्त्रों में इतने प्रकार के नक्षत्रों का उल्लेख इस संस्कार को करने के लिए नहीं हुआ है। स्मृतियों में इस संस्कार को करने का समय अपने कुल की रीति के अनुसार तीन अथवा पांच वर्ष में बताया गया है। किन्तु गृह्यसूत्रों में पहले या तीसरे वर्ष में ही इसे करने का आदेश दिया गया है।[5] इस संस्कार के विषय में मानसोल्लास में विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं हुआ है। हां, इसके प्रसंग को पढ़कर ज्योतिष के अनुसार इस संस्कार की उत्तम तिथि का ज्ञान हो सकता है।

उपनयन

चूडाकरण के पश्चात् सोमेश्वर ने गर्भ के आठवें अथवा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में मौंजीबन्धन संस्कार करने का आदेश दिया है।[6] 'यज्ञोपवीत,' 'उपनयन' आदि के स्थान पर सोमेश्वर ने 'मौंजीनिबन्धन' शब्द का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट होता है कि मुंजमेखला का बन्धन सम्भवतः सभी वर्णों में प्रचलित था और यह उस अवसर पर विशेषरूप से पहनाई जाती थी। यह बंधी हुई मुंजमेखला आत्मा के तीनों गुणों की एकता को सिद्ध करती है। इसको पहन कर ब्रह्मचारी में शीघ्र ही इन गुणों का समावेश हो जाता है। इस मौंजी-निबन्धन के सम्बन्ध में सोमेश्वर ने शास्त्रों में विहित मेखलाओं का प्रसंग नहीं दिया है। सोमेश्वर स्वयं क्षत्रिय थे और क्षत्रिय में इन सभी आत्मिक गुणों का होना आवश्यक है। इसी कारण उन्होंने मौंजी-मेखला को इतना महत्व दिया है। इसके अतिरिक्त आठ तथा ग्यारह वर्ष पर यज्ञोपवीत संस्कार की अवधि से यह स्पष्ट होता है कि साधारणतः इसी आयु पर उस समय समाज में यज्ञोपवीत संस्कार होता होगा।

---

१. उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा।

२. मानसोल्लास ३।१२।१२७९। ३. आप० गृ० सू० १६।३।

४. मानसोल्लास ३।१२।१२८०।

५. सांवत्सरिकस्य चूडाकरणं तृतीये वा प्रतिहते—पा० गृ० सू० २।१।१।

६. मानसोल्लास ३।१२।१२८३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि के लिए विशेष आयु का कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। हां, इतना अवश्य लिखा है—'व्रतबन्धं प्रकुर्वीत क्षत्रियस्य यथोचितम्।'[1] यह पंक्ति उनकी वंश-परम्परा की द्योतक है। क्षत्रियों में सम्भवतः ग्यारह वर्ष के बाद भी संस्कार कर दिया जाता था। वैसे यज्ञोपवीत का समय आठ अथवा ग्यारह वर्ष ही था। स्मृतियों तथा गृह्यसूत्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के उपनयन के लिए विशेषरूप से अवस्था का उल्लेख हुआ है। सभी धर्मशास्त्रों में विशेष रूप से ब्राह्मण का उपनयन आठ वर्ष में, क्षत्रिय का ग्यारह वर्ष पर तथा वैश्य का बारहवें वर्ष अथवा अपनी कुल-परम्परा के अनुसार करने का आदेश है।[2] इसके अतिरिक्त इस अवधि के साथ ही 'यथामांगल्यं सर्वेषाम्'[3] कहकर सबको अपनी वंश-परम्परा निभाने की छूट दी गई है। महर्षि मनु ने इन सबसे अलग अवधि बतलाई है। उनके अनुसार पांच वर्ष में ब्राह्मण के पुत्र का, आठ वर्ष में क्षत्रिय का तथा ग्यारह वर्ष में वैश्य के पुत्र का उपनयन होना चाहिए।[4]

उपनयन के समय के विषय में शास्त्रों में बड़ा मतभेद है। सर्वप्रथम तो यही नहीं निश्चित है कि वर्ष की गणना गर्भ से की जाय अथवा जन्मकाल से। जहां तक वर्ष का सम्बन्ध है, अधिकांश ग्रन्थों में ब्राह्मण का आठवें तथा क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में माना गया है। केवल कुछ शास्त्रों में थोड़ा अन्तर है। कुछ मत यहां दिए जाते हैं—

आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार ब्राह्मण का जन्म अथवा गर्भ से आठवें वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष, वैश्य का बारहवें वर्ष उपनयन करना चाहिए—

'अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्।

आपस्तम्ब,[5] शांखायन,[6] बौधायन,[7] भारद्वाज,[8] तथा गोभिल[9] गृह्यसूत्रों

---

१. वही ३।१२।१२८४।

२. गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्॥
याज्ञ० स्मृ०, ब्रह्मचारिप्रकरण १४

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेद् गर्भाष्टमे वैकादशे क्षत्रियं द्वादशे वैश्यम्।
आश्वलायनगृह्यसूत्र।

३. पा० गृ० सू० २।३।२।

४. मनु० २।३६।

५. आप० गृ० सू० १०।२।

६. शांखा० गृ० सू० २।१।

७. बौधा० गृ० सू० २।५।२।

८. भार० गृ० सू० १।१।

९. गोभिल० २।१०।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने और याज्ञवल्क्यस्मृति[1] तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र[2] ने स्पष्ट कह दिया है कि वर्षों की गणना गर्भ से करनी चाहिए। महाभाष्यकार का भी मत है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत गर्भ से आठवें वर्ष में होना चाहिए। शांखायन में गर्भ से आठवें या दसवें वर्ष, मानवगृह्य में सातवें अथवा नवें, तथा काठक गृह्य० में तीनों वर्णों के लिए क्रमशः सातवें, नवें, ग्यारहवें वर्ष का विधान है। कुछ स्मृतियों में इससे पूर्व अथवा विभिन्न वर्षों में उपनयन करने का विधान बतलाया है। गौतम के अनुसार ब्राह्मण का उपनयन गर्भ से आठवें वर्ष होना चाहिए किन्तु इच्छित फल के अनुसार पांचवें या नवें वर्ष भी हो सकता है। मनुस्मृति[3] के अनुसार यदि ब्रह्मवर्चस् की इच्छा है तो विप्र का पांचवें वर्ष में, इसी प्रकार बलार्थी क्षत्रिय का छठे वर्ष तथा कृष्यादि की इच्छा वाले वैश्य का आठवें वर्ष में उपनयन करे। इसी प्रकार वैखानस[4] में क्रमशः गर्भ से पांचवें, आठवें और नवें वर्ष का विधान है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र[5] तथा बौधायन गृह्यसूत्र के अनुसार सातवें, आठवें, नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें वर्ष का विधान है।

विभिन्न मतों के अनुसार उपनयन के लिए जो विभिन्न वर्ष दिए गए हैं उनका विभाजन संस्कारप्रकाश में भलीभांति किया गया है। उसके अनुसार जन्म से आठवें, ग्यारहवें, बारहवें वर्ष में क्रमशः तीनों वर्णों का उपनयन यह मुख्य समय है। पांचवें से ग्यारहवें वर्ष के बीच का समय गौण समय ब्राह्मणों के लिए तथा ९ से १६ वर्ष के बीच क्षत्रिय के लिए। अन्त में बारहवें से सोलहवें वर्ष के बीच का समय गौणतर समय ब्राह्मणों के लिए और सोलह वर्ष के बाद गौणतर समय क्षत्रियों के लिए है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनयन के लिए मुख्य समय ब्राह्मणों के लिए आठ वर्ष तथा क्षत्रियों के लिए ग्यारह वर्ष अधिकांश शास्त्रों में कहा गया है। महाराज सोमेश्वर ने आठ और ग्यारह वर्ष का उल्लेख तो अवश्य किया है किन्तु उन्होंने केवल क्षत्रिय वर्ण का ही नाम लिया है —

वर्षे गर्भाष्टमे वापि गर्भैकादशकेऽपि वा।
व्रतबन्धं प्रकुर्वीत क्षत्रियस्य यथोचितम्॥[6]

यह श्लोक मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक से बहुत कुछ मिलता है—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥[7]

---

१. याज्ञ० स्मृ० १।१४। २. आप० धर्म सू० १।१।१,१९।
३. मनु० २।३७। ४. वैखानस० २।३।
५. आप० धर्म० सू० १।१।२१। ६. मानसो० ३।१२।१२८३–८४।
७. मनु० २।३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सर्वप्रथम तो मनु की भांति सोमेश्वर ने वर्षों की गणना जन्म की अपेक्षा गर्भ से की है। दूसरे ८ और ११ की संख्या भी मिलती है। अन्तर इतना है कि मनु ने आठवें वर्ष ब्राह्मण और ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय के उपनयन का विधान किया है और मानसोल्लासकार ने क्षत्रिय के लिए ही ८ वें अथवा ११ वें वर्ष विधान किया है। सम्भवतः सोमेश्वर महाराज का भी मनु की भांति विचार रहा हो और मानसोल्लास की अशुद्ध प्रतियां उपलब्ध होने के कारण यह पाठभेद हो गया हो।

मानसोल्लासकार ने उपनयन के लिए अश्विनी, रेवती, मूल, ज्येष्ठा, श्रवणत्रय, हस्तत्रय, पुष्य आदि नक्षत्र तथा भौम, सोम, गुरु तथा शुक्र ये दिन मौंजीबन्धन के लिए उत्तम बतलाये हैं।[1] ये सभी नक्षत्रादि ब्रह्मवर्चस्, प्रकृष्ट भाग्य तथा मेधा प्रदान करनेवाले हैं। यज्ञोपवीत का यही ध्येय होता है कि बालक मेधावी, उत्तम भाग्यवाला, प्रज्ञावान तथा विद्वान् बनकर अपने जीवन-सम्बन्धी उत्तर-दायित्वों को समझे और उन्हें निबाहता हुआ जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति करे। इन सब प्रसंगों से विदित होता है कि वास्तव में सोमेश्वर ज्योतिष एवं नक्षत्रविज्ञान से पूर्ण रूप से परिचित थे। इसी कारण वे प्रत्येक संस्कार करने के लिए ऐसी तिथि, नक्षत्र एवं लग्नों का प्रसंग देते हैं जिनमें सम्पादित होकर संस्कार और भी उन्नति प्रदान करें।

सोमेश्वरदेव ने यज्ञोपवीत अथवा उपनयन शब्द न देकर 'मौंजीबन्धन'[2] 'व्रतबन्ध'[3] नाम दिए हैं। यहां पर इन दो नामों से दो संस्कारों का संदेह हो सकता है किन्तु तत्सम्बन्धित श्लोकों को ध्यान से पढ़ने पर ज्ञात होता है कि दोनों एक ही संस्कार से सम्बन्धित हैं अथवा एक ही संस्कार के दो विभिन्न नाम हैं। इस शंका का समाधान काठकगृह्यसूत्र[4] की आदित्यदर्शन की व्याख्या से पूर्ण रूप से हो जाता है जिसमें कहा गया है कि उपनयन, मौंजी-बन्धन, बटुकरण तथा व्रतबन्ध ये पर्यायवाची शब्द हैं। मानव तथा काठकगृह्य-सूत्र में उपनयन की अपेक्षा उपनायन शब्द का भी प्रयोग हुआ है। याज्ञवल्क्य ने 'द्विज' शब्द की परिभाषा देते हुए उपनयन के लिए 'मौंजीबन्धन' शब्द प्रयुक्त किया है—

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौंजिबन्धनात्।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः॥[5]

---

१. मानसो० ३।१२।१२८१–८३।

२. वही ३।१२।१२८३। ३. वही ३।१२।१२८४।

४. काठक गृ० सू० ४१।१।

५. याज्ञ० स्मृ० ब्रह्मचारि प्रकरण, श्लोक ३९।

३ मा०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य का एक जन्म माता से तथा दूसरा मौंजि-बन्धन अथवा उपनयन से गिना जाता है, इसीलिए ये द्विज कहलाते हैं।

विद्यारम्भ

विद्यारम्भ संस्कार के विषय में सोमेश्वर ने आर्द्रा, श्रवण, स्वाती, चित्रा, हस्त, मूल, पूर्वात्रय, रेवती, आश्लेषा, पुनर्वसु, मृगशीर्ष, धनिष्ठा, अश्विनी तथा पुष्य नक्षत्र के अतिरिक्त उसके लिए बुध, गुरु तथा शुक्रवार को श्रेष्ठ माना है।[1] वास्तव में ये सभी नक्षत्र तथा दिवस विद्यारम्भ के लिए श्रेष्ठ माने गए हैं। इन दिनों में विद्यारम्भ करनेवाला बालक बुध, बृहस्पति तथा शुक्र की भांति विद्वान् हो जाता है। इसी समय से बालक को अनेक विद्याओं एवं कलाओं की शिक्षा दी जाती थी किन्तु मानसोल्लास के प्रसंगों से विदित होता है कि सम्भवतः उस समय में ब्रह्मचारी गुरु के गृह जाकर वेदाध्ययनादि न करता था वरन् उसे अपने गृह पर ही उपाध्यायों द्वारा शिक्षा दिलवाई जाती थी।[2]

साधारणतया विद्यारम्भ संस्कार का तात्पर्य बालक के उस संस्कार से है जिस समय से उसे अक्षरज्ञान कराया जाता है। कौटिल्य ने बालक के चौल-कर्म के सम्पन्न हो जाने के समय से लेकर गोदान संस्कार अथवा विवाह के दिन तक बालक को दी जानेवाली शिक्षा के विषय में लिखा है—

'वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुंजीत। वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षिकीं च शिष्टेभ्यो वार्तामध्यक्षेभ्यो दण्डनीतिं वक्तृप्रवक्तृभ्यः। ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्। अतो गोदानं दारकर्म च।'[3]

इस प्रकार से बालक के चौलकर्म के पश्चात् उसे अक्षर तथा संख्या का ज्ञान कराया जाता था किन्तु उपनयन के पश्चात् आन्वीक्षिकी, वार्ता तथा दण्डनीति का सीखना उसके लिए आवश्यक था। इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश में राजा अज की शिक्षा के विषय में लिखा है—

स वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः।
लिपेर्यथावद् ग्रहणेन वाङ्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत्॥[4]

अर्थात् चूडाकरण के पश्चात् सर्वप्रथम राजा अज ने अक्षरज्ञान प्राप्त किया, तत्पश्चात् संस्कृत साहित्य के अथाह सागर में अवगाहन किया। बाण की कादम्बरी भी चन्द्रापीड की ६ वर्ष की आयु से लेकर १६ की आयु की शिक्षा

---

१. मानसो० ३।१२।१२८४–८६।

२. वेदमध्यापयेत्पुत्रमस्त्रविद्यां च शिक्षयेत्। मानसो० ३।१२।१२८६।

३. कौ० अर्थशास्त्र १।५। ४. रघुवंश ३।२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का प्रसंग देकर इसी प्रमाण को पुष्ट करती है। चन्द्रापीड़ ने विद्यामन्दिर में प्रवेश कर पद, वाक्य, धर्मशास्त्र, राजनीति, व्यायाम, अस्त्रविद्या, रथचर्या, गजतुरगारोहण, वाद्य, गणित, वास्तु, आयुर्वेद, नाटक, कथा, आख्यायिका, काव्य, पुराण, यन्त्र प्रयोग आदि सभी विद्यायें एवं सभी लिपियां सीखी थीं।[१] भवभूति ने उत्तररामचरित में लव-कुश के उपनयन से पूर्व तथा चौलकर्म के पश्चात् वेदों के अतिरिक्त अन्य विद्याओं को सीखने का प्रसंग दिया है।

सोमेश्वर ने उपनयन के बाद विद्यारम्भ संस्कार करने को लिखा है जिसके पश्चात् पुत्र को वेदादि का ज्ञान कराया जाता है और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी जाती है। अतः इनके विद्यारम्भ से तात्पर्य अक्षरज्ञान से नहीं वरन् विशिष्ट ज्ञान से है।

शिक्षा

महाराज सोमेश्वर के समय में बालकों की शिक्षा के विषय में विशेष ध्यान रखा जाता था। उन्हें वेदों के अध्ययन के साथ ही साथ शस्त्रविद्या की भी शिक्षा दी जाती थी।[२] उनके शस्त्र, शास्त्रविद्या के अभ्यास की परीक्षा अश्वारोहण में निपुण, विद्वान्, सुशिक्षित तीक्ष्ण बुद्धि वाले उपाध्याय करते थे। ये सभी एक-एक करके बालक की परीक्षा लेते थे।[3] इसके अतिरिक्त अन्य कलाकौशल, नीति, श्रुति, तर्क, काव्य तथा व्याकरण आदि शास्त्रों में भी उसे निपुण बनाया जाता था।[४] धनुर्विद्या, भूमिबल, स्वरशास्त्र तथा अन्य कलाओं की परीक्षा भी उपाध्यायों द्वारा होती थी। बाण को छोड़ने, चलाने, लक्ष्य पर मारने तथा बाण को खींचने के उत्कर्ष का वे परीक्षा करते समय विशेष ध्यान रखते थे।[५] बालकों को खड्ग, कुन्त, गदा, चक्र, शलि, शूल, कृपाण, लाठी आदि चलाने की भी शिक्षा दी जाती थी।[६] इन सभी अस्त्र-शस्त्रों के चालन की परीक्षा उन सभी शस्त्रों के ज्ञाता करते थे जिनके साथ परीक्षा के समय राजा भी विद्यमान रहता था।[७] क्षत्रियों को अश्वारोहण में विशेष रूप से निपुण बनाया जाता था।

इस प्रकार उस समय बालक सभी प्रकार के ज्ञान, विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र एवं कला में विशारद हो जाते थे। इस प्रकार के निपुण एवं पितृभक्ति में रत बालक के स्पर्श को प्राप्त कर पिता अत्यन्त आनन्द का अनुभव करता था। इन सब प्रकार की शिक्षाओं में सोमेश्वर ने क्षत्रियों की शिक्षा का विशेष रूप से

---

१. कादम्बरी, पैरा ६९–७१।
२. मानसो० ३।१२।१२८६।
३. वही ३।१२।१२८७–८८।
४. वही ३।१२।१२८९।
५. वही ३।१२।१२९०–९२।
६. वही ३।१२।१२९४।
७. वही ३।१२।१२९६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। क्षत्रियों के पुत्रों के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक थी। उन्हें अश्वारोहण, गजारोहण, वेदादि का ज्ञान, अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान, नीतिशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था क्योंकि क्षत्रिय बालक ही आगे चलकर राजा के पद से विभूषित होकर सम्पूर्ण राष्ट्र के हर प्रकार के उत्तरदायित्व के भार को वहन करता था। यदि वह इन सभी में निपुण न होगा तो उसे राज्यकार्य चलाने में कठिनाई होगी। क्षत्रिय के बालक के शिक्षा प्राप्त कर लेने पर उसका पिता अनेक गज, अश्व, भूमि, ग्राम, धन, वस्त्र, कांचन आदि देकर उपाध्यायों को संतुष्ट करता था।[१]

गोदान

यह सम्भवतः केशान्त संस्कार का ही दूसरा नाम है। पारस्कर, याज्ञवल्क्य[२] तथा मनु ने केशान्त शब्द का प्रयोग किया है और आश्वलायन, शांखायन, गोभिल आदि गृह्यसूत्रों ने गोदान शब्द प्रयुक्त किया है। मानसोल्लासकार ने इस संस्कार की विस्तृत क्रियाओं का उल्लेख नहीं किया है किन्तु अन्य शास्त्रों के अनुसार इस संस्कार में सिर, बगल आदि के बाल मुँडवाए जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में दीक्षा का उल्लेख करते हुए गोदान शब्द का प्रयोग कान के ऊपरी भाग अर्थात् सिर के बालों के लिए हुआ है—'गोदानं नाम कर्णस्य उपरि प्रदेशः'।

'स दक्षिणमेवाग्रे गोदानमभ्युनक्ति।'[3]

महाराज सोमेश्वर ने इस संस्कार के सम्पादन का समय भी नहीं दिया है किन्तु अधिकांश स्मृतिकारों ने १६ वें वर्ष इसका विधान बतलाया है। शांखायन गृह्यसूत्र[४] के अनुसार १६ अथवा १८ वर्ष का विधान है। मनु के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य का क्रमशः १६ वें, २२ वें अथवा २४ वें वर्ष गोदान संस्कार करना चाहिए। सोमेश्वरदेव ने सम्भवतः मनु को ही प्रमाण माना है क्योंकि जैसा पूर्व में कहा गया है उपनयन संस्कार के सम्बन्ध में इन्होंने मनु द्वारा कथित ८ और ११ वर्ष की आयु को ही ठीक माना है। इसके अतिरिक्त लघु आश्वलायन स्मृति[५] के अनुसार गोदान संस्कार १६ वें वर्ष अथवा विवाह के समय होना चाहिए। इससे भी उपर्युक्त कथन पुष्ट होता है क्योंकि मानसोल्लासकार ने गोदान और समावर्तन का केवल नामोल्लेख करके विवाह संस्कार का विस्तृत विवेचन किया है। साथ ही साथ 'सम्प्राप्तयौवनान्पुत्रान्कृतगोदान-

---

१. वही ३।१२।१३०४। २. याज्ञ० स्मृ० १,३६।
३. शतपथ ब्रा० ३,१,२,४। ४. शांखा० गृ० सू० १,२८,२०।
५. लघु आश्व० स्मृ० १४,१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मंगलान्'[1] पंक्ति से सिद्ध होता है कि विवाह के ठीक पूर्व यह संस्कार होता था। अतः मनु द्वारा कथित क्षत्रिय के लिए २२ वें वर्ष की अवस्था में गोदान संस्कार किया जाना ही सम्भवतः मानसोल्लासकार को मान्य था।

अवस्था की गणना कब से की जाय इस सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद है। बौधायन धर्मसूत्र[2] ने गर्भ से और अपरार्क ने जन्म से गणना करने का विधान किया है किन्तु मानसोल्लास के सम्बन्ध में गर्भ से ही गणना करना उचित होगा क्योंकि उपनयन के विषय में मनु की भांति गर्भ से ही सोमेश्वर देव ने वर्षों की गणना की है।

समावर्तन

गोदान क्रिया के पश्चात् बालक का समावर्तन संस्कार होता है किन्तु इसके विषय में और अधिक वर्णन मानसोल्लास में नहीं प्राप्त होता। केवल इतना ही विदित होता है कि समावर्तन से सम्पन्न होने पर काम तथा सुख भोगने के योग्य बालक हो जाता था। इस संस्कार का विस्तारपूर्वक वर्णन धर्मशास्त्रों में दिया हुआ है। धर्मशास्त्रों के अनुसार यह संस्कार गुरुगृह में गुरु ही सम्पन्न करता था। उस दिन प्रातःकाल ब्रह्मचारी स्नान कर यज्ञ करता था। गुरु उसे उस दिन नागरिकों की वेश-भूषा धारण करवाता था और तब वह गुरु की आज्ञा से अपने घर वापस जाता था। समावर्तन के काल का भी उल्लेख धर्मग्रन्थों में हुआ है। ब्राह्मण के समावर्तन का काल सोलह वर्ष, क्षत्रिय का बाइस वर्ष, वैश्य का चौबीस वर्ष में होता था।[3] किन्तु इसका उल्लेख सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास में नहीं किया है। केवल 'संप्राप्तयौवनान् पुत्रान्' कहकर चुप हो जाते हैं जो गोदान तथा समावर्तन दोनों के लिए उपयुक्त है। इस समावर्तन संस्कार के पश्चात् ही सोमेश्वर ने पुत्र के विवाह संस्कार के सम्पादन का आदेश दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय के समाज में तथा उनकी वंश-परम्परा में धर्मशास्त्रों द्वारा कथित परम्परा का विशेष रूप से ध्यान रक्खा जाता था।

---

१. मानसो० ३।१२।१३०५। २. बौधा० ध० सू० १.२,७।

३. षोडशाद्वर्षाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवत्या द्वाविंशाद्राजन्यस्याचतुर्विंशाद्वैश्यस्येति ॥ पा० गृ० २।६।

आश्व०—आषोडशाद् ब्राह्मणस्यानतीतः काल आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य आचतुर्विंशाद् वैश्यस्य। अत ऊर्ध्वं पतितसवित्रीकाः भवन्ति।

याज्ञ०—आषोडशादाद्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात्।
ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः परः ॥ ब्र० प्र० ३७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवाह

विवाह संस्कार का सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इनके द्वारा वर्णित विवाहविधि से यह विदित होता है कि वर के योग्य कन्या से ही पुत्र का विवाह किया जाता था। कन्या के विषय में मानसोल्लास में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि वह रूप-लावण्यवती हो, महाकुल में उत्पन्न हो, अपनी ही जाति की हो 'समजातिनिरूपिताः', उत्तम लक्षणों से युक्त हो, ऐसी ही कन्या के साथ विवाह करना चाहिए।

रूपलावण्यवर्णाढ्या लक्षणैः समलंकृताः।
महाकुलसमुत्पन्नाः समजातिनिरूपिताः॥
विवाहविधिना राजा रत्नभूषणभूषितान्।
कुमारान्प्रापयेत्कन्या धर्मार्थसुखमन्दिरम्॥[1]

कुछ हस्तलिपियों में 'रूपलावण्यवर्णाढ्यान्', 'समलंकृतान्' आदि पाठ मिलते हैं[2] जिनसे ये कुमारों के विशेषण प्रकट होते हैं किन्तु प्रसंग को देखते हुए वे पाठ अशुद्ध प्रतीत होते हैं। अभिलषितार्थचिन्तामणि की प्रति में उत्तम लक्षणों को जानने के लिए विस्तारपूर्वक कन्या के शारीरिक अंग-प्रत्यंग के लक्षणों का तथा नख-शिख का वर्णन मिलता है जिसके अनुसार विचारपूर्वक कन्या के सब लक्षणों को देखकर विवाह करना चाहिए। कन्या के लक्षणों के साथ ही साथ पुरुषों के शारीरिक लक्षणों का भी वर्णन इसी बीच में हुआ है। इस प्रकार विवाह के समय दोनों के लक्षणों को देखकर विवाह होना चाहिए। सोमेश्वर की ये पंक्तियां वास्तव में सोमेश्वर के शरीरविज्ञान के पाण्डित्य को प्रदर्शित करती हैं। मानसोल्लास की प्रति में कन्या और पुरुष के लक्षणों का उल्लेख नहीं मिलता है।

इसी प्रकार के कन्याविषयक प्रसंग अन्य धर्मग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं। याज्ञवल्क्य ने कन्या के विषय में कहा है कि जो रोग से हीन हो, जिसके भाई हो, जो अपने गोत्र और प्रवर की न हो और जो मातृकुल में पांच पीढ़ी से ऊपर हो और पितृकुल में सात पीढ़ी से ऊपर हो उसके साथ विवाह करे। दश पुरुष से प्रसिद्ध वेदपाठियों के कुल से कन्या ग्रहण करे किन्तु कुष्ठादि संचारी-रोगयुक्त उत्तम कुल से भी कन्या न ग्रहण करे—

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।
पंचमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा॥

---

१. मानसोल्लास ३।१२।१३०६–७।
२. अभिलषितार्थचिन्तामणि ३।१२।१३६४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दशपूरुषविख्याताच्छ्रोत्रियाणां महाकुलात् ।
स्फीतादपि न संचारिरोगदोषसमन्वितात् ॥[1]

स्मृतियों में ऐसे भी प्रसंग प्राप्त होते हैं कि वर्ण की अनुलोमता से ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य की कन्या से, क्षत्रिय क्षत्रिय तथा वैश्य की कन्या से, वैश्य वैश्य की कन्या से ही विवाह कर सकता है। शूद्र केवल अपने वर्ण की ही कन्या से विवाह कर सकता है। शूद्रा के साथ विवाह करना उत्तम वर्ण वालों के लिए वर्जित बताया है।[2] मनु ने भी शूद्रा के साथ विवाह करने का निषेध किया है।[3] किन्तु सोमेश्वर ने अपनी पुस्तक में जो 'समजातिनिरूपिता:'[4] शब्द का प्रयोग किया है इससे विदित होता है कि उस समय के व्यक्ति अपनी-अपनी जाति में ही विवाह कर सकते थे। ब्राह्मण ब्राह्मण कन्या से, क्षत्रिय क्षत्रिय कन्या से, वैश्य वैश्य कन्या से तथा शूद्र शूद्र कन्या से। वास्तव में यह समजाति का विवाह अत्यन्त उत्तम है। यह विवाह समाज में वर्ण-संकरता को रोकता है जिससे समाज में शान्ति स्थापित रहती है क्योंकि गीता में वर्णसंकर को कुल के नाश का कारण माना गया है।[5]

तत्पश्चात् सोमेश्वर ने विवाह-विधि का वर्णन किया है। उनका विवाह का वर्णन वर के कन्या के गृह पहुँच जाने पर ही प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम उन्होंने कन्या के गृह में बने हुए मण्डप तथा वेदी आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। कन्या के घर में विचित्र चित्रों से चित्रित वितान ऊपर तना होता था। उसमें स्तम्भों पर सुन्दर आवरण रहता था। वह द्वार तोरणों से अलंकृत होता था और भूमि गोमय (गोबर) से लिपी हुई होती थी। उसी के बीच में पुष्प की शोभा से सुशोभित मण्डप बना होता था और वेदी बनी होती थी। उसी के मध्य वर विवाह के लिए प्रवेश करता था। सर्वप्रथम नांदीमुख श्राद्ध द्वारा कुल-देवताओं का पूजन होता था। तत्पश्चात् वर का पूर्णरूप से आदर-सत्कार होता था जो शुभ मुहूर्त को देखकर किया जाता था।

नान्दी श्राद्ध को वृद्धिश्राद्ध भी कहते हैं। याज्ञवल्क्य का कथन है कि वृद्धि के अवसर पर अर्थात् किसी मंगलमय अवसर पर नान्दीमुख पितरों की पिण्डों से पूजा करनी चाहिए—

१. याज्ञ० स्मृ० विवाह प्र०, श्लो० ५३-५४।
२. तिस्रो वर्णानुपूर्वेण द्वे तथैका यथाक्रमम्।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्याच्छूद्रजन्मनः ॥ याज्ञ०वि०प्र० श्लो० ५७।
३. मनुस्मृति ३।१७-१९। ४. मानसोल्लास ३।१२।१३०६।
५. संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ गीता १।४२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवं प्रदक्षिणावृत्को वृद्धौ नान्दीमुखान् पितॄन्।
यजेत दधिकर्कन्धुमिश्रान् पिण्डान्यवैः क्रियाः ॥[1]

इसी श्लोक के सम्बन्ध में मिताक्षरा टीका ने शातातप का उद्धरण देते हुए नान्दीश्राद्ध के तीन अंगों का उल्लेख किया है—मातृश्राद्ध, पितृश्राद्ध तथा मातामहश्राद्ध—

मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनन्तरम्।
ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥[2]

भविष्यत्पुराण[3] में इस सम्बन्ध में दो प्रकार के श्राद्धों का उल्लेख मिलता है—मातृश्राद्ध तथा नान्दीमुखपितृश्राद्ध। पद्मपुराण[4] में आभ्युदयिक श्राद्ध तथा वृद्धिश्राद्ध को एक ही माना है किन्तु आभ्युदयिक श्राद्ध का क्षेत्र वृद्धिश्राद्ध की अपेक्षा अधिक विस्तृत है क्योंकि आभ्युदयिक श्राद्ध पूर्त कार्यों (कुआं आदि खुदवाना) के अवसर पर भी हो सकता है। महाराज सोमेश्वर ने जातकर्म संस्कार के अवसर पर आभ्युदयिक श्राद्ध करने का आदेश दिया है किन्तु विवाह के अवसर पर नान्दीमुख श्राद्ध का।

विष्णुपुराण,[5] मार्कण्डेयपुराण,[6] पद्मपुराण,[7] भविष्यपुराण[8] तथा विष्णुधर्मोत्तर[9] में नान्दीमुख श्राद्ध का संक्षिप्त विवरण मिलता है। साथ ही श्राद्ध के उपयुक्त विशिष्ट अवसरों का भी उल्लेख है। विष्णुपुराण[10] के अनुसार श्राद्ध के उपयुक्त विशिष्ट अवसर इस प्रकार हैं—विवाह, गृहप्रवेश, नामकरण, चूडाकरण, सीमन्तोन्नयन, पुत्रजन्म इत्यादि।

विवाह के समय जो 'मधुपर्केण सम्मान्य' का प्रसंग मानसोल्लास में प्राप्त होता है वह गृह्यसूत्रों के प्रसंगों से मिलता है। पा० गृह्यसूत्र में भी वर के कन्या के घर जाने पर मधुपर्क से सम्मान करने का प्रसंग प्राप्त होता है।[11] मधुपर्क का प्रसंग विशेष रूप से अतिथि को आदरपूर्वक मध्वादि प्रदान करने के रूप में ही प्राप्त होता है। मधुपर्क का वैभाषिक दृष्टि से यही अर्थ है कि जिस उत्सव

१. याज्ञ० स्मृ० १।२५०।
२. वही, मिताक्षरा टीका १।२५०।
३. भविष्यपुराण १।१८५।१५।
४. पद्मपुराण सृष्टिखण्ड ९।१९४।
५. विष्णु पु० ३।१३।२–७।
६. मार्कण्डेय पु० २८।४–७।
७. पद्म पु० सृष्टि खण्ड ९।१९४–१९९।
८. भविष्य पु० १।१८५।५–१३।
९. विष्णुधर्मोत्तर १।१४२।१३–१८।
१०. विष्णु पु० ३।१३।५–७।
११. मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहितं काँस्ये काँस्येनान्यस्त्रिस्त्रिः प्राह।
पा० गृ० सू० १।३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर मधु आदि प्रदान किया जाय। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में मधुपर्क के विषय में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

'तं होवाच किं विद्वानतो दाल्भ्यानामन्त्र्य मधुपर्कं विव्रसीति।'[1] निरुक्त[2] में भी 'जानते मधुपर्कं प्राह' ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है।

यह मधुपर्क उस ऋत्विक् को भी प्रदान किया जाता था जो यज्ञादि करवाने के लिए चुन लिया जाता था।[3] याज्ञवल्क्य स्मृति में छः प्रकार के ऐसे व्यक्तियों के प्रसंग प्राप्त होते हैं जो मधुपर्क के योग्य हैं—

प्रतिसंवत्सरं त्वर्घ्याः स्नातकाचार्यपार्थिवाः।
प्रियो विवाह्यश्च तथा यज्ञं प्रत्यृत्विजः पुनः॥[4]

इसी प्रकार के प्रसंग मानव[5] तथा खादिर[6] गृह्यसूत्र में भी प्राप्त होते हैं। इनमें ऋत्विक्, आचार्य, राजा, स्नातक तथा अपने प्रिय मित्र के साथ ही साथ वर को भी मधुपर्क प्रदान करने का प्रसंग प्राप्त होता है। बौधायन गृह्यसूत्र में—

तथैते अर्घ्या ऋत्विक्, श्वशुरः पितृव्यो मातुल आचार्यो राजा वा स्नातकः प्रियो वरोऽतिथिरिति॥[7]

प्रसंग प्राप्त होता है जिसमें अतिथि का भी नाम आया है। इसी प्रकार का प्रसंग गौ०,[8] आपस्तम्ब[9] गृह्यसूत्र, आप० धर्म सू०,[10] बौधायनधर्मसूत्र,[11] गोभिल गृह्यसूत्र[12] में भी प्राप्त होता है। मनु ने मधुपर्क के विषय में कहा है—

राजर्त्विक्स्नातकगुरून्प्रियश्वशुरमातुलान्।
अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात्पुनः॥[13]

किन्तु राजा और स्नातक यज्ञकर्म में लगे होने पर ही मधुपर्क के अधिकारी हैं अन्यथा नहीं।[14] महाभारत में भी मधुपर्क का वर्णन प्राप्त होता है।[15] कुछ गृह्यसूत्रों में मधुपर्क का दान विवाह संस्कार का ही एक अंग माना गया है।

---

१. जै० उ० ब्रा० २८।४। २. निरुक्त १।१६।
३. ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत्। आ० गृ० १।२४।१–४।
४. याज्ञ० स्मृ० १।९।११०। ५. मानव गृ० सू० १।९।१।
६. खा० गृ० सू० ४।४।२१। ७. बौ० गृ० १।२।६५।
८. गो० गृ० ५।२५। ९. आप० गृ० १।२।६५।
१०. आप० ध० सू० २।३।८।५–६। ११. बौ० ध० सू० २।३।६३–६४।
१२. गो० गृ० सू० ४।१०।२३–२४। १३. मनुस्मृति ३।११९।
१४. राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ।
मधुपर्केण संपूज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः॥ ३।१२०। मनु०
१५. महाभारत सभापर्व ३६।२३–२४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मधुपर्क के निर्माण के विषय में भी अनेक स्थलों पर प्रसंग प्राप्त होते हैं। आश्वलायन तथा आपस्तम्ब[1] गृह्यसूत्र में तो केवल मधु, दधि अथवा स्वच्छ किया हुआ मक्खन तथा दही मिलाकर मधुपर्क बनाने का आदेश दिया गया है, किन्तु पारस्कर गृह्यसूत्र में दधि, मधु तथा घृत को मिलाकर बनाने का प्रसंग प्राप्त होता है और कांसे के बर्तन में रखने का आदेश दिया गया है।[2] हारीत गृह्यसूत्र में दधि, मधु, घृत, जल तथा साथ-साथ भूमि का अन्न मिलाकर मधुपर्क बनाने का उल्लेख हुआ है।[3]

कौशिक सूत्र में ब्राह्म (मधु तथा दधि), ऐन्द्र (पायस की बनी), सौम्य (दधि तथा घृत), मौसल (सुरा तथा घृत–इसका प्रयोग केवल सौत्रामणि तथा राजसूय यज्ञ में ही प्राप्त होता था), वरुण (जल तथा घृत), श्रावण (तेल तथा घृत), परिव्राजक (तेल तथा उसकी खली) आदि अनेक प्रकार के मधुपर्क बनाने का प्रसंग प्राप्त होता है।[6] कुछ गृह्यसूत्रों के अनुसार मधुपर्क में मांस का भी सम्मिश्रण होता है। मानव गृह्यसूत्र[5] का कथन है कि वैदिक काल में मधुपर्क में मांस भी रहता था। इसी कारण 'माता रुद्राणां...' आदि वैदिक मंत्र अनेक गृह्यसूत्रों में प्राप्त होते हैं जो गो के प्रति कहे गए हैं। किन्तु सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास में मधुपर्क के निर्माण के प्रति कुछ भी नहीं लिखा है। सम्भवतः उनके समय में मधुपर्क दधि घृतादि को ही मिलाकर बनता होगा अन्यथा वे अवश्य ही इस पर प्रकाश डालते।

मधुपर्क ग्रहण करवाने के पश्चात् मानसोल्लास में वर को श्वेत वस्त्र तथा आभूषणादि पहनाने का विधान दिया गया है। तत्पश्चात् मुद्रिका से अलंकृत वर वेदी के समीप जाता था। वहीं पर जीरकमिश्रित तण्डुल (चावलों) के सात ढेर लगाये जाते थे जिनका परस्पर परिवर्तन वर पूर्वाभिमुख होकर तथा कन्या पश्चिमाभिमुख होकर करती थी। वर कन्या दोनों अपने हाथों में जीरकमिश्रित तण्डुल लेकर मण्डप में आते थे। उनके मध्य में एक परदा रहता था। शुभ समय आने पर वह परदा हटा दिया जाता था और दोनों अपने हाथों के तण्डुल को गिरा देते थे। इस समय मंगलाष्टक का विधान होता था।

---

१. आप गृ० सूत्र १३।१०।

२. मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहितं काँस्ये काँस्येनान्यस्त्रिस्त्रिः प्राह।

३. हारीत गृ० सू० १।१२।१०–१२।

१।३ पा० गृ० सू०।

४. कौशिक सूत्र ९२। ५. मानव गृ० सू० १।९।२२।

६. मानव गृ० सूत्र १।९।२३, पा० गृ० १।३, बौ० गृ० १।२।५०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह प्रथा सम्भवतः वर्तमान काल में भी मराठा जाति के राजवंशों में बड़ौदा में प्रचलित है। सोमेश्वरदेव कल्याण नगरी के रहने वाले थे। इसलिए उनके यहां प्रचलित विवाह पर दक्षिण की पद्धति का प्रभाव प्रतीत होता है।

कन्या का दाहिना हाथ वर के हाथ में देकर पाणिग्रहण संस्कार होता है और कन्या धारापूर्वक पति को समर्पित की जाती है। इसी बीच कन्या तथा वर को एक तन्तु द्वारा लपेट दिया जाता है और वे लोग परस्पर पांच बार सूत्र की प्रदक्षिणा करते हैं। प्रदक्षिणा कर लेने के पश्चात् वह सूत्र सावधानी से उनके पैरों के नीचे से निकाल लिया जाता है। यह धर्मशास्त्रों में वर्णित परम्परा से कुछ भिन्न है क्योंकि शास्त्रों में सप्तपदी का विधान है। वर तथा कन्या परस्पर सात बार अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं किन्तु मानसोल्लास में वर्णित विवाह-पद्धति के अनुसार वर-कन्या पांच बार ही सूत्र की प्रदक्षिणा करते हैं। तत्पश्चात् कुंकुम से आलिप्त कंकण कन्या के हाथ में बांधा जाता है और बाद में ब्राह्मणों के कथनानुसार विवाह होम होता है। इस होम के हो जाने पर कनिष्ठा अंगुली को रखकर पत्नी पति के पीछे-पीछे चलकर तीन भ्रमण करती है और तण्डुलों के सातों पुंजों को लांघकर दोनों आसन पर बैठ जाते हैं। इस समय पत्नी वर के वाम भाग में बिठाई जाती है। तब दास-दासियों को वस्त्र, रत्न, कांचन, भूषण, गज, अश्व, गाय, भैंस आदि देकर संतुष्ट किया जाता है। यह इस बात को प्रकट करता है कि राजवंशों में दास-दासियों को भी उच्च स्थान प्राप्त था। उनकी प्रसन्नता का भी पूर्ण रूप से ध्यान रखा जाता था। ब्राह्मणों को भी इस अवसर पर वस्त्र, आभूषणादि से प्रसन्न किया जाता था। इसी अवसर पर वाद्यों द्वारा महानाद होता था जो मधुर शंखध्वनि से पूर्ण होता था। मंगलकारी वाद्यों के शब्द के साथ ही साथ मंगलकारी गीतों तथा शुभ फल-दायक वेदमंत्रों का उच्चारण होता था। वन्दिगणों द्वारा शुभ अक्षरों से पूर्ण जयमाला का गान होता था और वर-वधू परस्पर एक दूसरे के गले में जयमाला डालते थे। सम्पूर्ण वातावरण शुभ निनाद से पूरित हो जाता था। अन्य सभी जनों को अन्न, ताम्बूलादि से प्रसन्न किया जाता था। दास वर्ग को मद्य द्वारा और पशु वर्ग को घास आदि प्रदान कर प्रसन्न किया जाता था।

इस प्रकार चार दिन पश्चात् यह विवाह संस्कार पूर्ण होता था। चौथे दिन वर-वधू का रात्रि में शृङ्गार होता था और वर वधू को अपने घर लाने के लिए उद्यत होता था। इस अवसर पर हथिनियों के समूह आते थे जो स्वर्ण-घंटियों के शब्दों को प्रसारित करती थीं, उनका सिर सिन्दूर से अरुण रहता था तथा वे पुष्प के सदृश श्वेत दांतों से युक्त तथा कर्णरूपी चामरों से युक्त होती थीं। ऐसे करिणी-समूहों पर राजपुत्र तथा उसके सेवक जन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चढ़ते थे। उन्हीं में से मुक्ता, पुष्पक आदि धारण करने वाली हथिनी पर यत्नपूर्वक पत्नी को चढ़ाया जाता था और स्त्रियां तथा वेश्यायें भी उसके साथ रहती थीं जो समाज में अनिन्दित थीं। इस प्रकार से हथिनियों पर चढ़कर पंचमहाशब्दों के नाद से गुंजित वातावरण में वर अपने घर को चलता था। इस अवसर पर पुर की स्त्रियों तथा पुरवासियों द्वारा वर की पूजा होती थी। पत्नी को अपने घर लाकर उसको हथिनी पर से उतार कर दोनों पिता के चरणों में नमस्कार करते थे। इस प्रकार विवाह संस्कार सम्पन्न होता था।

धर्मशास्त्रों के अनुसार हिन्दू विवाह संस्कार के अन्तर्गत विशेष रूप से सात उत्सव आ जाते हैं—१–कन्यादान, २–विवाह-होम, ३–पाणिग्रहण, ४–अग्नि-परिणयन, ५–अश्मारोहण, ६–लाजाहोम, ७–सप्तपदी। हिन्दू विवाह में इन सातों उत्सवों का यही क्रम है। शास्त्रों में इन सभी अवसरों पर देवताओं की स्तुति, पति-पत्नी के प्रति मन्त्रों के उच्चारण एवं सम्पूर्ण जीवन के उत्तरदायित्व को दोनों को समझाने का विधान मिलता है। शास्त्रों में वर्णित विवाह के प्रसंग को पढ़कर ऐसा विदित होता है कि वर-कन्या पर विवाह द्वारा एक महान् उत्तर-दायित्व डाला जा रहा है। किन्तु सोमेश्वर ने भी उक्त विधानों में से कन्यादान, विवाह-होम, पाणिग्रहण तथा भ्रमण (पंचपदी) का उल्लेख किया है।

सोमेश्वर ने इन सबको मनोरंजन तथा उत्सव के साथ मनाने का आदेश दिया है। विवाह में अपनी वंश-परम्परा की पद्धति का पुट देते हुए उत्साह, राग, रंग, वाद्य, गीत, नृत्यादि को भी विशेष स्थान दिया है। विवाह के वर्णन के प्रत्येक स्थल पर इनका वर्णन हृदय को उमंगों से भर देने वाला है। विवाह-पद्धति पर पूर्णरूपेण उनकी वंश-परम्परा का प्रभाव दृष्टिगत होता है क्योंकि उसका वर्णन सोमेश्वर ने अपनी वंश-परम्परा के अनुसार ही किया है। मान-सोल्लास में वर्णित विवाहहोम की अग्नि ही सम्भवतः वैवाहिकाग्नि है क्योंकि उसी के समक्ष वर-वधू का पाणिग्रहण होता है। इन सभी उत्सवों के अतिरिक्त मानसोल्लास में वर के विदा होने की विधि भी भिन्न है। इसमें हथिनियों पर वर-वधू का वधू के घर से प्रस्थान करना बताया गया है किन्तु धर्मशास्त्रों में वर-वधू का प्रस्थान रथ पर होना बताया गया है।[१]

विवाहविधि के अतिरिक्त समाज में प्रचलित अन्य प्रकार के विवाहों का भी वर्णन सोमेश्वर ने अपने ग्रन्थ में किया है। स्मृति-साहित्य में समाज के सुख एवं शान्ति की सुरक्षा के लिए आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख हुआ

१. राज्ञो रथाक्षस्य भजे, रथस्य विमोक्षे, यानस्य अधोमुखादिभावे।
पा० गृ० १।१०।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है जो क्रमशः ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच हैं।[1] इनका विस्तारपूर्वक वर्णन भी स्मृतियों में हुआ है। इनमें से सोमेश्वर ने केवल ब्राह्म, राक्षस, गान्धर्व, आसुर तथा पैशाच इन पांच विवाहों का वर्णन किया है।[2] जब पिता वर को बुलाकर कन्या को अलंकारादि से विभूषित कर वर को देता था तो वह ब्राह्म विवाह कहलाता था।[3] ब्राह्म विवाह का प्रसंग मनु ने भी इसी प्रकार दिया है—

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥[4]

इसके बाद दैव, आर्ष, प्राजापत्य विवाह सम्भवतः उस समय के समाज में नहीं प्रचलित थे क्योंकि मानसोल्लास में इनके नामों का भी उल्लेख नहीं हुआ है। जिसमें परस्पर अनुराग उत्पन्न हो जाने पर वर-कन्या परस्पर मिल जाते थे वह गान्धर्व विवाह था। यह विशेष रूप से क्षत्रिय राजाओं के लिए मान्य था। जब समर में शूर-वीरों को हराकर राजा कन्या का हरण कर लेता था तब वह राक्षस विवाह कहलाता था।[5] यह भी विवाह सोमेश्वर ने राजाओं के लिए अनिन्दित बतलाया है। पिता को धन द्वारा संतुष्ट कर जब कन्या का वरण किया तो जाय वह आसुर विवाह होता था। सम्भवतः यह भी समाज में कुछ अंश तक प्रचलित था। इस विवाह को केवल क्षत्रिय जाति के लिए सोमेश्वर ने अनिन्दित बताया है। यहां राजा से नहीं वरन् 'क्षत्रिय जाति' से तात्पर्य है अर्थात् यदि कोई क्षत्रिय ऐसा विवाह किसी अवस्था में करे तो वह निन्दित न था क्योंकि आगे चलकर इसी प्रसंग में सोमेश्वर ने ऐसा भी कह दिया है कि पैशाचादि विवाह जो धर्मशास्त्रों में निन्दित हैं उन्हें राजा को कभी नहीं करना चाहिए। यह सोमेश्वर की सम्मति धर्मशास्त्रों से मिलती-जुलती है क्योंकि धर्मशास्त्रों में मनु आदि महर्षियों ने इन आठों प्रकार के विवाहों में ब्राह्म, आर्ष, दैव, प्राजापत्य, गान्धर्व तथा राक्षस विवाह नियम के अनुकूल माना है, किन्तु आसुर तथा पैशाच विवाह को वर्जित बताया है।[6] इसके अनुसार सोमेश्वर ने भी इसी मत को अपनाया है।

---

१. मनुस्मृति ३।२७-३७, याज्ञ० १।५८, गौतम० ५।६-१५, वशि० १७-३५।
२. मानसोल्लास—पुत्रोपभोग १५१४—२२।
३. अलंकृत्य निजा कन्या पित्रा यत्र निवेद्यते। मा० पु० १५१४।
४. मनु ३।२७।
५. विजित्य समरे शूरान् कन्यां यत्र हरेन्नृपः। मा० पु० १५७६।
६. न कर्तव्यौ कदाचन—मनु० ३।२४—२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तृतीय अध्याय

सोमेश्वर तथा राज्यशास्त्र

(क) राज्यप्राप्ति के उपाय तथा शासक की आत्मसम्पत्

भारत में राजतन्त्रात्मक शासन प्रारम्भ से ही भारतीय जनता को प्रिय रहा है। इस राजतन्त्रात्मक शासन की धारा भारत के इतिहास में प्राचीनतम काल से लेकर मुसलमानों के राज्योदय काल तक अबाध गति से प्रवाहित रही। यद्यपि समय के परिवर्तन के साथ-साथ कभी-कभी राजा की शक्ति के ह्रास के फलस्वरूप गणतन्त्रात्मक शासन की भी झलक दिखलाई पड़ती है किन्तु उसका राजतन्त्रात्मक शासन से भिन्न एवं स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित न हो सका। मानसोल्लास हिन्दू राजतन्त्रात्मक शास्त्र के इतिहास के अन्तिम पृष्ठों में से है, क्योंकि मुसलमानों के आक्रमण से हिन्दू राजाओं की सत्ता उत्तरोत्तर न्यून होती गई।

राजतन्त्रात्मक शासन में राजा को ही सर्वोच्च पद प्राप्त होता है किन्तु राज्य का सर्वप्रमुख एवं महत्वपूर्ण अंग होने पर भी पाश्चात्य देशों के शासकों की भांति भारतीय राजा कभी भी स्वच्छन्दता के साथ प्रजा पर निरंकुश शासन करने का अधिकारी नहीं रहा। यदि राजा देश एवं अपनी प्रजा का प्राण रहा है तो प्रजा भी उसकी चेतना रही है। प्रजा को सन्तुष्ट करना तथा उसका सुचारु रूप से पालन कर उसे सुखी बनाना ही राजा का सर्वप्रमुख उद्देश्य रहा है। इसी कारण प्राचीन भारतीय राजशास्त्रप्रणेताओं ने राजा की स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण रखने के लिए उस पर कतिपय योग्यताओं एवं गुणों की प्राप्ति का प्रतिबन्ध लगा दिया है।

महाराज सोमेश्वर ने अपने ग्रन्थ मानसोल्लास का आरम्भ राज्य-प्राप्ति के कारणों अथवा उपायों से किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने बीस उपायों का उल्लेख किया है। ये उपाय कुछ तो निषिद्धाचरण के रूप में हैं और कुछ विहित कर्तव्यों के रूप में। निषिद्धाचरण के अन्तर्गत उन्होंने असत्य, परद्रोह, अगम्या आदि का वर्जन शासक के लिए अनिवार्य बतलाया है। विहित कर्तव्यों के अन्तर्गत दान, इष्टापूर्त, गोविप्रतर्पणादि लिया है। महाराज सोमेश्वर द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण शासक के लिए परमावश्यक है। उनका विचार है कि उपर्युक्त आचरण से रहित व्यक्ति शासन का अधिकारी नहीं हो सकता क्योंकि उन्होंने शुद्धाचरण को ही राज्यप्राप्ति का कारण माना है—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राज्यप्राप्तेर्नृपकुलभुवामित्युपायोपदेशः।[१]

सोमेश्वर का यह विचार पूर्ण रूप से कौटिल्य के विचारों से मिलता है। कौटिल्य ने इस प्रकार के आचरण को शासक की आत्मसम्पत् के अन्तर्गत लिया है। उनका कथन है कि आत्म-सम्पत्ति से युक्त राजा गुणहीन अन्य प्रकृतियों को गुणसम्पन्न कर देता है तथा आत्मसम्पत्तिहीन राजा गुणयुक्त तथा अनुरक्त प्रकृतियों को भी नष्ट कर देता है—

सम्पादयत्यसम्पन्नाः प्रकृतीरात्मवान्नृपः।
विवृद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान्॥[२]

इसीलिए दुष्ट प्रकृतिवाला तथा आत्मसम्पत्ति से हीन राजा चारों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी होता हुआ भी या तो अमात्यादि द्वारा मार डाला जाता है अथवा शत्रु के वशीभूत हो जाता है—

ततः स दुष्टप्रकृतिश्चातुरन्तोऽप्यनात्मवान्।
हन्यते वा प्रकृतिभिर्याति वा द्विषतां वशम्॥[३]

परन्तु आत्मसम्पन्न तथा नीतिमान् राजा स्वल्पभूमि का शासक होते हुए भी प्रकृति-सम्पत्ति से युक्त होने के कारण समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है और कभी क्षीणता को नहीं प्राप्त होता—

आत्मवांस्स्वल्पदेशोऽपि युक्तः प्रकृतिसंपदा।
नयज्ञः पृथिवीं कृत्स्नां जयत्येव न हीयते॥[४]

कौटिल्य ने शासक की आत्मसम्पत्ति के अन्तर्गत उसके अनेक गुणों का उल्लेख किया है। उनके कथनानुसार शासक को वाग्मी, प्रगल्भ, स्मृति, मति तथा बल से पूर्ण, उन्नतचित्त, वशी, दूरदर्शी, सुपात्र में दान देनेवाला, काम-क्रोधादि से रहित तथा इसी प्रकार के अन्य गुणों से युक्त होना चाहिए। इनसे युक्त राजा आत्मसम्पन्न कहलाता है—

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रः स्ववग्रहः.........कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः शुक्लः स्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसम्पत्।[५]

यहां पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि शासक की आत्मसम्पत्ति का उल्लेख कौटिल्य ने सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य को दृष्टि में रखकर किया है। सम्राट् चन्द्रगुप्त सर्वगुणसम्पन्न शासक थे। उन्हीं को आदर्श मानकर कौटिल्य

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र ६।१।१६। २. वही ६।१।१७।
३. मानसोल्लास, १।२०।३०८। ४. कौटिलीय अर्थशास्त्र, ६।१।१८।
५. वही ६।१।६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने प्रत्येक राजा में उन गुणों का होना आवश्यक बतलाया है किन्तु सोमेश्वर स्वयं राजा थे। उनके समक्ष किसी अन्य आदर्श राजा का दृष्टान्त न था। उनके राजनीति के सिद्धान्तों में एक शासक की दृष्टि परिलक्षित होती है जब कि कौटिल्य की नीति राज्य के एक मन्त्री की नीति है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से राजनीति और नीतिशास्त्र में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। भारत की प्राचीन शासन-व्यवस्था में राजा का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना गया है किन्तु राजा की श्रेष्ठता धर्मपालन एवं शुद्ध आचरण पर निर्भर थी। ऋग्वेद के एक मन्त्र द्वारा स्पष्ट है कि यह भूमि ईश्वर द्वारा आर्य्यों को प्रदान की गई है—

अहं भूमिमददामार्याय।[1]

आर्य्य शब्द का अर्थ वैदिक साहित्य में शुद्ध एवं दिव्य आचरणवाले व्यक्ति से है। ऋग्वेद के अनुसार दिव्य आचरण वाला व्यक्ति ही पृथ्वी का शासक बन सकता है, चरित्रहीन व्यक्ति नहीं। अतः राजा को 'वृषभो जनानां राजा'[2] कहा गया है। यजुर्वेद में राजा में कुछ गुणों का होना आवश्यक बतलाया गया है। उसके अनुसार राजा को जनप्रिय, बलवान, क्रियाशील, संसार को सुख देने वाला, प्रतापशाली तथा परोपकारी होना चाहिए।[3] इसी प्रकार अथर्ववेद में राजा को सत्य, बल, दृढ़संकल्प, तप तथा धार्मिक कृत्यों से युक्त कहा गया है।[4]

रामायण और महाभारत में इस सम्बन्ध में बहुत से उदाहरण प्राप्त होते हैं। किष्किन्धाकांड में लक्ष्मण राजा के गुणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि बलशाली, उच्चकुल वाला, दयावान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ तथा सत्यवादी राजा ही संसार में यश का भागी होता है—

सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते॥[5]

महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि राजा को वसन्तऋतु के सूर्य के समान न तो अधिक मृदु, न अधिक कठोर होना चाहिए—

---

१. ऋग्वेद मण्डल ४ सूक्त २६ मंत्र २।
२. ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १७७ मन्त्र १।
३. जनिष्ठाऽउग्रः सहसे तुराय मन्द्रऽओजिष्ठो बहुलाभिमानः। यजुर्वेद
४. सत्यं वृहत्मुग्रं दीक्षातपो ब्रह्मयज्ञः पृथ्वीं धारयन्ति।० अथर्ववेद
५. किष्किन्धाकांड, सर्ग ३४, श्लोक ७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तस्मान्नैव मृदुर्नित्यं तीक्ष्णो नैव भवेन्नृपः।
वासन्तार्क इव श्रीमान्न शीतो न च घर्मदः॥[1]

महाभारत में आचरणहीन राजाओं के पदच्युत किये जाने के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। राजा ययाति के पुत्र यदु तथा राजा सगर के पुत्र असमंज का निर्वासन चारित्रिक दोषों के कारण हुआ।

विष्णुपुराण के अनुसार ऋषियों ने राजा वेन का वध उसका चरित्र भ्रष्ट होने के कारण किया। विष्णुपुराण के अनुसार राजा में सत्य, दानशीलता, लज्जा, क्षमाशीलता, धर्मज्ञता, कृतज्ञता, दयालुता, प्रियभाषिता, यज्ञपरायणता आदि गुण होने चाहिए।[2]

मनु ने भी राजा के लिए दिव्य आचरण का होना अत्यन्त आवश्यक बतलाया है। ममुस्मृति में ऐसे कई राजाओं का उल्लेख है जो अविनयशीलता के कारण राज्याधिकार से वंचित कर दिए गए। वेन, नहुष, सुदास, यवन, सुमुख और निमि इसी कोटि में आते हैं—

बेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः।
सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च॥[3]

याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा में कर्तव्यपरायणता, कृतज्ञता, विनयशीलता, त्याग, सत्यवादिता, उदारता आदि गुण होने चाहिए।[4]

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में कहा है कि राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए। उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इस षड्वर्ग से बचना चाहिए—

तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत।[5]

इस प्रकार प्राचीन भारत में राजनीति तथा नीतिशास्त्र एवं धर्म में बड़ा सम्बन्ध रहा है। कुछ पाश्चात्य राजनीति के विद्वानों ने भी इस सम्बन्ध को स्वीकार किया है। इस विषय पर अरस्तू तथा प्लैटो नामक पाश्चात्य विद्वान् तथा कौटिल्य के मतों में बहुत साम्य मिलता है। प्लैटो ने अप्राप्य आदर्शों का उल्लेख किया है। अरस्तू ने आदर्शावस्था से वास्तविकता पर अवतरण की ओर ध्यान आकर्षित किया है और कौटिल्य ने आध्यात्मिक प्रयत्न द्वारा वास्तविकता से आदर्श की ओर आरोहण पर बल दिया है।[6] मैक्यावेली

---

१. शान्तिपर्व अ० ५६ श्लोक ४०।

२. वि० पु० अंश १ अ० १३ श्लोक ६२-६३। ३. मनुस्मृति ७।४१।

४. याज्ञवल्क्य १।३०९,३११। ५. अर्थशास्त्र १।७।१।

६. Plato gives a picture of unattainable ideals. Aristotle

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(Machiavelli) नामक पाश्चात्य विद्वान ने राजनीति का क्षेत्र नीतिशास्त्र तथा धर्म से बिल्कुल पृथक् बतलाया है। यद्यपि वे नैतिक गुणों के महत्व को स्वीकार करते हैं किन्तु राजनैतिक स्थिति के लिए उनकी अनिवार्यता को स्वीकार नहीं करते।[1]

मानसोल्लास की प्रथम विंशति में वर्णित नीतिशास्त्र के नियम वास्तव में सम्पूर्ण विश्व को नीति का पाठ पढ़ाते हैं। अतः सोमेश्वर ने अपनी पुस्तक के लिए जो 'जगदाचार्यपुस्तकः'[2] विशेषण का प्रयोग किया है वह सर्वथा उपयुक्त है।

सोमेश्वर बड़ा नीतिज्ञ एवं न्याय पूर्ण राजा था। अपने दरबार में अनेक प्रकार के मुकदमों को आये हुये देखकर अथवा अपने समय के राजाओं के अन्यायपूर्ण शासन को देखकर ही सम्भवतः उसने प्रथम विंशति में २० प्रकार के गुणों एवं अवगुणों का वर्णन किया है। इस विंशति के अन्तर्गत उसने असत्य, परद्रोह, अगम्यागमन आदि ऐसे अवगुणों का वर्णन किया है जिनसे प्रत्येक राजा को दूर रहना चाहिए। इन अवगुणों को पढ़कर विदित होता है कि सोमेश्वरकालीन समाज में ये सभी अवगुण सम्भवतः अधिकांश रूप में प्रचलित थे जिनसे खिन्न होकर सोमेश्वर ने उनको रोकने का प्रयत्न किया है। इसी कारण उन्होंने प्रथम विंशति के प्रारम्भिक भाग में (दोषों के) वर्जन (न करने) का उपदेश दिया है। तत्पश्चात् उन्होंने दान, प्रिय वचन, इष्टापूर्त, अशेषदेवताभक्ति, गोविप्रतर्पणादि का वर्णन किया है। इनमें से असत्यवर्जनादि राजा के लिए अनिवार्य हैं और दानादि उसकी इच्छा पर निर्भर हैं। दानादि गुणों को उन्होंने प्रत्येक राजा को प्रजा का प्रिय पात्र बनने के लिए अपनाने का उपदेश दिया है। इन गुणों को अपनाकर ही राजा प्रजा का प्रिय पात्र बन सकता है और उसकी नैतिक उन्नति भी हो सकती है।

इन प्रसंगों को पढ़कर ऐसा विदित होता है कि आस-पास के छोटे-छोटे राजा प्रजा पर विशेष ध्यान न देते थे। उन राजाओं का नैतिक जीवन भी पतनोन्मुख हो रहा था। इसी कारण सोमेश्वर ने उन्हें आचार एवं नीति की शिक्षा देने के हेतु इस विंशति की रचना की। उनके विचार से प्रजा में शान्ति स्थापित करना राजा का सर्वप्रथम कर्तव्य है।

सोमेश्वर ने केवल अवगुणों के वर्जन एवं गुणों के ग्रहण का आदेश देकर

---

talks of the descent of the ideal to the real, and Kautilya of the ascent of the real through spiritual effort to the ideal.

—M. V. Krishna Rao 'Studies in Kautilya', P. 169.

१. वही P.P. 73–74. २. मानसोल्लास १।१।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ही अपनी विंशति की समाप्ति नहीं कर दी वरन् उन्होंने प्रत्येक प्रसंग को लेकर उसकी उचित रूप से परिभाषा देकर तथा उसके फल को बतलाकर तब वर्जन एवं ग्रहण का उपदेश दिया है। आगे के पृष्ठों में प्रत्येक प्रसंग पर अलग-अलग संक्षेप में विचार किया जायगा।

(१) निषिद्धाचरण

असत्य-वर्जन

असत्यवर्जन का आदेश देते समय महाराज सोमेश्वर ने सर्वप्रथम असत्य की परिभाषा दी है। उनका कथन है कि काम, लोभ, भय आदि के कारण जो झूठ बोलता है उससे उत्पन्न पाप को असत्य कहते हैं।[१] इसके अतिरिक्त देवता के सम्मुख शपथ खाकर किसी बात को कहकर फिर मोहवश उसका उल्लंघन करना भी असत्य कहलाता है—

देवतासन्निधौ वाक्यं ब्रूते शपथपूर्वकम्।
तद्यो लंघयते मोहात् तच्चासत्यं प्रकीर्तितम्॥[२]

वास्तव में सोमेश्वर की असत्य की यह परिभाषा बड़ी व्यावहारिक एवं व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित है। यह परिभाषा राजदरबार में आए हुए मुकदमों के दृश्य प्रस्तुत करती है। दरबार में जो मुकदमे आते थे उनमें अधिकांश व्यक्ति काम (किसी उपभोग सम्बन्धी वस्तु के लोभ), लोभ (धन-धान्य के लोभ), भय (अपने से बलवान अथवा उच्च पद वाले व्यक्ति के भय), या क्रोधवश (किसी के प्रति द्वेष होने से उत्पन्न हुए क्रोधवश) साक्षिवादन (किसी का साथ देने की प्रतिज्ञा कर व्यर्थ में झूठ बोलकर उसकी सहायता करना), तथा देवता के समीप (यह जानते हुए भी कि यह सत्य नहीं है फिर भी) शपथ खाकर मोहवश (किसी बड़ी वस्तु की प्राप्ति के मोह से) मिथ्या भाषण करते थे। इस प्रकार व्यक्तियों के मिथ्या भाषण से न्याय के मार्ग में बड़ी रुकावट पड़ती है।

ये प्रसंग सोमेश्वर के समय के न्यायालय का स्पष्ट चित्र उपस्थित करते हैं कि किस प्रकार व्यक्ति न्यायसभा में आकर झूठी गवाही देते थे। यहां तक कि देवताओं के समक्ष भी झूठी शपथ खा जाते थे जो न्याय के लिए बड़ा ही हानिकारक है। इन सब प्रसंगों द्वारा सोमेश्वर ने अपने समय के सभी राजाओं को यह चेतावनी दी है कि वे ध्यानपूर्वक मुकदमे के प्रत्येक पहलू पर विचार-

---

१. कामाल्लोभाद्भयात् क्रोधात् साक्षिवादात् तथैव च।
मिथ्या वदति यत् पापं तदसत्यं प्रकीर्तितम्॥ मानसोल्लास १।१।३५।

२. वही १।१।३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विमर्श कर अन्त में अपना न्याय दें। समुचित न्याय होने पर ही प्रजा सुखी रह सकती है। इसके अतिरिक्त ये प्रसंग सोमेश्वर-कालीन समाज का सजीव चित्र उपस्थित करते हैं।

इस प्रकार के प्रसंग धर्मशास्त्रों एवं नीति-शास्त्र के ग्रन्थों में भी उपलब्ध होते हैं। मनु ने विवाद के अठारह मार्गों का उल्लेख किया है,[1] जिनके आधार पर न्यायालय में विवाद उपस्थित होता था और न्याय करने के लिए वादी तथा प्रतिवादी दोनों पक्षों की गवाही होती थी। सोमेश्वर ने जो देवता के समक्ष शपथ खाने का वर्णन किया है उसका वर्णन शुक्रनीति में भी हुआ है। शुक्र के निर्णय के दस अंगों में से सुवर्ण, अग्नि, जल आदि भी प्रमाण सिद्ध करने के साधन माने हैं।[2] वर्तमान काल में भी न्यायालयों में गंगाजल द्वारा शपथ खिलाने की प्रथा है।

सोमेश्वर का कथन है कि उक्त किसी कारण से किया गया मिथ्याभाषण स्वर्ग-मार्ग का बाधक, यश को नष्ट करनेवाला तथा अत्यन्त निन्दित कार्य है। अतः मिथ्या भाषण को महान् पाप समझकर उसका त्याग कर देना चाहिए।[3]

असत्य की निन्दा ऋग्वेद में बहुत की गई है।[4] इसके अतिरिक्त जिस प्रकार महाराज सोमेश्वर ने असत्य भाषण को महापाप बतलाया है उसी प्रकार योगशास्त्र में भी उसे महापातक कहा गया है—

एकत्राऽसत्यजं पापं, पापं निःशेषमन्यतः।
द्वयोस्तुलाविधृतयोराद्यमेवातिरिच्यते ॥

अर्थात् यदि असत्यजन्य पाप तथा सम्पूर्ण पाप को तुला पर रखा जाय तो असत्यजन्य पाप ही अधिक होगा।

सोमेश्वर ने असत्य को अयश उत्पन्न करने वाला बतलाया है। इस बात की पुष्टि निम्नलिखित पंक्तियों से भी होती है—

नासत्यवादिनः सख्यं न पुण्यं न यशो भुवि।
दृश्यते नापि कल्याणं कालकूटमिवाश्नतः ॥[5]

---

१. अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक्। मनु ८।३।

२. शुक्रनीति ४।५५९।

३. अस्वर्ग्यमयशस्यं च लोकद्विष्टं जुगुप्सितम्।
अनृतं नितरां पापं तस्मात् तत् परिवर्जयेत् ॥ मानसोल्लास १।१।३७।

४. अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥ ऋग्वेद ४।५।५।

५. सुभाषितरत्नभांडागारम् पृष्ठ ८३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अर्थात् विष को खाने वाले व्यक्ति की भांति असत्यवादी के लिए न मित्रता है, न पुण्य, न संसार में यश और न कल्याण ही।

केवल यही नहीं, असत्य भाषण अविश्वास का मूल कारण है। वह कुवासना का घर, समृद्धि को हटाने वाला, विपत्ति का कारण, परवंचना से तथा अपराध से पूर्ण और कुशल व्यक्तियों द्वारा वर्जित है—

असत्यमप्रत्ययमूलकारणं कुवासनासद्म समृद्धिवारणम्।
विपन्निदानं परवंचनोर्जितं कृतापराधं कृतिभिर्विवर्जितम्॥[1]

यही कारण है कि कुशल शासक होने के नाते महाराज सोमेश्वर ने इसे सर्वथा वर्जित बतलाया है।

परद्रोह-वर्जन

असत्य भाषण के त्याग के पश्चात् महाराज सोमेश्वर ने परद्रोह (दूसरे से द्रोह) को त्यागने का आदेश दिया है। सर्वप्रथम उन्होंने परद्रोह की परिभाषा दी है। असत्य की परिभाषा की भांति यह भी व्यावहारिक ज्ञान को स्पष्ट करती है। सोमेश्वर का कथन है कि दूसरों का ताडन (मारना), छेदन (काटना), क्लेशकरण (कष्ट देना), वित्तबन्धन (दूसरे के धन को मार लेना) ही परद्रोह कहलाता है—

ताडनं छेदनं क्लेशकरणं वित्तबन्धनम्।
परेषां कुरुते यत् तु परद्रोहः स उच्यते॥[2]

किसी की चुगली करना, दूसरे का प्रपंच करना, किसी को गाली देना, ताने सुनाना, दूसरे के मर्म को प्रकट कर देना भी परद्रोह के अन्तर्गत आ जाता है—

पैशुन्यं परवादं च गालिदानं च तर्जनम्।
मर्मोद्घाटं विधत्ते यत् परद्रोहः स उच्यते॥[3]

इसके अतिरिक्त जो मूढात्मा व्यक्ति किसी का घर, द्वार, भूमि, खेत, वस्त्र, धन-धान्यादि बलपूर्वक हरण कर लेता है वह व्यक्ति भी परद्रोह ही करता है—

गृहद्वारवसुक्षेत्रं वस्त्रधान्यं धनादिकम्।
हरते यत् तु मूढात्मा परद्रोहः स उच्यते॥[4]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि महाराज सोमेश्वर के दरबार में इन सब प्रकार के मामले निपटारे के लिए आते थे जिनसे दुःखी होकर उन्होंने उनका यहां उल्लेख किया है। सोमेश्वर ने पैशुन्य (चुगुलखोरी) को द्रोह का

१. वही पृष्ठ ८३। २. मानसोल्लास, १।१।३८।
३. वही १।१।३९। ४. वही १।१।४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कारण माना है। मनु ने पैशुन्य तथा द्रोह को क्रोध से उत्पन्न आठ दोषों के अन्तर्गत लिया है—

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डश्चापि पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥[१]

सोमेश्वर के कथनानुसार दूसरों के द्वारा किया हुआ द्रोह अत्यन्त कष्टप्रद एवं दुःसह होता है। यह घोर नरक का देने वाला है। इस कारण परद्रोह को त्याग देना चाहिए।

तस्मात् परकृतो द्रोहो यश्चातीव सुदुःसहः।
तस्मान्नरकदं घोरं परद्रोहं विवर्जयेत्॥[२]

सोमेश्वर का विचार था कि राजा को ऐश्वर्यशाली पद प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की बातों से सदैव दूर रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रजा के सुख एवं शान्ति की सुरक्षा के लिए उसे चाहिए कि वह इस प्रकार की परद्रोह-सम्बन्धी भावनाओं को जनता में न फैलने दे।

सोमेश्वर द्वारा कथित परद्रोह की भावनाओं के बहुत से प्रसंग मनुस्मृति में अठारह विवाद एवं द्रोह के विषयों के सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं। मनु द्वारा वर्णित अठारह विवाद के विषयों में ऋणदान, धरोहर (निक्षेप), बिना स्वामी के वस्तु को बेच लेना, साझे का व्यापार, दिए हुए दान को पुनः वापस ले लेना, वेतन न देना, प्रतिज्ञा के विरुद्ध आचरण, क्रय-विक्रय का विवाद, पशु, स्वामी तथा पशु-पालक का विवाद, सीमा-विवाद, कठोर वाणी का प्रयोग, मारपीट, चोरी, डाका, पर-स्त्री-ग्रहण, द्यूतादि आ जाते हैं।[3] ये सर्वसाधारण अपराध हैं जिन्हें लोग प्रत्येक देश एवं काल में करते हैं।

अगम्यावर्जन

'अगम्या' शब्द का अर्थ शब्दकोष के अनुसार 'अमैथुनार्हा नारी'[४] अर्थात् ऐसी स्त्री से है जिसके साथ किसी व्यक्ति को गमन नहीं करना चाहिए। पद्मपुराण के अनुसार पाणिग्रहण द्वारा प्राप्त स्त्री के अतिरिक्त सभी स्त्रियां अगम्या हैं—

यस्तु पाणिगृहीतीं तां हित्वान्यां योषितं व्रजेत्।
अगम्यागमनं तद्धि सद्यो नरककारणम्॥[५]

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी अगम्या स्त्री की इसी प्रकार परिभाषा मिलती है। उसके

१. मनुस्मृति ७।४८।
२. मानसोल्लास १।१।४१।
३. मनुस्मृति ८।४.७।
४. शब्दकल्पद्रुम, प्रथम खंड।
५. पाद्मोत्तरखंड ७५ अध्याय।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए केवल उसकी धर्मपत्नी गमन करने योग्य है। अन्य सभी स्त्रियां उस क्षेत्र के बाहर हैं—

> या या गम्या नृणामेव निबोध कथयामि ते।
> स्वस्त्री गम्या च सर्व्वेषामिति वेदनिरूपिता॥
> अगम्या च तदन्या या इति वेदविदो विदुः।[1]

महाराज सोमेश्वर ने ऐसी स्त्रियों की सूची दी है जिनके साथ राजा अथवा किसी भी व्यक्ति को कभी गमन नहीं करना चाहिए। उसमें पुष्पिता (जिसका ऋतुकाल आरम्भ हुआ हो), पतिता (जो पतित हो), कन्या (अविवाहित लड़की), लिंगिता (संन्यासिनी), श्रेष्ठजातिजा (श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुई स्त्री), परस्त्री, विधवा, सास, बहिन, तथा पुत्री आ जाती हैं—

> पुष्पिता पतिता कन्या लिंगिता श्रेष्ठजातिजा।
> परस्त्री विधवा श्वश्रूः स्वसा च दुहिता तथा॥[2]

इसके अतिरिक्त गुरु तथा ब्राह्मण की पत्नी, पुत्र, मित्र तथा राजा की स्त्री और भृत्य तथा बन्धुजनों की स्त्रियों के साथ भी गमन नहीं करना चाहिए—

> गुरुब्राह्मणपत्न्यश्च पुत्रमित्रनृपस्त्रियः।
> पत्न्यश्च भृत्यबन्धूनामगम्याः परिकीर्तिताः॥[3]

उपर्युक्त स्त्रियों के साथ गमन करना अनायुष्य का करने वाला तथा परलोक में भी भय देने वाला है। अतः उसे त्याग देना चाहिए—

> अनायुष्यकरं नृणामगम्यागमनं स्मृतम्।
> परलोके च भयदं तस्मात् तत् परिवर्जयेत्॥[4]

इस प्रकार के अगम्यावर्जन के प्रसंग पुराणों और स्मृतियों में भी मिलते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी गुरुपत्नी, राजपत्नी, पुत्रवधू, पुत्री आदि को अगम्या कहा गया है। इनसे गमन करने वाला व्यक्ति सौ ब्रह्महत्या के पाप का भागी होकर कुम्भीपाक को प्राप्त होता है—

> गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीमातरं प्रसूम्॥
> सुतां पुत्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सतीम्।
> सोदरभ्रातृजायां च भगिनीभ्रातृकन्यकाम्॥
> ... ...
> एतास्वेकामनेकां वा यो व्रजेन्मानवाधमः।

---

१. ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खंड २७ अध्याय। २. मानसोल्लास, १।१।४२।
३. वही १।१।४३। ४. वही १।१।४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स मातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥
अकर्म्मार्होऽपि सोऽस्पृश्यो लोके वेदेऽतिनिन्दितः ।
स याति कुम्भीपाकं च महापापी सुदुष्करम् ॥[१]

पद्मपुराण के अनुसार परस्त्री-गमन से मनुष्यों के नित्य, नैमित्तिक, काम्य, याग योग्य व्रतादि, क्षेत्रतीर्थों में विचरण, स्वाध्याय, तप, दैव एवं पैत्र कर्म्मादि सब निष्फल हो जाते हैं—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यागयोग्यव्रतादिकम् ।
क्षेत्रतीर्थाटनं तस्मिन् वासो धर्म्मक्रियादिकम् ॥
स्वाध्यायादि तपो दैवं पैत्रं कर्म्म वरानने ।
यात्येतन्निष्फलं सर्व्वं परस्त्रीगमनान्नृणाम् ॥[२]

इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति के करोड़ एकादशी व्रत निष्फल हो जाते हैं और नरक में उसका वास होता है । वह दूसरी योनि को प्राप्त होता है और उसकी कोटि पूजाएँ नष्ट हो जाती हैं—

परदाराभिगमनात् कोटि एकादशीव्रतम् ।
अपरं किमु वक्तव्यं निष्फलं निरये स्थितिः ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव ब्रवीमि ते ।
परयोनौ पतन् बिन्दुः कोटिपूजां विनाशयेत् ॥[३]

वामन पुराण में परदारोपगमन नरक का कारण बतलाया है और उससे मनुष्य पराभव को प्राप्त होता है । अतः धर्मज्ञ व्यक्ति के लिए यह सर्वथा त्याज्य है—

त्याज्यं धर्म्मान्वितैर्नित्यं परदारोपसेवनम् ।
नयन्ति परदारा हि नरकानेकविंशतिम् ॥
सर्व्वेषामेव वर्णानामेष धर्म्मो ध्रुवोऽन्धक ॥
एवं पुरा सुरपते ! देवर्षिरसितोऽव्ययः ।
प्राह धर्म्मव्यवस्थानं खगेन्द्रायारुगाय हि ।
तस्मात् सुदूरतो वर्जेत् परदारान् विचक्षणः ।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥[४]

पुराणों की भांति स्मृतियों में भी अगम्यावर्जन पर अत्यधिक प्रकाश डाला

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खंड अध्याय २७ ।
२. पाद्मोत्तरखंड अध्याय ७५ । ३. वही ।
४. वामनपुराण अध्याय ६३ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया है। सोमेश्वर का यह कथन कि अगम्यागमन अनायुष्य का करने वाला है मनु के इसी प्रकार के कथन से मिलता-जुलता है। मनु के कथनानुसार संसार में कोई भी कार्य इतना अनायुष्यकारक नहीं है जितना परस्त्रीगमन—

न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥[१]

याज्ञवल्क्यस्मृति के स्त्रीसंग्रहण प्रकरण में सोमेश्वर के दिए हुए लगभग सभी प्रसंग मिलते हैं। हां, इतना अवश्य है कि याज्ञवल्क्यस्मृति में अगम्यागमन के दंडों का भी उल्लेख है। उसके अनुसार नीच जाति की स्त्री के साथ प्रसंग करने से मध्यम साहस[२] का तथा चांडाल की स्त्री से गमन करने से उसके मस्तक पर दाग बनाकर अपने राज्य से निकाल देने का दंड है।[3] कन्या तथा श्रेष्ठ जाति की स्त्री में गमन करने से पुरुष का वध करवा देने का उल्लेख है।[४] संन्यासिनी से व्यभिचार करने पर चौबीस पण का दंड,[५] दासियों के साथ बलात्कार करे तो दस पण दंड[६] तथा विवाहित होने वाली अलंकारों से सुसज्जित कन्या का हरण करने पर मनुष्य उत्तम दंड का भागी होता है।[७] यदि पुरुष अपने ही जाति की अथवा मित्र की स्त्री से व्यभिचार करे तो उसे उत्तम साहस दंड देना पड़ता है।[८] इसके अतिरिक्त गुरु, ब्राह्मण, पुत्र की पत्नी, बहिन, पुत्री आदि के साथ गमन करने का शास्त्रों में निषेध है क्योंकि पुत्रवधू तथा भगिनी पुत्री की भांति होती हैं और ब्राह्मण, गुरु तथा राजा की पत्नी माता तुल्य होती हैं।

शुक्रनीति में परस्त्री की कामना करने वाले बहुत से राजाओं के नष्ट हो जाने का उल्लेख है। उनमें से इन्द्र, दांडक्य, नहुष, रावणादि के नाम प्रसिद्ध हैं—

व्यायच्छन्तश्च बहवः स्त्रीषु नाशं गता अमी।
इन्द्रदांडक्यनहुषरावणाद्याः सदा ह्यतः॥[९]

---

१. मनु० ४।१३४।
२. आनुलोम्येन मध्यमः, याज्ञ० स्मृ० स्त्री० श्लोक ९०।
३. अन्त्याभिगमने त्वंक्यः कबन्धेन प्रवासयेत्, श्लोक ९८।
४. प्रातिलोम्ये वधः पुंसो, श्लोक ९०। प्रातिलोम्ये वधः स्मृतः, श्लोक ९१।
५. चतुर्विंशतिको दंडस्तथा प्रव्रजितागमे, श्लोक ९७।
६. प्रसह्य दास्यभिगमे दंडो दश पणः स्मृतः, श्लोक ९५।
७. अलंकृतां हरेत्कन्यामुत्तमं ह्यन्यथाधमम्, श्लोक ९१।
८. स्वजातावुत्तमो दंडः, श्लोक ९०।
९. शुक्रनीति, १।११२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अतः महर्षि शुक्र ने राजा को आदेश दिया है कि उसे कभी परस्त्रीसम्भोग के विषय में काम, दूसरे का धन अपहरण करने में लोभ और प्रजा को दंड देने में क्रोध का उपयोग नहीं करना चाहिए—

परस्त्री-संगमे कामो लोभो नान्यधनेषु च ।
स्वप्रजादंडे क्रोधो नैव धार्यो नृपैः कदा ॥[१]

महाराज सोमेश्वर अगम्यागमन के सम्बन्ध में केवल नैतिक उपदेश देकर चुप हो जाते हैं। वास्तव में राजा होने के नाते उन्हें दंड का विधान करना चाहिए था। सम्भवतः ये दोष पास-पड़ोस के राजाओं में भी वर्तमान थे। मानसोल्लास में राजा की स्त्री को अगम्या बतलाने से इस बात की पुष्टि होती है क्योंकि राजा की स्त्री के साथ गमन करने का साहस अन्य राजा ही कर सकता है, साधारण व्यक्ति नहीं।

अभक्ष्यवर्जन

इस प्रकरण में सोमेश्वर ने अभक्ष्य और अपेय वस्तुओं का उल्लेख किया है जिनका प्रयोग करना राजा के लिए विशेष रूप से हानिकारक है और नैतिक पतन करने वाला है। अभक्ष्य वस्तुओं के अन्तर्गत लशुन, गाजर (गृंजन), प्याज (पलांडु), ग्राम में उत्पन्न मुर्गा (ग्रामकुक्कुट), जंगली सुअर (विड्वराह), कुकुरमुत्ता अथवा धरतीफूल (छत्राक), व्याघ्र, जम्बूक, मार्जार, भेड़िया, कौआ, वानर, ऋक्ष, सिंह, गज, ऊँट, कबूतर, शुक, श्येन, हंस, उलूक, बक, कोकिल, सारिका, गृध्र, कुत्ता, बकरी और भेड़ को छोड़कर समस्त ग्रामीण पशु, कृमि, कीट, पतंग, गिरगिट, मेंढक, सर्प, नकुल, छिपकली, मगर तथा शिशुमार हैं।[२] अपेय वस्तुओं में गौडी, पैष्टी तथा माध्वी नाम की तीन प्रकार की मदिरा, बिना बछड़े की गौ का दूध, भेड़, ऊँटनी आदि का दूध है।[3]

उपर्युक्त पदार्थों को पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. अभक्ष्य शाक, २. अभक्ष्य पशु, ३. अभक्ष्य पक्षी, कीटादि, ४. अपेया सुरा तथा ५. अपेय दुग्ध।

अभक्ष्य शाक

अभक्ष्य शाकों के अन्तर्गत महाराज सोमेश्वर ने लशुन, गृंजन, पलांडु

---

१. शुक्रनीति, १।११८। २. मानसोल्लास, १।१।४५.४९।
३. वही १।१।५०.५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा छत्राक (कुकुरमुत्ता) का नाम दिया है। मानसोल्लास में इनका प्रसंग मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्यस्मृति के प्रसंगों से मिलता-जुलता है। मनु ने लशुन, गृंजन आदि द्विजातियों के लिए वर्जित बतलाया है—

लशुनं गृञ्जनं चैव पलांडुं कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥[1]

एक अन्य स्थल पर उन्होंने छत्राक, लशुन, पलांडु, गृंजन आदि का सेवन करने से द्विज के पतित होने का प्रसंग दिया है—

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम्।
पलांडुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद् द्विजः॥[2]

इसी प्रकार का प्रसंग याज्ञवल्क्यस्मृति में मिलता है। याज्ञवल्क्य का कथन है कि यदि कोई पलांडु, लशुन, गृञ्जन आदि खाये तो चान्द्रायण व्रत करे—

पलांडुं विड्वराहं च छत्राकं ग्रामकुक्कुटम्।
लशुनं गृञ्जनं चैव जग्ध्वा चान्द्रायणं चरेत्॥[3]

शंखसंहिता के अनुसार लशुन, पलांडु, गृंजनादि के भक्षण करने पर बारह रात्रि तक जल पिये—

लशुनपलांडुगृञ्जनकरंजकिंपाककुम्भीभक्षणे द्वादशरात्रं पयः पिबेत्।

देवल ने तो यहां तक कह दिया है कि लशुनादि के समान गन्ध, वर्ण, रसादि वाले समस्त पदार्थ द्विजातियों के लिए अभक्ष्य हैं—

लशुनादिषु ये तुल्या गन्धवर्णरसादिभिः।
अभक्ष्यास्ते द्विजातीनाम्.........

उपर्युक्त प्रसंगों में प्रयुक्त गृंजन शब्द के अर्थ के विषय में बड़ा मतभेद है। यह शब्द साधारणतया तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है—१. गाजर, २. शलजम और ३. लहसुन। इनमें से शलजम अर्थ अधिक उपयुक्त है। धन्वन्तरि-निघंटु के अनुसार[4] गृंजन वह है जिसके मूल पर शिखा होती है। यह यवनों को बहुत प्रिय है। यह गांठदार मूलवाला होता है। शिखाकन्द, कन्द, डिंडीरमोदक इसके अन्य नाम हैं। यह कडुवा, गर्म, दुर्गन्धयुक्त तथा गुल्मनाशक होता

---

१. मनुस्मृति ५, ५। २. वही ५.१९।
३. याज्ञवल्क्यस्मृति भक्ष्याभक्ष्यप्रकरण।
४. करवीरादि ४ वर्ग अंक १०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। इसके अतिरिक्त यह अग्नि को दीप्त कर रुचि बढ़ाता है और हृद्य है तथा वात, पित्त, कफ सम्बन्धी रोगों को नाश करता है—

गृञ्जनं शिखिमूलं च यवनेष्टं च वर्तुलम्।
ग्रन्थिमूलं शिखाकन्दं कन्दं डिंडीरमोदकम्॥
गृञ्जनं कटुकोष्णं च दुर्गन्धं गुल्मनाशनम्।
रुच्यं च दीपनं हृद्यं कफवातरुजापहम्॥

ऊपर वर्णित गुणों में से बहुत से जैसे कटुता, दुर्गन्ध, उष्णता, गोल होना आदि गाजर में नहीं पाये जाते।

शब्दकल्पद्रुम में भी गृञ्जन का अर्थ शलगम लिया गया। यथा—

गृञ्जनम् क्लीं०। मूलविशेषः (विषदिग्धपशोर्मांसम्, इति मेदिनी) शलगम इति ख्यातः। यवनेष्टम्। शिखाकन्दम्। कन्दम्। कटुत्वम्। उष्णत्वम्। कफवातरोगगुल्मनाशित्वम्। रुच्यं, दीपनं, हृद्यं, दुर्गन्धम्॥

मेदिनी कोष में गृंजन शब्द का अर्थ विष में सना हुआ पशुमांस है। अमरकोष के निम्नलिखित प्रसंग में गृंजन शब्द लशुन का पर्यायवाची है—

लशुनं गृंजनारिष्टमहाकन्दरसोनकाः।[1]

किन्तु उसकी अमरविलोक नाम की टीका के अनुसार लशुन और गृंजन में आकार का भेद होने पर भी रस अथवा स्वाद समान होने के कारण अमरकोष में इन दोनों को एक माना गया है।

उपर्युक्त सभी मतों का विवेचन करने पर गृंजन शब्द का अर्थ बहुत गुणों के मेल के कारण शलजम ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त मनु, याज्ञवल्क्य, शंख, देवल के उद्धृत प्रसंगों में लशुन शब्द का पृथक् प्रयोग हुआ है। अतः गृंजन का अर्थ लशुन भी नहीं ले सकते।

अभक्ष्य पशु

अभक्ष्य पशुओं में महाराज सोमेश्वर ने ग्रामकुक्कुट, विड्वराह, व्याघ्र, जम्बूक, मार्जार, वृक, वानर, ऋक्ष, सिंह, गज, उष्ट्र, कुत्ता तथा भेड़, बकरी को छोड़कर समस्त ग्रामज पशु बतलाया है। इस सम्बन्ध में भी सोमेश्वर ने पुराणों और स्मृतियों के सिद्धान्तों को अपनाया है। ग्रामकुक्कुट तथा विड्वराह का प्रसंग मनु आदि ने लशुनादि के साथ दिया है जिनका उल्लेख पहले किया गया है। सम्भवतः उसी आधार पर सोमेश्वर ने भी इसका नाम लशुनादि के साथ लिया है।

मार्कण्डेयपुराण[2] में केवल पांच पचनख पशुओं के भक्षण का उल्लेख

---

१. अमरकोश, २, ४, १४८। २. मा० पु० ३५।२.४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। मनुस्मृति के अनुसार श्वाविध (सेह), शल्यक, गोधा, खड्ग, कछुआ तथा खरगोश ये पांच नख वाले पशु तथा ऊंट को छोड़कर एक ओर दांत वाले भक्ष्य हैं, शेष अभक्ष्य—

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा।
भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥[1]

याज्ञवल्क्यस्मृति में भी केवल सेधा, गोधा (गोह), कच्छप, शल्लक (साही) और खरगोश ये ही पांच नख वाले पशु भक्ष्य बतलाये गये हैं, शेष अभक्ष्य हैं—

भक्ष्याः पंचनखाः सेधागोधाकच्छपशल्लकाः।
शशश्च मत्स्येष्वपि हि सिंहतुंडकरोहिताः॥[2]

इसी प्रकार गौतम,[3] आपस्तम्ब,[4] वशिष्ठ[5] आदि धर्मसूत्रों में भी ऐसे प्रसंग प्राप्त होते हैं। इन सभी में वर्जित पशुओं को खाने से द्विजाति का पतन होने का उल्लेख आया है। शंखसंहिता के अनुसार गौ, अश्व, गज, ऊंट, 'शशादि को छोड़कर पंचनख वाले पशु तथा ग्रामकुक्कुट के भक्षण से एक संवत्सर तक व्रत करे—

गामश्वं कुञ्जरोष्ट्रौ च सर्वान् पंचनखांस्तथा।
क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यम् भुक्त्वा संवत्सरं व्रतम्॥

विष्णुसंहिता का कथन है कि विड्वराह, ग्रामकुक्कुट, नर तथा गोमांस के भक्षण से द्विजातियों को प्रायश्चित्त करके पुनः संस्कार करना चाहिए—

विड्वराहग्रामकुक्कुटनरगोमांसभक्षणेषु सर्वेष्वेव द्विजातीनां प्रायश्चित्तान्ते भूयः संस्कारं कुर्यात्।

अभक्ष्य पक्षी, कीटादि

अभक्ष्य पक्षियों के अन्तर्गत महाराज सोमेश्वर ने वायस, पारावत, शुक, श्येन, हंस, उलूक, बक, कोकिल, सारिका तथा गृध्र लिया है। कीटादि के सम्बन्ध में उनका कथन है कि कृमि, कीट तथा पतंगों का भक्षण नहीं करना चाहिए—

कृमि-कीट-पतंगाश्च न भक्ष्याः परिकीर्तिताः।[6]

इसके अतिरिक्त उन्होंने शरट, दर्दुर, सर्प, नकुल, गृहगोधिका, मकर तथा शिशुमार का नाम लिया है—

---

१. मनुस्मृति ५.१८।
२. याज्ञ० भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण ७७।
३. गौ० १७।२७.३१।
४. आप० ५।१७।३५।
५. व० १४।३९.४०।
६. मानसोल्लास १।१।४८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शरटो दर्दुरः सर्पो नकुलो गृहगोधिका ।
मकरः शिशुमारश्च नैव भक्ष्याः प्रकीर्तिताः ॥[१]

उपर्युक्त अभक्ष्य पक्षियों का उल्लेख गौतम,[२] आपस्तम्ब[३], वशिष्ठ,[४] विष्णु[५] आदि धर्मसूत्रों में तथा मनु और याज्ञवल्क्यस्मृति में हुआ है। मनुस्मृति में कच्चा मांस खाने वाले सभी पक्षी, ग्राम में निवास करने वाले पक्षी, परेव, हंस, चकवा, सारस, तोता, मैना आदि का भक्षण वर्जित है—

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिनः ।
अनिर्दिष्टांश्चैकशफांष्टिट्टिभं च विवर्जयेत् ॥
कलविंकं प्लवं हंसं चक्रांगं ग्रामकुक्कुटम् ।
सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुकसारिके ॥[६]

याज्ञवल्क्य में भी इन्हीं पक्षियों का भक्षण वर्जित है—

क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकप्रतुदटिट्टिभान् ।
सारसैकशफान् हंसान्सर्वांश्च ग्रामवासिनः ॥
कोयष्टिप्लवचक्राह्वबलाकाबकविष्किरान् ।
वृथाकृशरसं यावपायसापूपशष्कुलीः ॥
कलविंकं सकाकोलं कुररं रज्जुदालकम् ।
जालपादान्खञ्जरीटानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ॥[७]

इसमें वायस, पारावत, शुक, बाज़, हंस, बक, आदि पक्षी तथा कृमि-कीटादि के नाम आ जाते हैं। मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य में वर्णित बहुत से अभक्ष्य पक्षियों के नाम सोमेश्वर ने नहीं दिए हैं। सम्भवतः वे पक्षी सोमेश्वर-कालीन समाज में खाए जाते होंगे।

शंखसंहिता में हंस, काक, शुक, सारिका आदि का भक्षण करने पर एक मास तक व्रत करने का तथा उन्हें पुनः न भक्षण करने का आदेश दिया गया है—

हंसं मद्गुं च काकोलं काकं च खंजरीटकम् ।
मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान् बलाकां शुकसारिके ॥

---

१. वही १।१।४९ । २. गौ० १७।२९, ३४.३५ ।
३ आप० धर्म सू० ५।१७, ३२.३४ । ४. वशिष्ठ० १४।४८ ।
५. वि० ५१।२९.३१ । ६. मनुस्मृति ५।११.१२ ।
७. याज्ञ० भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण ७२–७४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चक्रवाकं प्लवं कौलं मंडूकं भुजगं तथा।
मासमेकं व्रतं कुर्य्यात् भूयश्च तन्न भक्षयेत्॥

इसी प्रकार विष्णुसंहिता के अनुसार यदि कोई शुक, सारिका, कोकिलादि का भक्षण करे तो तीन रात्रि उपवास करे—

कलविंकहंसमद्गुचक्रवाकरज्जुबालसारसदात्यूहशुकसारिकाभासचाषकाकवलाकाकोकिलखंजरीटाशने त्रिरात्रमुपवसेत्।

अभक्ष्य पक्षियों के अभक्षण के साथ हारीतसंहिता में कृमि, कीट, पतंगादि के अभक्षण का उल्लेख है। यदि कोई इनका भक्षण करता है तो वह तीन रात्रि गोमूत्र तथा गोमय का आहार करे—

कृमिकीटपिपीलिकाजलौकापतंगास्थिप्राशने गोमूत्रगोमयाहारस्त्रिरात्रेण प्रयतो भवेत्।

पुराणादि में कुछ व्यक्तियों के लिए मांस बिल्कुल वर्जित है। ब्रह्मपुराण के अनुसार मुमूर्षु यति के लिए मांस का सर्वथा निषेध किया है—

न भक्ष्यं यतिना मांसं कदाचित्तु मुमूर्षुणा।

इसी प्रकार भागवत में स्त्रियों के लिए तथा पुरुषमेध करने वालों के लिए मांस वर्जित है—

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशवः खादन्ति तांश्च ताश्च ते पशवः इह ये निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणः सौनिका इव स्वधितिनावदायासृक् पिबन्ति इति।

इसी प्रकार कुछ विशेष महीने अथवा तिथियों में मांस वर्जित है, यथा कार्तिक में—

न मत्स्यं भक्षयेन्मांसं न कौर्मं नान्यदेव हि।
चंडालो जायते राजन्! कार्तिके मांसभक्षणात्॥[1]

तिथियों में पर्व, षष्ठी, अष्टमी, पंचदशी तथा दोनों पक्षों की चतुर्दशी मांस भक्षण के लिए वर्जित है—

स्त्रीतैलमांससंभोगी पर्व्वस्वेतेषु मानवः।
विण्मूत्रभोजनं नाम नरकं प्रतिपद्यते॥[2]

षष्ठ्यष्टमी पंचदशी उभे पक्षे चतुर्दशी।
अत्र सन्निहितं पापं तैले मांसे भगे क्षुरे॥[3]

---

१. आ० त० ना० पु०। २. वि० पु०। ३. स्मृतिः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपेया सुरा

महाराज सोमेश्वर ने गौडी, पैष्टी और माध्वी नाम की तीन प्रकार की सुराओं को अपेय बतलाया है और साथ ही साथ यह भी कहा है कि जितने भी मदनीय पदार्थ हैं उन सबको त्याग देना चाहिए।

गौडी सुरा गुड़ादि से बनाई जाती है। इसमें तीक्ष्णत्व, उष्णत्व, मधुरत्व, वातनाशित्व, पित्तबलकारित्व, दीपनत्व, पथ्यत्व, तथा कान्तितृप्तिकारित्व लक्षण पाए जाते हैं। माध्वी सुरा मधु आदि से तैयार की जाती है। मधुरत्व, नात्युष्णत्व, पित्तवातनाशित्व, पांडुकामलगुल्मार्शःप्रमेहशमत्व इसके गुण हैं। पैष्टी सुरा विविध धान्यों से तैयार की जाती है। इसमें कटुत्व, अम्लत्व, तीक्ष्णत्व, गौड़ीसमत्व, वातहरत्व, कफकरत्व, ईषत्पित्तकरत्व तथा मोहनत्व गुण पाये जाते हैं। इनका उल्लेख शब्द-कल्पद्रुम में इस प्रकार मिलता है—

धातकीरसगुड़ादिकृता मदिरा गौड़ी। तद्गुणा यथा। तीक्ष्णत्वम्। उष्णत्वम्। मधुरत्वम्। वातनाशित्वम्। पित्तबलकारित्वम्। दीपनत्वम्। पथ्यत्वम्। कान्तितृप्तिकारित्वं च।

पुष्पद्रवादिमधुसारमयी मदिरा माध्वी। तद्गुणा यथा। मधुरत्वम्। नात्युष्णत्वम्। पित्तवातनाशित्वम्। पांडुकामलगुल्मार्शःप्रमेहशमनत्वं च।

विविधधान्यजाता मदिरा पैष्टी। तद्गुणा यथा। कटुत्वम्। अम्लत्वम्। तीक्ष्णत्वम्। गौडीसमत्वम्। वातहरत्वम्। कफकरत्वम्। ईषत्पित्तकरत्वम्। मोहनश्च। राजनिघण्टु के मद्यप्रकरण में ऋतुविशेष में इन सुराओं के पान करने का उल्लेख है। उसके अनुसार गौड़ी शिशिर में, पैष्टी हेमन्त और वर्षा में तथा माध्वी शरद्, ग्रीष्म एवं वसन्त में पीना चाहिए—

गौडी तु शिशिरे पेया पैष्टी हेमन्तवर्षयोः।
शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु माध्वी ग्राह्या न चान्यथा॥

पुराणादि में इन तीनों प्रकार की सुराओं की बड़ी निन्दा की गई है और ये द्विजातियों के लिए वर्जित कही गई हैं। पैष्टी के पान के विषय में भविष्यत्पुराण में कहा गया है कि इसका पान करने से कठिन से कठिन तप करना पड़ता है और पुनः यज्ञोपवीत संस्कार करने से शुद्धि होती है—

अकामतः सुरां पीत्वा पैष्टीं मत्कुलनन्दन।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कृत्वा वै पुनः संस्कारतः शुचिः॥

इसी प्रकार गौड़ी मदिरा का एक बार अज्ञान से सेवन करने पर भी कठिन तप तथा घृत-प्राशन करना पड़ता है—

सकृत् पीत्वा तथा गौडीमज्ञानात् सुरसत्तम।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ विहितौ घृतप्राशनमेव च॥ भविष्य

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्राह्मण यदि अज्ञान से गौड़ी अथवा माध्वी का पान करे तो कठिन तप करना पड़ता है—

गौड़ीमज्ञानतः पीत्वा ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रिय ।
तप्तकृच्छ्रन्तु वै कृत्वा पुनः संस्कारतः शुचिः ॥
माध्वीं पीत्वा महाबाहो ! अज्ञानाद् द्विजसत्तमः ।
शुद्ध्येत तप्तकृच्छ्रेण विकर्माभ्यासनात्तथा ॥
रेतोमूत्रपुरीषाणां गौड़ीमाध्व्योश्च प्राशने ।
क्रव्यादपशुविष्ठानां संस्काराच्छुद्धिरिष्यते ॥

बृहस्पति का मत है कि गौड़ी, माध्वी तथा पैष्टी सुरा का पान करने पर ब्राह्मण तप्त-कृच्छ्र, पराक तथा चान्द्रायण व्रत का आचरण करे—

गौड़ीं माध्वीं सुरां पैष्टीं पीत्वा विप्रः समाचरेत् ।
तप्तकृच्छ्रं पराकं च चान्द्रायणमनुक्रमात् ॥

यमसंहिता ने इन सुराओं को द्विजातियों के लिए सर्वथा वर्जित बतलाया है—

एका माध्वी च गौड़ी च पैष्टी च त्रिविधा सुरा ।
द्विजातिभिर्न पातव्या कदाचिदपि कर्हिचित् ॥

मत्स्यसूक्त महातन्त्र में वर्णित बारह प्रकार की मदिराओं में पैष्टी सबसे अधम मानी गई है और माध्वी तथा गौड़ी मध्यम कोटि की मानी गई हैं। इनके अतिरिक्त अन्य मदिरायें उत्तम कोटि की हैं—

नारिकेलं च खार्ज्जूरं पानसं च तथैव च ।
ऐक्षवं मधुकं टांकं तालं चैव च माक्षिकम् ॥
द्राक्षन्तु दशमं ज्ञेयं गौडं चैकादशं स्मृतम् ।
पैष्टन्तु द्वादशं प्रोक्तं सर्वेषामधमं स्मृतम् ॥
मध्यमं मधुजं गौडं शेषञ्चोत्तममिष्यते ।[1]

इनमें से गौड़ी और पैष्टी सुरा 'हीनसंस्कृता' मानी गई हैं और शूद्र के लिए भी वर्जित हैं—

शूद्रोऽपि गौड़ीं पैष्टीं च न पिबेद्धीनसंस्कृताम् ॥[2]

पैष्टी के पान से ब्राह्मण मृततुल्य हो जाता है। माध्वी और गौड़ी भी उसके लिए वर्जित हैं। क्षत्रिय और वैश्य के लिए भी गौड़ी और माध्वी का पान शोभा नहीं देता—

---

१. श्रीमत्स्यसूक्ते महातन्त्रे चतुर्विंशतिसाहस्रे ३६ पटलः ।
२. वही ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पैष्टीपाने ब्राह्मणस्य मरणान्तिकमुच्यते।
माध्वीगौड़ीसुरापाने द्वादशाब्दं विधीयते॥
इतरेषान्तु पानेन शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु।
राजन्यवैश्ययोश्चापि गौड़ी माध्वी न शस्यते॥
मोहात् क्षत्रश्च वैश्यश्च पीत्वा कृच्छ्रद्वयं चरेत्॥[1]

अपेय दुग्ध

अपेय दुग्ध के अन्तर्गत सोमेश्वर ने बिना बछड़े वाली गौ, तथा जिसको ब्याये दस दिन न हुए हों ऐसी गौ, दूसरे बछड़े द्वारा लगने वाली गौ तथा जो गाभिन हो (वृषभेण क्रान्ता) ऐसी गौ के दुग्ध का उल्लेख किया है—

अवत्सायाः पयो धेनोर्दशाहाभ्यन्तरे च यत्।
वत्सान्तरप्रस्रविन्याः क्रान्ताया वृषभेण च॥[2]

साथ ही सोमेश्वर ने भेड़ तथा हस्तिनी का दूध भी अपेय बतलाया है—

आविकं कारभं क्षीरमपेयं परिकीर्तितम्।[3]

मानसोल्लासकार के ये प्रसंग धर्मशास्त्रों के प्रसंगों से मिलते-जुलते हैं। मनु ने दस दिन तक प्रसूता, बिना बछड़े वाली एवं संधिनी गौ तथा भेड़ का दूध अपेय बतलाया है—

अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा।
आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः॥[4]

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने संधिनी, बिना बछड़े वाली तथा जिसको ब्याये दस दिन हुए हों ऐसी गौ तथा भेड़ आदि का दूध वर्जित बतलाया है—

सन्धिन्यनिर्दशावत्सगोपयः परिवर्जयेत्।
औष्ट्रमैकशफं स्त्रैणमारण्यकमथाविकम्॥[5]

मनु और याज्ञवल्क्य ने जो 'संधिनी' शब्द का प्रयोग किया है वह तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है—ब्यायी हुई गौ अथवा एक बार लगने वाली अथवा जो दूसरे के बछड़े से दुही जावे। सोमेश्वर ने 'वत्सान्तरप्रस्रविन्याः' शब्द सम्भवतः 'सन्धिनी' शब्द के तृतीय अर्थ के आधार पर प्रयुक्त किया है।

अंगरिस, यम तथा विष्णु संहिताओं में भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है। अंगिरस ने दस दिन तक प्रसूता गौ का उल्लेख किया है—

---

१. वही।
२. मानसोल्लास १।१।५१। ३. वही १।१।५२।
४. मनु० ५।८। ५. याज्ञवल्क्य भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण, श्लोक ७०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गोः क्षीरमनिर्दशायाः सूतके अजामहिष्योश्च नित्यमपेयमौष्ट्रमेकशफं च स्यन्दिनीनां च याश्च वत्सव्यपेताः।

यमसंहिता में अवत्सा तथा अन्य बछड़े से लगने वाली गौ का दूध वर्जित बतलाया है—

वर्जयेद्गोरवत्सायाः पयश्चैवान्यवत्सया।
आरण्यानां च सर्वेषां वर्जयित्वा तु माहिषम्॥

भेड़ के दूध की अपेयता का प्रसंग वायुपुराण में भी प्राप्त होता है, यद्यपि उसमें भैंस का दूध भी वर्जित बतलाया है—

आविकं मार्गमौष्ट्रं च सर्वमेकशफं च यत्।
माहिषं चामरं चैव पयो वर्ज्यं विजानता॥

अभक्ष्य तथा अपेय पदार्थों के सम्बन्ध में जो ऊपर तुलनात्मक विवेचन किया गया है उससे पता चलता है कि कुछ पदार्थों को सभी ग्रन्थों ने अभक्ष्य अथवा अपेय बतलाया है किन्तु प्रत्येक में कुछ विशेष पदार्थ भी पाए जाते हैं। वास्तव में वस्तुओं की अभक्ष्यता अथवा अपेयता कई कारणों से होती है। वाचस्पत्य के अनुसार यह वस्तु के स्वभाव के अनुसार, समय के अनुसार, देशादि निमित्त के अनुसार अथवा स्वामिविशेषादि के कारण होता है—

स्मृतिनिषिद्धभक्षणे लशुनादौ अभक्ष्यत्वञ्च वस्तुस्वभावकृतं, कालकृतं, देशादिनिमित्तकृतं, द्रव्यान्तरयोगकृतं, स्वामिविशेषकृतं, चंडालादिस्पर्शदर्शनादिदोषकृतं, पात्रविशेषप्राकादि कृतम्, अधिकारिविशेषकृतं चेति तत्तदुपाधिकृतम्, तत्र केषाञ्चित् नञादिना केषाञ्चिच्च तत्तद्भक्षणे प्रायश्चितोपदेशेनाभक्ष्यत्वं स्मृत्यादावुक्तम्।[1]

असूयावर्जन

अमरकोष के अनुसार असूया का अर्थ गुणों में दोष को प्रकट करना अथवा दूसरे के गुण में दोष का आरोप करना है—

गुणेषु दोषाविष्करणम्। परगुणे दोषारोपणम्।

सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार भी असूया का यही अर्थ है—

असूया परगुणेषु दोषाविष्करणम्।

इसके अतिरिक्त 'हर्षासूयाविषादाः' आदि के द्वारा असूया की गणना व्यभिचारिभावों के अन्तर्गत की गई है।

महाराज सोमेश्वर के अनुसार दूसरे व्यक्ति की समृद्धि, रूप, शौर्य, उदारता,

---

१. वाचस्पत्यम् प्रथम खंड पृ० २७४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कलाकुशलता, शील, सौभाग्य तथा गुणसम्पत्तियों से असहिष्णु होना ही असूया है। उनका कथन है कि इस प्रकार जो दूसरे की समृद्धि आदि को देखकर असहिष्णु होता है वह यमलोक को प्राप्त होता है और जब तक इस संसार में रहता है तब तक निन्दा का पात्र होता है। इसलिए किसी को असहिष्णु नहीं होना चाहिए।

साहित्यदर्पण में असूया के लक्षण ठीक इसी प्रकार वर्णित हैं। साहित्य-दर्पणकार के कथनानुसार दूसरे के गुण, ऋद्धि आदि के विषय में औद्धत्य के साथ असहिष्णुता ही असूया है और यह दोषों की घोषणा, भ्रूविभेद, अवज्ञा, क्रोध, इंगित आदि द्वारा प्रकट होती है—

असूयान्यगुणर्द्धीनामौद्धत्यादसहिष्णुता।
दोषोद्घोषभ्रूविभेदावज्ञाक्रोधेंगितादिकृत्॥

मनु का भी कथन है कि ईर्ष्या की उत्पत्ति क्रोध से होती है। इसका स्थान क्रोधजन्य दस अवगुणों में है—

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दंडजञ्च पारुष्यं क्रोधजो दशको गणः॥[१]

असूया दोष प्रत्येक व्यक्ति के लिए विशेषतः राजा के लिए बड़ा हानिकारक है। राजा तभी तक अपने राज्य में सफलतापूर्वक राज्य कर सकता है जब तक उसके हृदय में ईर्ष्या का प्रवेश न हुआ हो। ईर्ष्या सूत्र का प्रवेश होते ही राजा का हृदय मलिन हो जाता है। उसकी ज्ञानेन्द्रियों पर आवरण पड़ जाता है। हमारे धर्मशास्त्रों ने राजा के सभी गुणों में सहिष्णुता भी एक महान गुण माना है। इस गुण के वर्तमान होने से दूसरे की समृद्धि को देखकर राजा प्रसन्न ही होता है, दुःखी एवं ईर्ष्यापूर्ण नहीं। सोमेश्वरदेव ने 'सर्वसत्त्वहितैषिता' कहकर राजा के सहिष्णुत्व को स्वीकार किया है।

पतितसंगवर्जन

पतित शब्द का अर्थ उस व्यक्ति से है जो अपने धर्म, शास्त्रविहित कर्म अथवा सदाचारादि से भ्रष्ट हो जाता है—

पतितो भ्रष्टो भवति स्वधर्मात् शास्त्रविहितकर्मणः सदाचारादिभ्यो वा यः···

ऐसे व्यक्ति के लक्षणों का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण में बड़े सुचारु रूप से हुआ है। उसके अनुसार जो व्यक्ति अपने धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म का आश्रय लेता है वही पतित कहलाता है—

---

१. मनु० ७।४८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वधर्मं यः समुच्छिद्य परधर्मं समाश्रयेत्।
अनापदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्तितः॥

महाराज सोमेश्वर ने महापातक दोष से युक्त, धर्मलोपी संन्यासी, चांडाल तथा अन्त्यज जातियों को पतित माना है और बतलाया है कि उनकी संगति करने वाला व्यक्ति भी पतित हो जाता है—

महापातकदुष्टानां लिंगिनां धर्मलोपिनाम् ।
चंडालान्त्यजजातीनां संसर्गात् पतितो भवेत् ॥[1]

महापातक के सम्बन्ध में मनु का कथन है कि ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी तथा गुरु की स्त्री के साथ गमन ये चार महापातक हैं—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥[2]

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने भी यही चार महापातक माने हैं—

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः।
एते महापातकिनो यश्च तैः सह संवसेत् ॥[3]

मनुष्यों के पतित होने का कारण मत्स्यपुराण में इस प्रकार दिया है—

चांडालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात् साम्यन्तु गच्छति ॥

पतितों की गणना इस प्रकार की गई है—

गराग्निविषदाश्चैव पाषंडाः क्रूरबुद्धयः।
क्रोधात् प्रायं विषं वह्निं शस्त्रमुद्बन्धनं जलम् ॥
गिरिवृक्षप्रपातञ्च ये कुर्वन्ति नराधमाः।
कुशिल्पजीविनश्चैव सूनालङ्कारकारिणः ॥

तथा

ब्रह्मदंडहता ये च ये च वै ब्राह्मणैर्हताः।
महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः ॥

ब्रह्मपुराण के अनुसार पतितों का न दाहसंस्कार होता है, न अन्त्येष्टि, न अस्थिसंचय, न अश्रुपात, न पिंड दिया जाता है और न श्राद्धादि किया जाता है—

---

१. मानसोल्लास १।१।५५ । २. मनुस्मृति ११, ५४ ।
३. याज्ञ० स्मृति प्रायश्चित्तप्रकरण २७ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसंचयः ।
न चाश्रुपातः पिंडो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ॥[1]

वराहपुराण में पतितों के संसर्ग का निषेध किया गया है। उसके अनुसार पतित जन के साथ भोजन, शयन आदि से मनुष्य पतित होता है—

आसन्नशयनाच्चैनं भोजनात् कथनादिषु ।
संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥

पतित व्यक्ति वैदिक कर्मों का अधिकार न रखता हुआ नरक का भागी होता है। यथा—

पतितैः संप्रयुक्तानामिमां श्रृणुत निष्कृतिम् ।
संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥
याजनाध्यापनाद्यौनाच्छ्वासपानाशनासनात् ।
यो येन पतितेनैव संसर्गं याति मानवः ।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात् संसर्गस्य विशुद्धये ॥

पतित संग का निषेध करने के साथ सोमेश्वर ने भी पतितों की संगति का फल बतलाया है। उनका कथन है कि पतितों का संग करके व्यक्ति स्वयं पतित होकर संसार में निन्दित तो होता ही है, साथ ही साथ मृत्यु के पश्चात् रौरव नरक को प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी इस प्रकार के व्यक्तियों के नरकगामी होने का उल्लेख है। इसी प्रसंग में याज्ञवल्क्य ने २१ प्रकार के नरकों को गिनाया है जिनमें रौरव नरक भी है। अपने कर्मों के अनुसार व्यक्ति इन्हीं नरकों को प्राप्त होता है। ये २१ प्रकार के नरक इस प्रकार हैं—

तामिस्रं लोहशंकुं च महानिरयशाल्मली ।
रौरवं कुड्मलं पूतिमृत्तिकं कालसूत्रकम् ॥
संघातं लोहितोदं च सविषं संप्रपातनम् ।
महानरककाकोलं संजीवनमहापथम् ॥
अवीचिमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकं तथैव च ।
असिपत्रवनं चैव तापनं चैकविंशकम् ॥[2]

मार्कण्डेय पुराण में पिता-पुत्र-संवाद नामक अध्याय में रौरव नरक के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

---

१. ब्रह्मपुराण शुद्धितत्त्व ।
२. याज्ञ० प्रायश्चित्तप्रकरण श्लो० २२,२४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृती नरः।
तस्य स्वरूपं वदतो रौरवस्य निशामय॥
योजनानां सहस्रे द्वे रौरवो हि प्रमाणतः।
जानुमात्रप्रमाणन्तु तत्र श्वभ्रं सुदुस्तरम्॥
तत्रांगारचयो येन कृतं तद्धरणीसमम्।
जाज्वल्यतातितीव्रेण तापिताम्बरभूमिना॥
तन्मध्ये पापकर्माणं विमुञ्चन्ति यमानुगाः।
स दह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तेन धावति॥
पदे पदे च पादोऽस्य शीर्यते जायते पुनः।
अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासं स गच्छति।
एवं सहस्रं विस्तीर्णे योजनानां विमुच्यते॥

देवीभागवत पुराण में भी इसी प्रकार रौरव नरक के स्वरूप का उल्लेख मिलता है यथा—

एतन्ममाहमिति यो भूतद्रोहेण केवलम्।
पुष्णाति प्रत्यहं स्वीयकुटुम्बं कार्यलम्पटः॥
एतद्विहाय चात्रैव स्वाशुभेन पतेदिह।
रौरवे नाम नरके सर्वसत्त्वभयावहे॥
इहलोकेऽमुना ये तु हिंसिता जन्तवः पुरा।
त एव रुरवो भूत्वा परत्र पीडयन्ति तम्॥
तस्माद्रौरवमित्याहुः पुराणज्ञा मनीषिणः।
रुरुः सर्पादपि क्रूरो जन्तुरुक्तः पुरातनैः॥

रौरव नरक की इस भीषणता का अनुमान करके ही सोमेश्वर ने पतित-संगवर्जन का आदेश दिया है। इसी कारण अनजान में यदि पतितों का संग हो भी जाय तो प्रायश्चित्त द्वारा तुरन्त उसका संशोधन करना चाहिए।

सोमेश्वर द्वारा लिखित इस प्रकार के प्रसग से अनुमान लगाया जा सकता है कि सोमेश्वर वर्णव्यवस्था का पूर्ण पक्षपाती था। वह नहीं चाहता था कि उसके राज्य में किसी प्रकार का अनाचार या भ्रष्टाचार फैले।

क्रोधवर्जन

पतितसंगवर्जन के पश्चात् सोमेश्वर ने क्रोधवर्जन पर प्रकाश डाला है। क्रोध को उन्होंने बुद्धि, आत्मा, कुल, धन तथा धर्म के नाश का कारण बतलाया है—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्रोधो नाशयते बुद्धिमात्मानं च कुलं धनम्।
धर्मनाशो भवेत् कोपात् तस्मात् तं परिवर्जयेत्॥[१]

काम, क्रोध, लोभ और मोह ये मनुष्य के घोर शत्रु माने गए हैं क्योंकि इनसे मनुष्य नष्ट हो जाता है। गीता में क्रोध के विषय में कहा गया है कि इससे (क्रोध से) मोह, मोह से स्मृतिविभ्रम, स्मृतिविभ्रम से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश होने से व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है—

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥[२]

मनुस्मृति में काम से उत्पन्न दस प्रकार के तथा क्रोध से उत्पन्न आठ प्रकार के दुर्व्यसनों का उल्लेख किया गया है जो मनुष्य के नाश का कारण बनते हैं। काम से उत्पन्न व्यसनों में आसक्त होने पर राजा धर्म तथा अर्थ से हीन हो जाता है किन्तु क्रोध से उत्पन्न व्यसनों में लगने पर उसके शरीर का ही नाश हो जाता है—

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु॥[३]

वास्तव में, जैसा गीता में कहा गया है, क्रोध का कारण काम ही है और काम की उत्पत्ति संग से होती है—

संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।[४]

क्रोध से आक्रान्त पुरुष युद्ध के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता—

न कर्म क्रोधान्धः प्रभवति विधातुं रणमृते।

नीतिशास्त्र के अनुसार क्रोध संसार को अंधा, धीर को बधिर, सचेतन को अचेतन कर देता है। क्रोधी पुरुष न किए हुए को देखता है और न अपने हित की बात सुनता है—

अन्धीकरोति भुवनं बधिरीकरोति
धीरं सचेतनमचेतनतां नयेत् क्रुत्।
कृत्यं न पश्यति न चात्महितं श्रृणोति।
धीमानधीतमपि न प्रतिसन्दधाति॥

---

१. मानसोल्लास १।१।५७। २. गीता २।६३।
३. मनु० ७।४५,४६। ४. गीता २।६२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्रोध से उत्पन्न दोषों में चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दूसरे के कार्य में दोष लगाना, द्रव्यहरण, गाली देना तथा कठोरता ये आठ प्रकार के व्यसन हैं।[1] अतः क्रोध सब प्रकार के दुर्गुणों का मूल है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, क्रोध का हृदय में समावेश होते ही मनुष्य का ज्ञान आवरण से ढक जाता है। उसकी बुद्धि निष्चेष्ट हो जाती है। क्रोध से पूर्ण व्यक्ति को स्वयं अपने को तथा अपनी आत्मा को समझने एवं पहचानने की शक्ति नहीं रह जाती और वह पतनावस्था की ओर अग्रसर होकर अन्धकार के गर्त में गिर जाता है। इसी कारण सोमेश्वर ने क्रोधवर्जन पर इतना बल दिया है।

स्वात्मस्तुतिवर्जन

सोमेश्वर ने आत्मस्तुति को महापाप बतलाया है। मोह से वशीभूत होकर आत्मस्तुति करने वाले व्यक्ति का जीवन भी मरण के सदृश है। वह व्यक्ति दूसरे लोक में यातना को भोगता है। अतः आत्मस्तुति का त्याग करना चाहिए—

आत्मानं स्तौति यो मोहाज्जीवन्नपि मृतो भवेत्।
परत्र यातनां याति तस्मात्तत् परिवर्जयेत्॥[2]

शार्ङ्गधर पद्धति में आत्मश्लाघा की बड़ी निन्दा की गई है। उसके अनुसार मनुष्यों के स्वयंवर्णित गुण सौख्य और सौभाग्यकारी नहीं होते हैं। जिस प्रकार एक सुन्दर स्त्री को स्वयं अपने स्तनों के स्पर्श करने में कोई आनन्द नहीं आता है उसी प्रकार मनुष्य द्वारा स्वयं अपने गुणों का बखान करने में कोई सुख नहीं। दूसरों के द्वारा वर्णित किए जाने पर दूना सुख प्राप्त होता है—

न सौख्यसौभाग्यकरा गुणा नृणां
स्वयं गृहीताः सुदृशां कुचा इव।
परैर्गृहीता द्वितयं वितन्वते
न तेन गृह्णन्ति निजं गुणं बुधाः॥[3]

इसी प्रकार के प्रसंग अन्य स्थलों पर भी मिलते हैं—

न सुखं न च सौभाग्यं स्वयं स्वगुणवर्णने।
यथैव च पुरंध्रीणां स्वहस्तकुचमर्दने॥[4]

---

१. पैशुन्य साहसं द्रोह ईर्ष्याऽसूयार्थदूषणम्।
वाग्दंडजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥ मनु० ७।४८।

२. मानसोल्लास १।१।५८। ३. शा० प० ३००।

४. सुभाषितरत्नभांडारम् ८३.२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा

निजगुणगरिमा सुखाकरः स्यात्स्वयमनुवर्णयतां सतां न तावत्।
निजकरकमलेन कामिनीनां कुचकलशाकलनेन को विनोदः॥[1]

इसके अतिरिक्त जिस व्यक्ति के गुण दूसरे व्यक्तियों द्वारा कहे जाते हैं वह निर्गुणी होने पर भी गुणवान हो जाता है किन्तु स्वयं अपने गुण कहने पर इन्द्र भी लघुता को प्राप्त होता है—

परैः प्रोक्ता गुणा यस्य निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयंप्रख्यापितैर्गुणैः॥

अतः किसी व्यक्ति को अपने गुणों का बखान स्वयं न करके उन्हें युक्ति से दूसरों के द्वारा कराना चाहिए—

स्वयं तथा न कर्तव्यं स्वगुणाख्यापनं पुनः।
स्वगुणाख्यापनं युक्त्या परद्वारा प्रयोजयेत्॥[2]

राजा के लिए स्वात्मस्तुति विशेष रूप से हानिप्रद है। राजा के हृदय में यदि आत्मश्लाघा का विचार आ गया तो उसकी पूर्ण उन्नति सदैव के लिए रुक जाती है। आत्मस्तुति करने से हृदय में मोह तथा दर्प की मात्रा की वृद्धि हो जाती है और हृदय में गर्व तथा मोह की वृद्धि होने पर व्यक्ति को स्वार्थ तथा परमार्थ को सोचने की शक्ति नहीं रह जाती। इसी कारण उसका सदैव पतन ही होता रहता है। अतः सोमेश्वर ने इसे वर्जित बतलाया है।

(२) विहित कर्तव्य

दान

राजा के लिए दानी होना अत्यन्तावश्यक है। दानी राजा इहलोक तथा परलोक दोनों में यश प्राप्त करता है। दान की महिमा के विषय में ऋग्वेद में अनेक दानस्तुतियां प्राप्त होती हैं[3] जिनमें ऐश्वर्यशाली राजाओं के दान की प्रशंसा है। ब्राह्मण,[4] उपनिषद्[5] एवं पुराण[6] साहित्य में भी दान के

---

१. वही ८३.५। २. वही ८३.३।

३. ऋग्वेद १।१२५।५.७, १।१२६।१.५, ५।६१, ६।४७।२२.२५, ७।१८।२२.२५, ८।५।३७.३९, ८।६।४६.४८, ८।४६।२१.२४, ८।६८।१८.१९, १०।६२।८.११।

४. ऐ० ब्रा० ३०।९, शां० ब्रा० २५।१४, शत० ब्रा० २।२।१०।६।

५. छां० उप० ४.१.२।

६. अग्नि २०८.२१५ तथा २१७, मत्स्य ८२.९१ तथा २७४.२८९, वराह ९९.१११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

माहात्म्य का वर्णन हुआ है। दान से सब व्यसनों के नष्ट होने का प्रसंग मिलता है। इससे प्राणी वश में होते हैं, शत्रुता का अन्त होता है, शत्रु भी बन्धुत्व को प्राप्त होता है—

दानेन भूतानि वशीभवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्।
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैर्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति ॥[1]

यही नहीं, दान द्वारा पशु, पाषाण तथा वृक्ष भी प्रशंसा को प्राप्त होते हैं। दान गुण ही श्लाघ्य है, अन्य करोड़ों गुण भी नहीं--

दानेन श्लाघ्यतां यान्ति पशुपाषाणपादपाः।
दानमेव गुणः श्लाघ्यः किमन्यैर्गुणकोटिभिः ॥[2]

देवल ऋषि ने दान के छः अङ्गों का वर्णन किया है जिनका दान देते समय प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान रखना चाहिए--

१. दाता, २. ग्रहण करने वाला, ३. श्रद्धा, ४. देय वस्तुएं जो प्रतिग्रहीता द्वारा उचित रूप से ग्रहण की जायँ, ५. उपयुक्त समय, ६. उपयुक्त स्थान।[3]

इनमें से प्रथम चार का मनु ने विशेष रूप से उल्लेख किया है—

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥
दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥[4]

न्याय से प्राप्त धन देश, काल तथा पात्र के अनुसार देने पर अनन्त कहा जाता है—

देशकाले तथा पात्रे धनं न्यायागतं तथा।
यद्दत्तं ब्राह्मणश्रेष्ठाः! तदनन्तं प्रकीर्तितम् ॥ विष्णुधर्मोत्तरम्।

महाराज सोमेश्वर ने मानसोल्लास में सर्वप्रथम प्रतिग्रहीता के लक्षणों का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि जो श्रुतियों का ज्ञाता, दरिद्र, शीलाचार से युक्त, पुराणवेद का पंडित तथा योग्य कुटुम्बी हो उसको दान देना चाहिए—

---

१. सुभाषितरत्नभांडागारम् ६९।२५। २. वही ६९।१४।
३. दाता प्रतिग्रहीता च श्रद्धा देयं च धर्मयुक्।
देशकालौ च दानानामंगान्येतानि षड् विदुः ॥
देवल–दानवाक्या० folio 3a, हेमाद्रि। दान पृ० १४।
४. मनुस्मृति ४।२२६-२२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्रोत्रियाय दरिद्राय शीलाचारयुताय च ।
पुराणवेदविदुषे दानं देयं कुटुम्बिने ॥[१]

याज्ञवल्क्य का कथन है कि दान सदा सुपात्र को देना चाहिए। यदि कोई अपना कल्याण चाहता है तो कुपात्र को कभी दान न दे—

नापात्रे विदुषा किंचिदात्मनः श्रेय इच्छता ।[२]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार केवल विद्या और तप से सुपात्र नहीं होता। जो विहित कर्म करे तथा जिसमें विद्या और तप पाए जायं वही उत्तम पात्र कहलाता है—

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम् ॥[3]

मनु का कथन है कि दान दिए जाने पर प्रतिग्रहीता उपयुक्त होने पर भी उसमें आसक्त होकर दान ग्रहण न करे क्योंकि इसके द्वारा ब्राह्म तेज नष्ट हो जाता है—

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥[४]

अतः दान को जो निर्विकार भाव से ग्रहण करे वही श्रेष्ठ प्रतिग्रहीता है। दाता स्वयं प्रतिग्रहीता के स्थान पर जाकर दान दे वह उत्तम, उसे बुलाकर दे तो मध्यम और मांगने पर दे तो अधम दान कहलाता है—

अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् ।
अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥[५]

इसके अतिरिक्त प्रतिग्रहीता के घर जाकर दान देने पर अनन्त फल होता है, बुलाकर देने पर हजारगुना तथा मांगने पर देने से उसका आधा फल होता है—

गत्वा यद्दीयते दानं तदनन्तफलं स्मृतम् ।
सहस्रगुणमाहूते याचिते तु तदर्धकम् ॥[६]

कूर्मपुराण में नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा विमल ये चार प्रकार के दान

---

१. मानसोल्लास १।९।५९ ।
२. याज्ञवल्क्यस्मृति, दानधर्म प्रकरण २०१ ।
३. याज्ञ० दानधर्मप्रकरण २०० । ४. मनु० ४।१८६ ।
५. पराशर १।२९ । ६. अपरार्क पृ० २९१ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बतलाए गए हैं। बिना फल के उद्देश्य से जो नित्य ब्राह्मण को दान दिया जाता है वह नित्य, जो पाप की शान्ति के लिए विद्वानों को दिया जाता है वह नैमित्तिक, जो पुत्र, ऐश्वर्यादि की कामना से दिया जाता है वह काम्य तथा जो धर्मयुक्त हृदय से दान दिया जाता है वह विमल दान कहलाता है—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते।
चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥
अहन्यहनि यत् किंचिद्दीयतेऽनुपकारिणे।
अनुद्दिश्य फलन्तत् स्याद्ब्राह्मणाय च नित्यकम्॥
यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे।
नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुत्तमम्॥
अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत् प्रदीयते।
दानन्तत् काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः॥
यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते।
चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम्॥

इसी प्रकार गीता में तीन प्रकार का दान बतलाया गया है—सात्विक, राजस और तामस। सात्विक दान वह है जो बिना प्रत्युपकार की आशा से देश, काल तथा पात्र के अनुसार दिया जाता है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥[1]

राजस दान वह है जो फल के उद्देश्य से तथा प्रत्युपकार की आशा से दिया जाता है—

यत्तु प्रत्युपकाराय फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं विदुः॥[2]

तामस दान वह है जो देश-काल का विचार किए बिना तिरस्कार के साथ अपात्रों को दिया जाता है—

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥[3]

मनु ने सोमेश्वर की भांति सुपात्र को दान देने का आदेश दिया है। मनु का कथन है—

---

१. गीता १७।२०। २. वही १७।२१।
३. वही १७।२२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम् ।
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् ॥[1]

अर्थात् यदि कोई कुपात्र (जो वेदादि का ज्ञाता, धर्मयुक्त तथा योग्य नहीं है) सुवर्ण, भूमि, अश्व, गौ, अन्न, वस्त्र आदि का दान ग्रहण कर लेता है तो वह अग्नि में ईंधन की भांति दग्ध होकर राख के रूप में परिणत हो जाता है। इसके अतिरिक्त वेदाध्ययन तथा तप से हीन ब्राह्मण को यदि दान दिया जाता है तो दाता भी नष्ट हो जाता है और प्रतिग्रहीता उस दान को ग्रहण कर उसके साथ ही जल में डूबी पाषाण की नौका की भांति नष्ट हो जाता है।[2] इस कारण न तो दाता को चाहिए कि अयोग्य प्रतिग्रहीता को दान दे और न प्रतिग्रहीता को चाहिए कि उसे ग्रहण करे। मनु के कथन का इसी प्रकार अन्य स्मृतियों में भी प्रसंग प्राप्त होता है।[3] उपयुक्त पात्र को दान न देने से प्रतिग्रहीता अपने साथ दाता को भी नरकगामी बना देता है।[4] वेदपाठी एवं श्रोत्रिय को दान देने से अनन्त फल होता है। गौतमस्मृति में ऐसा प्रसंग मिलता है—

समद्विगुणसाहस्रानन्त्यानि फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः ॥[5]

मनु भी श्रोत्रिय तथा शीलाचार से युक्त ब्राह्मण को दान देने में अनन्त फल बताते हैं।[6] इसके अतिरिक्त दक्ष ने भी 'सहस्रगुणमाचार्ये'[7] कहकर श्रोत्रिय को दान देना श्रेष्ठ बतलाया है। वेदव्यास ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।[8] अतः इन सभी प्रसंगों से सोमेश्वर के 'श्रोत्रियाय' तथा 'पुराणवेदविदुषे' शब्द सार्थक हो जाते हैं।

सोमेश्वर ने जो प्रतिग्रहीता के लिए 'दरिद्रस्य' शब्द का प्रयोग किया है उसका भी प्रतिपादन मनु ने किया है। मनुस्मृति में ९ प्रकार के स्नातक ब्राह्मणों का वर्णन किया गया है जो दरिद्र हैं और अन्न, धन तथा यज्ञसम्बन्धी दान को ग्रहण करने में समर्थ हैं।[9] सोमेश्वर ने भी दरिद्र प्रतिग्रहीता को ही दान देना श्रेष्ठ बतलाया है। योग्य कुटुम्बी को भी दान देने का प्रसंग मानसोल्लास में प्राप्त होता है।

---

१. मनु० ४।१८८। २. वही ४।१९०।
३. याज्ञ० १।२००.२०२, वशि० ध० सू० ६।३२, उष्णस् १।५२१।
४. मनु० ४।१९२.१९४। ५. गौतम ५।१८।
६. सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे।
प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे॥ मनु० ७।८५।
७. दक्षस्मृति ३।२८। ८. वेद व्यास ४।४२।
९. मनु ११।१.३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दक्ष ने लिखा है कि अपने माता-पिता, गुरु, मित्र, शुद्ध चरत्र वाले, जिसने दाता पर कुछ कृतज्ञता का प्रदर्शन किया हो, दरिद्र, असहाय, जिनमें विशेष योग्यता हो ऐसे सुपात्रों को दान देने से फल प्राप्त होता है किन्तु कुपात्र को दान देने से दान निष्फल होता है।[1] इसमें सोमेश्वर द्वारा कथित प्रतिग्रहीता के सभी गुण आ गए हैं।

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने दान देने का फल बतलाया है और साथ ही साथ महादान को भगवान शंकर की तुष्टि का कारण माना है। अतएव भगवान शिव की प्रसन्नता के लिए महादान देना चाहिए। सोमेश्वर ने महादान शब्द का प्रयोग कर धन, सोना, रत्न, वस्त्र, शय्या, आसन, गज, अश्व, महिषी, गाय, बलीवर्द, गृह, ग्राम, भूमि, दासी, कन्या, अन्न, जल, तिल, औषधि, डरे हुए को अभयदान आदि देना उत्तम बतलाया है। इस महादान का प्रसंग अनेक धर्मग्रन्थों में उपलब्ध होता है। अग्निपुराण के—

कनकाश्वतिला नागा दासीरथमहीगृहाः।
कन्या च कपिलाधेनुर्महादानानि वै दश ॥[2]

इस प्रसंग से विदित होता है कि अग्निपुराण दस प्रकार के महादान मानता है जो क्रमशः सुवर्ण, अश्व, तिल, गज, दासी, रथ, भूमि, गृह, कन्या तथा कपिला गौ हैं। किन्तु मत्स्यपुराण में सोलह प्रकार के महादानों का उल्लेख हुआ है जो क्रमशः तुलापुरुष (किसी पुरुष को सोने से तोल कर फिर उस सोने को ब्राह्मणों को बांट देना), हिरण्यगर्भ, ब्रह्मांड, कल्पवृक्ष, गोसहस्र, कामधेनु (अथवा हिरण्य कामधेनु), हिरण्याश्व, हिरण्याश्वरथ (अथवा केवल अश्वरथ), हेमहस्तिरथ (अथवा केवल हस्तिरथ), पंचलांगल, धारादान (अथवा हेमधारादान), विश्वचक्र, कल्पलता (अथवा महाकल्प), सप्तसागर, रत्नधेनु तथा महाभूत घट हैं।[3]

---

१. मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि।
दीनानाथविशिष्टेषु दत्तं च सफलं भवेत् ॥
धूर्ते बन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे।
चाटुचारणचौरेषु दत्तं भवति निष्फलम् ॥ दक्ष ३।१७.१८।

२. अग्निपुराण २०९, २३.२४।

३. आद्यन्तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञितम्।
हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्मांडं तदनन्तरम् ॥
कल्पपादपदानं च गोसहस्रन्तु पंचमम्।
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च ॥
पंचलांगलकं तद्वद्धारादानन्तथैव च।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लिंगपुराण[1] में भी १६ प्रकार के महादानों का उल्लेख है किन्तु इनके नाम भिन्न हैं। 'महादानानि' शब्द का उल्लेख महाभारत के आश्रमवासी पर्व में हुआ है।[2] बाण ने केवल गोसहस्र को ही साधारणतः महादान के अन्तर्गत लिया है।[3]

इसके अतिरिक्त स्मृतियों में भी दान के लिए देय वस्तुओं में से कुछ को उत्तम, कुछ को मध्यम तथा कुछ को अधम बतलाया गया है। देवल के कथन को अपरार्क ने इन शब्दों में अपनी स्मृति में लिखा है—

अन्नं दधि मधु त्राणं गोभूरुक्माश्वहस्तिनः।
दानान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः॥
विद्या चाच्छादनं वास-परिभोगौषधानि च।
दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः॥
बहुत्वादर्थजातानां संख्या शेषेषु नेष्यते।
अधमान्यवशिष्टानि सर्वदानान्यतो विदुः॥[4]

किन्तु याज्ञवल्क्य ने तीन प्रकार की अलग-अलग देय वस्तुओं का प्रयोग करने के स्थान पर—

भूदीपांश्चान्नवस्त्राम्भस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान्।
नैवेशिकं स्वर्णधुर्यं दत्त्वा स्वर्गे महीयते॥[5]

कहकर भूमि, दीपक, अन्न, वस्त्र, तिल, घृत, विदेशी का आश्रय, कन्यादान, सुवर्ण तथा बलीवर्द इन सबके दान को स्वर्गप्राप्ति का हेतु बतलाया है अर्थात् संभवतः उनके अनुसार यह उत्तम दान अथवा महादान है। इसके अतिरिक्त—

हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा॥
द्वादशं विष्णुचक्रं च ततः कल्पलतात्मकम्।
सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च।
महाभूतघटस्तद्वत् षोडशः परिकीर्तितः॥ मत्स्य पु० २७४.२८९।

१. लिंगपुराण २।२८।

२. महाभारत आश्रमवासी पर्व ३।३१, १३।१५।

३. दीयमानानेकगोसहस्रशृंगखण्डचमान इवापलायत कलिः। महादान-विधानकलकलाभिद्रुता इव प्राद्रवन्नुपद्रवाः। हर्षचरित ३।११ पैरा।

४. अपरार्क पृ० २८९.९०। हेमाद्रि, दान० पृ० १६।

५. याज्ञवल्क्य स्मृ० १।२१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम् ।
यानं वृक्षं प्रियं शय्यां दत्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥[1]

कहकर गृह, धान्य, अभय-दान, जूता, छाता, माला, चन्दन आदि अनुलेपन, यान (रथ), वृक्ष, किसी प्रिय वस्तु तथा शय्या आदि के दान को अत्यन्त सुख-प्राप्ति का हेतु बतलाया है।

इन सब प्रकार के दानों में गो, भूमि तथा विद्या-दान (सरस्वती-दान) को अतिदान माना गया है,[2] ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है। मनुस्मृति के भी—

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥[3]

इस श्लोक से विद्या-दान सर्वश्रेष्ठ दान प्रतीत होता है। याज्ञवल्क्य ने भी—

सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः।
तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम् ॥[4]

कह कर वेद को सर्वधर्मरूप बतलाकर वेद-दान द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति बतलाई है। इसी प्रकार अन्य स्मृतियों[5] में भी प्रसंग प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार सोमेश्वर ने जिन वस्तुओं का दान देने का आदेश दिया है उनमें कांचन, रत्न, वस्त्र, गज, अश्व, महिषी, बलीवर्द, ग्राम, गृह, दासी, विभूषण, अन्न, तिल आदि वस्तुएं उत्तम तथा महादान के अन्तर्गत आ जाती हैं और रौप्य, शय्या, आसन, औषधि, जल, भीत को अभय-दान आदि मध्यम श्रेणी के दान हैं तथा गो, भूमि आदि अतिदान हैं।

सोमेश्वर ने महादानों को पूर्वोक्त[6] महापातकों का नाश करने वाला बतलाया है। इसके अतिरिक्त महादानों से महापुण्यफल की प्राप्ति होती है जैसे गौ का दान देने से स्वर्गरूपी महापुण्य फल की प्राप्ति होती है—

गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः।[7]

महादान देने से महादेव प्रसन्न होते हैं। महादेव की व्युत्पत्ति ब्रह्मवैवर्त पुराण में इस प्रकार दी है—

---

१. वही १।२११।

२. त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती।
अतिदानं हि दानानां विद्यादानं ततोऽधिकम् ॥ वशिष्ठ० २९।१९।
अतिदानानि सर्वाणि पृथिवीदानमुच्यते। अनुशासन० ६२।२।

३. मनु० ४।२३३। ४. याज्ञ० १।२१२।

५. अत्रि० ३४०, बृहस्पति १८, वशिष्ठ ध० सू० २९।१९।

६. देखिये पतितसंगवर्जनाध्याय। ७. अनुशासनपर्व ३३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ।
तेषां च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तितः ॥
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
तस्या देवः पूजितश्च महादेवः स च स्मृतः ॥[1]

उनकी महिमा का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

स्रष्टुं शक्तो हि नष्टुं च भ्रूभंगलीलया हि यः ।
ब्रह्मांडनिकरं योगान्न योगी शंकरात् परः ॥
दिव्यज्ञानेन यः स्रष्टुं नष्टुं, भ्रूभंगलीलया ।
मृत्युकालादिकं शक्तो न ज्ञानी शंकरात् परः ॥
मम भक्तिं च दास्यं च मुक्तिं च सर्वसम्पदम् ।
सर्वसिद्धिं दातुमीशो न दाता शंकरात् परः ॥[2]

अन्त में सोमेश्वर ने कहा है कि संसार में जिसको जो अभीष्ट है तथा अपने घर में जो सुख है वह सब विद्वान को देना चाहिए। इससे अक्षय फल की प्राप्ति होती है—

यद् यस्याभिमतं लोके यत् सुखं निजमन्दिरे ।
तत् सर्वं विदुषे देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥

प्रिय वचन

सोमेश्वर ने एक यशस्वी राजा के लिए मधुर एवं प्रिय भाषण अत्यन्तावश्यक बतलाया है। इतनी बड़ी जनता पर राज्य करने के कारण राजा को सभी प्रकार के व्यक्तियों से मिलना पड़ता है। यदि राजा मधुरभाषी न होगा तो व्यक्तियों के हृदय पर विजय प्राप्त करना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। इसी कारण सोमेश्वर ने लिखा है—ऋतपूर्ण वचन एवं सत्य वचन बोले किन्तु यदि कोई अप्रिय वाणी हितकारी भी हो तो उसे न बोले और न कोई अनृतपूर्ण प्रिय वाणी ही बोले, यही सनातन धर्म है--

ऋतं वाच्यं प्रियं वाच्यं न वाच्यं हितमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं वाच्यमेष धर्मः सनातनः ॥[3]

सोमेश्वर का यह कथन अक्षरशः मनुस्मृति की निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है—

१. ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिखंड-अध्याय ५३ ।
२. ब्रह्मवैवर्त श्रीकृष्णजन्म खंड अध्याय ३६ ।
३. मानसोल्लास १।१०।६४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥[1]

सोमेश्वर ने सम्भवतः इसी श्लोक का अनुकरण किया है। प्रथम पंक्ति में 'सत्यं' के स्थान पर 'ऋतं' तथा 'हितम्' का प्रयोग किया है और 'ब्रूयात्' के स्थान पर 'वाच्यम्' का। दूसरी पंक्ति में तो केवल 'ब्रूयात्' और 'वाच्यम्' शब्दों का भेद है।

सोमेश्वर ने जो 'ऋत' शब्द का प्रयोग किया है उसको वैदिक काल से ही बड़ा महत्व प्रदान किया गया है। वैदिक साहित्य में ऋत शब्द का विशेष रूप से तीन अर्थों में प्रयोग हुआ है--सत्य, पाश एवं यज्ञादि की शुद्धता तथा क्रम के रूप में।[2] इन्हीं तीनों के ऊपर वरुण देवता का नियन्त्रण है। इसी कारण वरुण ऋत के देवता माने गए हैं।[3] उसी ऋत का प्रयोग सोमेश्वर ने सम्भवतः सत्य के अर्थ में किया है। आगे उन्होंने कहा भी है—

हितं ब्रूयान्मितं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् सदर्थवत्।
एवं वदति यो नित्यं स लोके पूज्यते बुधैः ॥[4]

अर्थात् सदैव हितकारी, प्रिय एवं अर्थपूर्ण वाणी बोलनी चाहिए, कटु एवं अहितकर वाणी न बोलनी चाहिए क्योंकि जो इस प्रकार से विचार कर वाणी बोलता है वही विद्वानों के द्वारा इस लोक में पूजा जाता है। राजा जनता के हित के लिए ही बनाया जाता है, इसी कारण उसे सदैव ही हितकारी वाणी बोलनी चाहिए किन्तु साथ ही साथ उसे मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए। अहितकारी वाणी राजा को कदापि नहीं बोलनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार करने पर राजा प्रजा के हृदय में कभी स्थान प्राप्त नहीं कर सकता। किन्तु अच्छी, हितकारी तथा मधुर वाणी बोलने पर वह राजा विद्वानों द्वारा इस लोक में तो पूजा ही जाता है किन्तु स्वर्ग में देवताओं द्वारा भी उसकी सराहना एवं प्रशंसा की जाती है। इसी कारण जो सर्वदा प्रिय वाणी का प्रयोग करता है वही दोनों लोकों में विद्वान है—

बुधैस्तु पूज्यते भूमौ विबुधैः पूज्यते दिवि।
लोकद्वयबुधः स स्याद् यः प्रियं वक्ति सर्वदा ॥[5]

सरल, मधुर एवं हितकारी वाणी वैसे भी सभी के हृदय को मोहित कर

१. मनु० ४।१३८।
२. Ghate—Lectures on Ṛgveda P. 144.
३. खाऋतस्न। ऋग्वेद २।२८।५।
४. मानसोल्लास १।१०।६५। ५. वही १।१०।६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लेती है। धर्मशास्त्रों में भी मधुर एवं हितकारी वाणी की प्रशंसा की गई है। मनु का कहना है कि सदा 'अच्छा' 'बहुत अच्छा' कहे अथवा केवल 'अच्छा' ही कहे किन्तु व्यर्थ में किसी से झगड़ा व बैर न करे—

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद् भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित्सह ॥[1]

मानसोल्लास के उपर्युक्त प्रसंग इस बात को प्रकट करते हैं कि सोमेश्वर बड़ा ही प्रभावशाली एवं यशस्वी राजा था। सम्पूर्ण प्रजा के हृदय में उसके लिए महान् स्थान था।

इष्टापूर्त

हेमचन्द्र के अनुसार इष्टापूर्त का अर्थ 'यज्ञखातादिकर्म' है। अपरार्क ने महाभारत का उद्धरण देते हुए इष्ट तथा पूर्त की परिभाषा इस प्रकार दी है कि जो कुछ भी एकाग्नि अथवा गृह्याग्नि में हवन किया जाता है, जो तीन श्रौताग्नि में हवन किया जाता है तथा श्रौत यज्ञों में वेदी के अन्दर जो कुछ दान दिया जाता है वह इष्ट है। इसके अतिरिक्त वापी, कूप, तडागादि खुदवाना, अन्नदान, उद्यानादि का निर्माण पूर्त कहलाता है—

एकाग्निकर्म हवनं त्रेतायां यच्च हूयते।
अन्तर्वेद्यां च यद्दानमिष्टमित्यभिधीयते ॥ (महाभारत)
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥[2]

इसके आगे नारद का उद्धरण देते हुए अपरार्क ने आतिथ्य तथा वैश्वदेव को इष्ट के अन्तर्गत तथा पुष्करिणी, वापी, देवालय, अन्नप्रदान, आरामादि का निर्माण पूर्त के अन्तर्गत किया है—

आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते।
पुष्करिण्यस्तथा वाप्यो देवतायतनानि च ॥
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते।[3]

अत्रि[4] ने अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदपालन, आतिथ्य तथा वैश्वदेव को इष्ट माना है—

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥

१. मनुस्मृति ४,१३९। २. अपरार्क, पृ० २९०।
३. वही। ४. अत्रि सं० ४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लिखितसंहिता[1] में भी इसी प्रकार की परिभाषा मिलती है। यम[2] और अग्निपुराण[3] ने इष्ट और पूर्त की परिभाषा अत्रि के ही शब्दों में दी है।

दान के साथ ही साथ यज्ञ करना तथा अपनी प्रजा की रक्षा के लिए अन्य साधन जुटाना भी एक योग्य राजा का परम धर्म है। सोमेश्वर देव ने इष्टापूर्त का उल्लेख कर राजाओं को उनके कर्त्तव्यों का ज्ञान करवाया है। इष्टापूर्त बहुत प्राचीन शब्द है। इसका प्रसंग ऋग्वेद में मनुष्य द्वारा किए गए सत्कार्यों तथा यज्ञों द्वारा प्राप्त उत्तम तथा आध्यात्मिक फल के रूप में प्राप्त होता है—

संगच्छस्व पितृभिः संयमेन इष्टापूर्तेन परमेव्योमन्।[4]

यहां पर एक मृत आत्मा को पितरों से तथा यम से मिलकर अपने किए हुए इष्टापूर्त से स्वर्ग में निवास करने के लिए सम्बोधित किया गया है। इसी प्रकार का एक प्रसंग अथर्ववेद में भी प्राप्त होता है—

इष्टापूर्तं कर्मासुनः पितृणाममुंददे हरसादैव्येन॥[5]

इसमें भी पितरों के इष्टापूर्त द्वारा शत्रुओं से रक्षा करवाने का प्रसंग प्राप्त होता है।

वेदों की ही भांति ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इष्टापूर्त के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस प्रकार का मन्त्र प्राप्त होता है—

इष्टं पूर्तंशश्वतीनां समानां शाश्वतेन हविषेष्ट्वानन्तं लोकं परमारुरोह[6]।

जिसके द्वारा इष्टापूर्त कर्म के फल का वर्षों तक अन्त न होने के लिए प्रार्थना की गई है। वास्तव में इष्टापूर्त ब्राह्मणों के लिए ही होता है क्योंकि इसके द्वारा ब्राह्मण राजा को एक योग्य एवं सफल राजा बना देता है।[7]

इष्ट के द्वारा व्यक्ति देवलोक को प्राप्त करता है तथा पूर्त के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।[8] द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) को इष्ट तथा पूर्त दोनों प्रकार के कर्मों को करने का पूर्ण अधिकार है किन्तु शूद्र केवल पूर्त (तडाग, बावली, वापी आदि बनवाना) कर्म ही कर सकता है। उसे वैदिक यज्ञादि (इष्ट) करने का अधिकार नहीं है।[9] मनु ने भी इष्ट तथा पूर्त दोनों कर्मों का उचित रूप से पालन करने का आदेश दिया है—

---

१. लिखित० ५।
२. यम० ६८.७०।
३. अग्नि पु० २०९।२.३।
४. ऋग्वेद १०।१४।८।
५. अथर्ववेद २।१२।४।
६. तै० ब्रा० २।५।५।
७. वही ३।९।१४।
८. लिखित० १।
९. लिखित० ६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः॥[1]

सोमेश्वर देव ने भी अपने मानसोल्लास में इष्टापूर्त के अध्याय में इष्ट के अन्तर्गत यज्ञ तथा अग्निहोत्रादि एवं अग्नि के पूजन को माना है। अग्निहोत्र के अन्तर्गत नृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ तथा पितृयज्ञ इन पांच महायज्ञों के करने का आदेश दिया है।[2] किन्तु उन्होंने प्रातः, मध्याह्न तथा सायं होम के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर देव का कथन है कि ज्योतिष्टोम आदि से लेकर वाजिमेध तक के यज्ञों को क्रमशः यथोक्त विधि के अनुसार शरत्काल तथा वसन्तकाल में करना चाहिए,[3] किन्तु इन यज्ञों के विषय में उन्होंने कुछ अधिक प्रकाश नहीं डाला। इसके बाद उन्होंने यज्ञ में अन्नादि का उपभोग न कराने से राष्ट्र का, मंत्र उच्चारण न होने से ऋत्विक् का, दान से हीन यज्ञ के द्वारा यजमान तथा मुख्य ऋत्विक का नाश होना बतलाया है।[4] मानसोल्लास के प्रसंगों से विदित होता है कि उस समय वैदिक यज्ञों की परम्परा की ओर लोगों की रुचि कम हो रही थी। अयुत, लक्ष तथा कोटि होम भी शान्ति कर्म अथवा शान्ति करने के लिए करने चाहिए, चाहे उन्हें स्वयं करे अथवा शुभ इच्छा से किसी मुख्य ब्राह्मण से करवाए।[5]

इष्ट के पश्चात् राजा के पूर्त सम्बन्धी कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसके अन्तर्गत सोमेश्वर ने कूप, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, तड़ाग आदि बनवाने का आदेश दिया है और उन सभी के लक्षणों को स्पष्ट किया है, यथा—द्वारहीन जल का संग्रह कूप, एक द्वारवाला वापी, एक भी द्वार न होने पर पुष्करिणी, दीर्घ आकारवाली होने पर दीर्घिका, तथा जल से पूर्ण तडाग होता है।[6]

सोमेश्वर का कथन है कि जो विधिपूर्वक इष्ट और पूर्त करता है वह दोनों लोकों में शुभ फल को देनेवाली परम सिद्धि को प्राप्त करता है। महाभारत के

---

१. मनु० ४।२२६.२२७।

२. नृयज्ञं ब्रह्मयज्ञं च देवयज्ञमतः परम्।
भूतयज्ञं पितृयज्ञं पंच यज्ञान् प्रवर्तयेत्॥ मानसोल्लास १।११।६७।

३. ज्योतिष्टोमादिकान् यज्ञान् वाजिमेधावधिस्थितान्।
शरत्काले वसन्ते च यथोक्तविधिना चरेत्॥ वही १।११।६८।

४. वही १।११।६९। ५. वही १।११।७०।

६. वही १।११।७१.७२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कथनानुसार इष्टापूर्त का फल अवश्य होता है। यदि ऐसा न हो तो न कोई गुरु हो न कोई शिष्य—

इष्टापूर्तफलं न स्यात् न शिष्यो न गुरुर्भवेत्।[1]

अशेष-देवता-भक्ति

सोमेश्वर ने राजा के लिए अपने इष्टदेव के अतिरिक्त अन्य देवों की भी भक्ति करने का आदेश दिया है। इष्टदेव को स्वच्छ जल से अर्घ्य तथा पाद्य देकर मधुपर्क तैयार करे तथा उपयुक्त द्रव्यों से आचमन एवं स्नान करावे—

अर्घ्यं पाद्यं शुभैस्तोयैर्मधुपर्कं च कल्पयेत्।
तथैवाचमनं स्नानं तत्तद्द्रव्यसमायुतम्॥[3]

मत्स्यपुराण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि जलपूर्ण पात्र से अर्घ्य देते समय दधि, अक्षत, कुश के सिरे, दुग्ध, दूब, मधु, जौ तथा सफेद सरसों इन आठ पदार्थों में से समस्त अथवा जितने पदार्थ यथाशक्ति जुटा सके, मिलाना चाहिए।[4] साथ ही यह भी प्रसंग मिलता है कि विष्णु की मूर्ति को शंख से अर्घ्य देना चाहिए और जल में चन्दन, पुष्प तथा अक्षत मिलाना चाहिए। विष्णुधर्मसूत्र[5] के अनुसार देवपूजा के निमित्त जल एक रात्रि से पूर्व का नहीं लाना चाहिए अर्थात् वह उसी दिन का होना चाहिए। आचमन के लिए प्रयुक्त जल में लौंग, उशीर, कक्कोलादि मिलाना चाहिए। मूर्तियों के स्नान के लिए दुग्ध, दधि, घृत, मधु तथा शक्कर ये पांच द्रव्य अथवा पंचामृत इसी क्रम से मिलाना चाहिए—

क्षीरेण पूर्वं कुर्वीत दध्ना पश्चाद् घृतेन च।
मधुना चाथ खंडेन क्रमो ज्ञेयो विचक्षणैः॥[6]

इसके पश्चात् इष्ट देवता का मन्त्र ध्यान, जप, होम, मुद्रा तथा विविध प्रकार से अर्चन करके अष्टांग नमस्कार एवं स्तुति करके तब उनका विसर्जन करने का आदेश दिया है।

मन्त्रैर्ध्यानैर्जपैर्होमैर्मुद्राभिर्विविधार्चनैः।

---

१. महाभारत ३।३२।३०।
२. मधुपर्क के सम्बन्ध में संस्कारप्रकरण में उल्लेख हो चुका है।
३. मानसोल्लास १।१२।१०२। ४. मत्स्यपुराण २६७।२।
५. वि० ध० सू० ६६।१।
६. पूजाप्रकाश, पृ० ३४ नृसिंह पुराण का उद्धरण।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अष्टांगपूर्वकं भक्त्या नत्वा स्तुत्वा विसर्जयेत् ॥[1]

देवता को नमस्कार दो प्रकार से किया जाता है अष्टांगविधि द्वारा अथवा पंचांगविधि द्वारा। अष्टांगविधि में भक्त मूर्ति के सामने जमीन पर इस प्रकार लेट जाता है कि उसकी हथेलियां, पैर, घुटने, सोना तथा मस्तक पृथ्वी का स्पर्श करते हैं और मन, वाणी तथा नेत्र मूर्ति पर केन्द्रित होते हैं। पंचांग नमस्कार में भक्त अपने हाथ, पैर तथा सिर से लेट जाता है—

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा।
मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टांग ईरितः ॥[2]
पद्भ्यां कराभ्यां शिरसा पंचांगा प्रणतिः स्मृता ॥[3]

इस प्रकार के पूजन द्वारा अथवा प्रसन्नचित्त होकर जो अपने इष्ट देव का पूजन करता है वह उस पूजा के द्वारा अत्यन्त विशाल राज्य को प्राप्त करता है। इसमें संशय नहीं—

एवं यः पूजयेद् देवमिष्टं हृष्टमना नरः।
स प्राप्नोति महद्राज्यं पूजया नात्र संशयः ॥[4]

इस प्रकार सोमेश्वर महाराज ने इष्टदेव के पूजन के विषय में जो लिखा है उसे प्रत्येक राजा को करना चाहिए, किन्तु इष्टदेव के अतिरिक्त राजा को अन्य देवों की भी पूजा एवं श्रद्धापूर्वक नमस्कार करना चाहिए। अन्य देवताओं से भी राजा को द्वेष तथा उनकी निन्दा आदि नहीं करनी चाहिए। प्रत्येक देव तथा देवकुल (मंदिर आदि) को देखकर उसी क्षण उन्हें नमस्कार करना चाहिए, उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए—

अन्येषामपि देवानां निन्दां द्वेषं च वर्जयेत्।
देवं देवकुलं दृष्ट्वा नमस्कुर्यान्न लंघयेत् ॥[5]

जो राजा यह करता है वह समगति को प्राप्त होता है और सभी देवताओं के प्रसाद से श्रेष्ठ सम्पत्ति को प्राप्त करता है—

एवं य आस्तिकं भावमाश्रितः समतां गतः।
सर्वदेवप्रसादेन लभते सम्पदं वराम् ॥[6]

हमारे धर्मग्रन्थों में भी ऐसा आदेश दिया गया है कि प्रत्येक धर्म को आदर की दृष्टि से देखना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपने धर्म का आदर कर

---

१. मानसोल्लास १।१२।१०३। २. पूजाप्रकाश पृ० ८८।
३. वही। ४. मानसोल्लास १।१२।१०४।
५. वही १।१२।१०५। ६. वही १।१२।१०६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी अन्य धर्म को हीनता की दृष्टि से देखता है तो वह धर्म उसे नष्ट कर देता है। "धर्म एवं हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" वाली किंवदन्ती इन देवताओं के सम्बन्ध में भी लागू है। इसी कारण सभी देवताओं को श्रद्धा की दृष्टि से नमस्कार करना प्रत्येक राजा के लिए आवश्यक बतलाया है। किसी भी धर्म एवं देवता का अनादर करने वाला व्यक्ति नास्तिक माना जाता है और मनु ने ऐसे व्यक्ति को नास्तिक कह कर निन्दा की है। हमारे धर्मशास्त्रों में राजा दैवी शक्तियों की विभूति माना गया है। अतः राजा के लिए किसी भी देवता का अनादर करना शोभा नहीं देता। इसके अतिरिक्त राजा विशाल राज्य का स्वामी होता है। उसका कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए उसे सभी देवी-देवताओं की कृपा की आकांक्षा रहती है। थोड़ा सा अनिष्ट होने पर सम्पूर्ण राज्य के नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। इसी कारण राजा को सब देवताओं की स्तुति करनी आवश्यक है।

गो-विप्र-तर्पण

मानसोल्लास में अशेष-देवता-भक्ति के पश्चात् गो-विप्र-तर्पण का वर्णन है जिसमें महाराज सोमेश्वर ने धर्म में लिप्सा बनाये रखने के लिए दाता को अपनी तथा दूसरों की गौ को सदैव ग्रास देने का आदेश दिया है। इस कार्य से विष्णु भगवान अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। गो का महत्व तो हमारी भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत प्रसिद्ध ही है। धर्मग्रन्थ गो के अंग-प्रत्यंग में सब देवताओं का निवासस्थान बतलाते हैं—

पृष्ठे ब्रह्मा गले विष्णुर्मुखे रुद्रः प्रतिष्ठितः।
मध्ये देवगणाः सर्वे रोमकूपे महर्षयः॥
नागाः पुच्छे खुराग्रेषु ये चाष्टौ कुलपर्वताः।
मूत्रे गंगादयो नद्यो नेत्रयोः शशिभास्करौ॥
येन यस्यास्तनौ वेदाः सा धेनुर्वरदास्तु मे।

गो को "माता रुद्राणां दुहिता वसूनां…" आदि कहकर सभी देवताओं से उसका सम्बन्ध जोड़ा गया है।[१] उसे "अघ्न्या इति गवां नाम क एनां हन्तुमर्हति"[२] कह कर उसके वध का निषेध किया है। प्रजापति ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा तथा भगवान शिव ने भी गो की इस प्रकार स्तुति की है—

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्।

---

१. पा० गृ० सू० १।३।४। २. महाभारत अनुशासन पर्व।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे ॥[1]

वेदों में तो "एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्" कहकर गो के विश्वरूप का वर्णन किया गया है।

गो वास्तव में बड़ी ही पवित्र है, वही यज्ञ का कारण भी है क्योंकि यज्ञ के समय अग्नि में जो आहुतियां दी जाती हैं उनकी देने वाली मूल कारण गो ही है। इसी कारण गाय 'हविर्दुघा' नाम से भी विभूषित की गई है। उसके गोबर तथा मूत्र से यज्ञवेदी स्वच्छ की जाती है, कंडे द्वारा अग्नि प्रज्वलित की जाती है तथा गाय के दुग्ध, दधि, घृत, गोबर तथा गोमूत्र से बना हुआ पंचगव्य का प्राशन यज्ञ में यजमान की शुद्धि के लिए आवश्यक होता है।

गाय की समता करने वाला संसार में अन्य कोई दूसरा धन नहीं है। महाभारत में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि गाय के कीर्तन, श्रवण, दान तथा दर्शन आदि से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।[2] इसी कारण गौ की सेवा पर धर्मशास्त्रों में विशेष बल दिया गया है। भगवान श्रीकृष्ण तो गो-पालक थे ही। उन्होंने—

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

कहकर अपने को गोमय ही बताया है। ऐसी गाय की सेवा करने से सभी सुख व्यक्ति को प्राप्त हो जाते हैं। गोसेवा के विषय में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

तीर्थस्थानेषु यत् पुण्यं यत् पुण्यं विप्रभोजने।
यत् पुण्यं च महादाने यत् पुण्यं हरिसेवने ॥
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च।
भूमिपर्यटने यत्तु सत्यवाक्येषु यद्भवेत् ॥
तत् पुण्यं प्राप्यते सद्यः केवलं धेनुसेवया।

गो की सेवा करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। गाय के प्रसाद से पुत्र की प्राप्ति भी होती है। इक्ष्वाकु वंश के राजा दिलीप को कामधेनु-सुता नन्दिनी की सेवा से ही पुत्र की प्राप्ति हुई थी। प्रारम्भ से ही सभी राजा विशेष रूप से गो-सेवा तथा अपने लाभ के लिए गोदान करते थे। श्री रामचन्द्र जी ने स्वयं एक खरब गौएं दान दी थीं।[3] जिसके राज्य में गौएं सुखी होती थीं तथा संख्या में अधिक होती थीं वही राजा कहलाता था। गो को जो व्यक्ति संतुष्ट नहीं करते वे नरकगामी होते हैं—"यद्गृहे दुखिता गावः स याति नरकं नरः"। इस प्रकार

---

१. स्कन्द-ब्रह्म-धर्मारण्य १०।१८।　　२. महाभारत अनुशासन पर्व।
३. वा० रा० १।१।९४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की पवित्र गाय को रसोई में बनते हुए अन्न का प्रथम ग्रास पुरोडाश के रूप में दिया जाता है। इसी का समर्थन सोमेश्वर ने भी किया है।[1] सोमेश्वर की पंक्तियां गायों के प्रति उनकी श्रद्धा को तथा गायों के प्रति उनके आदर एवं सेवाभाव को प्रकट करती हैं।

गौ के महत्व के साथ ही साथ सोमेश्वरदेव ब्राह्मणों के भी महत्व को नहीं भूले हैं। ब्राह्मणों के महत्व को प्रदर्शित करते हुए वे कहते हैं कि जो दान के द्वारा, मधुर वाक्यों तथा सम्मान द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण को सन्तुष्ट करता है वह व्यक्ति परम पद को प्राप्त करता है।[2] इससे विदित होता है कि सोमेश्वर के समय में वर्ण-व्यवस्था बड़ी ही सुव्यवस्थित थी। ब्राह्मणों का क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी वर्ण-आदर करते थे और उन्हें सब प्रकार से तुष्ट करने का प्रयत्न करते थे। ब्राह्मणों का महत्व भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही माना गया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में ब्राह्मण की उत्पत्ति विश्वपुरुष के मुख से मानी गई है। पुरुष का नाभि के ऊपर का भाग पवित्रतर कहा गया है और मुख प्रदेश तो उससे भी अधिक पवित्र है क्योंकि मनुस्मृति में इस प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है—

ऊर्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः।
तस्मान्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा॥[3]

इसी कारण ब्रह्मा के उत्तम अंग मुख से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण को धर्म से सम्पूर्ण ससार का प्रभु माना है।[4] पुराणों में भी सृष्टि-रचना के प्रकरण में वेद, अग्नि, गाय तथा ब्राह्मण की ही रचना सर्वप्रथम इस संसार में बतलाई गई है और ब्राह्मण वास्तव में समाज के आध्यात्मिक पक्ष के कर्णधार हैं।
महर्षि वेदव्यास का भी कथन है—

दुर्वेदा वा सुवेदा वा प्राकृताः संस्कृतास्तथा।
ब्राह्मणा नावमन्तव्या भस्मच्छन्ना इवाग्नयः॥

अर्थात् ब्राह्मण किसी प्रकार का भी क्यों न हो उसका अपमान कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि वे भस्म से आच्छादित अग्नि के समान होते हैं।

पवित्रता के कारण ब्राह्मणों में संतपनाग्नि की प्रधानता रहती है और उन्हें

---

१. मानसोल्लास १।१३।१०७।
२. दानेन प्रियवाक्येन सम्मानेन द्विजोत्तमान्।
तोषयेत्सर्वभावेन तेनाप्नोति परं पदम्॥ वही १।१३।१०८।
३. मनु० १।९२।
४. उत्तमांगोद्भवाज्ज्यैष्ठयाद् ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः॥ १।९३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भोजन करवा कर, दान देकर संतुष्ट कर देने पर उनकी वह अग्नि शान्त हो जाती है, इससे उस व्यक्ति के किए गए सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण प्रत्येक अवसर पर ब्राह्मण को ही भोजन करवाने का विधान हमारे धर्मशास्त्रों में दिया गया है। मनु ने ब्राह्मण का संसार में उत्पन्न होना ही श्रेष्ठ बताया है और सम्पूर्ण संसार के पदार्थ उसी के माने हैं। उसी ब्रह्मोत्पत्ति रूप श्रेष्ठता के कारण ब्राह्मण प्रत्येक वर्ण से प्रत्येक वस्तु ग्रहण करने का अधिकारी है।[1] ब्राह्मण कभी किसी अवस्था में भी अपवित्र नहीं होता—

यथा श्मशाने दीप्तौजाः पावको नैव दुष्यति।
एवं विद्वानविद्वान् वा ब्राह्मणो दैवतं महत्॥

इसी कारण ब्राह्मण के अपमान को महान् पाप माना गया है। प्राचीन काल से ही राजा लोग ब्राह्मणों का महान आदर करते आए हैं। महाभारत[2] में नीतिज्ञ विदुर जी ने धृतराष्ट्र को राष्ट्र के नाश के आठ निमित्त बतलाकर उनसे बचने का उपदेश दिया है। ये निमित्त ब्राह्मणों से द्वेष करना, उनसे विरोध करना आदि हैं। इसके अतिरिक्त "क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्" भी ब्राह्मण द्वारा राष्ट्र के नाश को सिद्ध करता है। ब्राह्मण वास्तव में क्रोध द्वारा ही हानि पहुँचाते हैं। महाभारत इस बात को स्पष्ट करता है—

मन्युप्रहरणा विप्रा न विप्राः शस्त्रयोधिनः।
निहन्युर्मन्युना विप्रा वज्रपाणिरिवासुरान्॥

ब्राह्मणों का अपमान करके ही वातापि महादैत्य ब्रह्मदंड द्वारा मारा गया।

इसी प्रकार सोमेश्वर भी ब्रह्मप्रसाद को परमपद की प्राप्ति का कारण मानते हैं। वे ब्राह्मणों का बड़ा आदर करते थे।

---

१. ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये॥
सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम्।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति॥ मनु० १।९९–१००।

२. अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्चविरुध्यते॥
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति॥
नैनान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति।
एतान् दोषान्नरः प्राज्ञो बुध्येद् बुद्ध्वा विसर्जयेत्॥ महाभारत।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पितृ-तर्पण

सोमेश्वर ने अन्य सभी प्रसंगों के साथ पितृ-तर्पण पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला है और पितृ-तर्पण गृहस्थ के लिए अत्यन्त आवश्यक कार्य बतलाया है। इसके करने का विधान मानसोल्लास में इस प्रकार वर्णित है कि तिल से मिश्रित जल द्वारा पितरों का आवाहन करते हुए श्राद्ध करना चाहिए और गो के दुग्ध से बनी हुई मधुर खीर अथवा मांस, घृत, मधु एवं अन्य प्रकार के बने हुए सुन्दर अन्न द्वारा उनको भक्षण कराना चाहिए।[1] तत्पश्चात् पितरों को सम्बोधित करते हुए मुख्य ब्राह्मणों को श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर संतुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को श्रद्धा से पवित्र हुए मन से श्राद्ध करना चाहिए। सोमेश्वर महाराज ने पितरों को सम्बोधित करते हुए श्रद्धा-पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराने को ही श्राद्ध कहा है—

भोजयेद् द्विजमुख्यांश्च पितॄनुद्दिश्य भक्तितः।
श्रद्धा पूतेन चित्तेन श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः॥[2]

इसी प्रकार की श्राद्ध की परिभाषा ब्रह्मपुराण में भी दी गई है—

देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्।
पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्॥

अर्थात् देश, काल अथवा पात्र में विधिपूर्वक श्रद्धा से पितरों को सम्बोधित करते हुए जो ब्राह्मणों को भोजनादि दिया जाता है वही श्राद्ध है। याज्ञवल्क्य ने भी श्राद्ध का जो वर्णन याज्ञवल्क्य-स्मृति[3] में किया है उस पर मिताक्षरा की टीका में इस प्रकार लिखा है—

श्राद्धं नामादीयस्य तत्स्थानीयस्य वा द्रव्यस्य प्रेतोद्देशेन श्रद्धया त्यागः।[4]

इस प्रकार से सभी धर्मशास्त्रों में श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराना अथवा पितरों को सम्बोधित करते हुए ब्राह्मणों को द्रव्य देना ही श्राद्ध माना है।

श्राद्ध की परिभाषा के अतिरिक्त श्राद्ध में प्रयुक्त होने वाली सामग्री के विषय में भी सोमेश्वर ने विशेष रूप से वर्णन किया है। मानसोल्लास में तिलमिश्रित जल का वर्णन हुआ है। श्राद्ध में प्रयुक्त जल के विषय में मार्कण्डेय-पुराण में इस प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है—

दुर्गन्धि फेनिलं चाम्बु तथैवाल्पतरोदकम्।

---

१. मानसोल्लास १।१४।१०९.१०। २. वही १।१४।१११।
३. याज्ञवल्क्य स्मृति १।२१७।
४. मिताक्षरा टीका, याज्ञ० स्मृ० १।२१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् ॥
यन्न सर्वार्थमुत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम् ।
तद् वर्ज्यं सलिलं तात सदैव पितृकर्मणि ॥[1]

इसी प्रकार के प्रसंग वायु,[2] विष्णु[3] तथा ब्रह्मांड पुराण[4] में भी प्राप्त होते हैं। सोमेश्वर ने जो तिल, दुग्ध, पायस, घृत, तथा मांस आदि का वर्णन किया है इनके प्रसंग और भी अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं। विष्णुधर्मसूत्र में—

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलैः शाकैः श्यामाकैः ।
पियंगुभिर्नीवारैर्मुद्गैर्गोधूमैश्च मासं प्रीयन्ते ॥[5]

मार्कण्डेय पुराण[6] में भी उन वस्तुओं की सूची प्राप्त होती है जिनका प्रयोग श्राद्ध में होता है—

राजश्यामाकश्यामाकौ तद्वच्चैव प्रशासिका ।
नीवाराः पौष्कराश्चैव वन्यानि पितृतृप्तये ॥
यवव्रीहिसगोधूमतिलमुद्गाः ससर्षपाः ।
पियंगुः कोद्रवाश्चैव निष्पावाश्चातिशोभनाः ॥[7]

इनमें से बहुत सी वस्तुओं के नाम सोमेश्वर ने मानसोल्लास में नहीं गिनाए हैं। सोमेश्वर ने दुग्ध के लिए "गव्यक्षीरसमुत्पन्नैः"[8] शब्द का प्रयोग किया है। मनु ने—

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ।[9]

तथा याज्ञवल्क्य ने "हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्"[10] कहकर गौ के दुग्ध अथवा गौ के दुग्ध में बनी हुई खीर का ही आदेश दिया है। ब्रह्मपुराण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

माहिषं चामरं मार्गमाविकैकशफोद्भवम् ।
स्त्रैणमौष्ट्रमाविकं च दधिक्षीरं घृतं त्यजेत् ॥[11]

---

१. मार्कण्डेय पुराण २९।१५.१७ । २. वायु पुराण ७८।१६ ।
३. विष्णु पुराण ३।१६।१० ।
४. ब्रह्मांड पुराण । उपोद्घातपाद १४।२६ ।
५. विष्णुधर्मसूत्र ८०।१ । ६. मार्कण्डेय पुराण २९।९.११ ।
७. वही २९।९.११ । ८. मानसोल्लास १।१०९ ।
९. मनुस्मृति ३।२७१ । १०. याज्ञवल्क्य १।२५८ ।
११. ब्रह्मपुराण २२०।१६९ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसी प्रकार के प्रसंग मार्कण्डेय,[१] वायु[२] तथा विष्णुपुराण[३] में भी प्राप्त होते हैं।

सोमेश्वर ने मांस के प्रयोग में भी सम्भवतः धर्मशास्त्रों का ही आश्रय ग्रहण किया है, किन्तु मांस के अतिरिक्त उन्होंने विशेष पशुओं के नाम नहीं गिनाये हैं जिनके मांस का प्रयोग श्राद्ध में होता था। मनु ने तिल, व्रीहि आदि के साथ मांस का भी वर्णन किया है—

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा।
दत्तेन मासं तुष्यन्ति विधिवत्पितरो नृणाम्॥[४]

किन्तु इसके अतिरिक्त मनु[५] ने अनेक प्रकार के पशुओं के मांस द्वारा पितरों की तृप्ति का वर्णन किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति[६] में भी विस्तारपूर्वक मृग, शश, महाशल्क, मत्स्य, उरभ्र, आदि अनेक प्रकार के पशुओं के मांस द्वारा पितरों की संतुष्टि का आदेश दिया गया है। इसके अतिरिक्त कूर्म,[७] वायु,[८] मत्स्य,[९] वष्णु,[१०] पद्म[११] ब्रह्म[१२] आदि पुराणों में भी श्राद्ध में प्रयुक्त हुए मांस की सूची प्राप्त होती है।

इस प्रकार के श्राद्ध को करने के साथ ही साथ उसके फल पर भी सोमेश्वर ने विशेष रूप से प्रकाश डाला है। इस प्रकार के श्राद्ध को उन्होंने सन्तान-वृद्धि करने वाला एवं विशाल राज्य का देने वाला माना है। इसके अतिरक्त पितरों की कृपा से श्राद्ध करने वाला व्यक्ति जो भी मन में इच्छा करता है वह इच्छा उसकी पूर्ण होती है और किसी प्रकार की इच्छा न करने पर परम गति को प्राप्त करता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।[१३]
स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा।
पुत्रं श्रेष्ठं च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम्॥
... ...
अरोगित्वं यशोवीतशोकतां परमां गतिम्॥[१४]

---

१. मार्कण्डेय पुराण ३२।१७.१९।
२. वायु पुराण ७८।१७।
३. विष्णु पुराण ३।१६।११।
४. मनुस्मृति ३।२६७।
५. वही ३।२६७-२७२।
६. याज्ञ० १।२५८-२६०।
७. कूर्म पुराण २।२०।४०.४२, २।२१।२.८।
८. वायु पुराण ८३।३९।
९. मत्स्य १७।३१.३५।
१०. विष्णु पुराण ३।१६।१.३।
११. पद्म० सृष्टि० ९।१५८.१६४।
१२. ब्रह्म० २२०।२३.२९।
१३. याज्ञ० १।२४६।
१४. याज्ञ० १।२६५.२६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहकर श्राद्ध को सन्तति की वृद्धि, स्वर्ग की प्राप्ति, शौर्य, क्षेत्र, बल की प्राप्ति तथा परम पद की प्राप्ति का कारण माना है। इसी प्रकार का वर्णन मनु[1] आदि महर्षियों ने भी अपनी अपनी स्मृतियों में किया है।

विदेशों में श्राद्ध[2]

भारत की भांति अन्य देशों में भी मृतात्माओं के प्रति किसी न किसी रूप में सम्मान प्रकट किया जाता है। उनमें से कुछ प्रथायें अत्यन्त रोचक हैं। पूर्वी देशों में वर्ष में एक दिन निश्चित कर दिया जाता है और उस दिन सब लोग अपने पूर्वजों की स्मृति में पूजादि करते हैं। यह उनके जीवन का एक आवश्यक कार्य समझा जाता है।

चीन और जापान की श्राद्ध-प्रथा

चीन और जापान के लोग निश्चित दिन पर दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। उनका विचार है कि मृत पुरुष की आत्मा वर्ष में एक दिन अपने पूर्व गृह में अवश्य जाती है। इस कल्पित दिन को वे बड़े समारोह के साथ मनाते हैं।

उक्त देशवासियों का विचार है कि मृतात्मा रात्रि के समय आती है। अतः वे रात को अपना घर खूब सजाते हैं। घर के एक कमरे में एक शय्या तैयार की जाती है, नाना प्रकार के भोजन की व्यवस्था की जाती है तथा सुगंधित जल रख दिया जाता है जिससे मृतात्मा जब आवे तो उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो।

सन्ध्या के बाद समस्त व्यक्ति पूर्व पुरुष के समाधिस्थल पर जाते हैं। साथ में वे नाना प्रकार के व्यंजन सजा कर तथा हाथ में रंग-बिरंगे कागज के झाड़-फानूस, लालटेनें आदि ले जाते हैं। समाधिस्थल को अच्छी तरह सजा कर तथा श्रद्धा के साथ भोजनादि चढ़ाकर घर वापस आते हैं और रात भर जागरण करके उत्सव मनाते हैं। दीपादि के साथ उत्सव मनाने के कारण वे लोग इस समारोह को "दीपोत्सव" नाम से पुकारते हैं।

इटली तथा जर्मनी

बहुत से पाश्चात्य देशों के लोगों में भी यह धारणा पाई जाती है कि मृत पुरुष की आत्मा फिर लौटती है। इटली और जर्मनी में पूर्वी देशों की भांति वर्ष में एक दिन निश्चित रहता है। उस दिन रात को घर की सब खिड़कियां और दरवाजे खुले रखे जाते हैं। उन लोगों का विचार है कि

---

१. मनुस्मृति ३।२८३।

२. नवनीत (हिन्दी डाइजेस्ट), (बम्बई), अप्रैल १९५५, पृष्ठ ५५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मृतात्मा रात्रि में एक प्रहर के लिए आती है। वह रात्रि के अन्तिम प्रहर में आकर सुबह होने के पहले चली जाती है।

सामान्य लोगों का विचार है कि मृतात्मा आँधी-पानी के सहारे पृथ्वी पर आती है। साधारणतः जिस ऋतु में यह दिन निश्चित किया जाता है उसमें आँधी-पानी की अधिकता रहती है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब मुर्गे का शब्द सुनाई पड़ता है तो घर के सब लोग सजे हुए कमरे को ध्यानपूर्वक देखते हैं। जरा भी हवा चली और खिड़की का परदा अथवा शय्या की चादर उलटी कि वे तुरन्त समझ लेते हैं कि अब मृतात्मा आ गई है। उनका विश्वास है कि मृतात्मा अपने पूर्व वास-गृह में आकर फिर समाधिस्थल पर चली जाती है। अतः वे केवल अपने घर को सजाते हैं। समाधिस्थल पर रोशनी नहीं करते। यह दिन योरोप में 'आवागमन दिवस' के नाम से प्रसिद्ध है।

वेल्स में इस दिन लड़के तथा लड़कियाँ एक खेल खेलती हैं। बैठक के कमरे में ये लोग पानी से भर कर एक टब रख देते हैं और उसमें कई सेब डाल देते हैं। तब सब लोग एक दूसरे का हाथ पकड़ कर टब के चारों ओर बैठते हैं। उसके बाद जो बालिका या बालक सबसे पहले दाँतों से जल से सेब निकालता है उसके लिए यह वर्ष बहुत सौभाग्य से पूर्ण समझा जाता है।

अमेरिका में श्राद्ध प्रथा

अमेरिका के लोग निश्चित दिन को खान-पान में बिताते हैं और शाम को एक नकाब पहन कर अथवा हाथ में लेकर घूमते हैं। तत्पश्चात् सब लोग इकट्ठा होकर मृतात्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। ये लोग न तो घर को सजाते हैं और न मृतात्मा के लिए भोजनादि रखते हैं।

अतिथि-पूजन

पितृश्राद्ध के पश्चात् सोमेश्वर अतिथि-पूजन का वर्णन करते हैं। इस प्रसंग के अन्तर्गत सोमेश्वर ने 'अतिथिदेवो भव' की भावना पूर्ण रूप से अंकित की है। इस प्रसंग में सोमेश्वर ने सर्वप्रथम अतिथि की परिभाषा दी है। उनका कथन है कि जिसका कुल तथा नाम न ज्ञात हो, जो अन्य देश से आया हो, क्षुधा से पीड़ित हो, धूल आदि से पूर्ण हो, वही विद्वानों के द्वारा अतिथि कहा जाता है—

अज्ञातकुलनामानमन्यदेशादुपागतम्।
क्षुधार्तं पांसुकीर्णांघ्रिमतिथिं तं विदुर्बुधाः॥[1]

मनुस्मृति में जो अतिथि की परिभाषा दी गयी है उसका भाव भी इसी प्रकार का है—

१. मानसोल्लास १।१९।११४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥[1]

अर्थात् जो एक रात ही रहे वही अतिथि होता है क्योंकि वह नित्य नहीं रहता। याज्ञवल्क्य ने भी—

अध्वनीनोऽतिथिर्ज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः।[2]

कहकर अचानक आये हुए पथिक को ही श्रेष्ठ अतिथि माना है। सोमेश्वर की अतिथि की परिभाषा से भी ऐसा विदित होता है कि अतिथि अपना सम्बन्धी नहीं होता। बिना जाना-पहचाना, दूर देश से आया हुआ, क्षुधा से पीड़ित, धूल से पूर्ण अतिथि का सत्कार करना सोमेश्वर ने परम कर्तव्य बतलाया है, क्योंकि इस प्रकार के अतिथि का सत्कार न करने से अतिथि गृहस्थ के सम्पूर्ण पुण्यों को लेकर चला जाता है और उसका सम्मान एवं पूजा करने पर विष्णु भगवान भी प्रसन्न होते हैं।[3] अतिथि के विमुख होने को धर्मशास्त्रों में भी बड़ा अधर्म माना गया है। मनु ने भी आए हुए अतिथि की आसन, जल, अन्न द्वारा सत्कार करके पूजा करने का आदेश दिया है।[4] जो गृहस्थ ऐसे अतिथि का पूजन नहीं करता उस अतिथि के विषय में कहा गया है—

शिलानप्युञ्छतो नित्यं पंचाग्नीनपि जुह्वतः।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥[5]

अर्थात् वह अतिथि उस गृहस्थ के नित्य शिल (खेत में पीछे से छूटे हुए अन्न) को बीन कर निर्वाह करने के तथा पञ्चाग्नि (आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिण, श्रौत, आवसथ्य) में नित्य अग्निहोत्र करने के द्वारा अर्जित हुए सभी पुण्यों को ले जाता है। इसी प्रकार के भाव को सोमेश्वर की "तस्य पुण्यानि सर्वाणि हृत्वा यात्यतिथिर्द्रुतम्"[6] पंक्ति स्पष्ट करती है। आए हुए अतिथि के विमुख हो जाने पर विष्णु देवता अप्रसन्न हो जाते हैं।

सोमेश्वर की इन पंक्तियों से ऐसा स्पष्ट होता है कि उनके समय में प्रत्येक गृहस्थ के लिए पञ्च महायज्ञों का सम्पादन करना आवश्यक था चाहे वह राजा हो अथवा रंक क्योंकि अतिथि-पूजन पंचमहायज्ञ (ब्रह्म, देव, पितृ, भूत, नृ) में से नृयज्ञ अथवा अतिथियज्ञ के अन्तर्गत आ जाता है।

गुरु-शुश्रूषा

गुरु-शुश्रूषण अध्याय के अन्तर्गत सर्वप्रथम सोमेश्वर ने गुरुओं के भेद

१. मनुस्मृति ३।१०२।
२. याज्ञवल्क्य० १।१११।
३. मानसोल्लास १।१९।११५-११६।
४. मनुस्मृति ३।९९।
५. वही ३।१००।
६. मानसोल्लास १।१९।११५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर प्रकाश डाला है। सोमेश्वर ने जनक (पिता), उपनेता, विद्या प्रदान करने वाले, पोषण करने वाले तथा भय से रक्षा करने वाले इन पाँच व्यक्तियों को गुरु माना है।[1] धर्मशास्त्रों में पिता, आचार्य, उपाध्याय, ऋत्विक् तथा गुरु ये पाँच प्रकार के गुरु माने गये हैं।[2] जो बालक को जन्म देता है वह पिता बालक के गुरु के सदृश है। जो द्विज शिष्य का यज्ञविधि से उपनयन संस्कार कर कल्प एवं रहस्य (उपनिषद्) के साथ वेद पढ़ाता है वह आचार्य भी शिष्य का गुरु होता है। जो द्विज वेद के एकदेश अथवा एक अंग (ज्योतिष, व्याकरणादि) का शिष्य को अध्यापन करा कर वृत्ति के लिए विद्यादान दे वह उपाध्याय भी शिष्य के लिए गुरु के सदृश होता है। शास्त्रोक्त विधि से गर्भाधानादि संस्कार कराकर अन्नद्वारा पोषण कर जो बालक को विद्यादान देता है वह भी बालक का गुरु होता है। इसके अतिरिक्त शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ कराने वाला ऋत्विक् भी गुरु ही होता है।[3] इसी प्रकार का प्रसंग याज्ञवल्क्य[4] स्मृति में प्राप्त होता है।

इन सभी गुरुओं के मध्य सोमेश्वर ने उपाध्याय से उच्च आचार्य को बतलाया है क्योंकि आचार्यरूपी पिता यज्ञोपवीत के समय मौंजी रूपी माता के बन्धन से बालक का द्वितीय जन्म कराता है। इसके पश्चात् ही तृतीय जन्म यज्ञ की दीक्षा अर्थात् गायत्री मंत्र द्वारा होता है।[5] वह भी आचार्य ही करवाता है। इस उपनयन संस्कार रूपी जन्म में बालक का आचार्य पिता तथा सावित्री माता होती है।[6] इसी कारण उपाध्याय से आचार्य को श्रेष्ठ माना गया है।

---

१. मानसोल्लास १।१९।११७। २. मनुस्मृति २।१४०.१४४।

३. उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते॥
एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते॥
निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि।
संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते॥
अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान्।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते॥
य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन॥ मनुस्मृति २।१४०.४४।

४. याज्ञवल्क्य स्मृति १।३४.३६। ५. मनु० २।१६९।

६. तत्र यद् ब्रह्म जन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम्।
तत्रास्य माता सावित्री पिता वाचार्य उच्यते॥ वही २।१७०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपाध्याय तो केवल वृत्ति लेकर वेद के एक अंग का ही अध्ययन कराता है, किन्तु आचार्य यज्ञोपवीत कराकर उसे सम्पूर्ण वेद का ज्ञान प्रदान करता है। पिता का स्थान सोमेश्वर ने इस आचार्य से भी अधिक माना है क्योंकि पिता वास्तव में बालक के निर्माण एवं जन्म देने का कारण होता है और माता की श्रेष्ठता पिता से भी अधिक होती है और वह विशेष रूप से गौरव की पात्र है।[१] माता ही बालक के जन्म का कारण तथा कार्य होती है, वही बालक को अपने उदर में रख कर जन्म देती है।

इसी प्रकार से माता की श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए मनु लखते हैं कि दस उपाध्यायों के गौरव के तुल्य एक आचार्य का गौरव है। सौ आचार्यों की श्रेष्ठता के समान एक पिता है और पिता से सहस्रगुना अधिक माता का गौरव है।[२] याज्ञवल्क्य ने भी सबसे श्रेष्ठ माता को ही बताया है।[३]

इसके साथ ही सोमेश्वरदेव ने मन, वचन तथा कर्म से गुरु की सेवा एवं आदर करने का आदेश दिया है।[४] उसकी आज्ञा का उल्लंघन न कर सदैव उसकी सेवा में तत्पर रहने का आदेश दिया है। इस प्रकार से दृढ़ संकल्प कर कृतज्ञ होकर जो गुरु की सेवा-शुश्रूषा करता है उसे महान पुण्य के फल की प्राप्ति होती है।[५] मनु ने भी गुरुसेवा को ही उच्च विद्या प्राप्त करने का हेतु माना है। उनका कथन है कि जिस प्रकार परिश्रमपूर्वक फावड़े से धरती को खोदता हुआ व्यक्ति जल प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार गुरु की सेवा कर उनकी कृपा द्वारा श्रेष्ठ विद्या को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।[६] इसी कारण गुरुओं का अपमान व्यक्ति को कभी न करना चाहिए।[७] इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य ने

---

१. आचार्यः स्यादुपाध्यायादाचार्यादधिकः पिता।
पितुरप्यधिका माता गौरवेण विशेषिता॥
मानसोल्लास १।१९।११८।

२. उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते॥ मनु० २।१४५।

३. एकदेशमुपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते।
एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी॥ याज्ञ० १।३५।

४. मनोवाक्कायकर्मभ्यो गुरुभ्यो हितमाचरेत्॥ मानसोल्लास १।१६।११९।

५. एवं शुश्रूषते यस्तु गुरून्नत्वा समाहितः।
कृतज्ञो दृढ़संकल्पस्तस्य पुण्यफलं महत्॥ वही १।१६।१२०।

६. यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥ मनु० २.२१८।

७. आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्त्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥ वही २।२२६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी गुरु की मन, वचन, कर्म से सेवा करने का आदेश दिया है। सोमेश्वर का कथन याज्ञवल्क्य के कथन से कुछ समता रखता है—

आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत्।
हितं चास्याचरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥[1]

इस प्रकार गुरु की सेवा कर गुरु के समीप उसके बुलाने पर पढ़ने जाने का आदेश महर्षि याज्ञवल्क्य ने दिया है।[2]

ये प्रसंग स्पष्ट रूप से इस बात को प्रकाशित करते हैं कि वर्ण-व्यवस्था एवं आश्रम-व्यवस्था दोनों ही सुव्यवस्थित रूप से स्थापित थीं। सभी वर्ण ब्राह्मणों का बड़ा आदर करते थे, यहाँ तक कि गृहस्थ जीवन में गुरु-शुश्रूषा का राजा तक विशेष रूप से ध्यान रखता था।

तप

त्रुटि करना मानव का स्वभाव है, फिर राजा ऐसे ऐश्वर्यशाली पद पर आरूढ़ होकर व्यक्ति अनेक ऐसे पाप कर डालता है जिनका उसे ज्ञान नहीं होता। इसी कारण सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास में राजा के लिए कुछ तप का विधान किया है। इसके करने से मन की शुद्धि होती है। मनु ने तो इस प्रकार लिखा है कि मनुष्य जैसे-जैसे अपने दुष्कृत कर्म की निन्दा करता है वैसे-वैसे वह उसके पास से छूटता जाता है। पाप करने के पश्चात् अपने मन में सन्ताप कर व्यक्ति पाप के भार से मुक्त हो जाता है।[3] तप को प्राचीन काल से ही भारत में महान् स्थान प्रदान किया गया है। ऋग्वेद[4] में भी तप का प्रसंग प्राप्त होता है और उसे स्वर्ग की प्राप्ति का साधन माना गया है। छान्दोग्य[5] तथा मुंडकोपनिषद्[6] में भी तप तथा यज्ञ के माहात्म्य का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त स्मृतियों में भी तप पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। गौतम स्मृति में तप की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

ब्रह्मचर्यं सत्यवचनं सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्राधःशायिताऽनाशक इति तपांसि।[7]

१. याज्ञवल्क्य स्मृति १।२७।

२. गुरुं चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः। वही १।२६।

३. यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥
कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात् प्रमुच्यते।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥ मनु० ११।२२९.३०।

४. ऋग्वेद १०।१५४।२। ५. छान्दोग्य उ० ५।१०।१.२।

६. मुण्डकोपनिषद् १।२।१०.११। ७. गौतम० १९।१५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर ने तप के विषय में इस प्रकार वर्णन किया है कि कृच्छ्र तथा चान्द्रायण आदि पुण्य व्रतों को कर विविध प्रकार के कंद-मूल-फल का आहार कर, पत्र, पुष्प-द्वारा अक्षत देकर एवं पूजन कर, बिना खाए हुए अथवा थोड़ा खाकर, धूम भक्षण कर (केवल तप के धूम का पान कर), शीत-आतप को सब जीवों के हित के लिए सहन करता हुआ ब्रह्मचर्य, तप, इन्द्रिय-निग्रह, जप, ध्यान, मौन, प्राणायाम तथा समाधि द्वारा जो तप कर अपने शरीर को शोषित करता है वह सभी दुष्प्रात इच्छाओं एवं फलों की प्राप्ति करता है इसमें संशय नहीं ।[१] इस प्रकार तप के अन्तर्गत सोमेश्वर ने व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-निग्रह, जप, तप, ध्यान, मौन, प्राणायाम, समाधि, शीतातप का सहन आदि ले लिया है । राजा के लिए राज्य में रहकर तो इन सभी अवस्थाओं को करना एवं सहन करना सम्भव नहीं । इससे विदित होता है कि यह प्रसंग सोमेश्वर ने सम्भवतः राजा के वानप्रस्थाश्रम के समय का दिया है । राजा के पद पर आरूढ़ होकर वह केवल कुछ थोड़ी सी अवस्थाओं का ही पालन कर सकता है ।

सोमेश्वर द्वारा कथित यह तप तथा यम-नियम धर्मशास्त्रों से मिलते-जुलते हैं । याज्ञवल्क्य ने चान्द्रायण तथा कृच्छ्र एवं महाकृच्छ्र व्रतों का वर्णन प्रायश्चित्त के प्रकरण में किया है ।[२] इसके अतिरिक्त गोवध (उपपातक) के प्रायश्चित्त में भी चान्द्रायण के व्रत का उल्लेख है ।[3] मनु ने चान्द्रायण व्रत का गुरुपत्नीगमन के प्रायश्चित्त में तथा कृच्छ्र व्रत को सर्प के वध के प्रायश्चित्त में बताया है ।[४] प्रायश्चित्त के अन्तर्गत किए गए व्रत भी तप के ही अन्तर्गत आ जाते हैं क्योंकि इनसे भी मन की शुद्धि तथा शरीर का शोषण होता है । इससे अतिरिक्त वानप्रस्थाश्रम में भी इन दोनों व्रतों को करने का उल्लेख याज्ञवल्क्य ने किया है ।[५]

सोमेश्वर ने चान्द्रायण एवं कृच्छ्र व्रतों का वर्णन किसी पाप के प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में नहीं किया है । इन व्रतों के अन्तर्गत उपवासों को विशेष रूप

१. मानसोल्लास १।१६।१२१.१२४ ।

२. याज्ञवल्क्य स्मृति प्रायश्चित प्र० श्लोक ६२ ।

३. उपपातकशुद्धिः स्यादेवं चान्द्रायणेन वा ।

या० स्मृ० प्रा० प्र० श्लोक ६५ ।

४. चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः । मनु० ११।१०६ ।

दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन् ।

एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये ।। वही ११।१३९ ।

५. याज्ञ० वानप्रस्थ प्र० श्लोक ५० ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से स्थान प्रदान किया जाता है। उपवास का अर्थ है भोजन तथा जल का निबन्ध, किन्तु साधारणतः अल्पाहार एवं शाकाहार अथवा फलाहार भी इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। गृह्यसूत्रों में उपवास का अर्थ अल्पाहार तथा अल्प जलपान से लिया गया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति शाक, दाल, नमक तथा[1] थोड़े मांस का भी भक्षण कर सकता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में उपवास का सम्बन्ध तप के साथ स्थापित किया गया है क्योंकि वही उपवास महान आत्मा से मिलाने में समर्थ है।[2] देवल ने उपवास के अन्तर्गत इस प्रकार का वर्णन किया है—

असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात्।
उपवासः प्रदुष्येत्तु दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥[3]

किन्तु गरुड,[4] तथा भविष्य पुराण[5] में उपवास में पुष्प, 'आभूषण, सुन्दर वस्त्र, हार आदि के प्रयोग का भी उल्लेख हुआ है। सोमेश्वर ने भी व्रत के समय पुष्प-पत्रादि के प्रयोग का वर्णन मानसोल्लास में किया है।[6] इसके अतिरिक्त सोमेश्वर का 'शीतातपसहत्वे'[7] पद शिशिर काल में शीत जल में तथा ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि द्वारा तप करने की ओर संकेत करता है। मनु ने इस प्रकार के तप का वर्णन वानप्रस्थाश्रम में रहने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में किया है—

ग्रीष्मे पंचतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः॥[8]

याज्ञवल्क्य ने भी—

ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते शक्त्या वापि तपश्चरेत्॥[9]

कहकर वानप्रस्थ अवस्था में ही इन साधनों का वर्णन किया है। याज्ञवल्क्य ने अग्नि तथा उपासना समेत रहने का आदेश दिया है। इसके अतिरिक्त 'सर्व-

१. गोभिल गृ० सू० १।५।२६, खा० गृ० २।१।४. ६, कौशिक सू० १।३१.३२, काठ० गृ० ४६।२।

२. स वा एष महानज आत्मा……लभेत वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन। बृहदारण्यक उपनिषद ४।२।२२।

३. देवल as quoted by अपरार्क पृ० १९९, स्मृ० चं० २ पृ० ३५५।

४. गरुड़ पु० १।१२८।६।

५. भविष्य पु० १।१८४।२७।

६. मानसोल्लास १।१७।१२१।

७. वही १।१७।१२२।

८. मनुस्मृति ६।२३।

९. याज्ञवल्क्य स्मृ० वा० प्र० श्लोक ५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सत्त्वहिते रतः'[१] अर्थात् सब प्राणियों के हित में रत रहे, ऐसा वर्णन किया है। सोमेश्वर ने भी 'सर्वभूतहितेच्छया'[२] का प्रयोग किया है।

इन सभी साधनों के साथ ही सोमेश्वर ने तप के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-निग्रह, जप, ध्यान, मौन, प्राणायाम तथा समाधि आदि पर भी अधिक बल दिया है। ये सभी अवस्थायें विशेष रूप से वानप्रस्थ अवस्था को ही द्योतित करती हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति में वानप्रस्थाश्रम को व्यतीत करते हुए व्यक्ति के लिए इन्द्रिय-निग्रह, वायुभक्षण, ब्रह्मचर्य, ध्यान आदि साधन बतलाए गए हैं, जो सभी सोमेश्वर के द्वारा कथित नियमों से मिलते हैं।[3] मनु ने भी इन सभी का वर्णन किया है।[४]

जप का वर्णन विशेष रूप से वेदों में वैदिक मंत्रों के गायन के अर्थ में हुआ है। हारीत ने वाचिक, उपांशु तथा मानस इन तीन प्रकार के जपों का उल्लेख किया है। इसमें सबसे बाद वाला अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि हारीत ने इस प्रकार लिखा है—

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत।
वाचिकाख्य उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः।
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयान् स्यादुत्तरोत्तरम्॥[५]

स्मृतिचंद्रिका में भी इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है।[६] नृसिंह पुराण में भी इन तीनों जपों में उत्तरोत्तर 'त्रिविधो उत्तरोत्तरम्' जप की श्रेष्ठता का उल्लेख हुआ है।[७] लघुहारीत में वाचिक तथा उपांशु जपों को इस प्रकार बतलाया गया है—

मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः।
शनैरुच्चारयन्मन्त्रं किंचिदोष्ठौ प्रचालयेत्।
किंचिच्छ्रवणयोग्यः स्यात्स उपांशुजपः स्मृतः॥[८]

मनु ने भी इस जप एवं वेदाभ्यास को इच्छा से किए हुए पाप की शुद्धि

१. याज्ञवल्क्य वा० प्र० श्लोक ४८। २. मानसोल्लास १।१७।१२२।
३. याज्ञ० अध्याय ३ वानप्रस्थ प्र० श्लोक ४५—५५।
४. मनु० ६।२०-३०। ५. हारीत० पृ० १८६।
६. उच्चस्त्वेकगुणः प्रोक्तो ध्यानाद्दशगुणः स्मृतः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्री मानसः स्मृतः॥
स्मृतिचंद्रिका १, पृ० १४९।
७. नृसिंह पुराण ५८।७८. ७९।
८. लघुहारीत (जीवानंद) ४ पृ० १८६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का कारण माना है ।[1] उन्होंने भी इन्हीं तीनों प्रकार के जपों का वर्णन किया है और मानस जप को सहस्रगुना श्रेष्ठ बतलाया है—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥[2]

ब्राह्मण के लिए मनु ने जप ही मोक्ष का कारण माना है ।[3] शख स्मृति में भी इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है ।[4] किन्तु सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास में केवल जप का नाम दे दिया है । उसके भेदों पर तथा उसके महत्त्व पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है । फिर भी उनके प्रसंग को पढ़ कर ऐसा विदित होता है कि तप के मध्य जप को वे श्रेष्ठ स्थान देते हैं ।

जप परमात्मा से मिलने की सबसे समीपस्थ एवं महान् अवस्था है क्योंकि जप के लिए तीन वस्तुओं की आवश्यकता होती है—हृदय की पवित्रता, वैराग्य तथा अपने को ईश्वर के हाथों में समर्पित कर अपने अस्तित्व को खो देना । इन्हीं अवस्थाओं को प्राप्त कर लेने पर ही व्यक्ति जप करने के योग्य होता है । सोमेश्वर ने राजा के सांसारिक पक्ष का ज्ञान कराने के साथ ही साथ उसके आध्यात्मिक पक्ष पर अधिक बल दया है । इसी कारण जप के पश्चात् वे ध्यान एवं मौन अवस्था को लेते हैं ।

जप के तीसरे भेद मानस जप का अभ्यास करने पर ही व्यक्ति की ध्यानावस्थित अवस्था आती है । जब व्यक्ति स्थितप्रज्ञ हो जाता है तो उसके मस्तिष्क से सभी सांसारिक विप्लव दूर हो जाते हैं और वह पद्मपत्र की भांति संसार में रहने लगता है । गीता में इस प्रकार के योगी का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥[5]

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥[6]

ध्यान के स्थित हो जाने पर व्यक्ति मौन हो जाता है ।

ध्यान तथा मौन के अतिरिक्त प्राणायाम तथा समाधि का वर्णन सोमेश्वर ने किया है । मनु ने प्राणायाम का तप के अन्तर्गत बहुत महत्व दिया है । उनका कथन है--

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥[7]

---

१. मनु० ११।४६ । २. वही २।८५ । ३. वही २।८७ ।
४. शंख० १२।२८ । ५. गीता २. ३८ ।
६. वही २।५४ । ७. मनु० ११।२४८ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसी प्रकार के प्रसंग बौधायन धर्मसूत्र,[१] वशिष्ठ,[२] अत्रि[३] तथा शंख[४] स्मृतियों में भी मिलते हैं कि प्रणव, व्याहृति मंत्र तथा सोलह प्राणायाम एक मास में ब्रह्महत्या के भी पाप से मुक्त कर देते हैं। याज्ञवल्क्य ने भी प्राणायाम का महत्व इस प्रकार बतलाया है—

प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापापनुत्तये।
उपपातकजातानामनादिष्टस्य चैव हि॥[५]

अग्निपुराण में भी इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है।[६] इसके अतिरिक्त प्राणायाम का महत्व और भी स्थानों पर वर्णित किया गया है।[७] सोमेश्वर ने जो प्राणायाम शब्द का प्रयोग किया है उससे विदित होता है कि प्राणायाम पर विशेष बल दिया गया है।

प्राणायाम के पश्चात् समाधि का वर्णन है। व्यक्ति की समाधिस्थ अवस्था तभी हो सकती है जब उसका सम्बन्ध पारलौकिक जीवन से जुड़ जाता है। इस प्रकार जो इन सभी उपायों द्वारा अपने शरीर को शोषित कर तप करता है वह अवांछनीय एवं दुष्प्राप्त वस्तु को भी प्राप्त करता है।[८] इसके आगे भी सोमेश्वर तप के महत्व एवं फल का वर्णन करते हुए कहते हैं—

यद् दूरं यद् दुराराध्यं यच्च दुर्धरतां स्थितम्।
तत् सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥[९]

अर्थात् जो वस्तु बहुत दूर है, दुराराध्य है, दुर्धर है वह सब तप के द्वारा प्राप्त हो सकती है। सोमेश्वर का उपर्युक्त श्लोक मनु के इस श्लोक से बिलकुल मिलता है—

यद्दुस्तरं यद् दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वन्तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥[१०]

मनु ने भी तप की बड़ी प्रशंसा मनुस्मृति में की है।[११] तप की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं—

तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम्।
तपो मध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः॥[१२]

---

१. बौ० धर्म सू० ४।१।३१। २. वशिष्ठ० २६।४।
३. अत्रि० २।५। ४. शंख० १२।१८.१९।
५. याज्ञ० ३।३०६। ६. अग्नि पु० १७३।२१।
७. मनु० ६।७०.७२। ८. मानसोल्लास १।१७।१२४।
९. वही १।१७।१२५। १०. मनु० ११।२३८।
११. वही ११।२३४. २४४। १२. वही ११।२३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार सोमेश्वर ने तप का वर्णन कर वानप्रस्थाश्रम सम्बन्धी सभी साधनों एवं यम-नियमों का वर्णन किया है। सोमेश्वर ने आश्रम-व्यवस्था को ही मुक्ति का कारण माना है तभी तप के विषय में उन्होंने इतना बल दिया है।

तीर्थस्थान

सोमेश्वर ने राजा के लिए तीर्थ स्नान भी अत्यन्तावश्यक बतलाया है। तीर्थों के महत्व का वर्णन यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो लगभग सभी जातियों में हुआ है। मुसलमान मक्का-मदीना की यात्रा को अत्यन्त पवित्र मानते हैं क्योंकि वहीं उनके मोहम्मद की कब्र है। ईसाई धर्म के मानने वाले जेरूसलम को बहुत पवित्र मानते हैं। बौद्ध मत के मानने वाले लुम्बिनी (जहां बुद्ध का जन्म हुआ था), बोध गया (प्रकाशप्राप्ति का स्थान), सारनाथ (जहां उन्होंने धर्म पर प्रथम उपदेश दिया था) तथा कुशीनगर (जहां उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था) आदि स्थानों को तीर्थ के रूप में मानते हैं। भारत में तीर्थों को बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और भारत के सभी तीर्थ पवित्र नदी, पर्वत, जंगल तथा पवित्र देवताओं के आधार पर ही बने हैं। टैगोर ने भारतवर्ष के तीर्थों के विषय में लिखा है—

"India choose her places of pilgrimage wherever there was in nature some special grandeur or beauty, so that her mind could come out of its world of narrow necessities and realize its place in the Infinite. This was the reason why in India a whole people who once were meat-eaters gave up taking animal food to cultivate the sentiment of universal sympathy for life, an event unique in the history of mankind."[1]

तीर्थ शब्द का प्रयोग ऋग्वेद[2] तथा अन्य संहिताओं में अनेक स्थान पर हुआ है। तैत्तिरीय संहिता में यज्ञकर्ता के लिए तीर्थ आवश्यक बतलाया गया है।[3] ऋग्वेद में एक स्थान पर "सुवास्त्वादि तुग्वनि"[4] का प्रयोग हुआ है। निरुक्त की व्याख्या के अनुसार सुवास्तु का तात्पर्य एक नदी से है, किन्तु तुग्वन शब्द का अर्थ तीर्थ ही माना गया है।[5]

हिन्दू तीर्थों की संख्या निश्चित नहीं है। प्राचीन काल से ही अनेक तीर्थों के नाम प्रचलित हैं। मत्स्य पुराण में साढ़े तीन करोड़ तीर्थों का उल्लेख हुआ

१. टैगोर साधना (मैकमिलन ऐंड क० लि०, १९३०), पृष्ठ ९।

२. ऋग्वेद १।१६९।६।

३. तै० सं० ६।१।१।१.२।

४. ऋग्वेद ८।१९।३७।

५. निरुक्त ४।१५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है जो आकाश में हैं और पृथ्वी के सब तीर्थ गंगा नदी के आसपास ही हैं। उसमें ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटिश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता ॥[1]

वामन पुराण में भी साढ़े तीन करोड़ तीर्थों का प्रसंग प्राप्त होता है।[2] ब्रह्मपुराण में तीर्थों के विषय में ऐसा कहा गया है—

तस्माच्छृणुध्वं वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च।
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि ॥[3]

इसके अतिरिक्त नए-नए तीर्थ और समय-समय पर बढ़ते जाते हैं इस कारण उनकी गणना करना कठिन है।

इन सभी तीर्थों में कुछ तीर्थ बड़े महत्वशाली हैं, किन्तु उनकी गणना प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने दृष्टिकोण से करता है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति की स्थानीय भावना भी आ जाती है। सोमेश्वर ने भी जिन तीर्थों की गणना अपने मानसोल्लास में की है उनमें से अधिकांश तीर्थ दक्षिण की सीमा से ही सम्बन्धित हैं। किन्तु ऐसा नहीं कि सोमेश्वर ने अन्य तीर्थों का उल्लेख न किया हो। उन्होंने दक्षिण के साथ ही साथ उत्तर, पूर्व एवं पश्चिम के भी तीर्थों का उल्लेख किया है। फिर भी वे स्थानीय दृष्टिकोण से वंचित न रह सके। तीर्थस्नान के प्रकरण के अन्तर्गत सोमेश्वर ने जाह्नवी, यमुना, नर्मदा, तापी, गौतमी, तुंगभद्रा, वंजरा, भीमरथी, कृष्णा, वेण्या, बृहन्नदी आदि नदियों तथा पुष्कर, शुक्ल प्रभास, केदार आदि तीर्थों तथा प्रयाग, वाराणसी आदि पवित्र स्थानों का वर्णन किया है।[4] सोमेश्वर ने जिन महानदियों का वर्णन किया है उनका प्रसंग वामन पुराण में भी प्राप्त होता है। वामन पुराण[5] में गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेण्या, सरस्वती, तुंगभद्रा आदि नदियों के नाम महानदियों में गिनाये गए हैं किन्तु नृसिंह पुराण[6] में गंगा, यमुना, तुंगभद्रा तथा कावेरी इन चार ही नदियों को श्रेष्ठ नदियाँ माना है।

सोमेश्वर ने अपनी तीर्थों की सूची में गंगा का नाम सर्वप्रथम गिनाया है और "जाह्नवी सरितां श्रेष्ठा" कहकर सब नदियों में उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की है। वास्तव में गगा को सभी नदियों में श्रेष्ठ माना गया है। याज्ञवल्क्य महर्षि का ऐसा मत है कि वर्षा ऋतु में सभी नदियां अपने ऋतुकाल में होती हैं किन्तु

१. मत्स्य पुराण ११०।७। २. वामन पुराण ४६।५३।
३. ब्रह्म पुराण २५।७.८। ४. मानसोल्लास १।१८।१२६.१३४।
५. वामन पुराण ४६।५३। ६. नृसिंह पु० ६६।६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जाह्नवी सदैव शुद्ध रहती है। कात्यायन भी इसको स्वीकार करते हैं कि श्रावण मास के प्रारम्भ से सभी नदियों का ऋतुकाल प्रारम्भ हो जाता है किन्तु गंगा का ऐसा नहीं होता, इसी कारण यह अधिक श्रेष्ठ मानी गई है। गंगा का ऋग्वेद की नदीस्तुति[1] में भी एक बार नाम आया है परन्तु इसका विशेष रूप से प्रयोग 'गांग्य'[2] के रूप में हुआ है जो उरुकक्ष[3] का विशेषण है। शतपथ ब्राह्मण[4] में भरत के गंगा-यमुना तक विजय करने के प्रसंग में गंगा का उल्लेख हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी गंगा का प्रसंग है।[5] तैत्तिरीय आरण्यक[6] में भी गंगा का उल्लेख हुआ है और इसके समीप रहने वालों के प्रति श्रद्धा प्रकट की गई है। इसके अतिरिक्त उपनिषदों में भी गंगा का प्रसंग आया है। वायु पुराण[7] में गंगा के विषय में महर्षि जह्नु की कथा का प्रसंग प्राप्त होता है। इसी प्रकार नारदीय पुराण[8] में भी महर्षि जह्नु के गंगा के जल पीने तथा उसे अपने दाहिने कान से निकाल देने का प्रसंग प्राप्त होता है, इसी कारण गंगा का नाम जाह्नवी पड़ा, किन्तु ब्राह्म पुराण[9] में जह्नु के पेट से गंगा का जल निकलने का प्रसंग प्राप्त होता है। लुडविग[10] नामक अंग्रेज विद्वान् ने गंगा को आपया[11] के नाम से माना है। गंगा वास्तव में सभी सरिताओं में अधिक पुनीत है, इसी कारण संभवतः सोमेश्वर ने इसका नाम सर्वप्रथम लिखा है।

सोमेश्वर ने गंगा के बाद यमुना तथा नर्मदा को शुभ फल देने वाली बतलाया है। ऋग्वेद में यमुना का तीन स्थलों[12] पर उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के सातवें मंडल[13] में ऐसा प्रसंग है कि तृत्सुस् तथा सुदास ने यमुना के समीप स्थित अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। इसके विषय में कुछ अंग्रेज विद्वानों[14] का मत है कि यमुना इस प्रसंग में परुष्णी अर्थात् रावी नदी का ही दूसरा नाम था। किन्तु तृत्सुओं तथा सुदास का देश क्रमशः यमुना और सरस्वती के मध्य पूर्व तथा पश्चिम में स्थित था, इस कारण उनकी यह धारणा निर्मूल है।

१. ऋ० १।७५।५।
२. ओल्डेनबर्ग, ऋ० नोट्स १।३ ९६
३. ऋ० ६।४५।३१।
४. शतपथ ब्रा० १३।५।४।११।
५. ऐ० ब्रा० ८।२३।
६. तैत्तिरीय आरण्यक २।२०।
७. वायु पुराण ९१।५४.५८।
८. नारदीय पुराण २।४१।३५.३६।
९. ब्राह्मपु० ३।५६।४८ और ३।६६।२८।
१०. Translation of the Ṛgveda 3|200।
११. ऋ० वे० ३।२३।४।
१२. वही ५।५२।१७, ७।१८।१९, १०।७५।५।
१३. वही ७।१८।१९।
१४. Hopkins—"India Old and New" P–52।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अथर्ववेद[१] में यमुना तथा त्रिककुद पर्वत के प्रसंग में आंजन (सुर्मा) नाम मिलता है। शतपथ[२] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[3] में भरत के यमुना पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त यमुना के तट पर भरत ने कई अश्वमेध यज्ञ किए।[४] इसके अतिरिक्त पंचविंश ब्राह्मण[५] में भी यमुना के माहात्म्य का उल्लेख हुआ है और तौरश्रवस् साम की उत्पत्ति यमुना के तट पर ही बताई गई है। आश्वलायन श्रौतसूत्र में यमुना के तट पर अवभृथ का प्रसंग आया है। पद्मपुराण[६] में विशेष रूप से यमुना के माहात्म्य का वर्णन है।

भारतवर्ष की अन्य महत्वपूर्ण सरिता नर्मदा है, किन्तु वेदों में नर्मदा का उल्लेख नहीं हुआ है। शतपथ ब्रा० में "रेवोत्तरसमुह पाटवं चाक्रं स्थपतिं सृंजया अपरुरुधुः"[७] ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि नर्मदा का दूसरा नाम रेवा भी है। नर्मदा का रेवा नाम अमरकोश[८] में भी प्राप्त होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी के एक सूत्र[९] के वार्तिक में जो 'महिष्मत्' शब्द प्राप्त होता है वह सम्भवतः 'माहिष्मत' नगर के लिए प्रयुक्त हुआ है जो नर्मदा के तट पर स्थित है। रघुवंश[१०] में माहिष्मती को अनूप की राजधानी बताया गया है, जो रेवा (नर्मदा) नदी के तट पर स्थित थी। महाभारत तथा पुराणों में भी नर्मदा नदी का वर्णन हुआ है। पद्मपुराण[११] के आदिखंड में तथा मत्स्य[१२], कूर्म[१३] आदि पुराणों में नर्मदा की महत्ता का वर्णन है। विष्णु पुराण में नर्मदा नदी की स्तुति एवं वन्दना का इस प्रकार वर्णन हुआ है—

नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि।
नमोस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः॥[१४]

इसके अतिरिक्त मत्स्य[१५] तथा पद्मपुराण[१६] में अमरकंटक पर्वत (जहां से नर्मदा

---

१. अथर्ववेद ४।९।१० । २. शत० ब्रा० १३।५।११ ।
३. ऐ० ब्रा० ३९।९ । ४. ऐ० ब्रा० ३९।९, शत० ब्रा० १३।५।११ ।
५. पंचविंश ब्रा० ९।४।१० । ६. पद्म० ६ अध्याय १९५.१९७ ।
७. श० ब्रा० १२, ९, ३, १ ।
८. रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका··· अमर० १।१०।३२ ।
९. पाणिनि अष्टाध्यायी ४।२।८७ ।
१०. रघुवंश ६।४३ । ११. पद्मपुराण आदि खंड १३. २३, ७३९ ।
१२ मत्स्य पु० अध्याय १८६.१९४ ।
१३. कूर्म पु० उत्तरार्ध अध्याय ४०.४२ ।
१४. वि० पु० ४।३।१२.१३ । १५. मत्स्य० १९४,४५ ।
१६. पद्म० आदिखंड २१।४४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निकलती है) से लेकर सागर (जहां नर्मदा गिरती है) तक १० करोड़ तीर्थों का वर्णन हुआ है। कूर्म पुराण[1] ने उतने ही स्थान में ६० करोड़ ६० हजार तीर्थों का उल्लेख किया है। किन्तु सोमेश्वर ने इस विषय पर कुछ भी नहीं कहा। वे केवल नर्मदा शुभा ही कहकर चुप हो गए हैं। नारदीय पुराण[2] ने ४०० मुख्य तीर्थों को बतलाया है जो नर्मदा के दोनों तटों पर स्थित हैं। पुराणों में नर्मदा के विषय में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

> नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता।
> तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥[3]

इसके अतिरिक्त विस्तार में भी यह नदी बहुत बड़ी है :

> योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा।
> विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता ॥[4]

नर्मदा में कपिला[5] विशल्या,[6] एरंडी[7], इक्षुनदी,[8] कावेरी[9] आदि नदियां गिरती हैं, किन्तु इस विषय में सोमेश्वर ने कुछ भी नहीं लिखा।

नर्मदा के बाद सोमेश्वर ने अपने तीर्थस्नान के अध्याय में तापी नदी का वर्णन किया है। यह दक्षिण की प्रसिद्ध नदी है और सोमेश्वर के राज्य की सीमा में ही है। यह नदी विन्ध्य पर्वत से निकल कर सूरत के समीप अरब सागर में गिरती है। मत्स्य,[10] ब्रह्म,[11] वायु[12] तथा अग्नि[13] पुराण में तापी के नाम का उल्लेख हुआ है। मत्स्य पुराण[14] में तापी के विषय में एक ऐसी कथा मिलती है कि ताप्ती नदी का ही नाम संभवतः तापी है और यह मूल तापी से भिन्न नदी है। मत्स्य पुराण[15] के आदिपर्व के अध्यायों में ताप्ती (तापी) को सूर्य की कन्या बताया गया है जिसके साथ सोमवर्ण राजा ने विवाह किया था और उनके कुरु नामक एक पुत्र भी हुआ था।

---

१. कूर्म पु० २।४०।१३। २. नारदीय पु० उत्तरार्ध।
३. मत्स्य० १९०।१७, कूर्म० २।४०।५।
४. कूर्म० २।४०।१२, मत्स्य० १८६।२४.२५।
५. मत्स्य० १८६।४०। ६. मत्स्य० १८६।४६, पद्म० २।१३।३५.३९।
७. मत्स्य० १९१.४२.४३, पद्म० १।१८।४४।
८. मत्स्य० १९१।४९, पद्म० १।१८।४७।
९. मत्स्य० १८९।१२.१३, पद्म० १।१६।६। १०. मत्स्य पुराण ११४।२७।
११. ब्रह्म० २७।३३। १२. वायु पुराण ४५।१०२।
१३. अग्नि पुराण १०९।२२। १४. मत्स्य० २२।३२.३३।
१५. वही आदिपर्व १७१।१७३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मार्कण्डेय पुराण[1] में राजा सूर्य की पुत्री के ही नदी बन जाने का प्रसंग मिलता है और वही संभवतः तापी अथवा तापी सरिता है। इसके अतिरिक्त नासिक के एक शिलालेख में[2] तथा अन्य स्थलों[3] पर इसके नाम का उल्लेख हुआ है। पयोष्णी तथा तापी दक्षिण की दो विभिन्न नदियां हैं, ऐसा पुराणों में प्रसंग प्राप्त होता है।[4] पयोष्णी बरार की वर्तमान पूर्णा नदी है जो गविल गढ़ की पहाड़ियों से निकल कर तापी में गिरती है।[5] इसके अतिरिक्त तीर्थप्रकाश[6] में तापी नदी का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। सोमेश्वर ने तापी नदी को बड़ी ही पुण्य वाली "तापी तरंगिणी पुण्या"[7] माना है। इन शब्दों से स्पष्ट इनका स्थानीय प्रभाव झलकता है।

तापी के पश्चात् गौतमी का प्रसंग है। गौतमी गोदावरी नदी का प्राचीन नाम है। वैदिक साहित्य में इस नदी के विषय में कोई भी प्रसंग नहीं प्राप्त होता। बौद्ध साहित्य में बावरी के सम्बन्ध में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि वह महाकोशल तथा पसेनदी का पुरोहित था और अस्सक के क्षेत्र में गोदावरी नदी के तट पर स्थित अलका के समीप रहता था। उसने अपने अनेक शिष्य बुद्ध के पास भेजे थे।[8] पाणिनि की अष्टाध्यायी[9] के वार्तिक में 'संख्याया नदीगोदावरीभ्यां च' का प्रयोग हुआ है। इतिहास तथा पुराणों में भी गोदावरी नदी का उल्लेख हुआ है। महाभारत में ऐसा प्रसंग गोदावरी के विषय में आया है—

यस्यामाख्यायते पुण्या दिशि गोदावरी नदी।
बह्वारामा बहुजला तापसाचरिता शिवा॥[10]

रामायण में राम के पंचवटी के निवास के प्रकरण में गोदावरी का प्रसंग आया है—

---

१. मार्कण्डेय पुराण १०५।२६।

२. Usavadata's Nasik Inscription No. 10.

३. Bombay Gazetteer Vol. 16, p.569.

४. विष्णु पु० २।३।११, वामन० १३।२८, नारदीय० २।६०।२९, भागवत० १०।७९।२०, पद्म० ४।१४।१२, ४।१६।३।

५. Imperial Gazetteer of India. Vol. XX, p. 412.

६. मित्रमिश्र वीरमित्रोदय···तीर्थप्रकाश, पृ० ५४४.५४७।

७. मानसोल्लास १।१८।१२६।

८. Sacred Books of the East, Vol. X, part 2, p.p. 184 and 187.

९. पाणिनि ५।४।७५। १०. महाभारत वनपर्व ८८।२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः।
देशो बहुमृगः श्रीमान् पञ्चवट्यभिविश्रुतः॥
... ...
गोदावर्याः समीपे च मैथिली तत्र रंस्यते॥[1]

पुराणों में भी इसके विषय में अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। ब्रह्म पुराण में गोदावरी के लिए गौतमी नाम प्रयुक्त हुआ है—

विन्ध्यस्य दक्षिणे गंगा गौतमी सा निगद्यते।
उत्तरे सापि विन्ध्यस्य भागीरथ्यभिधीयते॥[2]

कुछ विद्वानों का इस विषय में मतभेद है किन्तु तीर्थसार में ६० श्लोक ऐसे हैं जो ब्रह्म पुराण में ही हैं और अनेक अध्यायों से लिए गए हैं। ऋषि गौतम जिस प्रकार से गंगा को शिव की जटाओं से गणेश की सहायता से निकालकर अपने आश्रम तक लाए थे उसका पूर्ण वर्णन पुराणों में प्राप्त होता है। संभवतः इसी कारण इसका नाम गौतमी पड़ा।[4] उनमें ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि गोदावरी का ही गौतमी नाम है। ब्रह्म पुराण ने दंडकारण्य की भूमि को धर्म तथा मुक्ति का मूल बीज बतलाया है और गौतमी के चारों ओर की भूमि को बहुत ही पवित्र बतलाया है क्योंकि इसमें ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

धर्मबीजं मुक्तिबीजं दंडकारण्यमुच्यते।
विशेषाद्गौतमीश्लिष्टो देशः पुण्यतमोऽभवत्॥[5]

नारदीय पुराण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि जब गौतम ने तप किया था तब १२ वर्ष तक जल नहीं बरसा। इस पर सब ऋषियों ने उनसे प्रार्थना की कि वे गंगा को अपने आश्रम के समीप लाकर प्रातःकाल शालि बोकर मध्याह्न में उसे काटें जिससे सभी खूब अन्न प्राप्त कर सकें। जब तक पर्याप्त मात्रा में अन्न न हो जाय तब तक वह इसी प्रकार करते रहे। उनके तप से प्रसन्न होकर जब शिव जी उनके समीप आए तो उन्होंने उनसे अपने आश्रम के समीप निवास करने के लिए आग्रह किया। उसी समय से उस पर्वत का नाम त्र्यम्बक पड़ गया जिस पर गौतम का आश्रम था।[6] वराह पुराण भी इस बात को पुष्ट करता है कि गौतम ऋषि अपने तप के बल से जाह्नवी को दंडकारण्य में लाए। वही बाद में गोदावरी नदी हो गई।[7]

१. रामायण ३।१३।१३ और २१। २. ब्रह्म पु० ७८।७७

३ ब्रह्म पु० अ० ८९, ९१, १०६, १०७, ११६, ११८, १२१, १२२, १२८, १३१, १४४, १५४, १५९ और १७२।

४. वही अध्याय ७४.७६। ५. वही १६१।७३।

६. नारदीय पुराण उत्तरार्ध ७२। ७. वराह पु० ७१।३७.४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गोदावरी के माहात्म्य का तथा उसके किनारे पर स्थित तीर्थों का भी पुराणों में विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। ब्रह्म पुराण में ऐसा प्रसंग है—

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च योजनानां शतद्वये।
तीर्थानि मुनिशार्दूल सम्भविष्यन्ति गौतम ॥[१]

उन तीर्थों में त्र्यम्बक,[२] कुशावर्त,[३] जनस्थान,[४] गोवर्धन,[५] प्रवरासंगम,[६] निवासपुर[७] आदि मुख्य हैं। निवासपुर के लिए ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

शिवशक्त्योर्यतस्तस्मिन्निवासोऽभूत्सनातनः ।
अतो वदन्ति मुनयो निवासपुरमित्यदः ॥[८]

कूर्म पुराण गोदावरी के माहात्म्य को प्रदर्शित करता हुआ उस पर स्थित अनेक तीर्थों की सूची के साथ-साथ गोदावरी के तट को श्राद्ध करने का सबसे पवित्र स्थान बतलाता है।[९] गोदावरी के तट पर अनेक प्रसिद्ध मंदिर भी हैं। इसी कारण इसे मुक्ति का स्थान माना है। सोमेश्वर ने भी इसे "गौतमी पापनाशनी"[१०] कहकर सम्बोधित किया है।

गौतमी के बाद सोमेश्वर ने भगवान के चरणों से उद्भूत, रमणीय श्रीपर्वत के उत्संग में विचरण करने वाली तुंगभद्रा नदी का वर्णन किया है। यह सोमेश्वर महाराज की कल्याण नगरी में ही बहने वाली नदी है। मत्स्य[११] ब्रह्म,[१२] तथा वायु[१३] पुराण में तुंगभद्रा के सह्य पर्वत से निकलने का प्रसंग प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त नृसिंह[१४] तथा भागवत पुराण[१५] में भी इसका वर्णन हुआ है। महाभारत में तुंगभद्रा का उल्लेख है।[१६] कल्पतरु[१७] में तुंगभद्रा पर बहुत कुछ प्रकाश डाला गया है। बिल्हण कृत 'विक्रमांकदेवचरित' में तीव्र दाह ज्वर के कारण विक्रमादित्य के पिता आहवमल्ल (सोमेश्वर प्रथम) का तुंगभद्रा में डूबने का प्रसंग प्राप्त होता है।[१८] सोमेश्वर ने अन्य सभी नदियों

---

१. ब्रह्म पुराण ७७।८.९ ।
२. वही ७९।६ ।
३. वही ८०।१.३ ।
४. वही ८८।१ ।
५. वही अध्याय ९१ ।
६. वही अध्याय १०६ ।
७. वही १०६।५३.५४ ।
८. वही ।
९. कूर्म पु० २।२०।२९.३५ ।
१०. मानसोल्लास १।१८।१२६ ।
११. मत्स्य० ११४।२९, २२।४५ ।
१२. ब्रह्म० २७।३५ ।
१३. वायु० ४५।१४ ।
१४. नृसिंह पुराण ६६।६ ।
१५. भागवत पुराण ५।१९।१८ ।
१६. महा० वन पर्व १९।१८ ।
१७. कल्पतरु, पृ० २५४ ।
१८. विक्रमांकदेव चरित ४।४४.६८ (Vide also Epigraphica Indica Vol. XII, p. 294) ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से तुंगभद्रा का अधिक वर्णन किया है और उसकी प्रशंसा भी अधिक की है और उसके लिए 'तुंगभद्रा सदा भद्रा दर्शनात् पापनाशिनी',[१] का प्रयोग किया है। यह पंक्ति सोमेश्वर के स्थानीय प्रभाव को द्योतित करती है।

तुंगभद्रा के पश्चात् वंजरा का वर्णन मानसोल्लास में हुआ है। इस नदी के विषय में अधिक प्रसंग नहीं प्राप्त होते। संभवतः यह गोदावरी के दक्षिण तट पर बहती है। ब्रह्म पुराण[२] में वंजरा नदी का प्रसंग प्राप्त होता है। संभवतः यह वर्तमान काल की मंजरा नदी का ही प्राचीनतम रूप रहा होगा जो नन्दर (Nander Distt.) जिले में गोदावरी नदी से मिलती है। मैसूर के 'अभिलषितार्थचिन्तामणि' नामक संस्करण में वंजरा का पंजरा[3] नाम उपलब्ध होता है किन्तु वह त्रुटिपूर्ण है। उसका वास्तविक नाम वंजरा ही है।

भीमरथी नदी भीम नदी से मिलती-जुलती है जो सह्य पर्वत से निकल कर कृष्णा नदी के मुहाने पर मिलती है। भीमरथा नदी के प्रसंग कुछ पुराणों में प्राप्त होते हैं। मत्स्य,[४] ब्रह्म,[५] पद्म,[६] वायु,[७] वामन[८] पुराणों में इसका नाम मिलता है। महाभारत[९] में भी भीमरथी नदी का उल्लेख हुआ है। कीर्तिवर्मन द्वितीय[१०] (७५७ ई०) के Vakkaleri Plate में तथा अन्य स्थलों[११] पर इसका उल्लेख हुआ है। सोमेश्वर ने भीमरथी नदी के साथ भीम नदी का उल्लेख अपने मानसोल्लास में नहीं किया।

कृष्णा नदी भी दक्षिण की प्रसिद्ध नदियों में से है। यह महाबलेश्वर के समीप सह्य पर्वत से निकल कर अरब सागर में बंकोट के समीप गिरती है। इस नदी का प्रसंग पुराणों में अधिकता से मिलता है। ब्रह्म,[१२] पद्म[१३], वामन[१४] आदि पुराणों में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है।

वेण्या भी दक्षिण की एक नदी है जो सह्य पर्वत से निकल कर कृष्णा नदी में गिरती है। इसका पुराणों में अनेक स्थान पर उल्लेख हुआ है। वामन,[१५]

---

१. मानसोल्लास १।१८।१२७। २. ब्रह्म पुराण १५९।४५।
३. अभिलषितार्थचिन्तामणि १।१।१२४।
४. मत्स्य पुराण २२।४५, ११४।२९। ५. ब्रह्म० २७।३५।
६. पद्म १।२४।३२। ७. वायु पुराण ८७।३।
८. वामन पुराण १३।३०। ९. महाभारत भीष्म पर्व ९।२०।
१०. Epigraphica Indica, Vol. V, p. p. 200, 204.
११. महा० भीष्म पर्व ९।२०। १२. ब्रह्म० ७७।५।
१३. पद्म० ६।१३।२५। १४. वामन० १३।३०।
१५. वामन० ७८।७।९०।२, १३।३०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भागवत,[१] वायु[२] तथा पद्म[३] पुराण में वेण्या नदी एक विशेष नदी बतलाई गई है और महादेव ही वेण्या नदी हो गए थे ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है।[४] महाभारत के एक स्थल पर[५] "गोदावरी च वेण्या च कृष्णवेण्या तथापि च" ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि वेण्या नदी कृष्ण वेण्या नदी से अलग है। इन नदियों के अतिरिक्त बृहन्नदी भी दक्षिण भारत की एक नदी है जो संभवतः वर्तमान काल की महानदी का ही प्राचीन रूप है। यह बंगाल की खाड़ी में गिरती है। सोमेश्वर ने इन सभी नदियों को "मलापहारिणी" बतलाया है। सोमेश्वर ने इस प्रकार से जितनी नदियों का वर्णन अपने मानसोल्लास में किया है उनमें से अधिकांश नदियां दक्षिण की ही हैं। नदियों के विवरण के साथ ही साथ उन्होंने अन्य नदियों, सागर, सर, ह्रद, देवखात, कुण्ड, कूप तथा गिरिस्रवों को तीर्थों के अन्तर्गत बतलाया है[६] किन्तु उनके नाम नहीं गिनाए।

इसके पश्चात् वे तीर्थों का वर्णन करते हैं, जिसके अन्तर्गत उन्होंने पुष्कर, शुक्र, प्रभास तथा केदार आदि तीर्थों का वर्णन किया है।[७] पुष्कर तीर्थ अजमेर से ६ मील की दूरी पर स्थित है। पुष्कर नगर, झील तथा स्थान तीनों ही तीर्थयात्रा के लिए उत्तम हैं। नारदीय पुराण[८] में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि यहां पर ब्रह्मा के अनेक मंदिर बने हुए हैं तथा ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ तीन प्रसिद्ध कुण्ड हैं। पद्म पुराण[९] में भी इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है। वामन[१०] तथा ब्रह्मांड[११] पुराण में भी मध्यम पुष्कर का उल्लेख हुआ है और कनिष्ठ पुष्कर मध्यम पुष्कर से डेढ़ योजन दूर है, ऐसा भी प्रसंग प्राप्त होता है।[१२] इसके अतिरिक्त पद्म पुराण[१३] ब्रह्मा के द्वारा बनाए हुए कमलों (पुष्कर) द्वारा जिस प्रकार से इसका नाम पुष्कर पड़ा उसका भी वर्णन हुआ है। पवित्र सरस्वती यहीं से बह कर सागर की ओर जाती है।[१४] ब्रह्मांड पुराण[१५] में वीर परशुराम के अपने शिष्यों के साथ १०० वर्ष यहीं तप करने का प्रसंग

---

१. भागवत० ५।१९।१८। २. वायु० ४५।१०४।
३. पद्म० ६।११३।२५। ४. वही।
५. महाभारत अनुशासन पर्व १६५।२२।
६. मानसोल्लास १।१८।१२९। ७. वही १।१८।१३०।
८. नारदीय पुराण २।७१।१२। ९. पद्म पुराण ५।२८।५३।
१०. वामन पुराण २२।१९, ६५।३१। ११. ब्रह्मांड पुराण ३।३४।११।
१२. वही ३।३५।३९। १३. पद्म पुराण ५।१५।६३ और ८२।
१४. वही ५।१९।३७। १५. ब्रह्मांड पुराण ३।३४।७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राप्त होता है। पुष्कर में एक स्थान पुष्कर सेतु है जहां तीन तालाब बने हुए हैं।[१] वायु[२] तथा कूर्म पुराण[३] अन्य स्थलों[४] में पुष्कर तीर्थ को श्राद्ध करने के लिए बड़ा ही पवित्र माना है। विष्णु धर्म सूत्र[५] में भी इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है। पद्म पुराण[६] के अन्तर्गत पुष्कर तीर्थ को ब्रह्मा की पांच वेदियों में से एक वेदी माना है। पाणिनि[७] की अष्टाध्यायी में भी पुष्कर का प्रसंग आया है और उसे 'वर्णादिगण' के अन्तर्गत माना है।

पुष्कर नगर के विषय में Alberuni's India में जो वर्णन प्राप्त होता है वह पुष्कर के मंदिरों एवं तीर्थों पर प्रकाश डालता है—

> "Outside the town in three places they have constructed ponds which stand in high veneration and are places of worship."[८]

पुष्कर में पांच मंदिर बहुत प्रसिद्ध हैं जो कि अपने वर्तमान रूप में खड़े हैं। उनका प्राचीन रूप मुगल काल के अन्तिम बादशाह औरंगज़ेब द्वारा नष्ट कर दिया गया।

यद्यपि यह तीर्थ सोमेश्वर की राज्य सीमा के समीप ही स्थित है किन्तु फिर भी उन्होंने पुष्कर तीर्थ के विषय में कोई विशेष प्रकार का वर्णन नहीं किया है। केवल 'पुष्कराणि च पुण्यानि'[९] कह कर चुप हो गए हैं। सोमेश्वर ने पुष्कराणि शब्द का प्रयोग बहुवचन में किया है। इससे विदित होता है कि संभवतः उनका आशय पुष्कर में स्थित सभी उन छोटे तथा बड़े तीर्थों से है जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

शुक्ल तीर्थ नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर स्थित है। इसके विषय में मत्स्य पुराण में निम्नलिखित प्रसंग प्राप्त होता है—

> **शुक्लतीर्थं महापुण्यं नर्मदायां व्यवस्थितम्।**
> **चाणक्यो नाम राजर्षिः सिद्धिं तत्र समागतः॥**[१०]

---

१. Usavadata's Nasik Inscription, No. 10.

२. वायु० ७७।४० ३. कूर्म पुराण २।२०।३४।

४. Bombay Gazetteer, Vol. 17, p. 570.

५. विष्णु धर्मसूत्र ८५।१.३। ६. पद्म पुराण ५।१५।१५०।

७. पाणिनि ४।२।८२।

८. Alberuni's India translated by Dr. E. C. Sachau, Vol. II, p. 147.

९. मानसोल्लास १।१८।१३०। १०. मत्स्य पुराण १९२।१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पद्म पुराण[1] में भी इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है किन्तु उसमें 'चाणिक्यो' का पाठ हुआ है। संभवतः चाणक्य के सिद्धि प्राप्त करने के कारण ही शुक्ल तीर्थ इतना प्रसिद्ध है। यह तीर्थ बड़ौच (Broach) से १० मील उत्तर पूर्व में स्थित है। इसी प्रकार की कथा स्कन्द[2] तथा कूर्म[3] पुराण तथा अन्य स्थलों[4] पर भी प्राप्त होती है जो चाणक्य की सिद्धि प्राप्ति से ही सम्बन्धित है।

शुक्ल तीर्थ भी एक प्रसिद्ध तीर्थ है जो दक्षिण में स्थित है। सोमेश्वर ने शुक्ल तीर्थ को अत्यन्त सुखदायक बतलाया है।[5] किन्तु उन्होंने न तो इसके विषय में और कुछ लिखा न इसके समीप स्थित भृगु तीर्थ तथा जमदग्नि आदि तीर्थों का ही उल्लेख किया है। धर्मशास्त्रों में इन तीर्थों के महत्व का बहुत वर्णन हुआ है—

उपासते भृगोस्तीर्थं तुष्टो यत्र महेश्वरः।
...दर्शनात्तस्य तीर्थस्य सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥
...तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥[6]

ततो गच्छेय राजेन्द्रः नर्मदोदधिसंगमम्।
जामदग्न्यमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः ॥[7]

किन्तु सोमेश्वर ने इन तीर्थों के नाम तक की गणना नहीं की। संभवतः उनके समय में ये तीर्थ इतने प्रसिद्ध न रहे होंगे।

प्रभास तीर्थ, जिसका मानसोल्लास में वर्णन हुआ है, सौराष्ट्र में समुद्र के तट पर (द्वारिका के समीप) स्थित एक प्रसिद्ध तीर्थ है और यह सोमनाथ के मंदिर के कारण बहुत प्रसिद्ध है जो बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है यद्यपि आजकल वह अपनी जीर्ण अवस्था में है क्योंकि महमूद गज़नवी ने उसे तोड़ डाला था। पुराणों में प्रभास तीर्थ का बहुत उल्लेख हुआ है। स्कन्द पुराण[8] में इसकी प्राचीनता पर प्रकाश डाला गया है। उसमें तीर्थ के अनेक प्राचीन

---

१. पद्म पुराण १।१९।१३.१४, १।१९।२.३५।

२. स्कन्द पुराण १।२।३.५।

३. कूर्म० २।४१।६७.८२।

४. Imperial Gazetteer of India, Vol. 23, p. 128; Bombay Gazetteer, Vol. XI, p. p. 568–69.

५. 'शुक्लतीर्थं सुखप्रदम्' मानसोल्लास १।१८।१३०।

६. मत्स्य पुराण १९३।४९.५० और ५२।

७. वही १९४।३४.३५।

८. स्कन्द पुराण ७।१।२।४४.५३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नाम मिलते हैं। कूर्म,[1] नारदीय[2] तथा गरुड़ पुराण[3] में इसके माहात्म्य का वर्णन है। वामन पुराण[4] में ऐसा उल्लेख है कि सरस्वती नदी समुद्र में इसी के समीप गिरती है। प्रभास तीर्थ की पवित्रता पर अनेक स्थलों[5] पर प्रकाश डाला गया है। प्रभास तीर्थ को देवपत्तन के नाम से भी सम्बोधित किया गया है।[6] इसके अतिरिक्त प्रभास तीर्थ में एक राजकुमार ने आठ ब्राह्मणों का विवाह कराया था—'प्रभासे पुण्यतीर्थे'।[7] महाभारत[8] में भी इस प्रभास तीर्थ का अनेक स्थान पर उल्लेख हुआ है। प्रभास तीर्थ का सम्बन्ध महमूद गज़नवी के जीवन से बहुत है क्योंकि इसने अनेक बार यहां आक्रमण किया। इसी कारण इसका प्रसंग महमूद गज़नवी के जीवनचरित में प्राप्त होता है। सोमेश्वर ने 'प्रभास प्रथितं' शब्दों का प्रयोग किया है। इससे विदित होता है कि यह प्रभास तीर्थ उनके समय में बड़ा ही प्रसिद्ध था और पवित्र माना जाता था।

प्रभास के पश्चात् सोमेश्वर ने केदार तीर्थ का वर्णन किया है। केदार को बनारस के आठ शिव तीर्थों में से एक माना गया है। किन्तु एक केदार तेहरी गढ़वाल में स्थित है और केदारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है। यह समुद्र की सतह से ११७५० फि० ऊँचाई पर स्थित है।[9] केदार के विषय में पांच केदार के प्रसंग प्राप्त होते हैं—केदारनाथ, तुंगनाथ, रुद्रनाथ, मध्यमेश्वर तथा कल्पेश्वर[10]। मत्स्य,[11] कूर्म,[12] अग्नि[13] आदि

---

१. कूर्म पुराण २।३५।१५.१७। २. नारदीय पुराण २।७०।१.९५।

३. गरुड़ पुराण १।४।८१। ४. वामन पुराण ८४।२९।

५. Usavadata's Inscription at Nasik,
vide also Bombay Gazetteer, Vol. 16, p. 669,
vide Epigraphica Indica, Vol. I, p. 271 and p. 283,
vide Citra Prasasti of Saraigadeva dated Sainvat 1343 (1287 A. D.)

६. Epigraphica Indica, Vol. I, p. 271.

७. Usavadata's Inscription.

८. महाभारत वनपर्व ८२।५८, १३०।७, ८८।२०, ११८।१५, ११९।३; आदिपर्व २१८।२.८, शल्यपर्व ३५।४२।

९. विष्णु धर्मसूत्र ८५।१७।

१०. Vide U. P. Gazetteer, Vol. 36, p. 173.

११. मत्स्य पुराण १८१।२९।

१२. कूर्म पुराण १।३५।१२ और २।२०।३४।

१३. अग्नि पुराण ११२।५, लिंग पुराण १।९२।७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुराणों में भी केदार का प्रसंग प्राप्त होता है और इसे श्राद्ध करने का सबसे पवित्र स्थान माना गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह काश्मीर में स्थित है और विजयेश्वर के एक कोस नीचे स्थित है।[१] नारदीय पुराण इसे गया के समीप बतलाते हैं।[२] महाभारत[३] में भी केदार का उल्लेख हुआ है। सोमेश्वर ने केदार तीर्थ को क्लेशनाशक बतलाया है किन्तु उनका तात्पर्य किस केदार से है यह स्पष्ट नहीं है। सम्भवत: उनका आशय नारदीय पुराण में वर्णित केदार तीर्थ से है जो गया के पास है क्योंकि उन्होंने जिन तीर्थों का वर्णन किया है उनमें से अधिकांश दक्षिण में ही स्थित हैं।

इन तीर्थों के पश्चात् सोमेश्वर प्रयाग तथा काशी तीर्थों का वर्णन करते हैं जो भारत के महान तीर्थ माने जाते हैं। हिन्दू तीर्थों में प्रयाग, काशी तथा गया ये सर्वश्रेष्ठ तीर्थ माने जाते हैं और ये तीनों अपनी प्रसिद्धि के कारण त्रिस्थली के नाम से प्रसिद्ध हैं। नारायण भट्ट[४] ने (१५८० ई०) बनारस में 'त्रिस्थलीसेतु' नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने प्रयाग, काशी तथा गया तीनों का विस्तृत वर्णन किया है। प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन ऋग्वेद के खिल सूक्त[५] में किया गया है जो निम्नलिखित है—

सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥

त्रिस्थलीसेतु[६] इसे आश्वलायन शाखा के अन्तर्गत आई हुई श्रुति बतलाता है किन्तु तीर्थचिन्तामणि[७] इसे ऋग्वेद का ही सूक्त बतलाता है। इस सूक्त के अनुसार जो गंगा तथा यमुना (सित तथा असित) के संगम पर स्नान करता है वह स्वर्ग प्राप्त करता है और जो अपने शरीर को यहां समाप्त कर देता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है। मत्स्य[८], कूर्म[९], पद्म[१०] तथा स्कंद[११] पुराण प्रयाग को

---

१. Haracarita Cintamani of Jayadratha 8।69.

२. नारदीय पुराण २।४६।४६।

३. महाभारत वनपर्व ८७।२५।

४. नारायण भट्ट born in 1513 A. D. wrote this in about 1580 A. D.

५. ऋग्वेद १०।७५।

६. त्रिस्थलीसेतु, पृ० ३। ७. तीर्थचिंतामणि, पृ० ४७।

८. मत्स्य पुराण, अध्याय १०३ से ११२।

९. कूर्म पुराण १।३६.३९। १०. पद्म पुराण १।४०.४९।

११. स्कन्द पुराण काशीकांड ७।४५.६५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बहुत ही पवित्र स्थान होने का उल्लेख करते हैं। महाभारत के एक स्थल पर यह प्रसंग प्राप्त होता है—

दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापराः।
समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ॥
माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः।
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्॥[1]

इसी प्रकार महाभारत के अन्य स्थलों[2] पर भी प्रयाग का वर्णन हुआ है। वाल्मीकि रामायण में प्रयाग का केवल थोड़ा प्रसंग प्राप्त होता है।[3]

सोमेश्वर ने प्रयाग के लिए 'तीर्थराज'[4] शब्द का प्रयोग किया है और उसे इच्छित फल का देने वाला बतलाया है। प्रयाग के लिए तीर्थराज शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। तीर्थराज का अथ है तीर्थों का राजा। पद्म पुराण में 'स तीर्थराजो जयति प्रयागः' का प्रयोग हुआ है।[5] मत्स्य तथा स्कन्द पुराण भी इसी प्रसंग को प्रकट करते हैं। प्रयाग को तीर्थराज कहने का यही अभिप्राय है कि प्रजापति ब्रह्मा ने जब यज्ञ किया था तब यह प्रयाग ब्रह्मा के यज्ञ की वेदी के मध्य में पड़ा था। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा ने कुरुक्षेत्र में उत्तर वेदी तथा पूर्व की ओर गया में पूर्व वेदी बनाई थी। प्रयाग में गंगा, यमुना तथा सरस्वती तीनों धारायें मिलकर दो धाराओं में परिणत हो जाती हैं इसी से इसका नाम त्रिवेणी तथा संगम पड़ा। मत्स्य पुराण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥[6]

कूर्म[7] तथा अग्नि[8] पुराण में भी इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है। कूर्म पुराण में इसे प्रजापति का क्षेत्र कहा गया है।[9] मत्स्य[10] तथा नारदीय[11] पुराण भी इसे प्रजापति का क्षेत्र मानते हैं।

---

१. महाभारत अनुशासनपर्व २५।३६.३८।

२. महाभारत वनपर्व ८५।६९.९७। ३. रामायण २।५४।६।

४. 'प्रयागस्तीर्थराजश्च'—मानसोल्लास ११।८।१३१।

५. पद्म पुराण ६।२३।२७.३५।

६. मत्स्य० १०४।१२। ७. कूर्म० १।३६।२७

८. 'स्तवनादस्य तीर्थस्य' अग्नि पुराण १११।६.७।

९. एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ कूर्म पुराण १।३६।२०

१०. मत्स्य० १०४।५, १११।१४।

११. नारदीय पुराण उत्तर० ६३।१२७.२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रयाग में विष्णु सदैव अपनी योगमूर्ति में प्रतिष्ठित रहते हैं।[१] रुद्र भी यहाँ निवास करते हैं। जब उन्होंने अपने त्रिनेत्र से संसार को भस्मीभूत किया था उस समय प्रयाग नहीं भस्म हुआ था। इसी कारण मत्स्य पुराण में प्रयाग को त्रिदेवों का निवास स्थान बतलाया गया है—

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति॥
वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति।
माहेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः॥
ततो देवा सगंधर्वा सिद्धाश्च परमर्षयः।
रक्षन्ति मंडलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्॥[२]

कूर्म[३] तथा पद्म पुराण[४] में भी इसी प्रकार से समानता रखनेवाले श्लोक मिलते हैं। मत्स्य पुराण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि जो व्यक्ति एक मास तक सांसारिक प्रलोभनों एवं मैथुनादि क्रिया से विरक्त रहकर प्रयाग में निवास कर देवता एवं पितरों का पूजन करता है वह अपने इच्छित फल को प्राप्त करता है।[५] सोमेश्वर ने भी प्रयाग के विषय में 'चिन्तितार्थप्रदायकः'[६] शब्द का प्रयोग कर उसे बड़ा महत्त्वशाली तीर्थ बतलाया है। इसी प्रकार अर्घ्य तथा अनर्घ्य तीर्थों का भी प्रसंग दिया है जो सभी देवताओं के समूह से सेवित हैं।[७] अर्घ्य तीर्थ का प्रसंग गरुड़ पुराण में प्राप्त होता है।[८]

प्रयाग के पश्चात् सोमेश्वर ने वाराणसी (बनारस, काशी) तीर्थ का वर्णन किया है। बनारस भारत के सभी तीर्थों में बड़ा तथा पवित्र तीर्थ माना जाता है क्योंकि यह धर्म एवं अध्ययन दोनों दृष्टिकोणों से उत्तम है। सर्वप्रथम इस नगरी का नाम काशी पड़ा किन्तु प्राचीन बौद्ध साहित्य में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि बुद्ध के समय में बनारस भी चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, कौशाम्बी आदि नगरों की ही भांति प्रसिद्ध नगर था।[९] इसके अतिरिक्त काशी १६ जनपदों में से थी[१०] जिसकी राजधानी वाराणसी थी। प्रारम्भिक जातकों में ऐसा

---

१. नारदीय पुराण ६५।१७। २. मत्स्य पुराण १११।४.१०।
३. कूर्म० १।३६।२३.२६। ४. पद्म० आदिखंड ४१।६.१०।
५. मत्स्य पुराण १०४।१८। ६. मानसोल्लास १।१८।१३१।
७. वही। ८. गरुड़ पुराण १।८१।७।
९. महापरिनिब्बानसुत्त (S. B. E. Vol. XI, p-90) तथा महासुदस्सन सुत्त, पृ० २४७।
१०. अंगुत्तर निकाय १।२१३, ४।२५२।२५५।२५६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रसंग प्राप्त होता है कि वाराणसी राजधानी के सुरन्धन, सुदस्सन, ब्रह्मवद्धन पुप्फवटीरम्भ आदि अनेक नाम थे।[1] यद्यपि बुद्ध ने गया में ज्ञान प्राप्त किया था किन्तु उनको उपदेशों के लिए बनारस ही आना पड़ा।[2] बनारस के राजा ब्रह्मदत्त का भी अनेक जातकों में नाम आया है। सौ ब्रह्मदत्त तथा सौ काशीय राजाओं का उल्लेख पुराणों में प्राप्त होता है।[3] अश्वघोष ने अपने बुद्ध चरित में लिखा है—

वाराणसीं प्रविश्याथ भासा सम्भासयञ्जिनः।
चकार काशीदेशीयान् कौतुकाक्रान्तचेतसः॥[4]

यहाँ सर्वप्रथम वे बणारा के समीप के वृक्ष के नीचे गए। यही बणारा संभवतः वरणा थी। इसी कारण इसका वाराणसी नाम पड़ा।

वाराणसी का सम्बन्ध वरणावती नदी[5] से भी हो सकता है किन्तु यह अधिक उपयुक्त नहीं क्योंकि इसका वास्तविक नाम वरणावती न होकर वरणा था।[6] पुराणों में भी वाराणसी नगर का उल्लेख हुआ है। नारदीय पुराण में इस नगर का वाराणसी नाम के साथ 'अविमुक्त' नाम भी प्रयुक्त हुआ है।[7] अग्नि पुराण में वाराणसी नगर का प्रसंग प्राप्त होता है।[8] पुराणों के अतिरिक्त रामायण में भी वाराणसी नाम आया है।[9] विष्णु पुराण में काशी, वाराणसी, 'अविमुक्त' तीन नामों का प्रयोग हुआ है।[10] वास्तव में यहाँ पर बहनेवाली दो धाराओं वरणा तथा असी के कारण इस क्षेत्र का नाम वाराणसी पड़ा—

वरणा च नदी नासी मध्ये वाराणसी तयोः[11]

किन्तु वास्तव में नासी का उपयुक्त नाम असी है। वरणा तथा नासी के विषय में ऐसा कहा जाता है—

सर्वानिन्द्रियकृतान्दोषान्वारयतीति वरणा भवति।
सर्वानिन्द्रियकृतान्पापान्नाशयतीति तेन नासी भवतीति।[12]

---

१. जातक ४।११९।१२०।
२. S. B. E. Vol. XI, p.153, महावग्ग S. B. E., Vol. 17, p-21.
३. मत्स्य० २७३।७२.७३।
४. बुद्ध चरित १५।१०१।
५. अथर्ववेद ४।७।
६. वैदिक इन्डेक्स।
७. नारदीय पु० पूर्वार्ध ६।३५।
८. अग्नि पु० ११२।३।
९. वाल्मीकि रामायण उत्तर० ३८।१८।
१०. विष्णु पु० ५।३५।१४, २१,२५,३०,३९।
११. अग्नि पु० ११२।६।
१२. जाबालोपनिषद्, द्वितीय पैरा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाराणसी के विषय में सोमेश्वर ने 'महापुण्या'[1] शब्द का प्रयोग संभवतः इसी कारण किया है। जाबालोपनिषद् में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि अत्रि द्वारा आत्मा के ज्ञान के विषय में पूछने पर याज्ञवल्क्य ने उनसे कहा कि व्यक्ति अविमुक्त में पूजन एवं ध्यान करे और "अभिमुक्तकीं वरणायां नास्यां च मध्ये प्रतिष्ठत इति" कहकर उसकी स्थिति बतलाई है।[2] इसका अविमुक्तक नाम इस इस कारण पड़ा कि शिव जी इसे प्रलय काल में भी नष्ट नहीं कर सके—

सुने प्रलयकालेपि न तत्क्षेत्रं कदाचन।
विमुक्तं हि शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततो विदुः ॥[3]

लिंग पुराण में अविमुक्त के सम्बन्ध में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

अविशब्देन पापस्तु वेदोक्तः कथ्यते द्विजैः।
तेन मुक्तं मया जुष्टमविमुक्तमतोच्यते ॥[4]

सोमेश्वर ने वाराणसी के प्रसंग में 'महादेवनिषेविता'[5] का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है जो महादेव जी से सेवित हो। वास्तव में यह नगरी शंकर जी को बहुत प्रिय है। लिंग पुराण में अविमुक्त के लिए आनन्दवन का भी प्रयोग किया गया है क्योंकि यह शिव जी की प्रसन्नता का कारण है। यह शंकर जी को पार्वती जी के ही समान प्रिय है—

यथा प्रियतमा देवि मम त्वं सर्वसुन्दरि।
तथा प्रियतरं चैतन्मे सदानन्दकाननम् ॥[6]

इसी कारण महादेव जी का यहां सदैव निवास रहता है। यहां मरने से व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त करता है। जब महादेव जी मन्द्र पर्वत पर निवास करने के लिए जाने लगे तो काशी को न त्याग सकने के कारण वे अपना लिंग वहीं पर छोड़ गए।[7]

वाराणसी के लिए स्कन्द पुराण में 'महाश्मशान'[8] शब्द का प्रयोग हुआ है। वाराणसी के मणिकर्णिका घाट पर अनेक शवदाह होते हैं। यह गंगा के ही तट पर है अतः अपवित्र होने पर भी पवित्र माना जाता है। जिस प्रकार श्मशान में शव को लाकर लिटाया जाता है (श्मशब्देन शवः प्रोक्तः

---

१. 'वाराणसी महापुण्या' मानसोल्लास १।१८।१३२।
२. जाबालोपनिषद् द्वितीय पैरा। ३. स्कन्द पु० काशी० २६।२७।
४. लिंग पु० (पूर्वार्ध) ९२।१४३। ५. मानसोल्लास १।१८।१३२।
६. लिंग पुराण काशीखण्ड ३२।१११।
७. स्कन्द पुराण काशीखण्ड ३९।७४। ८. स्कन्द पुराण ३०।१११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शानं शयनमुच्यते), उसी प्रकार संसार के प्रलय काल के पश्चात् समस्त भूत एवं तत्व शव के रूप में यहीं आकर लेटते हैं। इसी कारण यह महाश्मशान माना गया है।[1] यहां पर रुद्र देवता सदैव निवास करते हैं—

वाराणसीति काशीति रुद्रावास इति द्विजः।
महाश्मशानमित्येवं प्रोक्तमानन्दकाननम् ॥[2]

वाराणसी के विषय में पद्म पुराण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि इसके पश्चिम की ओर गोकर्णेश्वर, पूर्व में गंगा की पवित्र धारा, उत्तर में भारभूत तथा दक्षिण में ब्रह्मेश्वर स्थित हैं।[3] इसी प्रकार का प्रसंग स्कन्द पुराण में भी प्राप्त होता है—

पूर्वतो मणिकर्णीशो ब्रह्मेशो दक्षिणे स्थितः।
पश्चिमे चैव गोकर्णो भारभूतस्त्वथोत्तरे ॥
इत्येतदुत्तमं क्षेत्रमविमुक्तं महाफलम्।[4]

नारदीय पुराण में वाराणसी के विषय में ऐसा उल्लेख हुआ है कि यह दो योजन की विस्तृत नगरी है जो एक योजन पूर्व से पश्चिम तक तथा एक योजन उत्तर से दक्षिण तक फैली है। महादेव जी ने इसके विस्तार को वरणा तथा असि के मध्य बताया है, जो बाद में सूख गई।[5] इसके प्रभाव का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। इसी कारण सोमेश्वर देव ने भी 'महाप्रभाव-संयुक्ता'[6] का प्रयोग किया है।

सोमेश्वर ने अपनी पुस्तक में वाराणसी को 'महापातकनाशिनी'[7] बताया है। यहां पर आकर व्यक्ति अपने समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इसका वर्णन तो पूर्व में ही हो चुका है किन्तु महाभारत में वाराणसी के विषय में ऐसा भी प्रसंग प्राप्त होता है—

अविमुक्तं समासाद्य तीर्थसेवी कुरूद्वह।
दर्शनाद्देवदेवस्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥[8]

---

१. स्कन्द पुराण काशी खण्ड ३०।१०३.४।
२. वही ३०।१११।
३. पद्म पुराण पाताल खण्ड quoted by. त्रिस्थलीसेतु, पृ० १०१।
४. स्कन्द पुराण काशी खण्ड ७४।४५.४६।
५. नारदीय पुराण उत्तरार्ध ४८।१८.१९।
६. मानसोल्लास १।१८।१३२। ७. वही।
८. महाभारत वनपर्व ८४।७९.८०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अर्थात यहां रहकर, स्नान कर, देवी-देवताओं के दर्शन कर व्यक्ति ब्रह्महत्या आदि महापातकों से भी मुक्त हो जाता है।

मत्स्य पुराण में वाराणसी के विषय में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसंचितम्।
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः॥
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये।
चन्द्रार्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः।
शिवे मम पुरे देवि मोदन्ते तत्र मानवाः॥[१]

जो भी पापी, शठ, अधार्मिक व्यक्ति वाराणसी में प्रवेश करता है वह भी अपने सभी पापों से मुक्त हो जाता है,[२] यहांतक कि अनजान में भी किए गए सभी स्त्री-पुरुषों के पाप यहां आकर क्षय को प्राप्त होते हैं।[3] इसी कारण संभवतः सोमेश्वर ने भी काशी के लिए 'महापातकनाशिनी' शब्द का प्रयोग किया है।

यद्यपि काशी के तीन नामों काशी, वाराणसी तथा अविमुक्त का ऊपर उल्लेख किया गया है किन्तु सोमेश्वर ने उन तीनों में वाराणसी शब्द का इसी कारण विशेष रूप से प्रयोग किया है कि तीर्थस्नान के अध्याय के अन्तर्गत उसी शब्द का प्रयोग[४] अधिक उपयुक्त है जो नदियों से सम्बद्ध हो। काशी का वाराणसी नाम वरणा तथा असी नदी से ही सम्बद्ध है।

इन सब तीर्थों का वर्णन कर लेने पर सोमेश्वर सरस्वती, यमुना, जाह्नवी तथा नर्मदा के स्नान के महत्व का वर्णन करते हैं। सरस्वती में तीन बार स्नान करने पर, यमुना में पांच बार तथा जाह्नवी में स्नान करने पर तुरन्त तथा नर्मदा के दर्शन कर लेने से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं।[४] इस श्लोक को संभवतः सोमेश्वर ने पुराणों के ही आधार पर लिखा है। मत्स्य पुराण में भी कुछ का प्रसंग प्राप्त होता है—

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गांगेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥[५]

सोमेश्वर ने यमुना में पांच दिन स्नान करने पर पापों के क्षय होने का उल्लेख किया है किन्तु और सब जगह एक सप्ताह तक यमुना में स्नान करने पर पवित्र

---

१. मत्स्य० १८७।१७.२१, पद्म० १।३३।१७.२०।
२. मत्स्य० १८३।११। ३. नारदीय पु० (उत्तर०) ४८।३३.३४।
४. मानसोल्लास १।१८।१३३। ५. मत्स्य पुराण १८६।११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होने का प्रसंग प्राप्त होता है। गंगा की प्रधानता सभी स्थानों पर मानी गई है। भविष्यत् पुराण भी गंगा के दर्शन, स्पर्श आदि से पुनीत होने को बताता है।

दर्शनात्स्पर्शनात्पानात् तथा गंगेति कीर्तनात्।
स्मरणादेव गंगायाः सद्यः पापैः प्रमुच्यते॥[1]

स्कन्द पुराण में तो गंगा के स्मरण मात्र से ही मुक्ति मानी गई है—

गच्छंस्तिष्ठञ्जपन्ध्यायन् भुञ्जन् जाग्रत् स्वपन्वदन्।
यः स्मरेत् सततं गंगां सोऽपि मुच्येत बन्धनात्॥[2]

इसी प्रकार गंगा में स्नान करने तथा उसका जल पान करने से—

अवगाह्य च पीत्वा तु पुनीत्यासप्तमं कुलम्।[3]

सात कुलों तक पुनीत हो जाने का उल्लेख है।

नर्मदा को सभी स्थानों में पवित्र माना गया है, इसी कारण उसके दर्शन से ही मुक्ति मानी गई है। नर्मदा की पवित्रता के विषय में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

पुण्या कनखले गंगा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥[4]

इसके अतिरिक्त नर्मदा को भगवान रुद्र की देह से निसृत होने का उल्लेख हुआ है—

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥[5]

वायु पुराण नर्मदा को पितरों की दुहिता मानता है—

पितृणां दुहिता पुण्या नर्मदा सरितां वरा।
तत्र श्राद्धानि दत्तानि अक्षयाणि भवन्त्युत॥[6]

---

१. भविष्यत् पुराण quoted by तीर्थचिन्तामणि, पृ० १९८।
२. स्कन्द पुराण काशीखण्ड पूर्वार्ध २७।३७।
३. मत्स्य पु० १०४।१४.१५। ४. मत्स्य पुराण १८६।१०.११।
५. मत्स्य० १९०।१७, कूर्म० २।४०।५, पद्म० आदि० १७।१३।
६. वायु पुराण ७७।३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसी कारण संभवतः सोमेश्वर ने भी 'दर्शनादेव नर्मदा'[1] का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त यह पंक्ति उनके स्थानीय प्रभाव को भी द्योतित करती है।

इस प्रकार तीर्थ में स्नान कर व्यक्ति पापों से छूट जाता है और अपने ईप्सित फल को प्राप्त कर राजा की भांति प्रसन्न होता है। सोमेश्वर का 'महेन्द्रवत्'[2] शब्द संभवतः इस बात को द्योतित करता है कि जो इन्होंने तीर्थस्थानों का वर्णन किया है वह राजा के लिए ही विशेष रूप से आवश्यक नहीं वरन् सम्पूर्ण जनता के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इस प्रसंग से सोमेश्वर की तीर्थों के प्रति श्रद्धा भी प्रकट होती है।

दीनानाथार्त-बन्धु-भृत्य-पोषण

तीर्थस्नान के अध्याय के पश्चात् सोमेश्वर ने दीन, अनाथ, आर्त, बन्धु तथा भृत्य का पोषण करना राजा का परम कर्तव्य बतलाया है। इस प्रकरण में महाराज सोमेश्वर दीन की रक्षा करने के पूर्व दीन की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि जो दरिद्रता के कारण दीन होकर किसी वस्तु की इच्छा से 'दो' ऐसे कृपण वचन बोलता है वही दीन है।[3] दीनता का वास्तविक अर्थ हीनता है। जब व्यक्ति किसी वस्तु की आकांक्षा करता है और वह वस्तु उसके पास नहीं होती तो वह अपने को हीन समझने लगता है और जब वह किसी से वह वस्तु मांगने की इच्छा करता है तो कृपण एवं हीन बनकर याचना करता है। यही दीन का लक्षण है। दया से आर्द्र हृदय वाले राजा को चाहिए कि ऐसे दीन को धर्मार्थ की स्पृहा से मनोवांछित द्रव्य दे। शार्गंधरपद्धति में भी याचक को 'दो'[4] ऐसे वचन बोलने वाला कहा है। इसके अतिरिक्त 'न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम्' तथा 'ददामीत्यक्षरैर्दातुः' आदि का आश्रय लेने वाला दीन तथा याचक होता है।

दीन के पश्चात् सोमेश्वर ने अनाथ की रक्षा करने के उपदेश के साथ-साथ उनका लक्षण इस प्रकार दिया है, कि माता, पिता, मित्र, बन्धु, बान्धव तथा स्वामी से हीन व्यक्ति को अनाथ कहते हैं।[5] वास्तव में संसार में जिसका

---

१. मानसोल्लास १।१८।१३३। २. वही १।१८।१३४।

३. वही १।१९।१३५।

४. "देहीति वक्तुकाम शार्गंधरपद्धति" ३९२, ७३।१३।

५. माता पित्रोर्विहीनस्तु रहितो मित्र बान्धवैः।
विगतः स्वामि बन्धूनामनाथः परिचक्ष्यते ॥
मानसोल्लास १।१९।१३७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कोई नहीं होता उसी को अनाथ कहते हैं। अनाथ शब्द का अर्थ ही है नाथ से हीन। नाथ का अर्थ है स्वामी अथवा भरण-पोषण करनेवाला। ऐसे अनाथों की सेवा करना राजा का परम कर्तव्य है।

अनाथ के बाद आर्त व्यक्ति की रक्षा का वर्णन किया गया है। आर्त का अर्थ है जो दुःखी हो, रोगी हो अथवा हीन हो। ऐसे व्यक्ति की सोमेश्वर महाराज ने यन्त्र, तन्त्र, क्रिया द्वारा तथा पान, अन्न, शय्या, आसन द्वारा सहायता करने का आदेश दिया है।[1] आर्तों का अधिकांशतः पीड़ितों से ही अर्थ लिया है इसी कारण इनकी सहायता के प्रकरण में राजा ने अनेक प्रकार की औषधियों, अन्न एवं उपचारों का वर्णन किया है।

आर्तों के बाद बान्धवों का उल्लेख है। अपने बन्धु-बान्धवों को भी सन्तुष्ट रखना राजा का कर्त्तव्य है। पिता के सम्बन्ध से उद्भूत, माता के सम्बन्ध से उद्भूत तथा अपने सम्बन्ध से सम्बन्धित व्यक्ति बान्धव हैं। माता के सम्बन्धी, पिता के सम्बन्धी तथा विवाह के पश्चात् से बने हुए अपने सम्बन्धी बान्धव कहलाते हैं।[2] विवाहादि उत्सव में, आपत्ति में, अकाल में, राज्य के पलटने में, राजद्वार में तथा श्मशान में साथ रहने वाले व्यक्ति भी बान्धव बतलाये गए हैं।[3] ऐसे बान्धवों के साथ सोमेश्वर ने मधुर बचन बोलने का तथा यथायोग्य समान आसन देने का आदेश दिया है और सुवर्ण, वस्त्र एवं भूषण के संविभाग द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करना आवश्यक बतलाया है।[4] बान्धवों का स्थान समानता का ही होता है इसी कारण उन्हें समान आसन प्रदान करने का आदेश दिया है।

भृत्यों का लक्षण सोमेश्वर ने इस प्रकार दिया है—वेतन लेनेवाले, किंकर, दासी, दास, कर्मकर तथा जो बुद्धि एवं खड्ग की सहायता लेते हों वे भृत्य हैं।[5]

इन सबका सम्यक् प्रकार से रक्षण तथा भरण-पोषण कर दान एवं सम्मान द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिए। ऐसा कर्म राजा के लिए दोनों लोकों में

१. मानसोल्लास १।१९।१३८।

२. वही १।१९।३०१।

३. उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः॥
हितोपदेश मित्रलाभ ७३।

४. मानसोल्लास १।१९।३०२

५. वैतनाः किंकरा दास्यो दासाः कर्मकरास्तथा।
बुद्धिखड्गसहायाश्च भृत्यास्ते परिकीर्तिताः॥
वही १।१९।३०३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुख देने वाला होता है।[१] सोमेश्वर ने जो भृत्यों का उल्लेख किया है उसमें सात प्रकार के भृत्यों का वर्णन किया है। १. वैतन (जो मासिक अथवा वार्षिक बंधा हुआ वेतन पाता हो), २. किंकर (जो भृत्य भृति-कार्य तो करता हो किन्तु साथ ही साथ उसे कुछ सम्मान भी प्राप्त हो), ३. दास (जो नित्य कर्म के लिए निम्न जाति का व्यक्ति हो), ४. दासी (निम्न जाति की स्त्री जिसका सम्पर्क विशेष रूप से स्त्रीजनों से ही होता था), ५. कर्मकर (जो थोड़ी देर के लिए एक निश्चित भृति करवाकर कार्य करते थे), ६. बुद्धि की सहायता से भृति कर्म करने वाले (बुद्धिसहाय) और ७. वे भृत्य जो खड्ग तथा अस्त्र-शस्त्र की सहायता से भृति कार्य करते थे (खड्गसहाय)।

भृत्यों की भृति पर भृति के ज्ञाताओं ने बहुत कुछ लिखा है। शुक्र ने भी भृत्यों के तीन प्रकारों का वर्णन किया है जो सोमेश्वर के भृत्यों से मिलते-जुलते हैं किन्तु उनके नाम भिन्न प्रकार के हैं। एक निश्चित भृति करवाकर जो भृत्य थोड़ी देर के लिए कार्य करता था उसे कार्यमाना भृति कहते हैं। उसका वर्णन शुक्र ने इस प्रकार किया है—

अयं भारस्त्वया तत्र स्थाप्यस्त्वेतावतीं भृतिम्।
दास्यामि कार्यमाना सा कीर्तिता तद्विदेशकैः॥[२]

संभवतः सोमेश्वर द्वारा कथित कर्मकर भृत्य इसी से मिलते-जुलते हैं। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने जो वेतन लेने वाले भृत्यों का वर्णन किया है शुक्र ने उन भृत्यों की भृति को कालिका भृति कह कर उसका निम्नप्रकार से प्रसंग दिया है—

वत्सरे वत्सरे वापि मासि मासि दिने दिने।
एतावतीं भृतिं तेऽहं दास्यामीति च कालिका॥[३]

इस भृति में भृत्य बंधा हुआ वेतन निश्चित समय पर पाता था। तत्पश्चात् शुक्र ने एक प्रकार की कार्यकालमिता[४] भृति का वर्णन किया है जिसमें एक निश्चित कार्य पूर्ण करना पड़ता है। अतः भृत्य इसमें अवश्य ही शारीरिक

---

१. एतेषां रक्षणं सम्यक् तथा भरणपोषणम्।
दानं सम्माननं कार्यं लोकद्वयहितैषिणा॥
वही १।१९।३०४।

२. शुक्र० २।३८६।
३. वही २।३८७।

४. एतावता कार्यमिदं कालेनापि त्वया कृतम्।
भृतिमेतावतीं दास्ये कार्यकालमिता च सा॥ वही २।८८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बल के साथ बुद्धिबल का भी प्रयोग करते हैं। सोमेश्वर के बुद्धिसहाय भृत्य इसी प्रकार के प्रतीत होते हैं।

शुक्र ने मन्द, मध्यम तथा श्रेष्ठ इन तीन प्रकार के भृत्यों का वर्णन किया है।[1] यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो सोमेश्वर के भृत्य भी तीन प्रकार के ही प्रतीत होते हैं। वेतन, बुद्धि तथा खड्गसहाय भृत्य श्रेष्ठ प्रकार के, किंकर मध्यम प्रकार के तथा दास, दासी एवं कर्मकर मन्द प्रकार के भृत्य प्रतीत होते हैं। सभी प्रकार के भृत्यों का पूर्णरूपेण भरण-पोषण राजा को करना चाहिए, ऐसा आदेश सोमेश्वर ने राजा के लिए दिया है। राजा को चाहिए कि उनकी रक्षा करे, उन्हें दान दे, उनका सम्मान करे। शुक्र ने भी भृत्य को ठीक समय पर वेतन देकर उन्हें कोमल वचनों से शान्त रखने, अधिक वेतन देकर सुख पहुंचाने, हंसी की बात से प्रसन्न रखने, सुन्दर वस्त्र तथा सुस्वादु भोजन देकर, आभूषण देकर, छत्र-चमरादि देकर, किन्हीं को सत्कार से तथा किन्हीं को क्षमा से, किसी को समान आसन, किसी को आधा आसन तथा किसी को दूर आसन देकर तथा किन्हीं भृत्यों के किए गए उपकारों की प्रशंसा करके राजा को चाहिए कि वह भृत्यों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करे।[2] सेवकों द्वारा भी राजा के सम्मान की एवं यश की वृद्धि होती है। राजा को सदैव भृत्यों पर कृपालु रहना चाहिए तथा भृत्य के गुण, बुद्धि, अवस्था तथा वर्ण का ध्यान रखकर

---

१. स्वीया तथा च सामान्या परकीया तु स्त्री यथा।
त्रिविधो भृतकस्तद्वदुत्तमो मध्यमोऽधमः ॥ वही ४।१३०६।

२. भृत्यं प्रशिक्षयेन्नित्यं शत्रुत्वं त्वपमानतः।
भृतिदानेन संपुष्टा मानेन परिवर्धिताः ॥
सांत्विता मृदुवाचा ये न त्यजंत्यधिपं हि ते।
यथा गुणान्स्वभृत्यांश्च प्रजाः संरंजयेन्नृपः ॥
शाखाप्रदानतः कांश्चिदपरान्फलदानतः।
अन्यान्सुचक्षुषा हास्यैस्तथा कोमलया गिरा ॥
सुभोजनैः सुवसनैस्ताम्बूलैश्च धनैरपि।
कांश्चित्सुकुशलप्रश्नैरधिकारप्रदानतः ॥
वाहनानां प्रदानेन योग्याभरणदानतः।
छत्रातपत्रचमरदीपिकानां प्रदानतः ॥
क्षमया प्रणिपातेन मानेनाभिगमेन च।
सत्कारेण च ज्ञानेन ह्यादरेण शमेन च ॥
प्रेम्णा समीपवासेन स्वार्धासनप्रदानतः।
संपूर्णासनदानेन स्तुत्योपकारकीर्तनात् ॥ वही २।४०८.४१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उसे भृति का कार्य प्रदान करना चाहिए। योग्य सेवक राजा को बार-बार नहीं प्राप्त होते। किन्तु राज्य का भूमि खंड नष्ट होकर राजा को पुनः प्राप्त हो सकता है।[१]

सोमेश्वर ने जो भृत्यों का वर्णन किया है उससे विदित होता है कि सोमेश्वर अपने भृत्यों का सम्मान करता था, उन्हें प्रसन्न रखता था, धनादि दान करता था तथा अन्न-वस्त्रादि देकर उनका भरण-पोषण करता था।

शरणागत-रक्षा

इतने विशाल राज्य का रक्षक एवं सर्वशक्तिशाली व्यक्ति होने के कारण सम्पूर्ण राज्य के व्यक्तियों की रक्षा का भार भी राजा को ही वहन करना पड़ता है। राजा को सम्पूर्ण राज्य के प्रत्येक विषय का ज्ञान रहता है। इसी कारण शतपथ ब्राह्मण में उसके लिए 'पुराम् भेत्ता'[२] शब्द का प्रयोग हुआ है। किसी पर आपत्ति आ पड़ने पर उसे अभयदान देना राजा का परम कर्तव्य है। इसी कारण सोमेश्वर ने भी अपने मानसोल्लास में शरणागत की रक्षा पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। सर्वप्रथम इस प्रसंग में वे शरणागत की परिभाषा देते हैं कि व्याघ्र, सिंह, गज, चोर, शत्रु के सताने पर भय से भागा हुआ जो व्यक्ति रक्षा के ध्येय से शरण में आता है उसी को शरणागत कहा जाता है।[३]

इस प्रकार के शरण में आए हुए व्यक्ति की जो धन तथा प्राणों से रक्षा करता है वह महान यश को प्राप्त कर सब व्यक्तियों द्वारा पूजा जाता है।[४] धर्मशास्त्रों में भी शरणागत की रक्षा के महान यश का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। याज्ञवल्क्य ने राजा के अन्य कर्तव्यों के साथ प्रजा के अभय दान पर भी विशेष बल दिया है।[५] मनु ने भी शरण में आए हुए आर्त व्यक्ति की सब प्रकार से रक्षा करने का आदेश दिया है। वे शरण में आए हुए व्यक्ति के

---

१. भूम्येकदेशस्य गुणान्वितस्य भृत्यस्य वा बुद्धिमतः प्रणाशः।
भृत्यप्रणाशो मरणं नृपाणां नष्टापि भूमिः सुलभा न भृत्याः॥

२. शतपथ ब्राह्मण।

३. व्याघ्रसिंहगजैश्चौरैः शत्रुभिश्चापि विद्रुतः।
भयाच्छरणमायातः शरणागत उच्यते॥ मानसोल्लास १।२०।३०५।

४. रक्षेच्छरणमायातं प्राणैरपि धनैरपि।
स यशो महदाप्नोति जनैः सर्वैः प्रपूज्यते॥ वही १।२०।३०६।

५. नातः परतरो धर्मो नृपाणां यद्रणार्जितम्।
विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाभयं सदा॥ याज्ञ० राजधर्म प्र० २३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परित्याग को महान पाप मानते हैं और उसका प्रायश्चित्त एक वर्ष तक जौ खाकर करने को बताते हैं—

शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः।
संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥[१]

यहां तक कि मनु ने शरणागत का परित्याग करने वाले व्यक्ति के साथ निवास करने का भी निषेध किया है—

शरणागतहन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत्।[२]

शरण में आए हुए जीव को अभयदान प्रदान करना महापुण्य एवं महादान माना गया है—

न भूप्रदानं न सुवर्णदानं न गोप्रदानं न तथान्नदानम्।
यथा वदन्तीह महाप्रदानं सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ॥[३]

अर्थात् भूमिदान, सुवर्णदान, गोदान तथा अन्नदान से भी अधिक महत्वशाली अभयदान है। इसके अतिरिक्त सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले अश्वमेध यज्ञ से प्राप्त हुए फल के बराबर फल शरण में आए हुए की रक्षा करने से माना गया है।[४]

इसके अतिरिक्त प्राचीन धर्मग्रन्थों में भी शरणागत-पालन पर अधिक बल दिया गया है। पुराणों में राजा शिवि आदि अनेक ऐसे राजाओं के प्रसंग प्राप्त होते हैं जिन्होंने शरणागत की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

सोमेश्वर देव ने शरणागत उसी को बताया है जो अत्यन्त भयभीत होकर भागा हुआ हो और अपने प्राणों की रक्षा की उत्कट इच्छा प्रकट करता हो क्योंकि व्याघ्र, सिंह, गज, चोर यह चारों ही व्यक्ति के लिए भयानक एवं प्राणघातक जीव हैं। इनसे अचानक सम्पर्क हो जाने पर व्यक्ति भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा के लिए भागता है चाहे वह सफल हो या न हो। इस कारण उस व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए और यदि प्राणों को देकर भी उसकी रक्षा करनी पड़े तो करनी चाहिए। ऐसे शरणागत पालक को सभी सम्मान देते हैं और उसका यश भी फैलता है। यह प्रसंग इस बात को स्पष्ट

---

१. मनु० ११।१९८।
२. वही ११।१९०।
३. हितोपदेश संधि प्र० श्लोक ५६।
४. सर्वकामसमृद्धस्य अश्वमेधस्य यत्फलम्।
तत्फलं लभते सम्यग्रक्षिते शरणागते ॥ वही श्लोक ५७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करता है कि सोमेश्वर दीन तथा शरण में आए हुए व्यक्ति की प्रत्येक प्रकार से रक्षा करता था और उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता था।

(ख) राज्य का स्थिरीकरण

१. सोमेश्वर तथा सप्तप्रकृति राज्य

राज्य को प्राप्त करने के उपायों के वर्णन के पश्चात् महाराज सोमेश्वर उसको स्थिर करने के भी बीस साधनों का उल्लेख करते हैं क्योंकि राज्य को प्राप्त करने के साथ ही साथ उसकी सुचारु रूप से रक्षा करना राजा का परम कर्तव्य है। इन बीस साधनों के अन्तर्गत राज्य की सप्त प्रकृतियाँ, तीन शक्तियां, छः गुण तथा चार उपाय आते हैं।

राजनीति सम्बन्धी विषयों में सोमेश्वर ने अधिकांशतः कौटिल्य के अर्थशास्त्र का ही आधार लिया है जैसा कि आगे के पृष्ठों में किये गये तुलनात्मक अध्ययन से विदित होगा किन्तु कौटिल्य तथा सोमेश्वर के राजनीति-सम्बन्धी दृष्टिकोणों मे थोड़ा अन्तर विदित होता है जिसके कारण कहीं-कहीं पर मतभेद स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। कौटिल्य की राजनीति पूर्णरूप से सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की राज्यसीमा का विस्तार करने के उद्देश्य पर आधारित है। अतः वह मुख्यतः युद्ध-सम्बन्धी परिस्थितियों की दृष्टि से प्रतिपादित की गई है। सोमेश्वर की राजनीति के सिद्धान्त राज्य को स्थिर एवं दृढ़ करने के प्रयत्नों से पूर्ण हैं क्योंकि उन्होंने राजनीति सम्बन्धी प्रकरण को 'स्थैर्यकारणविंशति' शीर्षक दिया है।[१] इससे विदित होता है कि सोमेश्वर की राजनीति शान्तिकालीन राजनीति है। सम्भवतः इसी कारण जहां पर उन्हें कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अनुपयुक्त प्रतीत हुए वहां उन्होंने राजनीति के अन्य आचार्यों का सिद्धान्त अपनाया है अथवा देश एवं काल का विचार करते हुए अपने स्वतन्त्र सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। अतः मानसोल्लास की प्रथम दो विंशतियाँ मध्यकालीन भारत के राजनैतिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में प्रामाणिक आधार मानी जा सकती हैं।

सोमेश्वर के अनुसार स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग तथा बल ये राज्य की सात प्रकृतियां अथवा अंग हैं—

स्वाम्यमात्य-सुहृत्-कोश-राष्ट्र-दुर्ग-बलानि च ॥[२]

प्रकृति शब्द राजनीति में अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त होता है। मनु ने इसे मंडल के अंग के अर्थ में प्रयुक्त किया है—

१. मानसोल्लास २।१।१ तथा २।२०।१३०० ।

२. वही अनुक्रमणिका श्लोक २० ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एताः प्रकृतयो मूलं मंडलस्य समासतः ॥[1]

शुक्रनीतिसार[2] में यह शब्द मन्त्रियों के अर्थ में आया है। खारवेल के शिलालेख[3], नारद स्मृति[4] तथा रघुवंश[5] में इसका प्रयोग प्रजा के अर्थ में हुआ है।

राजनीति सम्बन्धी सभी प्राचीन ग्रंथों ने इन सात अंगों को माना है। अन्तर केवल शब्दों और क्रम का है। राष्ट्र के लिए कहीं-कहीं पर जन अथवा जनपद शब्द, दण्ड के लिए बल तथा दुर्ग के लिए पुर शब्द मिलता है। सरस्वती विलास[6] ने सुमन्तु का उद्धरण देते हुये दण्ड का अर्थ शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड लिया है तथा सेना की गणना कोश के अन्तर्गत की है।

प्रकृतियों के क्रम का अध्ययन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आपत्ति के समय किसी भी पूर्व प्रकृति पर आई हुई आपत्ति उसके बाद की प्रकृति की अपेक्षा अधिक विचारणीय है। कुछ शास्त्रकारों ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है। मनु का कथन है कि सात प्रकृतियों में यथाक्रम प्रत्येक पूर्व की प्रकृति को उसके बाद की प्रकृति की अपेक्षा अतिशय व्यसन से अधिक हानि समझनी चाहिये—

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम्।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद् व्यसनं महत्॥[7]

इसी प्रकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड और मित्र इन पर विपत्ति आने पर अगले की अपेक्षा पूर्व पर आपत्ति पड़ना कष्टदायक है, जैसे यदि राजा और अमात्य दोनों पर विपत्ति पड़े तो राजा की विपत्ति अधिक भयंकर है। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये—

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्रव्यसनानां पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः॥[8]

सोमेश्वर ने प्रकृतियों के किस क्रम को अपनाया है इसमें थोड़ा सन्देह है क्योंकि मानसोल्लास[9] की प्रति में स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, कोश, दुर्ग, बल, सुहृत् यह क्रम मिलता है किन्तु 'अभिलषितार्थचिन्तामणि'[10] नाम की प्रति में

१. मनु० ७।१५६। २. शुक्रनीतिसार २।७०.७३।
३. एपीग्रैफिका इण्डिका खंड २० पृ० ७९।
४. नारदस्मृति प्रकीर्णक ५। ५. रघुवंश ८।१८।
६. सरस्वतीविलास पृ० ४६। ७. मनु० ९।२९५।
८. कौटिलीय अर्थशास्त्र ८।१।५।
९. मानसोल्लास—गायकवाड ओरियन्टल सीरीज।
१०. मैसूर ओरियन्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वामी अमात्य, सुहृत् , कोश, राष्ट्र, दुर्ग, बल यह क्रम प्राप्त होता है। प्रथम में सुहृत् को अन्तम स्थान दिया है किन्तु दूसरे में उसका स्थान स्वामी और अमात्य के बाद है। इसमें 'अभिलषितार्थचिन्तामणि' की सूची अधिक उपयुक्त ज्ञात होती है क्योंकि मानसोल्लास के एक प्रारम्भ के श्लोक में वही क्रम मिलता है।[1]

महाभारत तथा मनुस्मृति के अनुसार सातों प्रकृतियों में ऐक्य होना चाहिए क्योंकि बिना एक की सहायता के दूसरे का काम सुचारु रूप से नहीं चल सकता। महाभारत के शान्तिपर्व के अनुसार राज्य के अंग तीन दण्डों की तरह एक दूसरे के आश्रित हैं। यह कहना कठिन है कि राज्य का कौन सा अंग परिस्थिति के अनुसार महत्वपूर्ण हो जाता है—

सप्तांगस्यास्य राज्यस्य त्रिदण्डस्येव तिष्ठतः।
अन्योन्यगुणनियुक्तस्य कः केन गुणतोऽधिकः॥
तेषु तेषु हि कालेषु तत्तदंगं विशिष्यते।
येन यत् सिध्यते कार्यं तत्प्राधान्याय कल्पते॥[2]

इसी बात को मनु ने दूसरे शब्दों में कहा है कि जिस प्रकार तीन दण्ड एक दूसरे के आश्रय पर ठहरे हों उसी प्रकार राज्य सात प्रकृतियों में एक दूसरे के आश्रय पर ठहरा है—

सप्तांगस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदंडवत्।
अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते॥[3]

इसके अतिरिक्त जिस-जिस अंग से जो-जो काम सिद्ध होता है वह अंग उसमें श्रेष्ठ होता है—

तेषु तेषु तु कृत्येषु यत्तदंगं विशिष्यते।
येन यत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते॥[4]

राज्य के सावयव सिद्धान्त का संकेत यजुर्वेद में भी प्राप्त होता है। एक स्थल पर राजा को राज्यरूपी पुरुष का प्राण माना गया है—

राजा मे प्राणो अमृतं सम्राट् श्रोत्रम्।[5]

एक अन्य ऋचा में राष्ट्र उसी पुरुष की पीठ तथा प्रजा उदरादि अंग है—

---

१. 'स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।'
मानसोल्लास खंड प्र० अनुक्रमणिका श्लोक २०।
२. महाभारत शान्तिपर्व। ३. मनु० ९.२९६।
४. वही ९.२९७। ५. यजुर्वेद मन्त्र ५ अ० २०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरं सौग्रीवाश्च श्रोणी ।
ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेडङ्गानि सर्वतः ॥[1]

इस प्रकार राज्य का सावयव सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन है और अधिकांश प्राचीन भारतीय राजशास्त्र-प्रणेताओं ने राज्य के सप्तांग रूप को स्थिर किया है और यह कल्पना भारत में सोमेश्वर के समय अर्थात् १२ वीं शती तक कायम थी।

राज्य की इन सात प्रकृतियों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय राजनीतिज्ञों के अनुसार राज्य का निर्माण केवल जनसमुदाय पर नहीं वरन् एक निश्चित क्षेत्र में बसे हुये लोगों (राष्ट्र) पर निर्भर था। राष्ट्र की सत्ता शासक (स्वामी) में सीमित थी। उनकी एक शासन-व्यवस्था थी जिसका संचालन अमात्यों द्वारा किया जाता था। राष्ट्र की रक्षा के लिये सेना (बल) तथा दुर्ग की आवश्यकता थी तथा मित्र राष्ट्रों (सुहृत्) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। समाज के विकास के साथ-साथ शासन सत्ता तथा शासन व्यवस्था सम्बन्धी भावनाओं का विकास हुआ। धीरे-धीरे बल, सुहृत् आदि की गणना सरकार के अन्तर्गत होने लगी। शासन सत्ता का केन्द्र भी विभिन्न दशाओं में विभिन्न स्थलों पर हो गया। फलतः वर्तमान राजनीतिज्ञों ने राज्य के केवल चार अंगों का अनुमान किया—जनसंख्या (Population), क्षेत्र (Territory), शासन-सत्ता (Sovereignty) तथा शासन व्यवस्था (Government) ।

स्वामी

महाराज सोमेश्वर ने राज्य की सात प्रकृतियों में स्वामी अर्थात् राजा को सर्वोच्च स्थान दिया है। उसकी आज्ञारूपिणी शक्ति सबके सिर के ऊपर स्थित रहती है—

"आज्ञारूपेण या शक्तिः सर्वेषां मूर्धनि स्थिता।"[2]

राजा के इस महत्व को सभी प्राचीन आचार्यों ने माना है। कौटिल्य ने तो यहाँ तक कह दिया है कि प्रकृतियों को यदि संक्षेप में कहा जाय तो राजा ही राज्य है—

"राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः।"[3]

राजा का जैसा स्वभाव होता है, प्रकृतियाँ भी उसी स्वभाव वाली हो जाती हैं—

"स्वयं यच्छीलस्तच्छीलाः प्रकृतयो भवन्ति।"[4]

---

१. वही मंत्र ८ अ० २०।
२. मानसोल्लास २।८।६९६।
३. कौटिलीय अर्थशास्त्र ८।२।
४. वही ८।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा राजा यदि गुणसम्पन्न है तो अन्य प्रकृतियाँ भी गुणवती हो जाती हैं—

"स्वामी च सम्पन्नः स्वसंपद्भिः प्रकृतीः संपादयति ।"[1]

इसके अतिरिक्त अमात्य, पुरोहितादि की नियुक्ति राजा ही करता है और अमात्यों के व्यसनी होने पर वह उनके स्थान पर अन्य अमात्यों की नियुक्ति करता है—

मन्त्रिपुरोहितादिभृत्यवर्गम्...राजैव करोति ।
व्यसनिषु वामात्येष्वन्यानव्यसनिनः करोति ॥[2]

शुक्रनीतिसार ने राज्य की सात प्रकृतियों की तुलना मनुष्य के शरीर के अंगों से की है। उसने राजा को सिर, अमात्य को नेत्र, सुहृत् को कर्ण, कोश को मुख, सेना को मन तथा दुर्ग और राष्ट्र को हाथ-पैर माना है—

"सप्तांगमुच्यते राज्यं तत्र मूर्धा नृपः स्मृतः ।
हस्तौ पादौ दुर्गराष्ट्रौ..................॥"[3]

इसी प्रकार राजनीतिप्रकाश ने राज्य के सप्तांगों में स्वामी को मूल माना है—

"सप्तांगस्यापि राज्यस्य मूलं स्वामी प्रकीर्तितः ।"[4]

सोमेश्वर ने सर्वप्रथम राजा (स्वामी) के गुणों एवं कर्तव्यों का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। सोमेश्वर के कथनानुसार योग्य एवं प्रतिभाशाली राजा में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

सत्य, सत्व, कुल, शील, तारुण्य, सुरूपता, दाक्षिण्य, अविसंवाद, वृद्ध सेवा, कृतज्ञता तथा अक्षुद्रपरिवारता (विशाल परिवार वाला होना), बुद्धिमत्ता, देव सहायता, आस-पास के छोटे-छोटे राजाओं को वश में रखना, निपुणता, क्षिप्र-कारिता, शौर्य, धैर्य, क्षमा, औदार्य, शुचित्व, प्रियवादिता, उद्योग, अनिर्वेद, धर्मकारिता, जनानुराग (प्रजा के प्रति प्रेम), सौभाग्य, शास्त्र तथा अस्त्र-शस्त्रों की निपुणता, विवेक, दृढ़ चित्तत्व, धैर्य, कलाकुशलता, धन की पूर्णता, दोष के अनुरूप दंड देना, सब प्राणियों के हित का ध्यान रखना, दयालुता, प्रसन्नता, नौकरों के सुख को प्रदर्शित करना, सरलता, तत्व-दर्शित्व, उत्साह, नयज्ञता तथा मंगल आचार। इसके साथ ही सत्य, शौर्य, क्षमा, दान, गुणज्ञता ये पाँच गुण राजा के लिए अत्यन्तावश्यक बताये हैं। इसके अतिरिक्त राजा को वैभव, कीर्ति, धर्म एवं विजय, सुख तथा यश आदि गुणों को विशेष रूप से धारण करना चाहिए।[5]

---

१. वही ।
२. वही ।
३. शुक्रनीति० १.६१.६२ ।
४. राजनीति प्रकाश पृ० १२३ ।
५. मानसो० २।१।२.९ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन सभी गुणों में सोमेश्वर ने राजा के तीन प्रकार के गुणों का संकेत किया है : १. सर्वसाधारण गुण—जो साधारणतया सभी राजाओं में विद्यमान होने चाहियें क्योंकि वे सभी गुण राज्य को शान्तिपूर्ण बनाने के साधन हैं। उन गुणों के बिना राजा इतने बड़े शासन को शान्तिपूर्वक नहीं चला सकता। २. आवश्यक गुण – राजा में पाँच गुण अवश्य होने चाहिये : सत्य, शौर्य, क्षमा, दान तथा गुणज्ञता। इन पाँच गुणों के न रहने पर राजा प्रजा की दृष्टि में गिर जाता है। ३. विशेष गुण—इन विशेष गुणों को धारण कर लेने पर राजा अन्य राजाओं के मध्य अत्यन्त प्रकृष्ट पद को प्राप्त करता है। इन सभी गुणों को पढ़ कर ऐसा विदित होता है कि सोमेश्वर वास्तव में इन सभी गुणों से युक्त था और वह अपने राज्य के प्रत्येक अंग का विशेष रूप से ध्यान रखता था।

सोमेश्वर द्वारा वर्णित राजा के गुणों का विभाजन कौटिल्य के विभाजन के आधार पर भी किया जा सकता है। कौटिल्य[1] ने राजा में चार प्रकार के गुणों का होना आवश्यक बतलाया है—

१ आभिगामिक गुण	२ प्रज्ञा गुण
३ उत्साह गुण	४ आत्मसम्पत्

अक्षुद्रपरिवारत्व, देवसहायता, वश्य सामन्तता, शुचित्व, प्रियवादिता आदि आभिगामिक गुणों के अन्तर्गत लिये जा सकते हैं। शास्त्र तथा अस्त्र-शस्त्र की निपुणता, विवेक, दृढ़चित्तत्वादि प्रज्ञा गुण हैं। शौर्य, क्षिप्रकारिता, दक्षत्व आदि उत्साह गुण हैं। आत्मसम्पत् नाम के गुणों का विशेष उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

इनमें से कुछ गुणों का वर्णन याज्ञवल्क्य तथा कुछ का मनुस्मृति में हुआ है। याज्ञवल्क्य स्मृति के राजधर्म प्रकरण[2] में राजा के गुणों के विषय में कहा गया है कि राजा को उत्साही, स्थूललक्ष्य, कृतज्ञ, वृद्धसेवी, विनययुक्त, सदा एकरस, कुलीन, सत्यवादी, पवित्र, अदीर्घसूत्री, स्मृतिमान्, कटु वाक्य न बोलने वाला, धार्मिक, अव्यसनी, पण्डित, शूर, रहस्य जानने वाला, राज्य प्रबन्ध की शिथिलता का रक्षण करने वाला, आत्म विद्या और राजनीति

---

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र ६।१।३.६।

२. महोत्साहः स्थूललक्ष्यः कृतज्ञो वृद्धसेवकः।
विनीतः सत्यसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक् शुचिः।
अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रो परुषस्तथा।
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित्॥
याज्ञवल्क्यस्मृति राजधर्म प्र० श्लो० ३०९.१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में निपुण, लाभ के उपाय तथा तीनों वेदों में प्रवीण होना चाहिए।[1] वास्तव में राजा अपनी प्रजा के लिये आदर्श की मूर्ति होता है।

सोमेश्वर ने राजा के लिए 'देवसहायता' का प्रयोग किया है। इससे विदित होता है कि सोमेश्वर भी राजा को दैवी विभूति मानते थे। वह देवताओं द्वारा सहायता प्राप्त करता था। मनुस्मृति में ऐसा माना गया है कि राजा में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, कुवेर, वरुण, आदि देवताओं की विभूतियों का अंश विद्यमान है इसी कारण इन्हीं सब देवताओं को भांति कार्य करने का आदेश दिया गया है—

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं तपश्चरेत्॥[2]

यज्ञादि के द्वारा मेघों में जल धारण करने वाली शक्ति उत्पन्न करा कर देश में वर्षा करवाने के कारण इन्द्र,[3] सम्पूर्ण राज्य में चर व्यवस्था स्थापित कर न्यायपूर्वक उसका अवलोकन करने के कारण वायु,[4] शत्रु मित्र को समान-रूप से दंड देने वाला होने के कारण यम,[5] अपने न्यायरूपी पाश से पापियों को बांध लेने के कारण वरुण,[6] अत्यन्त प्रतापवान् होने तथा राज्य से कर लेने के कारण सूर्य,[7] अपनी प्रजा के आह्लाद का कारण होने के कारण चन्द्र[8] तथा सब प्राणियों का समान रूप से पालन-पोषण करने के कारण पृथ्वी[9] का रूप माना गया है। महाभारत के अनुशासनपर्व में भी राजा के अनेक

---

१. स्वरन्ध्रगोप्तान्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च।
विनीतस्त्वथ वार्त्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः॥ वही ३११।

२. मनु० ९।३०३।

३. वार्षिकाँश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति।
तथाभिवर्षेत् स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन्॥ वही ९.३०४।

४. प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरंति मारुतः। वही ९।३०५।

५. यथा यमः प्रियद्वेष्यो प्राप्ते काले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्॥ वही ९।३०७।

६. वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते। वही ९।३०८।

७. तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत्। वही ९।३०५।

८. परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः।
तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चान्द्रव्रतिको नृपः॥ वही ९।३०९।

९. यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम्।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम्॥ वही ९।३११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुणों पर प्रकाश डाला गया है। उसमें वर्णित अनेक गुण सोमेश्वर के द्वारा वर्णित राजा के गुणों में मिलते हैं।

सोमेश्वर ने राजा के गुणों का इस प्रकार से वर्णन किया है कि उसके अन्तर्गत राजा के सभी कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व आ जाते हैं। इन सभी गुणों में 'सर्वदा धर्मकारिता' तथा 'दोषानुरूपदंडत्व' ये दोनों ही अंश राजा के कर्तव्यों को पूर्णरूपेण स्पष्ट कर देते हैं। इतने बड़े राष्ट्र का स्वामी होकर राष्ट्र की सुख शान्ति के लिये उसे धर्म तथा न्यायपूर्ण दंड का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। राष्ट्र में धर्म की स्थापना के लिये ही राजा की स्थापना होती है। राजा राष्ट्र में धर्म का जागृत स्वरूप होता है, क्योंकि धर्म की रक्षा करना उसका परम कर्तव्य होता है। धर्म का ही आश्रय ग्रहण कर राजा अपनी सम्पूर्ण प्रजा का पालन करता है और प्रत्येक व्यक्ति को स्वधर्म पालन करने के लिए प्रेरित करता है। धर्म का पालन करने के कारण राजा में चारित्रिक शुद्धता आ जाती है जिससे वह अपने प्रभावशाली कार्यों द्वारा प्रजा का प्रियपात्र बन जाता है। राजा अपने राज्य में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल में राजा के विषय में 'वृषभो जनानां'[1] कहा गया है। इससे विदित होता है कि सभी मनुष्यों में राजा वृषभ की भांति अत्यन्त बलवान है। प्रजा का लालन-पालन करने के कारण वह सब में श्रेष्ठ है। वेदों में राजा के लिये सज्जनों में श्रेष्ठ तथा अपनी प्रजा का शिशु के समान पालन करना आवश्यक बतलाया है—

'सघा राजा सत्पतिः शिशुवज्जनोरात हव्यः प्रतिय शार्समिन्वति'[2] सोमेश्वर ने भी 'जनानुरागः' कहकर इस मत की पुष्टि की है। वास्तव में राजा यदि अपनी प्रजा के प्रति शिशु की भांति ध्यान न रखेगा तो उसकी प्रजा कदापि सुखी नहीं हो सकती। राजा के इसी प्रकार के गुणों का वर्णन यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में हुआ है। यजुर्वेद में आया हुआ 'जनिष्ठाऽउग्रः सहसे तुराय मन्द्रऽओजिष्टो बहुलाभिमानः' प्रसंग राजा को लोकप्रिय, प्रबल, क्रियाशील, जगसुखकारी, ओजस्वी, बहुलाभिमान आदि होना आवश्यक बतलाता है। अथर्ववेद में वृहत् , महान् वास्तविकता, दीक्षा, तप, हवन, यज्ञ आदि को इस पृथ्वी को धारण करने का आधार माना है।[3] सोमेश्वर ने सत्य, गुणज्ञता, दृढ़चित्तत्व, शास्त्र शस्त्रास्त्रनैपुण्य, कलाकुशलता, विवेक, नृत्यज्ञता आदि गुणों को राजा के लिये 'अवश्यम्भाविनः' कहकर आवश्यक बतलाया है।

---

१. ऋ० मण्डल १, मन्त्र १ सू० १७७।

२. वही मन्त्र ७ सू० ५४।

३. सत्यं बृहत् मुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्मयज्ञः पृथ्वीं धारयन्ति।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रामायण तथा महाभारत में भी राजा के गुणों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। रामायण में राजा के गुणों के विषय में अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। नारद राजा के विषय में कहते हैं—

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः॥[1]

इसके अतिरिक्त राजा धर्म, अर्थ तथा काम के उचित उपयोग का अनुष्ठान करने वाला माना गया है।[2] धर्म, अर्थ को त्याग कर केवल काम का ही सेवन करने वाले राजा की उसी प्रकार की नश्वर स्थिति होती है जिस प्रकार से वृक्ष की शाखा पर सुप्त व्यक्ति किसी भी क्षण गिर कर मृत्यु को प्राप्त हो सकता है। वास्तव में काम के पूर्णरूप से वश में हुआ राजा अपने तथा अपनी प्रजा के हित-अहित का विचार नहीं कर पाता। उसकी बुद्धि काम के प्रलोभनों से कुण्ठित हो जाती है और वह शीघ्र ही अपने जीवन के वास्तविक सुख खो बैठता है। लक्ष्मण जी ने राजा के लिए बलवान, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ तथा सत्यवादी आदि गुण आवश्यक बतलाया है।[3]

सोमेश्वर ने भी राजा के लिये—

शौर्यधैर्यक्षमौदार्यं शुचित्वं प्रियवादिता।
उद्योगित्वमनिर्वेदः सर्वदा धर्मकारिता॥[4]

तथा—

सत्यं सत्त्वं कुलं शीलं तारुण्यं च सुरूपता।
दाक्षिण्यमविसंवादो वृद्धसेवा कृतज्ञता॥[5]

कहकर शौर्य, धैर्य, क्षमा, उदारता, उद्योगित्व, सत्यवादिता, शक्ति, कुल, कृतज्ञता आदि गुण आवश्यक बतलाया है। कुलीनता भी राजा का प्रधान गुण माना गया है। निम्नकुल का कोई भी व्यक्ति अपने मानापमान का इतना अधिक ध्यान नहीं रख सकता जितना कि एक कुलीन राजा रखता है। राजा का यही परम कर्तव्य है कि वह ऐसा कोई कार्य न करे जो उसके कुल में कलंक लगाने वाला हो। इसके साथ ही साथ दयालुता तथा उदारता भी राजा के लिये आवश्यक है। किन्तु उसे बहुत मृदु नहीं होना चाहिये नहीं तो प्रजा ही उस पर विद्रोह

---

१. बालकांड १।१८।

२. धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः। वही १।१९।

३. सत्वाभिजनसंपन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः।
कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते॥ किष्किन्धा० ३८।७।

४. मानसोल्लास २।१।४। ५. वही २।१।२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करने के लिए उद्यत हो जायगी। राजा को वसंत ऋतु की भांति होना चाहिये अर्थात् थोड़ा मृदु तथा थोड़ा कठोर।[१] राजा को चाहिये कि प्रजा पर बड़ा दयालु रहे। राजा और प्रजा के मध्य पिता-का-सा सम्बन्ध होना चाहिये। जिस प्रकार से पिता अपने पुत्र के सुख-दुःख का प्रत्येक प्रकार से ध्यान रखता है और अपने को मिटा कर भी अपने पुत्र की उन्नति में सहायक होता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा का पिता होता है। महाभारत में राजा तथा प्रजा के विषय में कहा गया है—

पुत्रा इव पितुर्गेहविषये यस्य मानवाः ।
निर्भया विचरिष्यन्ति स राजा राजसत्तमः ॥[२]

अर्थात् जिस राजा के राज्य में प्रजा पिता के गृह में स्वतन्त्रतापूर्वक निवास करते हुए पुत्र की भाँति आनन्द से विचरण करती है वही श्रेष्ठ राजा है। राजा की ही कृपा को प्राप्त कर प्रजा प्रसन्न हो सकती है। जिस प्रकार बालक को देख कर पिता के विषय में बहुत कुछ जाना जा सकता है उसी प्रकार प्रजा के सुख-चैन को देखकर राजा के विषय में जाना जा सकता है। राजा के लिये अन्य गुणों के साथ रूप-सौन्दर्यवान् एवं चरित्रवान् होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

राजा यदि प्रजा के प्रति क्रूर होगा तो वह कदापि एक सफल राजा नहीं बन सकता। राजा में अन्य सभी गुण विद्यमान रहने पर भी उसकी क्रूरता तथा उद्दंडता उसे राजा के पद से च्युत कर देती है। रामायण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि राजा सगर के श्रेष्ठ पुत्र असमंज को, उसकी क्रूरता तथा उद्दंडता के कारण ही, जीवनपर्यन्त वनवास देकर उसका राज्यपद सदा के लिये छीन लिया गया था।[3] महाभारत में भी गर्व से उन्मत्त हो जाने के कारण ययाति पुत्रों का राज्य पर का अधिकार छीन लिया गया था।[४] इसी प्रकार सोमेश्वर ने भी राजा के लिये प्रजा के प्रति दयालु होना एक बहुत बड़ा गुण बताया है। सोमेश्वर के इन राजगुणों के प्रसंगों को पढ़कर विदित होता है कि सोमेश्वर अपने समय का बड़ा ही प्रभावशाली राजा था। उसके राज्य में प्रजा बड़ी सन्तुष्ट थी।

अन्य गुणों के साथ ही साथ राजा के लिये रूपवान् तथा चरित्रवान् होना भी आवश्यक है। प्राचीन काल से ही नृपतंत्रात्मक शासन में राजा को प्रधानता दी गई है, किन्तु उस प्रधानता के मूल में राजा का सुदृढ़ चरित्र छिपा हुआ

१. तस्मान्नैव मृदुर्नित्यं तीक्ष्णो नैव भवेन्नृपः ।
वासन्तार्क इव श्रीमान्न शीतो न च घर्मदः । शा० प० ५६।४० ।

२. वही ५७।३३ ।

३. बालकाण्ड ३८।२० । ४. उद्योगपर्व १४९।८.१० ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। अपने उत्तम चरित्र के बल पर ही राजा धर्म, अर्थ तथा काम का उचित रीति से उपभोग कर सकता है तथा साथ ही साथ जनता से भी करवा सकता है। राजा में शारीरिक योग्यता का होना शुक्र ने अत्यन्तावश्यक बतलाया है। वास्तव में यह शारीरिक योग्यता एवं रूप-सौन्दर्य का गुण राजा में होना भी चाहिये। महाभारत में राजा के विषय में कहा गया है—

"हीनांगं पृथ्वीपालं नाभिनन्दन्ति देवताः।"[1]

अर्थात् अंगहीन श्रेष्ठ राजा के द्वारा की गई कोई भी आहुति देवता लोग स्वीकार नहीं करते हैं। कुरूप तथा अंगहीन श्रेष्ठ राजपुत्र भी पिता के सिंहासन पर आरूढ़ होने के पद से वंचित हो जाता है। महाभारत में धृतराष्ट्र का प्रसंग इस कथन को और अधिक पुष्ट कर देता है। यद्यपि धृतराष्ट्र तथा पांडु के मध्य राज्य पद प्राप्त करने का धृतराष्ट्र को ही सर्वप्रथम अधिकार था किन्तु धृतराष्ट्र जन्मान्ध होने के कारण ही राजा के पद से वंचित रखे गये। इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र अपने परदादा महाराज प्रतीप के पुत्र देवापि का दृष्टान्त बतलाकर दुर्योधन से कहते हैं—

"देवापिस्तु महातेजास्त्वग्दोषी राजसत्तमः।
धार्मिकः सत्यवादी च पितुः सुश्रूषणेरतः॥"[2]

अर्थात् देवापि अत्यन्त शक्तिशाली, सत्यवादी, धर्मात्मा तथा सबसे ज्येष्ठ थे किन्तु कुष्ठ रोग के कारण वे राजपद से वंचित कर दिये गये।

अमात्य

राजा के बाद राज्य के अन्तर्गत द्वितीय महत्वपूर्ण पद मंत्रियों को सभी प्राचीन शास्त्रों ने दिया है। सोमेश्वर ने भी राजा के गुणों के वर्णन के पश्चात् मंत्रियों के लक्षणों का वर्णन किया है। सोमेश्वर ने मंत्रियों के लिये कुलीन, श्रुतसंपन्न, पवित्र, अनुरागी, वीर, धीर, निरोग, नीतिशास्त्र में पंडित, प्रगल्भ, वाग्मी, प्राज्ञ, राग-द्वेष से रहित, सत्यसन्ध, महात्मा, दृढ़चित्त वाला, निरामय, प्रजा को प्रिय तथा दक्ष होना आवश्यक बतलाया है।[3] इसके अतिरिक्त मंत्रियों को राजकार्य में राग द्वेष को त्याग कर कार्य करना चाहिये, उन्हें कोष की वृद्धि में तथा आय-व्यय में निपुण होना चाहिये। यदि राजा नियम के प्रतिकूल मार्ग पर चले तो मन्त्रियों को मधुर भाषण द्वारा उसे समझाना चाहिये। इसके अतिरिक्त वे अपने ही देश में उत्पन्न हों।

---

१. वही १४९।२५।
२. वही १४९।१७.१८।
३. मानसोल्लास २।२।५२.५९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कौटिल्य ने भी अपने ही देश में उत्पन्न मंत्री की नियुक्ति के विषय में कहा है। उन्होंने शासक की भांति अमात्य के लक्षणों का उल्लेख किया है और उसे अमात्यसंपत् नाम से पुकारा है। कौटिल्य के अनुसार अपने देश में उत्पन्न होना कुलीन, प्रगल्भ, पवित्र हृदय वाला होना आदि गुण अमात्यसंपत् की कोटि में आते हैं—

जानपदोऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान्प्राज्ञो…… वैराणामकर्तेत्य-मात्यसंपत् ।[1]

राज्य के कार्यभार को चलाना बड़ा ही कठिन कार्य है जिसे राजा अकेले कदापि नहीं चला सकता। अतः राजा को सम्पूर्ण राज्य पर सुचारु रूप से शासन करने के लिये मन्त्रिपरिषद् की आवश्यकता होती है। ये मन्त्री प्रतिक्षण राजा को राज्यविषयक प्रत्येक बात बतलाया करते हैं। इसी कारण मन्त्रियों को राज्य के मध्य बड़ा ही उत्तम स्थान दिया गया है। कौटिल्य ने राज्य में मन्त्रियों की प्रधानता को स्वीकार करते हुये लिखा है—

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥[2]

अर्थात् जिस प्रकार रथ एक पहिये से चलने में असमर्थ होता है इसी प्रकार राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये राजा को भी सचिव रूपी दूसरे चक्र की आवश्यकता होती है। यद्यपि राजा को राज्य के अन्तर्गत सर्वोच्च पद प्राप्त है[3] किन्तु राजा का वह ऐश्वर्य मंत्रियों के ऊपर निर्भर है। मंत्री लोग जब राजा की उचित रीति से सहायता करते हैं तभी सफलता राजा के चरण चूमती है।

अमात्य के लिये विशेष रूप से तीन शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है—अमात्य, सचिव, मन्त्रिन्। अमा का अर्थ है समीप, इसमें त्यप् प्रत्यय लगाकर अमात्य शब्द बना है।[4] अमात्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल में हुआ है।[5] यास्क ने भी "याहि राजा इव अमात्यवान् स्ववान् वा" कहा है।[6] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी अमात्य के विषय में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि राजा बिना गुरु तथा मन्त्रियों के सुखपूर्वक जीवन नहीं व्यतीत कर सकता।[7] मनु ने राज्य का कार्यभार राजा के लिये अकेले बड़ा दुष्कर बतलाया है—

---

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र ९।१। २. वही १।७।१५।
३. सप्तांगमुच्यते राज्यं तत्र मूर्धा नृपः स्मृतः। शुक्रनी० १।६१.६२।
४. पाणिनि अष्टाध्यायी ४।२।१०४।
५. कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन। ऋ० ४।४।१।
६. यास्क निरुक्त ६।१२। ७. आप० ध० सू० २।१०।२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम् ॥[1]

अमात्य का ही दूसरा नाम सचिव है। सचिव का अर्थ विशेष रूप से सहायक तथा सलाहकार के रूप में होता है। इसी कारण उसकी महत्ता सभी ने स्वीकार की है। शुक्र लिखते हैं—

यद्यप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम् ॥[2]

अर्थात् एक छोटा से छोटा कार्य भी अकेले व्यक्ति से कठिनता से होता है फिर राज्य ऐसे बृहद् कार्यभार को बिना सचिवों की सहायता के किस प्रकार चलाया जा सकता है। मत्स्य पुराण में भी इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है कि राजा को चाहिये कि राज्याभिषेक के जल से सिर के भीग जाने पर तुरन्त अपनी सहायता के लिये सचिवों को नियुक्त करे।[3] इसी प्रकार के प्रसंग महाभारत[4], राजनीतिप्रकाश[5] तथा कामशास्त्र[6] में प्राप्त होते हैं। किन्तु इन सभी के अन्तर्गत अमात्य तथा सचिव दोनों ही पर्यायवाची शब्द माने गये हैं। अमरकोश में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

मन्त्री धीसचिवोऽमात्योन्ये कर्मसचिवास्ततः ।[7]

अर्थात् राजा के जो धीसचिव अथवा मतिसचिव होता है उसे मन्त्रिन्, तथा मन्त्रिन् से अन्य अमात्य कर्म सचिव कहलाते हैं। शुक्रनीति में राजा के लिये ऐसा आदेश दिया गया है कि राजा चाहे जितना विद्याओं एवं कलाओं में कुशल हो, मंत्र करना जानता हो, तीव्र बुद्धिवाला एवं दूरदर्शी हो किन्तु उसे राज्य कार्य करने में अपनी अकेली अनुमति कभी नहीं चलानी चाहिये।[8]

रामायण में राम ने मन्त्रियों की सलाह को "कच्चिन्मंत्रयसे नैकः" कहकर अत्यन्तावश्यक माना है।[9] महाभारत में नारद युधिष्ठिर को राजधर्मसम्बन्धी आदेश देते हुये "विजयो मंत्रमूलो हि राजा भवति भारत" कहकर मन्त्रियों की सलाह को ही राज्य की उन्नति का कारण माना है।[10] मन्त्री यदि शान्तिपूर्ण

---

१. मनु० ७।५५ । २. शुक्र० २।१ ।
३. मत्स्य पुराण २१५।३ ।
४. महाभारत शान्ति पर्व १०६।११ । ५. राजनीति प्रकाश पृ० १७४ ।
६. कामसूत्र ४।२५।२७,१३।२४ । ७. अमरकोश २ क्षत्रिय वर्ग ।
८. सर्वविद्यासु कुशलो नृपो ह्यपि सुमंत्रवित् ।
मन्त्रिभिस्तु विना मंत्रं नैकोर्थं चिन्तयेत्क्वचित् ॥ शुक्र० २।२ ।
९. अयोध्याकांड १००।१८ । १०. महाभारत सभापर्व ५।२८ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वातावरण में राजा के मनोरञ्जन का साधन होते हैं तो आपत्ति के समय रक्षक का कार्य भी करते हैं। राज्य में मन्त्री ही एक ऐसे साधन हैं जो राजा को प्रतिक्षण आई हुई आपत्ति से बचाया करते हैं। इसी कारण राजा को मन्त्रियों की महान् आवश्यकता रहती है।

मन्त्रियों की नियुक्ति को सोमेश्वर देव ने बड़ी प्रधानता दी है और साथ ही साथ उन्होंने मन्त्रियों के लक्षणों पर भी विशेष रूप से प्रकाश डाला है। मन्त्रियों की नियुक्ति करने में सोमेश्वर ने सर्वप्रथम कुलीनता का प्रश्न रखा है। राजा को ऐसे मन्त्री नियुक्त करने चाहिये जो कुलीन हों। मनुस्मृति[1] में ऐसा कहा गया है—

सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम्।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति॥
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये॥

सभी वर्णों में ब्राह्मण की सर्वश्रेष्ठ उच्चता संसार में स्वीकार की गई है। इसी कारण उसे ही इस पृथ्वी का शासनकर्ता स्वीकार किया गया है किन्तु ब्राह्मणों का कार्य शासन कार्य से भिन्न है। ब्रह्मा के सर्वश्रेष्ठ अंग से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण लोगों में आध्यात्मिक शक्ति मानी गई है। वे मेधावी एवं धर्मपरायण होते हैं इसी कारण उनका कार्य निम्नलिखित है—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥[2]

ब्राह्मण सतत इन्हीं कार्यों में संलग्न रहने के कारण पूर्ण रूप से राजकार्य नहीं चला सकते इसी कारण यह शासन का भार क्षत्रियों को सौंप दिया गया। क्षत्रिय राजा इन्हीं विद्वान् ब्राह्मणों को मंत्री नियुक्त कर उनसे प्रत्येक कार्य में सहायता प्राप्त करते हैं। कुलीन मन्त्रियों तथा क्षत्रिय राजा दोनों के सहयोग से ही राज्य वृद्धि को प्राप्त होता है। राज्य के लिये राजा तथा मंत्री दोनों ही अत्यन्तावश्यक अंग हैं। दोनों में से एक के न रहने पर एक की प्रसिद्धि व्यर्थ हो जाती है। इसी कारण मंत्रिपरिषद् में नियुक्त हुये व्यक्तियों के लिये यह आवश्यक है कि वे उच्च कुल में उत्पन्न हुये हों। ऐसा प्रसंग मनु ने भी दिया है।[3] याज्ञवल्क्य स्मृति में भी मन्त्रियों के अन्य गुणों के साथ ही

१ मनु० १।९९.१०० । २. वही १।८७ ।
३. मौलाञ्छास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान् । ७।५४ ।
तेषामर्थे नियुंजीत शूरान्दक्षान् कुलोद्गतान् । ७।६२ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साथ कुलीनता पर अधिक बल दिया गया है।[१] किन्तु कुलीनता से तात्पर्य केवल उच्च कुल में उत्पन्न होने से ही नहीं है वरन् इसके अन्तर्गत मन्त्रियों के सदाचार, धर्मपरायणता तथा चारित्रिक शुद्धता पर भी संकेत किया गया है।

इसके अतिरिक्त सोमेश्वर देव ने मन्त्रियों को नीतिशास्त्रविशारद, पवित्र, अनुरागी, शूरवीर, धैर्यवान्, नीरोग, तीनों वेदों के ज्ञाता (श्रुतसम्पन्न), चतुर, दक्ष, अन्य जनों की सम्मति का ज्ञान रखने वाला, आय-व्यय में निपुण, कोश की वृद्धि करने में चतुर, अतिकुशल तथा साध्य असाध्य का ध्यान रखने वाला बतलाया है।[२] महर्षि मनु ने भी इसी प्रकार के गुणों का वर्णन मन्त्रियों के लिये किया है। मनुस्मृति में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

सन्धि-विग्रह-कालज्ञान् समर्थानायतिक्षमान्।
परैरहार्यान् शुद्धांश्च धर्मतः कामतोऽर्थतः॥
समाहर्तुं प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविपश्चितः।
कुलीनान्वृत्तिसम्पन्नान्निपुणान् कोशवृद्धये॥
आयव्ययस्य कुशलान् गणितज्ञानलोलुपान्।
नियोजयेद्धर्मनिष्ठान् सम्यक्कार्यार्थचिन्तकान्॥
कर्मणि चातिकुशलांल्लिपिज्ञानायतिक्षमान्।
सर्वविश्वासिनः सत्यान्सर्वकार्येषु निश्चितान्॥[३]

इसमें से लिपिज्ञान आदि के सम्बन्ध में सोमेश्वर ने कुछ भी नहीं लिखा। हां, "परेंगितज्ञा धीमन्तः स्वाकारस्य निगूहकाः" कहकर अपने कार्य के लिये दूसरे के संकेतों को पहचानने में मंत्रियों को निपुण होना चाहिये, ऐसा उल्लेख किया है। मानसोल्लास में जो मन्त्रियों के वाग्मी, नीरोग, निडर आदि होना बताया है वे गुण महर्षि मनु ने दूत के लिये आवश्यक बतलाये हैं—

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते॥[४]

किन्तु दूत के साथ मन्त्रियों में भी इन गुणों का होना अत्यन्तावश्यक है।

रामायण[५] में भी मन्त्रियों को जितेन्द्रिय, अनुभवी, अनुरागी, शूरवीर, विद्वान होने का प्रसंग प्राप्त होता है। मानव धर्मशास्त्र में मन्त्रियों की नियुक्ति

---

१. समन्त्रिणः प्रकुर्वीत प्रज्ञान्मौलान् स्थिराञ्छुचीन्।
तैः सार्द्धं चिन्तयेद्राज्यं विप्रेणाथ ततः स्वयम्॥ याज्ञ० राजधर्म १२।

२. मानसोल्लास २।२।५२.५५। ३. मनुस्मृति ७।६५.६८।

४. वही ७।६४। ५. रामायण अयोध्याकांड १००।१५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में वंश-परम्परा के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। सोमेश्वर ने मन्त्रियों के लिये "स्वदेशजाताः" शब्द का अवश्य प्रयोग किया है जिसका अर्थ है अपने ही देश में उत्पन्न हुये। इससे विदित होता है कि उस समय में मन्त्रियों की नियुक्ति में वंश-परम्परा की अपेक्षा उनकी योग्यता पर अधिक ध्यान दिया जाता था क्योंकि सोमेश्वर ने मन्त्रियों के विषय में कहा है—

अमार्गे वर्तमानस्य नृपस्य प्रतिकूलगाः।
बोधयन्तः प्रियैर्वाक्यैः सचिवाः स्युर्नृपर्द्धये ॥[1]

अर्थात् राजा के बुरे मार्ग पर चलने पर सचिव का यह परम कर्तव्य है कि वह प्रिय वचनों द्वारा उसे सन्मार्ग पर लगावे। इस कार्य में मन्त्रियों के लिये अत्यन्त बुद्धिमान, मधुरभाषी तथा दूरदर्शी होना आवश्यक है।

मन्त्रियों के लक्षणों एवं गुणों के साथ ही साथ सोमेश्वर देव ने मन्त्रियों की संख्या पर भी प्रकाश डाला है—

सचिवान् सप्त वाष्टौ वा कुर्वीत मतिमान् नृपः ॥[2]

इससे विदित होता है कि मानसोल्लास में राजा द्वारा सात या आठ सचिवों को नियुक्त करने का आदेश दिया गया है। मनु भी सात अथवा आठ सचिवों को ही नियुक्त करने का आदेश देते हैं—

मौलाञ्छास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥

सोमेश्वर ने अपने श्लोक की रचना में संभवतः मनुस्मृति के इसी श्लोक को आधार माना है क्योंकि सात या आठ संख्या के साथ ही साथ 'परीक्षितान्' आदि शब्दों का भी प्रयोग उन्होंने किया है।

सोमेश्वर द्वारा कथित मन्त्रियों के इन लक्षणों को पढ़ कर विदित होता है कि सोमेश्वर वास्तव में बड़ा ही सफल राजा था और संभवतः उसने इसी प्रकार के योग्य, गुणज्ञ एवं दूरदर्शी मन्त्रियों को मंत्रणा करने के लिये नियुक्त किया था क्योंकि जहां योग्य मंत्री राज्य की उन्नति में सहायक सिद्ध होते हैं वहां अयोग्य, लोलुप तथा मूर्ख मन्त्री राज्य के नाश का कारण भी बन जाते हैं।

पुरोहित

मानसोल्लास में महाराज सोमेश्वर ने राजा को राज्य की रक्षा के लिये पुरोहित को नियुक्त करना आवश्यक बतलाया है। पुरोहित की नियुक्ति के विषय

---

१. मानसो० २।२।५६। २. वही २।२।५७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में उनका कथन है कि त्रयी विद्या, दण्ड नीति, शान्ति कर्म, पौष्टिक, आथर्वण में कुशल व्यक्ति को ही राजपुरोहित बनाना चाहिये।[1] त्रयी विद्या के अन्तर्गत ऋक्, साम तथा यजुर्वेद आ जाते हैं। कौटिल्य ने "सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी"[2] कहकर त्रयी शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है। इससे विदित होता है कि ऋक्, यजुस् तथा साम इन तीनों वेदों में पुरोहित को निपुण होना चाहिये। इसके अतिरिक्त दण्डनीति अर्थात् राजनीति में भी पुरोहित को निपुण होना चाहिये क्योंकि राजनीति के दांव-पेंचों में भी वह राजा को समय-समय पर सलाह दिया करता है। शुक्राचार्य के सम्प्रदाय के विद्वानों का मत है कि "दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः। तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति"[3] अर्थात् दण्डनीति ही एक ऐसी विद्या है जिस पर अन्य सभी विद्याओं का योगक्षेम निर्भर रहता है।

शान्ति कर्म का सम्बन्ध आठ प्रकार के दैवी महाभयों से है जिनसे प्रजा को हानि पहुँचती है। पुरोहित को उन दैवी प्रकोपों को शान्त करने में निपुण होना चाहिये। कौटिल्य ने उन आठ प्रकार के दैवी प्रकोपों का वर्णन किया है—

"दैवान्यष्टौ महाभयानि। अग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मूषिका व्यालाः सर्पाः रक्षांसीति। तेभ्यो जनपदं रक्षेत्।"[4]

इसके अनुसार अग्नि, जल, बीमारी, दुर्भिक्ष, चूहे, व्याघ्र, सांप, राक्षस ये आठ महाभय हैं जिनसे प्रजा को कष्ट पहुँचता है। यदि पुरोहित शान्ति कर्म जानता है तो पूर्णमासी आदि तिथियों में अग्नि की पूजा, बलि, होम तथा स्वस्ति वचनों द्वारा इनका निवारण करा सकता है। जल के प्रकोप में पूर्णमासी को नदी की पूजा करवा कर अथर्ववेद के अनुसार मन्त्रों द्वारा अतिवृष्टि को रोके। बीमारी के प्रकोप में गंगा आदि तीर्थों पर स्नान करवा कर समुद्र की पूजा करावे तथा चावल और सत्तू से बने हुये कबन्ध (सिर-रहित शरीर) को श्मशान में जलवाये। यदि पशुओं में बीमारी फैली हो तो उन पशुओं के देवताओं की पूजा यत्र तत्र करवा कर शान्ति कराई जा सकती है। भिन्न-भिन्न पशुओं के भिन्न-भिन्न देवता हैं, यथा हाथी के लिये सुब्रह्मण्य, घोड़े के लिये अश्विनी, गौ के लिये पशुपति, भैंस के लिये वरुण तथा बकरे के लिये अग्नि देवता का पूजन करवाना चाहिये।[5]

इन सभी आधि-व्याधियों को वैद्य तो चिकित्सा द्वारा दूर करते हैं किन्तु पुरोहितादि जन शान्तिकर्म द्वारा ही उसे शान्त कर देते हैं। इसी प्रकार दुर्भिक्ष

---

१. त्रय्यां च दंडनीत्यां च शान्तिकर्मणि पौष्टिके।
आथर्वणे च कुशलः स स्याद् राजपुरोहितः॥ वही २।२।६०।

२. कौटिलीय अर्थशास्त्र १।३।१। ३. वही १।२।६.७।

४. वही ४।३।१.३। ५. वही ४।३।१४.२१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चूहे, सर्प, राक्षस आदि से भी प्रजा की रक्षा करने के लिये पुरोहित राजा से अनेक यज्ञ करवाये और बिल्ली, नेवले, जंगली पशुओं आदि को जगह-जगह पर छोड़ दे।[1] दुर्भिक्ष के समय पुरोहित को चाहिये कि वह खूब अन्न बटवाये अथवा प्रजा को अन्नपूर्ण स्थान में भेज देने का परामर्श दे।[2] अतः आथर्वण क्रिया में पुरोहित को अवश्य निपुण होना चाहिये। इस प्रकार से पुरोहित ऋत्विक् वर्ग का व्यक्ति होता था, ऐसा सोमेश्वर के वाक्यों से विदित होता है।

इन सभी प्रसंगों का उल्लेख स्मृतियों में भी हुआ है। याज्ञवल्क्य स्मृति में पुरोहित के लिये कहा गया है—जो ज्योतिषशास्त्र का ज्ञाता, सब शास्त्रों में समृद्ध, अर्थशास्त्र में कुशल, शान्ति आदि कर्म तथा अथर्वांगिरस में जो निपुण हो उसी को राजा अपना पुरोहित नियुक्त करे।[3] महर्षि मनु ने गृह्यकर्म तथा शान्त्यादि करने के लिये पुरोहित का वरण करना आवश्यक बतलाया है।[4] कौटिल्य ने राजपुरोहित के लक्षणों का वर्णन करते हुये लिखा है—

"पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडंगे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणामथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत।"[5]

अर्थात् पुरोहित को शास्त्रप्रतिपादित विद्याओं से युक्त, उन्नत, कुलशील, षडंग वेद, ज्योतिष शास्त्र, शकुन शास्त्र तथा दण्डनीति शास्त्र में अत्यन्त निपुण, दैवी-मानुषी आपत्तियों का अथर्ववेद आदि में बताये हुये उपायों से प्रतीकार करने वाला योग्य व्यक्ति होना चाहिये। इसी प्रकार शुक्र का कथन है कि जो मन्त्र और अनुष्ठान में सम्पन्न, वेदत्रयी का ज्ञाता, कर्मतत्पर, जितेन्द्रिय, जितक्रोध, लोभ तथा मोह से रहित, वेद के षडंगों का ज्ञाता, धनुर्विद्या तथा धर्म का ज्ञाता हो तथा जिसके भय से राजा भी नीति में तत्पर हो जाय ऐसे पुरोहित के होने पर ही राष्ट्र उन्नति कर सकता है।[6] इसके अतिरिक्त उसे नीति, शस्त्र-अस्त्र के समूह में कुशल तथा शाप और अनुग्रह में समर्थ होना चाहिये, ऐसा भी शुक्र

---

१. वही ४।३।३०। २. वही ४।३।२२।

३. पुरोहितं प्रकुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम्।
दंडनीत्यां च कुशलमथर्वांगिरसे तथा॥ याज्ञ० १।३१३।

४. पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम्।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च॥ मनु० ७।७८।

५. अर्थशास्त्र १।९।१५।

६. मंत्रानुष्ठानसम्पन्नस्त्रैविद्यः कर्मतत्परः।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः॥
षडंगवित् सांगधनुर्वेदविच्चार्थधर्मवित्।
यत्कोपभीत्या राजापि धर्मनीतिरतो भवेत्॥ शुक्र० २।७७.७८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का मत है।[1] इसमें कुछ गुणों का वर्णन सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास में नहीं किया है।

इन सभी गुणों से युक्त पुरोहित को ही राज्य का सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वप्रथम पालनकर्ता माना गया है।[2] इसी के ऊपर राज्य की उन्नति का बहुत कुछ भार आश्रित रहता है। यह राजा तथा राष्ट्र दोनों का ही उचित रीति से पालन करता है। वैदिक काल से ही पुरोहित को राष्ट्र के अन्तर्गत महान् स्थान प्राप्त है। यह राष्ट्र में राजा की आत्मा तथा राजा के आध्यात्मिक गुरु की भाँति रहता है। पुरोहित की आज्ञा सदैव राजा के सिर पर विद्यमान रहती है। यह केवल राजा का ऋत्विक् ही नहीं रहता वरन् राजा पर शासन भी करता है। ऐतरेय ब्राह्मण में राजा के लिये "राष्ट्रगोता" (अर्थात् राष्ट्र का पालनकर्ता अथवा छिपानेवाला अथवा जाननेवाला) कहा गया है।[3] शुक्र ने "पुरोधाः प्रथमः श्रेष्ठः सर्वेभ्यो राजराष्ट्रभृत्" कहकर पुरोहित को 'राष्ट्रभृत्' अर्थात् राज्य का पालन करनेवाला बतलाया है। इससे विदित होता है कि पुरोहित ही राज्य तथा राजा दोनों का रक्षक होता है। ऋग्वेद में पुरोहित विश्वामित्र के द्वारा ही भारत जाति की रक्षा होने का प्रसंग प्राप्त होता है।[5]

इसी कारण धर्मशास्त्र, वेद, नीति आदि में निपुण तपस्वी को ही पुरोहित बनाने का आदेश दिया गया है।[6] इस प्रकार के पुरोहित की आज्ञा राजा उसी प्रकार शिरोधार्य करता है जिस प्रकार शिष्य आचार्य की, पुत्र पिता की तथा भृत्य स्वामी की आज्ञा का पालन करता है।[7]

पुरोहित का कार्य केवल राजा के दैनिक जीवन में ही नहीं समाप्त हो जाता वरन् यह युद्ध के समय युद्धक्षेत्र में भी सेना के साथ जाता है। थकित हुये राजा तथा सेना को ओजपूर्ण मन्त्रों से उत्साहित करता है जिससे सेना के रग-रग में

---

१. नीतिशास्त्रास्त्रव्यूहादिकुशलस्तु पुरोहितः।
सैवाचार्यः पुरोधा यः शापानुग्रहयोः क्षमः ।। वही २।७९।

२. पुरोधाः प्रथमं श्रेष्ठः सर्वेभ्यो राजराष्ट्रभृत्।
तदनु स्यात्प्रतिनिधिः प्रधानस्तदनन्तरम् ।। वही २।७४।

३. ऐतरेय ब्राह्मण ४०।२।

४. शुक्रनीति २।७४।

५. विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्। ऋ० ३।५३।१२।

६. वेदेतिहासधर्मशास्त्रार्थकुशलं कुलीनमव्यंगं तपस्विनं पुरोहितं च वरयेत।
विष्णुधर्मसूत्र ३।७०।

७. तमाचार्यं शिष्यः, पितरं पुत्रो, भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत।
अर्थशास्त्र १।९।१६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रक्त का प्रवाह हो उठता है। इसी प्रकार उत्साहित करते-करते सम्पूर्ण सेना के सैनिकों को शत्रु के समीप खड़ा कर देता है और वे तुरन्त ही भूखे व्याघ्र की भांति शत्रु पर झपट कर उसे परास्त कर देते हैं।[1] वैसे तो प्रत्येक कार्य में राजा अपने सभी मन्त्रियों से सलाह लेता है किन्तु अन्त में फिर वह एकान्त में बैठ कर पुरोहित के साथ मन्त्रणा करता है। पुरोहित के भय से राजा भी भयभीत होकर नीति का अनुसरण करने लगता है। पुरोहित वास्तविक रूप में धर्म की स्थापना के लिये ही राज्य में नियुक्त किया जाता है। यह ब्राह्मणों की ओर से राजा का प्रतिनिधि होता है। इसी कारण राज्याभिषेक के अवसर पर उसे न्याय की खड्ग दी जाती है और पुरोहित उसी की सहायता से उसे शासन करने की आज्ञा देता है। फिर पुरोहित न्याय दंड उस समय राजा की पीठ पर मार कर उसे यह शिक्षा देता है कि यद्यपि वह अदंड्य है फिर भी किसी प्रकार का अन्याय करने पर धर्म का प्रतिनिधि मैं तुम्हें दण्ड देने के लिये उपस्थित हूँ। राजा यद्यपि राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता है किन्तु धर्म तथा न्याय के समक्ष उसे भी सिर झुकाना पड़ता है। न्याय और धर्म का प्रतिनिधि राष्ट्र में यही पुरोहित होता है। पुरोहित का सोमेश्वर देव के राज्य में भी बड़ा महत्व था। यद्यपि उन्होंने पुरोहित के विषय में अधिक प्रकाश नहीं डाला, फिर भी उसके गुणों को पढ़कर ही उसकी स्थिति के विषय में बहुत कुछ विदित हो जाता है। उनके समय में भी यह राष्ट्र का सर्वेसर्वा समझा जाता था और आध्यात्मिक पक्ष का आश्रय था।

सेनापति

सोमेश्वर एक बड़ा ही प्रतापी राजा था। सोमेश्वर ने सेनापति के लक्षणों का भी वर्णन मानसोल्लास में किया है क्योंकि सेना ही राजा की विजय का कारण होती है और सेना का सुचारु रूप से संगठन एक योग्य सेनापति ही कर सकता है। इसी कारण उन्होंने सेनापति के गुणों का वर्णन करते हुये लिखा है कि सेनापति को कुलवान्, शीलवान्, धैर्यवान्, चार भाषाओं में निपुण, गज-अश्व पर चढ़ने में दक्ष, शस्त्र-शास्त्र का ज्ञाता, शकुन को जानने वाला, प्रत्येक समय के अनुसार चिकित्सा को जानने वाला, वाह भेद विधान का ज्ञाता, सारेतर को विशेष रूप से जानने वाला, दानी, मधुर भाषी, दान्त, मतिमान्, दृढ़प्रतिज्ञ, शूरवीर तथा भृत्यों को विशेष रूप से समझाने वाला होना चाहिये। ऐसे व्यक्ति को ही सेनापति के पद पर नियुक्त करना चाहिये।[2] वास्तव में यदि सेनापति में यह सभी गुण उपस्थित न होंगे तो उसे सेना पर शासन करने में

---

१. वही १०।३। २. मानसोल्लास २।२।९०.९२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बड़ी कठिनाई होगी जिससे सेना में भी अशान्ति की लहर फैलेगी और राजा का भी अनिष्ट होगा।

सोमेश्वर ने जो सेनापति के गुणों का वर्णन किया है वे बहुत कुछ कौटिल्य द्वारा वर्णित सेनापति के गुणों से मिलते-जुलते हैं। कौटिल्य के अनुसार सेनापति को सेना के चारों अंगों के प्रत्येक कार्य को जानना चाहिये। उसे प्रत्येक प्रकार के युद्ध में सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने का ज्ञान होना चाहिये। इसके अतिरिक्त आन्वीक्षिकी आदि शास्त्रों से भी उसका पूर्ण परिचय होना चाहिये। हाथी-घोड़े पर चढ़ना तथा रथ आदि चलाने में अत्यन्त निपुण होना चाहिये। उसे चतुरंग सेना के भी प्रत्येक कार्य एवं दांव-पेंचों को समझना चाहिये।[1] इन गुणों के न रहने पर वह अपना कार्य पूर्ण रूप से नहीं कर सकता। युद्ध में उसका कार्य अपनी सेना पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण रखने के साथ ही साथ शत्रु की सेना को भी देखना रहता है। शत्रु की सेना के व्यूह को तोड़ना, अपनी फैली हुई सेना को इकट्ठा कर शत्रु के बल पर प्रहार करना, शत्रु के दुर्ग को तोड़ना, युद्ध का समय देखना, प्रत्येक दांव-पेंच का ध्यान रखना सेनापति का ही कार्य होता है।[2] इसी कारण सोमेश्वर सेनापति को मतिमान्, दृढ़प्रतिज्ञ, भृत्यविशेषवित्, शूरवीर, शस्त्र-शास्त्र-विचक्षण, गजाश्वारोहण में दक्ष होने का आदेश दिया है।

रामायण[3] तथा महाभारत[4] के भी अनेक स्थलों पर सेनापति के गुणों का वर्णन हुआ है। पुराणों में सेनापति के विषय में अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। सेनापति का पद बड़ा ही महत्वशाली एवं उत्तरदायित्व का पद होता है। इसी कारण अग्निपुराण[5] तथा मत्स्यपुराण[6] में इस प्रकार के प्रसंग प्राप्त होते हैं कि सेनापति को ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय ही होना चाहिये। शुक्र ने भी अपनी शुक्रनीति में लिखा है—

सेनाधिपः क्षत्रियस्तु ब्राह्मणस्तदभावतः।
न वैश्यो न च वै शूद्रः कातरश्च कदाचन॥

---

१. तदेव सेनापतिः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविनीतो हस्त्यश्वरथचर्यासंघुष्टश्चतुरंगस्य बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विद्यात्। अर्थशास्त्र २।३३।१२

२. स्वभूमिं युद्धकालं प्रत्यनीकमभिन्नभेदनं भिन्नसंधानं संहतभेदनं भिन्नवधं दुर्गवधं यात्राकालं च पश्येत्। वही २।३३।१३।

३. रामायण अयोध्याकांड १००।३०।

४. महाभारत सभापर्व ५।४६, शान्ति० ८५।३१.३२।

५. अग्निपुराण २२०।१। ६. मत्स्यपुराण २१५।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सेनापतिः शूर एव योज्यः सर्वासु जातिषु ।
ससंकरचतुर्वर्णधर्मोऽयं नैव यावनः ॥[१]

अर्थात् सेनापति को क्षत्रिय तथा ब्राह्मण ही होना चाहिये । वैश्य तथा शूद्र एवं कायर व्यक्ति को कभी सेनापति के पद पर नहीं नियुक्त करना चाहिये क्योंकि शूद्र तथा वैश्य सेनापति नियुक्त करने से सभी वर्गों में धर्मसंकरता उत्पन्न होती है ।

इस बात का प्रतिपादन सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास में कुलज, शीलवान् तथा शूर शब्दों द्वारा किया है । उनके ये शब्द सेनापति के इन्हीं सब गुणों को प्रकट करते हैं । इसके अतिरिक्त उन्होंने सेनापति के कुछ विशेष गुणां का वर्णन किया है । उदाहरणार्थ अनेक भाषाओं का ज्ञान, चिकित्सा का ज्ञान, शकुन का ज्ञान आदि ।[२]

अन्य गुणों के साथ ही साथ इन गुणों का होना उसमें आवश्यक है क्योंकि एक विशाल सेना का सेनापति होने के नाते उसे अनेक देशों की सेना से मिलता पड़ता है । यदि वह उनकी भाषा न समझेगा तो शत्रुपक्ष की सेना के दांव-पेंच को जानने में उसे कठिनाई होगी । इसके अतिरिक्त अपनी ओर के भी सैनिक जो अनेक प्रकार के भाषाभाषी होते हैं उन्हें समझने में भी उसे कष्ट होगा । इसके अतिरिक्त उसके लिये चिकित्सा का भी ज्ञान होना आवश्यक है । सेना में अचानक किसी प्रकार की छोटी-मोटी आधि-व्याधि आ जान पर वह स्वयं ही उसका सामना कर सकता है । शकुन आदि का ज्ञान होने पर वह अपनी सेना के शुभ-अशुभ का विचार कर सकता है । इन गुणों को पढ़कर सोमेश्वर की प्रखर बुद्धि का परिचय प्राप्त होता है । इस प्रकार का प्रसंग अन्यत्र कहीं भी नहीं प्राप्त होता ।

इसके अतिरिक्त सेनापति को अपने भृत्यों के विषय में पूर्णरूप से जानकारी होनी चाहिये ।[३] ऐसा न होने पर किसी भी समय उसका कोई भी सैनिक उसे धोखा दे सकता है । उसे सदैव अपनी सेना के व्यक्तियों से बोलने में मधुर भाषा का प्रयोग करना चाहिये । उसे सभी विशेष प्रकार के ज्ञान की बातों में निपुण होना चाहिये ।

वास्तव में यदि देखा जाय तो सेनापति का पद भी राष्ट्र के लिये बड़े ही महत्व का है । सम्पूर्ण राष्ट्र की विजय इसी सेनापति पर ही निर्भर रहती है । युद्ध में तो यह सर्वेसर्वा होता है । इस प्रकार राष्ट्र पर आये हुये आपत्ति काल, युद्ध काल तथा राष्ट्र की सीमा के विस्तार का यह सेनापति प्रतिनिधि होता है ।

१. शुक्रनीति २।४२१.४२२ । २. मानसो० २।२।९०.९१ ।
३. वही २।२।९२ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धर्माधिकारिसभाध्यक्ष

राष्ट्र के मध्य धर्माधिकारी का भी बहुत श्रेष्ठ स्थान है। राष्ट्र में न्यायपूर्वक प्रत्येक कार्य का निर्णय करना इसी के ऊपर निर्भर रहता है। यह धर्माधिकारी राष्ट्र में धर्म को स्थापना करने के लिये रखा जाता था। राज्य में एक धर्मसभा होती थी उसका यह अध्यक्ष होता था। उसी के लक्षणों का वर्णन करते हुये सोमेश्वर देव लिखते हैं कि उसे स्मृतिशास्त्र के अर्थ में कुशल, रागद्वेष से रहित, लोभरहित तथा निर्भय होना चाहिये।[1] इन गुणों से युक्त धर्माधिकारी को ही राजा धर्माध्यक्ष के पद पर नियुक्त करे।

धर्माधिकारी के लिये यह आवश्यक था कि वह जाति का ब्राह्मण हो और समान रूप से अपराध का अवलोकन कर दंड देता हो, सर्वथा समर्थ हो तथा विचारज्ञ हो।[2] धर्माधिकारि सभा का अध्यक्ष होते हुये उसमें इन सभी गुणों की आवश्यकता थी। यदि उसे स्मृति आदि का ज्ञान न होगा तो वह न्याय के दांव-पेचों को न समझ सकेगा और न उचित रीति से दंड का विधान ही कर सकेगा। राग-द्वेष से शून्यहृदय न होगा तो वह पक्षपातरहित न्याय नहीं कर सकता जिससे जनता असन्तुष्ट रहेगी। इसी कारण उसको रागद्वेष से शून्य होने का आदेश दिया गया है। व्यक्ति उत्तम न्याय तभी तक कर सकता है जब तक उसके हृदय में किसी प्रकार का पक्षपात न हो। इसके अतिरिक्त लोभ तथा भय आदि अवगुण भी उसके न्याय पथ में बाधक सिद्ध होते हैं। इन दोनों के वशीभूत हो जाने पर व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और उसे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रह जाता। लोभ तथा भय दोनों ही उसके ज्ञान को आवरण की भाँति ढक देते हैं और वह उत्तम न्याय करने में समर्थ नहीं हो पाता। इसी कारण यदि उसके हृदय में लोभ तथा भय न होगा तो वह न तो किसी प्रभाव में आ सकता है और न किसी के साथ भय के कारण अन्याय कर सकता है। इस प्रकार के मस्तिष्क से किया हुआ न्याय वास्तव में सन्तोषप्रद होता है।

इसके अतिरिक्त न्याय करने में उसे सहकारियों की सलाह भी लेनी पड़ती है। तब जैसा दंड का विधान हो उसी प्रकार का दंड उसे देना चाहिये। यदि त्रुटियों एवं अपराधों को ध्यान में रखकर दंड का विधान न होगा तो वह राष्ट्र कदापि सफल राष्ट्र नहीं बन सकता। इसी कारण राजा के लिये भी ऐसा आदेश दिया गया है कि वह इसके न्याय पर विचार करे और धर्माध्यक्ष के पद पर ब्राह्मण को ही नियुक्त करे। मनुस्मृति में भी इस प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है कि धर्मसभा का अध्यक्ष ब्राह्मण ही होना चाहिये—

---

१. वही २।२।९३।

२. वही २।२।९४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

"तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ।"[1]

इस प्रकार के प्रसंग को पढ़ कर ऐसा विदित होता है कि सोमेश्वर के समय में संभवतः न्याय करने के लिए सभा थी जिसमें राजा अन्य न्यायाधीशों की सहायता से न्याय करता होगा किन्तु उनके बीच एक अध्यक्ष ब्राह्मण होता होगा। राजा न्याय करते समय इस धर्माधिकारी से परामर्श लेता था। इस प्रकार सम्पूर्ण राष्ट्र में न्याय की बड़ी ही सुन्दर व्यवस्था थी।

कोशाध्यक्ष-गणक-लक्षण

कोष राज्य का आधार है। कौटिल्य ने "कोषपूर्वा सर्वारम्भाः"[2] कहकर कोष को सम्पूर्ण राज्य के कार्यों का आधार माना है। इसी कारण कौटिल्य ने राजा के लिये सर्वप्रथम कोषवृद्धि का ही आदेश दिया है।[3] कोष की सुरक्षा एवं वृद्धि के लिये कोशाध्यक्ष तथा गणक रखना आवश्यक है। उसी के लक्षणों पर सोमेश्वरदेव ने अपने मानसोल्लास में प्रकाश डाला है। कोशाध्यक्ष की नियुक्ति के समय बुद्धिमान राजा को चाहिये कि जो गुणकार, भागहार तथा त्रैराशिक विधान के तत्त्वों को भली प्रकार जानता हो, लोभी न हो, सावधान, रागद्वेष से रहित हो ऐसे व्यक्ति को राष्ट्र तथा कोष के लिये गणक नियुक्त करना चाहिये। सोमेश्वर द्वारा कथित यह प्रसंग इस बात को प्रकट करता है कि राजा उस समय में दो प्रकार के गणक नियुक्त करता था—पहला राष्ट्र के लिये, दूसरा कोष के लिये। राष्ट्र में नियुक्त हुआ गणक न्याय विभाग के अन्तर्गत आ जाता था और वह न्यायालय में वसूल हुये जुर्मानों तथा अन्य धन सम्बन्धी विषयों का हिसाब रखता था। किन्तु कोष के गणक का कार्य उस गणक से भिन्न था। कोष का गणक कोष में आने वाले धन तथा निकलने वाले धन का हिसाब रखता था। इसी कारण उसके गुणकार, भागहार तथा त्रैराशिक विधान में निपुण होने का उल्लेख किया है। इतने विशाल कोष के धन की गणना करने के लिये तथा उसे सुरक्षित रखने के लिये यदि उसे गणित का ज्ञान न होगा तो वह सुविधापूर्वक धन की सुरक्षा नहीं कर सकता और धन की हानि होने से राष्ट्र की स्थिति भी दयनीय होगी।

इन गुणों के अतिरिक्त गणक को बड़ी ही सावधानी से ईर्ष्या, द्वेष, लोभ आदि छोड़ कर कार्य करना चाहिये तभी राष्ट्र का लाभ हो सकता है क्योंकि यदि वह लोभी होगा तो इतना विशाल कोष उसे शीघ्र ही लोभी बना देगा जिससे वह अपना कार्य उचित रूप से न कर सकेगा। सोमेश्वर ने संभवतः

---

१. मनु० ८।९।   २. कौटिल्य अर्थशास्त्र ८।२।१।

३. वही ८।२।२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कोष के अधिकारी को ही गणक नाम से विभूषित किया है क्योंकि अन्य ग्रन्थों में कोष के अधिकारी के लिये कोषाध्यक्ष नाम प्रयुक्त हुआ है। इस कोषाध्यक्ष के विषय में अनेक लक्षण अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं। कौटिल्य ने लिखा है—

कोषाध्यक्षः कोषप्रवेश्यं रत्नं सारं फल्गु कुप्यं वा तं जातकरणाधिष्ठितः प्रतिगृह्णीयात् ॥[१]

अर्थात् कोष में जो भी रत्न, सार, वस्त्र, कुप्यसंज्ञक वस्तुएँ आयें उन्हें कोषाध्यक्ष को उनके अधिकारियों के सामने ही ग्रहण करना चाहिये। शुक्र[२] ने भी कोषाध्यक्ष के लिये जितेन्द्रिय, धनी तथा व्यवहार में चतुर होने का आदेश दिया है। सोमेश्वर भी इसी प्रकार के गुणों से युक्त कोषाध्यक्ष को उत्तम मानते हैं।

प्रतीहार

कोषाध्यक्ष के बाद सोमेश्वर प्रतीहार का उल्लेख अपने मानसोल्लास में करते हैं। राजा को चाहिये कि उन्नत, रूपवान, दक्ष, मधुभाषी, गर्वरहित, सबके चित्त को लुभा लेने वाले व्यक्ति को प्रतीहारी के पद पर नियुक्त करे।[३] प्रतीहार राजा का परम प्रिय दूत होता था। इसके लक्षणों के अन्य ग्रन्थों में भी प्रसंग प्राप्त होते हैं। प्रतीहार के विषय में शुक्र कहते हैं कि जो अस्त्र-शस्त्र में कुशल हो, दृढांग हो, आलसी न हो तथा जो नम्र होकर सबका स्वागत तथा आह्वान करता हो ऐसा व्यक्ति प्रतीहारी होना चाहिये।[४]

प्रतीहार को राजनीति के अन्तर्गत बहुत प्राचीन काल से बड़ा ही श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। वेदों में अनेक स्थल पर ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि अग्निदेव देवताओं के संदेशवाहक थे।[५] दूत को शस्त्रों का भी भय नहीं होता क्योंकि वह संदेश ले जाने के कारण अवध्य होता है। इसी कारण वह यथार्थ वाणी बोलता है।[६] इसके अतिरिक्त दूत राजा का परम हितैषी होता है—

भक्तो गुणी शुचिर्दक्षः प्रगल्भो व्यसनी क्षमी।
ब्राह्मणः परमर्मज्ञो दूतः स्यात्प्रतिभानवान् ॥[७]

---

१. वही २।११।१। २. शुक्र० २।१५१।
३. मानसो० २।२।१२६।
४. शस्त्रास्त्रकुशलो यस्तु दृढांगश्च निरालसः।
यथायोग्यं समाहूयात्प्रनम्रः प्रतिहारकः ॥ शुक्रनीति २।१७३।
५. ऋग्वेद १।१२।१, १।१६१।३, ८।४४।३।
६. उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा।
सदैवावध्यभावेन यथार्थस्य हि वाचकः ॥ हितोपदेश, विग्रह १५।
७. वही १९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वह सदैव अपनी वाक्पटुता एवं कार्यकुशलता द्वारा अपने स्वामी को प्रसन्न रखता है।[1] सोमेश्वर ने दूत एवं प्रतीहार के लिये उच्च कुल का होना बतलाया है। तभी उन्होंने 'उन्नत' शब्द का प्रयोग किया है।[2] दूत के लिये प्रगल्भ, अव्यसनी तथा शत्रु के मर्म को जानने वाला होना चाहिये तभी राजा विजयी हो सकता है क्योंकि यही दूत एवं गुप्तचर ही राजा की आंख होता है (चारैः पश्यन्ति राजानः) । इसी कारण सोमेश्वर भी उसे दर्पवर्जित, दक्ष एवं प्रियवाग् बतलाते हैं। महाभारत में दूत के आठ गुणों का वर्णन हुआ है—

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥[3]

किन्तु महाभारत के एक अन्य स्थल पर दूत के सात गुणों का ही वर्णन किया गया है। रामायण[5] तथा पुराणों[6] में भी दूत का वर्णन हुआ है। दूत को उतना ही बोलने का अधिकार होता है जितना उसे राजा ने आज्ञा दी हो अन्यथा वह वध करने योग्य है।[7] मनु ने भी दूत का वर्णन इस प्रकार किया है—

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥[8]

कौटिल्य ने दूत को राजा का गुप्त सलाहकार माना है और निसृष्टार्थ, परिमितार्थ तथा शासनहर इन तीन प्रकार के दूतों का वर्णन किया है—

"उद्धृतमन्त्रो दूतः प्रणिधिः। अमात्यसंपदोपेतो निसृष्टार्थः।
पादगुणहीनः परिमितार्थः। अर्धगुणहीनः शासनहरः॥[9]

कौटिल्य ने दूत का सबसे बड़ा गुण यही बतलाया है कि प्राणों का भय उपस्थित होने पर भी उसे अपने स्वामी का यथोक्त संदेश कहना चाहिये।[10] इसके अतिरिक्त "दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये च। तस्मादुद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तं

१. वही २०। २. मानसो० २।२।१२६।
३. महाभारत उद्योगपर्व ३७।२७। ४. वही शान्तिपर्व ८५।२८।
५. वा० रामायण अयोध्या० १००।३५।
६. मत्स्यपुराण २१५।१२.१३। ७. महाभारत उद्योगपर्व ७२।७।
८. मनुस्मृति ७।६३.६४। ९. कौटिल्य १।१६।१.४।
१०. शासनं च यथोक्तं ब्रूयात्। प्राणबाधेऽपि दृष्टे। वही १।१६।१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वक्तारस्तेषामन्तावसायिनोऽप्यवध्याः । किमंग पुनर्ब्राह्मणाः । परस्यैतद्वाक्यमेष दूतधर्म इति"[१] कहकर दूत को राजा का मुख मानकर उसे अवध्य बतलाया है। इसी प्रकार का प्रसंग एक स्थल पर और आया है—

दूतो म्लेच्छोऽप्यवध्यः स्याद्राजा दूतमुखो यतः ।
उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा ॥[२]

दूत का वर्णन कामन्दकीय नीतिसार में भी हुआ है।[३] रामायण में भी दूत की अवध्यता पर अधिक बल दिया गया है।[४]

सान्धिविग्रहिक-लक्षण

महाभारत के शान्तिपर्व में षाड्गुण्य मंत्र का उल्लेख हुआ है—

षाड्गुण्यमिति यत्प्रोक्तं तन्निबोध युधिष्ठिर ।
सन्धानासनमित्येव यात्रा सन्धानमेव च ॥[५]

इसके अन्तर्गत शत्रु से सन्धि करके चुप बैठना, आक्रमण करना, वैर करके चुप बैठना, आक्रमण करके बीच में रुक जाना, शत्रु और मित्र दोनों से सन्धि करना, किसी अन्य दुर्ग या राजा का आश्रय लेना आदि ६ गुण आ जाते हैं। इसी कारण इसका नाम षाड्गुण्य है। इन्हीं को क्रमशः सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय तथा द्वैधीभाव कहते हैं।[६]

सोमेश्वर ने जो सन्धि-विग्रह का वर्णन किया है वह इसी षाड्गुण्य के अन्तर्गत आ जाता है। शुक्रनीति में सन्धि के विषय में कहा गया है—

याभिः क्रियाभिर्बलवान्मित्रतां याति वैरिणः ।
सा क्रिया संधिरित्युक्ता विमृशेताशु यत्नतः ॥[७]

इसके अनुसार जब निर्बल राजा बलवान शत्रुराजा को सन्धि द्वारा मित्र बनाता है तो उसी को सन्धि कहते हैं। कौटिल्य ने भी "तत्र पणबन्धः सन्धिः"[८] कहकर सन्धि की परिभाषा की पूर्ति की है। राजा को चाहिये कि जहां तक उससे बन पड़े वह युद्ध न करे। युद्ध उसे तभी करना चाहिये जब युद्ध के अतिरिक्त और कोई चारा न हो।[९] युद्ध होने पर भी यदि देखे कि शत्रु पक्ष अधिक बलवान

---

१. वही ११।१६।१७.१९ । २. हितोपदेश विग्रह० ६२ ।
३. कामन्दकीय नीतिसार १२।१, १२।२.२४, १२।२२.२३ ।
४. रामायण ५।५२।१४.१५ । ५. महाभारत शान्ति पर्व ६९।६७ ।
६. संधिविग्रहासनयानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः । ७।१।२ ।
७. शुक्रनीति ४।१०६६ । ८. कौ० ७।१।६ ।
९. उपायान्तरनाशे तु ततो विग्रहमाचरेत् । ४।१०८५ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है तो भूमि, कन्या, धन, सुवर्ण आदि वस्तुयें उपहार रूप में देकर उससे सन्धि कर लेनी चाहिये। यही सन्धि का नियम है।[१] कौटिल्य ने अपने समान राजा से भी सन्धि करने का आदेश दिया है, यदि भविष्य में उसकी उन्नति होने की आशंका हो।[२] मनुस्मृति में दो प्रकार की सन्धियां बतलाई गई हैं—

संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च।[३]

इन्हीं का नाम समानयानकर्मा तथा असमानयानकर्मा सन्धि है।[४] जब शत्रु किसी विशेष कर्म से पीडित होकर आधीन हो जाता है तो उसी कर्म को विग्रह कहते हैं—

विकर्षितः सन्नाधीनो भवेच्छत्रुस्तु येन वै।[५]

कौटिल्य ने 'अपकारो विग्रहः' कहकर विग्रह को समझाया है। जब शत्रु निर्बल पड़ चुका हो, अन्य शत्रुओं से घिरा हो, भोग-विलास में फंसा हो, दुर्ग में बंद होकर बैठा हो, ऐसे समय में शत्रु राजा पर अचानक आक्रमण कर उसे वश में करना ही विग्रह कहा जाता है।[६] किन्तु विग्रह राजा को तभी करना चाहिये जब वह देखे कि उसकी अमात्यादि सातों प्रकृतियां खूब वृद्धि पर हैं और सभी उसके अनुकूल हैं।[७] विग्रह दो प्रकार का होता है: १. शत्रु की विजय के हेतु कार्य के लिये अनुकूल समय में युद्ध करना, २. जो मित्र के अपकार होने से विग्रह होता है।[८] कौटिल्य ने राजा को तभी विग्रह का पालन करने का आदेश दिया है जब राजा स्वयं अपने को तथा अपने संगठन को शत्रु से अधिक बलवान समझ ले।[९]

सन्धि तथा विग्रह के विषय में उपयुक्त सलाह देने के लिये राजा के समीप अधिकारी रहता था जो समय को देखकर उचित सलाह देता था। इसी प्रकार के अधिकारी का वर्णन सोमेश्वर ने किया है, जो 'सांधिविग्रहिक' कहलाता था।[१०] उसी के लक्षणों का वर्णन करते हुये वे कहते हैं कि जो प्रगल्भ, बुद्धिमान, दक्ष, सभी भाषाओं में निपुण हो, जो सन्धि-विग्रह के तत्व को जानने वाला, लिपि को जानने वाला तथा अक्षर को पढ़ सकता हो, सामन्तमंडल तथा मान्यकों का विशेष रूप से आवाहन, विसर्जन तथा स्थापन करने में निपुण हो, षाड्गुण्य विधि के तत्व को जानता हो, देश-काल-विभाग को समझने वाला,

---

१. शुक्र० ४।१०७३।
२. कौ० ७।१।३०।
३. मनु० ७।१६२।
४. वही ७।१६३।
५. शुक्र० ४।१०६७।
६. वही ४।१०८१।
७. मनु० ७।१७०।
८. वही ७।१६४।
९. कौ० ७।१।४८-५२।
१०. मानसोल्लास २।२।१३०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आय-व्यय, लोक तथा देश की उत्पत्ति को समझने वाला, धन की रक्षा में तत्पर, कृत्य तथा अकृत्य की विवेचना करने वाला हो, ऐसे कार्य-विशारद को राजा को सान्धिविग्रहिक के पद पर नियुक्त करना चाहिये।[१] सोमेश्वर ने जो सान्धिविग्रहिक का वर्णन किया है ऐसे व्यक्ति का अन्य स्थलों में प्रसंग नहीं प्राप्त होता। हां, षाड्गुण्य का आचरण करने वाले विशेषज्ञ का प्रसंग प्राप्त होता है—

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता।
मंत्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम्॥[२]

वास्तव में इस अधिकारी के ऊपर देश का बहुत भार रहता है। इसी कारण इस व्यक्ति का इतना गुणवान् होना स्वाभाविक है। यदि वह बुद्धिमान, दक्ष, प्रगल्भ, अनेक भाषाओं, लिपियों एवं अक्षरों को जानने वाला न होगा तो वह कदापि शत्रु के दांव-पेचों को नहीं समझ सकता। संभवतः युद्ध में साथ रहने वाला यह राजा का गुप्तचर होगा जो शत्रु के प्रत्येक दांव-पेच का ज्ञान रखता होगा।

लेखक

सान्धिविग्रहिक के अतिरिक्त राजा के दरबार में एक लेखक भी नियुक्त होता था जो सब देश की लिपियों का ज्ञाता, लेखन कला में पटु, अधीत तथा बुद्धिमान होता था। इसी प्रकार के व्यक्ति को राजा लेखक नियुक्त करता था।[३] यह लेखक लिखने का सभी कार्य करता था जो राज्य से सम्बन्धित होते थे।

शुक्रनीति में लेखक के लक्षण का इस प्रकार वर्णन हुआ है—

गणनाकुशलो यस्तु देशभाषाप्रभेदवित्।
असंदिग्धमगूढार्थं विलिखेत्स च लेखकः॥[४]

इसके अनुसार लेखक को गणना में कुशल, देश-विदेश की भाषा के भेद को जानने वाला तथा असंदिग्ध तथा स्पष्ट लिखने वाला होना चाहिये। किन्तु सोमेश्वर ने 'सर्वदेशलिपिज्ञाता'[५] का प्रयोग किया है।

सारथि-लक्षण

राज्य में जो सेना के अश्वों का अधिपति होता था उसे सारथी कहते थे। सोमेश्वर ने उसके लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है—जो अश्वों की चिकित्सा को जानता हो, निमित्त तथा शकुनों का ज्ञाता हो, तुरगों की शिक्षा के विषय

१. वही २।२।१२७-१३०। २. मनु० ७।५८।
३. मानसोल्लास २।२।१३१। ४. शुक्रनीति २।१७२।
५. मानसोल्लास २।२।१३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में ज्ञान रखता हो, अश्वों के योग्य भूमिभाग को जानता हो, सेना के तथा बिना सेना के रथों का ज्ञाता हो, प्रिय वाणी वक्ता, प्रियदर्शी, शूरवीर, विद्वान् हो उसी व्यक्ति को घोड़ों का सारथी नियुक्त करना चाहिए। वास्तव में सारथी को अश्व-चिकित्सा का ज्ञान तथा घोड़ों की शिक्षा देने का ज्ञान होना चाहिये क्योंकि सारथी घोड़ों का स्वामी होता है। युद्ध में यदि अचानक घोड़े को कुछ हो जाता है तो अश्व चिकित्सा जानने वाला व्यक्ति उसी क्षण उसे ठीक कर सकता है। घोड़ों को शिक्षा देने का ज्ञान यदि सारथी को न होगा तो घोड़ा उसके आधिपत्य में न रह सकेगा जिससे किसी भी समय अनर्थ होने की सम्भावना हो सकती है।[1]

इसके अतिरिक्त सारथी को शकुनों का ज्ञाता होना चाहिए जिससे वह शकुनों का ध्यान रख कर ही अश्व लेकर चलेगा जिससे विजय निश्चित हो जाती है। भूमिभाग का ज्ञान होने पर वह अश्व की गति को विशेष प्रकार से ध्यान कर प्रत्येक भूमि में चला सकता है। इन सब गुणों के साथ ही साथ मधुरभाषी तथा प्रियदर्शी आदि गुण होने से वह शीघ्र ही दूसरे के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। शुक्रनीति में भी अश्वों के सारथी के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है।

अश्वानां हृदयं वेत्ति जातिवर्णभ्रमैर्गुणान्।
गतिं शिक्षां चिकित्सां च सत्त्वं सारं रुजं तथा॥
हिताहितं पोषणं च मानं यानं दतो वयः।
शूरश्च व्यूहवित्प्राज्ञः कार्योऽश्वाधिपतिश्च सः॥
एभिर्गुणैश्च संयुक्तो धुर्यान्युग्यांश्च वेत्ति यः।
रथस्य सारं गमनं भ्रमणं परिवर्तनम्॥[2]

सूद-लक्षण

इसके अन्तर्गत सोमेश्वर ने पाकशास्त्र में निपुण व्यक्ति का वर्णन किया है। जो सभी पाकशास्त्र के ज्ञाताओं का अधिपति होता था उसे सूदाध्यक्ष कहते थे। सूद के लक्षण के विषय में सोमेश्वर ने लिखा है कि जो असम्भेद्य, पवित्र, दक्ष, अन्न की परीक्षा करने वाला, पाकशास्त्र के ज्ञाताओं में निपुण हो ऐसे व्यक्ति को सूदाध्यक्ष नियुक्त करना चाहिए।[3] इसके अतिरिक्त कुल के क्रम से आया हुआ, सन्तुष्ट, इष्ट का अनुकरण करने वाला, केश तथा नख कटवाये हुये, इन्द्रियजित्, दूसरे से न भेदा जाने वाला, राजा में रत, अन्न-पानादि में

१. वही २।२।१३२-३३। २. शुक्रनीति २।१२९-३१।
३. मानसोल्लास २।२।१३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विशेषज्ञ, मांसपाक में विद्वान्, शाक के पाक की कला में दक्ष, अन्न को पकाने में प्रवीण, व्यंजनों के तत्वों को जानने वाला, खण्ड के पाक को जानने वाला, दुग्ध के प्रकार को जानने वाला हो, ऐसे प्रवीण व्यक्ति को सूद नियुक्त करना चाहिये।[१] इतने गुणों से युक्त सूद ही रुचिकर भोजन बना सकता है।

इन सभी गुणों में सबसे आवश्यक गुण सूद का असंभेद्य, दान्त, पराभेद्य तथा राजा में रत होना है। सूद के लिये यह आवश्यक है कि उसे अपनी इन्द्रियों एवं हृदय पर विश्वास हो, वह किसी के कहने में न आवे, किसी के द्वारा भेदे अथवा सिखाये जाने पर राजा को विषादि न दे दे। उसका राजा में ही रत रहना आवश्यक है, तभी वह राजा का सदैव ध्यान रखेगा और उसे सुन्दर एवं रुचिपूर्ण भोजन बनाकर देगा।

शुक्रनीति में पाकशास्त्र के नायक के गुणों का वर्णन निम्न प्रकार से हुआ है—

धौता धौतविपाकज्ञो रससंयोगभेदवित्।
क्रियासु कुशलो द्रव्यगुणवित्पाकनायकः॥[२]

इसमें केवल थोड़े ही गुणों का वर्णन हुआ है। सोमेश्वर ने पाकशास्त्र नायक के अनेक गुणों का वर्णन किया है जिसके अन्तर्गत सूद को अन्न, द्रव्य, रस, शाक आदि सभी व्यंजनों में निपुण बतलाया है। इन सभी व्यंजनों के साथ-साथ मांस बनाने में भी सूद को निपुण होना चाहिये। "मांसपाकविशारदाः" शब्द इस बात को प्रकट करता है कि महाराज सोमेश्वर मांसभक्षण के अत्यन्त प्रेमी थे। सभी प्रकार के मांसों का प्रयोग किया जाता था। इसका विस्तार-पूर्वक वर्णन उपभोग के प्रकरण में होगा।

वैद्य-लक्षण

सूद के बाद सोमेश्वर ने वैद्य के लक्षणों को गिनाया है जिसके अन्तर्गत उन्होंने वैद्य को मनुष्य, अश्व, गज, गो तथा अन्य पशु-पक्षियों की चिकित्सा में निपुण होना चाहिए, ऐसा बतलाया है।[३] नर, अश्व, गज के अतिरिक्त गो तथा अन्य पशु एवं पक्षियों की चिकित्सा भी वैद्य करते थे। इस प्रसंग से विदित होता है कि प्रत्येक की चिकित्सा के लिए अलग-अलग विभाग रहे होंगे जिनके अन्तर्गत इन सबकी चिकित्सा होती होगी। इनके अतिरिक्त वैद्य को अष्टांग चिकित्सा में भी निपुण होना चाहिए।[४]

इस प्रसंग में वर्णित वैद्य सम्भवतः राज्य के स्वास्थ्य तथा चिकित्सा विभाग

---

१. वही २।२।१३५-१३७। २. शुक्रनीति २।१५६।
३. वही २।२।१३८। ४. मानसोल्लास २।२।१३९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का अध्यक्ष होता था। जिस प्रकार वर्तमान काल का स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विभाग का केन्द्रीय प्रमुख संचालक (Director General of Public Health) सम्पूर्ण राज्य के चिकित्सालयों आदि का सुचारु रूप से संचालन करता है उसी प्रकार सोमेश्वर के राज्य में एक केन्द्रीय वैद्य रहता था जो सम्पूर्ण राज्य की चिकित्सा एवं स्वास्थ्य का ध्यान रखता था। इसके आधीन स्थान-स्थान पर अनेक चिकित्सालय रहते थे जिनका निरीक्षण स्थानीय वैद्यों द्वारा होता था।

केन्द्रीय वैद्य पर केवल मनुष्यों की ही अष्टांग चिकित्सा का भार न था वरन् पशुओं की चिकित्सा का निरीक्षण करना भी उसी का कार्य था। पशुओं की चिकित्सा सोमेश्वर के समय में वर्तमान काल से भी अधिक उन्नतिपूर्ण थी, क्योंकि वर्तमान काल में सभी पशुओं की चिकित्सा एक ही चिकित्सालय के अन्तर्गत होती है किन्तु सोमेश्वर के समय में गज, अश्व, उष्ट्र, गो आदि पशुओं की चिकित्सा के लिये अलग-अलग वैद्य तथा चिकित्सालय थे। इनमें गज तथा अश्व की चिकित्सा पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था क्योंकि ये युद्ध के अतिरिक्त राजा के दैनिक जीवन तथा विनोद आदि से अधिक सम्बन्ध रखते थे।

मध्यकालीन भारत में अश्व का बड़ा महत्व था। अश्व चिकित्सकों को स्वतन्त्र रूप से राजाश्रय प्राप्त था। अश्वायुर्वेद पर इसी कारण पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है जिनमें से मुख्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

जयदत्त का 'अश्ववैद्यक', नकुलकृत 'अश्वचिकित्सा', कल्हणकृत 'शालिहोत्रसारसमुच्चय', वर्धमानकृत 'योगमञ्जरी', दीपंकरकृत 'अश्ववैद्यक', अग्निपुराण में वर्णित 'अश्ववैद्यक', भोज का 'युक्तिकल्पतरु', वाग्भट्ट का 'अश्वायुर्वेद' इत्यादि। महाराज सोमेश्वर ने भी अश्व के मुख्य रोगों की चिकित्सा का उल्लेख मानसोल्लास में किया है।[1] अतः सोमेश्वर का भी अश्वचिकित्सा साहित्य के रचयिताओं में प्रमुख स्थान है।

गजायुर्वेद के पुरस्कर्ता पालकाप्य मुनि माने जाते हैं जिनका 'हस्त्यायुर्वेद' नाम का एक ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। महाराज सोमेश्वर ने भी गजों के मुख्य रोगों को ध्यान में रखते हुए उनकी सरल चिकित्सा के उपायों पर प्रकाश डाला है।[2]

अश्व तथा गज के अतिरिक्त सोमेश्वर ने गो, मृग आदि पशुओं तथा पक्षियों की चिकित्सा किये जाने का स्वतन्त्र रूप से उल्लेख किया है।[3] गो आदि की

---

१. वही २।६।५७९-६१९। २. वही २।६।६२८-६७४।
३. वही २।२।१३८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चिकित्सा के सम्बन्ध में संस्कृत का कोई भी ग्रंथ प्रकाश में नहीं आया है। हिन्दी में अभी हाल में 'गोचरित्र', 'भैंसचरित्र', 'ऊंटचरित्र' नाम की कुछ हस्तलिपियां प्राप्त हुई हैं जिनमें इन पशुओं की चिकित्सा पर पूर्ण रूप से प्रकाश डाला गया है।[१] इन ग्रन्थों की शैली संस्कृत के ग्रन्थों की शैली के आधार पर लिखी हुई प्रतीत होती है। 'ऊँटचरित्र'[२] नाम की हस्तलिपि में शालिहोत्र तथा सगर को उष्ट्रायुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थों का रचयिता माना गया है किन्तु इन ग्रन्थों के अभाव में कोई निश्चित निर्णय नहीं दिया जा सकता।

सोमेश्वर के समय में केन्द्रीय वैद्य के आधीन मनुष्यों की चिकित्सा के अतिरिक्त विविध पशुओं के स्वतन्त्र चिकित्सालय थे। सम्भवतः इसीलिए इस केन्द्रीय वैद्य को सुचारुरूप से उनका प्रबन्ध करने के लिए इन सबकी चिकित्सा का ज्ञान सोमेश्वर ने आवश्यक बतलाया है।[३]

राष्ट्र

मानसोल्लास में राष्ट्र की रक्षा करना राजा का परम धर्म माना है। महाराज सोमेश्वर का कथन है कि जो राजा मोहवश अपने राष्ट्र को पीड़ित करता है उसका शीघ्र ही बन्धुओं सहित राज्य से पतन होता है—

स्वराष्ट्रं यो नृपो मोहात् पीडयेदनवेक्षया।
राज्यात्स च्यवते शीघ्रं प्राणेभ्यः सह बन्धुभिः॥[४]

राष्ट्र ही राजा का प्राण है। जिस प्रकार शारीरिक व्याधि से प्राणों का क्षय होता है उसी प्रकार देश के पीड़ित होने पर राजा के प्राणों का क्षय होता है:

यथैव प्राणिनां प्राणा हीयन्ते देहपीडनात्।
तथैव भूभुजां प्राणा हीयन्ते देशपीडनात्॥[५]

सोमेश्वर ने धनधान्य से पूर्ण, खानों तथा द्रव्यादि से भरे, पशुओं के लिये हितकारी, पर्याप्त जल से युक्त, पुण्यवान् व्यक्तियों से पूर्ण तथा अनेक उद्यानों और नदियों से पूर्ण राष्ट्र पर राजा को शासन करने का आदेश दिया है।[६] इन सभी उपकरणों एवं साधनों के उपस्थित होने पर राष्ट्र समृद्ध हो जाता है।

सोमेश्वर सदैव अपनी प्रजा को शान्त एवं सुखी बनाने का प्रयत्न करते थे। उनका कथन है कि राष्ट्र में राजा अपनी प्रजा का औरस पुत्रों की भाँति पालन

---

१. डा० मुनिकान्तिसागर-सम्मेलन पत्रिका चैत्र शुक्ल सं० २०१२ पृ० ८।
२. वही।
३. मानसोल्लास २।२।१३८। ४. वही २।३।१५७।
५. वही २।३।१५८। ६. वही २।३।१५२.५४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करे। चोर आदि से उसकी रक्षा करे तथा यह भी देखे कि अमात्यादि उस पर अत्याचार तो नहीं करते।[१]

वैदिक साहित्य में राष्ट्र से सम्बन्धित अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के सप्तम मंडल में वरुण की एक स्तुति में 'राजा राष्ट्रानाम्' कहकर उन्हें राष्ट्रों का राजा कहा गया है।[२] ऋग्वेद के अन्य स्थलों पर भी राष्ट्र सम्बन्धी प्रसंग प्राप्त होते हैं।[३] अथर्ववेद में पृथिवी माता से राष्ट्र को शक्ति प्रदान करने के लिये प्रार्थना की गई है।[४] तैत्तिरीयसंहिता[५] तथा वाजसनेयी संहिता[६] में भी इसी प्रकार के प्रसंग प्राप्त होते हैं। कामन्दकीय नीतिसार ने राज्य के समस्त अंगों की उत्पत्ति राष्ट्र से ही बतलाई है—

राज्यांगानां च सर्वेषां राष्ट्राद् भवति संभवः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन राजा राष्ट्रं समुन्नयेत्॥[७]

अग्निपुराण[८] में राज्य की प्रकृतियों में राष्ट्र को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है।

सोमेश्वर ने जिस प्रकार के धनधान्यपूर्ण राज्य का वर्णन किया है उसी प्रकार का प्रसंग अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। कामन्दकीय नीतिसार में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि राजा का ऐश्वर्य राष्ट्र के ऐश्वर्य पर निर्भर है।[९] इसी कारण राजा को सदैव अच्छे गुणों से युक्त स्थान चुनना चाहिये। जिस राष्ट्र में धन-धान्य, खानें, पशु, जल, शुद्धाचरण वाले व्यक्ति, वन, हाथी, सड़कें-व्यापारी तथा अन्य वस्तुयें हों वह राज्य ऐश्वर्यशाली कहलाता है—

'अदेवमातृका चेति शस्यते भूर्विभूतये'[१०]

अदेवमातृका का ही दूसरा नाम नदीमातृका है जिसका प्रयोग सोमेश्वर ने किया है।[११] अमरकोष में इस विषय में कहा गया है कि जिस राष्ट्र में धान्य की कृषि पूर्णतः वृष्टि पर ही निर्भर रहती है वह देवमातृक राष्ट्र तथा जहां धान्य की कृषि नदी तथा तालाब एवं नहरों के जल पर ही आश्रित रहती है वह नदी-मातृक राष्ट्र कहलाता है—

देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बुसंपन्नव्रीहिपालितः।
स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम्॥[१२]

---

१. वही २।३।१५५.५६।
२. ऋग्वेद ७।३४।११।
३. वही ७।८४।२, १०।१०९।३।
४. अथर्ववेद १२।१।८,१०।
५. तैत्तिरीय संहिता ७।५।१८।१।
६. वा० सं० २।२२।
७. कामन्द० ६।३।
८. अग्नि पु० २३९।२।
९. कामन्दक० ४।५२।
१०. वही।
११. मानसोल्लास २।३।१५३।
१२. अमरकोष।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

देवमातृक का प्रयोग 'देवो माता यस्य' के अर्थ में हुआ है। सोमेश्वर ने राष्ट्र की भूमि के लिये नदीमातृका का प्रयोग किया है। भारत के दक्षिण का भूभाग नदियों से पूर्ण है। सोमेश्वर दक्षिण प्रदेश के निवासी थे, सम्भवतः इसी कारण उन्होंने नदीमातृका शब्द का प्रयोग किया है।

जहां की भूमि पथरीली, वनों से पूर्ण, चोरों से घिरी, जलशून्य, विशाल एवं घनी झाड़ियों से पूर्ण तथा सर्पों से पूर्ण हो ऐसी भूमि राष्ट्र बनाने के योग्य नहीं होती। इस कारण राष्ट्र वही अच्छा माना जायगा जो ऐश्वर्यपूर्ण, और अनेक प्रकार के साधनों से पूर्ण हो तथा जहां पर जनरक्षा का पूर्ण रूप से प्रबन्ध हो। मनु ने इसी प्रकार के ऐश्वर्यशाली राष्ट्र को अच्छा माना है—

जांगलं सस्यसम्पन्नमार्यप्रायमनाविलम्।
रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत्॥[1]

इसी श्लोक की टीका करते हुये कुल्लूक ने इस प्रकार लिखा है—

अल्पोदकतृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः।
स ज्ञेयो जांगलो देशो बहुधान्यादिसंयुतः॥[2]

राजनीतिप्रकाश[3] में इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है। याज्ञवल्क्य ने अत्यन्त रमणीय तथा पशुओं से युक्त स्थान में बसने का आदेश दिया है—

"रम्यं पशव्यमाजीव्यं जांगलं देशमावसेत्।"[4]

इस प्रकार के ऐश्वर्यशाली राष्ट्र में मनु के मतानुसार अधिकाधिक आर्य एवं शिष्ट व्यक्तियों का निवास होना चाहिये[5]। विष्णुधर्मसूत्र[6] का कथन है कि राष्ट्र में वैश्य तथा शूद्र अधिक चाहिये। मनु शूद्रों की अधिक संख्या को नाश का कारण मानते हैं—

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम्।
विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम्॥[7]

इसी प्रकार के प्रसंग मत्स्य पुराण,[8] विष्णुधर्मोत्तर[9] तथा नीतिवाक्यामृत[10] में प्राप्त होते हैं। सोमेश्वर भी मनु के मत से सहमत प्रतीत होते हैं क्योंकि

---

१. मनु० ७।६८। २. वही, कुल्लूक की टीका।
३. रा० नी० प्र० पृ० १९७। ४. याज्ञ० १।३२१।
५. मनु० ७।६९। ६. वि० ध० सू० ३।५।
७. मनु० ८।२२। ८. मत्स्य पु० २१७।१.५।
९. विष्णुधर्मोत्तर २।२६।१.५।
१०. नीतिवाक्यामृत जनपदसमुद्देश पृ० १९१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उन्होंने भी "पुण्यवद्भिर्जनैर्युता"[1] कहकर राष्ट्र को पुण्यवान व्यक्तियों से पूर्ण बतलाया है।

राष्ट्र का संगठन...दशमलव सिद्धान्त

सोमेश्वर के राष्ट्र सम्बन्धी प्रसंगों के पढ़ने से विदित होता है कि राष्ट्र के संगठन के विषय में उन्होंने दशमलव सिद्धान्त को अपनाया है। राष्ट्र के संगठन के विषय में सोमेश्वर ने ग्राम को राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई अथवा संस्था माना है और उसी के आधार पर सम्पूर्ण राष्ट्र का संगठन बतलाया है। उनका कथन है—

एकग्रामप्रभुं कुर्याद् दशग्रामप्रभुं तथा।
ग्रामाणां विंशतेः कुर्यात् प्रभुं शतसहस्रयोः॥[2]

अर्थात् एक ग्राम का एक निवासी नियुक्त करे, फिर दश ग्रामों पर, बीस ग्रामों पर तथा सौ ग्रामों पर एक स्वामी नियुक्त करे। इसी प्रकार सहस्र ग्रामों का स्वामी नियुक्त करे।

सोमेश्वर का यह सिद्धान्त प्राचीन धर्मग्रन्थों के आधार पर आधारित प्रतीत होता है। मनुस्मृति में भी इसी प्रकार एक, दस, बीस, सौ तथा सहस्र ग्रामों का क्रमशः अधिपति बनाये जाने का आदेश दिया गया है—

ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद् दशग्रामपतिं तथा।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च॥[3]

इस दशमलव सिद्धान्त का समर्थन महाभारत में भी ग्रामों के संगठन के विषय में हुआ है—

राष्ट्रगुप्तिं च ते सम्यग्राष्ट्रस्यैव तु संग्रहम्।
हन्त सर्वं प्रवक्ष्यामि तत्त्वमेकमनाः शृणु॥
ग्रामस्याधिपतिः कार्यो दशग्राम्यस्तथापरः।
द्विगुणायाः शतस्यैवं सहस्रस्य च कारयेत्॥[4]

इस प्रकार महभारत में भी ग्राम को शासन की सबसे छोटी इकाई माना गया है और सम्पूर्ण राष्ट्र पर सुचारु रूप से शासन करने के लिये ग्राम, दश ग्राम, बीस ग्राम, सौ ग्राम तथा सहस्र ग्रामों में विभक्त करने का आदेश दिया गया है।

राष्ट्र की इकाई ग्राम

ग्रामों के शासन का राजा के लिये भली प्रकार निरीक्षण करने का सोमेश्वर

१. मानसोल्लास २।३।१५२। २. वही २।३।१५९।
३. मनु० ७।११५। ४. महा० शान्ति० ८७।२.३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने आदेश दिया है, क्योंकि उनका कथन है कि यदि ग्राम के शासन में कोई त्रुटि हो जाती है तो ग्राम में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अतः जब ग्राम के शासन में कोई त्रुटि उत्पन्न हो जाय तो उसके अधिपति को चाहिये कि वह दस ग्रामों के अधिपति से शिकायत करे। इसी प्रकार दस ग्राम का अधिपति बीस ग्रामों के अधिपति से, विंशतेश्वर सौ ग्रामों के अधिपति से तथा सौ ग्रामों का अधिपति सहस्राधीश से अपने-अपने ग्राम में उत्पन्न हुई त्रुटियों के विषय में शिकायत कर सकता है।[1] फिर भी यदि ग्राम के शासन में उत्पन्न दोष दूर न हों तो सभी अधिपति वहां जाकर वहीं रहकर ग्राम के दोष को दूर करें।[2] यह प्रसंग इस बात की ओर संकेत करता है कि सोमेश्वर के समय ग्रामों का प्रबन्ध बड़ा ही सुसंगठित था। मनु ने प्रत्येक ग्राम का उचित रूप से निरीक्षण करने के लिये राजा की ओर से ग्रामिक नाम के अधिकारी को नियुक्त करने का आदेश दिया है। ग्राम में दोष उत्पन्न हो जाने पर ग्रामदशेश से उसे निवेदन करना उसका कर्तव्य बतलाया है—

> ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम्।
> शंसेद् ग्रामदशेशाय.............................. ॥[3]

महाभारत में भी ग्राम के दोषों को बतलाने के लिये एक अधिपति रखने का उल्लेख हुआ है।[4] कौटिल्य ने ग्राम के अधिपति के विषय में तथा ग्राम के शासन के विषय में निम्नलिखित प्रसंग दिया है—

"ग्रामार्थेन ग्रामिकं व्रजन्तमुपवासाः पर्यायेणानुगच्छेयुरननुगच्छन्तः पणार्धपाणीकं योजनं दद्युः।"[5]

अर्थात् ग्राम कार्य के निमित्त ग्रामिक उद्यत रहता है। अतः ग्राम की जनता को चाहिये कि वह सदैव उसका अनुसरण करे। इस नियम का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को दण्ड का भागी बनना पड़ता है। शुक्र ने ग्राम के शासन के विषय में लिखा है कि प्रत्येक ग्राम में राजा की ओर से छः कर्मचारी नियुक्त होने चाहिये जो गांव की प्रत्येक बात राजा को बतला सकें। वे ग्राम की जनता की माता-पिता की भांति रक्षा करते थे—

> आधर्षकेभ्यश्चोरेभ्यो ह्यधिकारिगणात्तथा।
> प्रजासंरक्षणे दक्षो ग्रामपो मातृपितृवत्॥[6]

---

१. मानसो० २।३।१६०.१६१। २. वही २।३।१६२।
३. मनु० ७।११६। ४. महा० शान्ति० ८७।३।
५. अर्थ० ३।१०।२६। ६. शुक्र० २।१७०.१७१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन छः कर्मचारियों में जो सबका मुखिया होता था उसे ग्रामप कहते थे ।[१] शुक्र ने ग्रामिक के लिये ही ग्रामप शब्द का प्रयोग किया है। यह ग्रामप चोर, लुटेरों से तथा राज्य के कर्मचारियों के अत्याचार से ग्रामवासियों की रक्षा करता था। सोमेश्वर ने "चौरेभ्योऽमात्यकेभ्यश्च तथैवार्थाधिकारितः"[२] पंक्ति का प्रयोग किया है। इससे विदित होता है कि सोमेश्वर के राज्य में स्थित ग्रामों में भी कभी-कभी चोरों का आक्रमण हो जाता था, तथा कभी-कभी अमात्य तथा राजा के अन्य कर्मचारी ग्रामवासियों का पीड़ित करते थे। उनकी रक्षा का प्रबन्ध राजा करता था।

पुर

सोमेश्वर के समय में राष्ट्र के अन्तर्गत ग्रामों के अतिरिक्त पुर भी होते थे। इनमें से एक तो राजधानी का नगर होता था, जिसके लिये सोमेश्वर ने 'महापत्तन'[3] शब्द का प्रयोग किया है। यह नगर अत्यन्त रमणीय तथा विशाल होता था। राजधानी के नगर के अतिरिक्त अन्य भी पुर[४] होते थे, परन्तु इनकी संख्या संभवतः बहुत कम थी। सोमेश्वर ने "महापत्तन" तथा "पुर" शब्दों का ही उल्लेख किया है। उनका कोई विस्तृत वर्णन नहीं किया। पुर के प्रसंग में उन्होंने केवल यह कहा है कि उसके समीप विहारार्थ वन होने चाहिये।[५] इन पुरों में बहुत व्यक्ति रहते थे और ये पुर मूल, फल एवं पुष्पों से पूर्ण रहते थे।[६]

इस प्रकार सोमेश्वर ने राष्ट्र की सप्त प्रकृतियों के अन्तर्गत राष्ट्र प्रकृति के दो मुख्य भेद माने हैं ग्राम तथा पुर। मनु ने राज्य की सप्त प्रकृतियों में पुर को राष्ट्रादि के साथ एक स्वतंत्र प्रकृति माना है।[७] इसके अतिरिक्त उनका कथन है कि धनुदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वार्क्षदुर्ग, नृदुर्ग तथा गिरिदुर्ग...इन छः प्रकार के दुर्गों में से एक का आश्रय लेकर पुर को बसाना चाहिये।[८]

महाभारत में उल्लिखित भीष्म के मतानुसार दुर्ग पुर में होना आवश्यक तो है, किन्तु दुर्ग ही पुर है यह भीष्म को मान्य नहीं। वे दुर्ग को पुर का एक अंश मानते हैं। उन्होंने जनपद और पुर राज्य की भिन्न प्रकृतियां मानी हैं।[९] शुक्र ने राज्य की सप्त प्रकृतियों के अन्तर्गत राष्ट्र तथा दुर्ग दो अलग-अलग

---

१. वही।
२. मानसो० २।३।१५५।
३. वही २।३।१५४।
४. वही २।३।१६७.१६८।
५. वही २।३।१६८।
६. वही २।३।१७०।
७. स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा। मनु० ९।२९४।
८ धनुदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
गिरिदुर्गं नृदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥ वही ७।७०।
९. यत्पुरं दुर्गसंपन्नं······॥ महा० शान्ति० ८६।६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रकृतियां मानी हैं और ग्राम तथा पुर ये राष्ट्र के दो विभाजन बताये हैं, क्योंकि उसमें ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि राजा को अपने राज्य में स्थित ग्राम तथा पुरों का प्रतिवर्ष निरीक्षण करना चाहिये—

ग्रामाणि पुराणि देशांश्च स्वयं संवीक्ष्य वत्सरे ॥[1]

इस प्रकार यदि देखा जाय तो सोमेश्वर का मत शुक्र के मत से कुछ मिलता-जुलता है किन्तु शुक्र के ग्राम के संगठन से सोमेश्वर द्वारा कथित ग्राम के संगठन में भेद है, क्योंकि शुक्र ने ग्राम के संगठन में कुम्भ[2] तथा पल्ली[3] आदि का जो उल्लेख किया है उस विभाजन को सोमेश्वर ने नहीं स्वीकार किया है। ग्राम संगठन के नियम में सोमेश्वर ने मनु तथा भीष्म के अनुसार दशमलव सिद्धान्त अपनाया है। अतः यद्यपि सोमेश्वर के राष्ट्र संगठन के नियम कुछ कुछ सबसे किसी न किसी रूप में मिलते हैं, किन्तु फिर भी उनका संगठन अपनी स्वतंत्र विशेषता रखता है।

कोष

कोष की आवश्यकता

कोष भी सप्त प्रकृतियों के अन्तर्गत राज्य का एक महत्वशाली एवं आवश्यक अंग है। बिना धन के संसार का कोई भी कार्य नहीं सिद्ध नहीं होता फिर राज्य का संचालन धन के बिना कैसे हो सकता है। कोष द्वारा ही राजा अपनी प्रजा को संतुष्ट कर सकता है। कोष राजा के ऐश्वर्य का भी साधन है।

सोमेश्वर ने सुदृढ़ कोष से सम्पन्न राजा को अत्यन्त सुखी तथा कोष से हीन राजा को दुःखी माना है—

"कोशवान् सुखमाप्नोति कोशहीनस्तु सीदति"।[4]

महाभारत में भी कोष को राजा की मूल एवं वृद्धि का कारण माना गया है—

"कोषश्च सततं रक्ष्यो यत्नमास्थाय राजभिः।
कोषमूला हि राजानः कोषवृद्धिकरो भवेत्" ॥[5]

कौटिल्य ने राज्य के समस्त कार्यों का आधार कोष को ही माना है, इसी कारण उन्होंने राजा का सर्वप्रथम उद्देश्य कोष की वृद्ध करना बतलाया है—

"कोषपूर्वाः समारम्भाः। तस्मात्पूर्वं कोषमवेक्षेत।[6]

राज्य की सातों प्रकृतियों में से कोष तथा सेना पर ही राजा का वास्तविक

---

१. शुक्र० १।३७३। २. पल्ल्यर्धं कुम्भसंज्ञकम् ॥ वही १।१९२।
३. ग्रामार्धकं पल्लिसंज्ञं, वही। ४. मानसो० २।४।५४।
५. महा० शान्ति० ११९।१६। ६. अर्थ० २।८।१.२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अस्तित्व आधारित होता है और सेना का मूल भी कोष ही है।[१] कामन्दकीय नीतिसार का कथन है कि राजा का मूल कोष ही है—

"कोषमूलो हि राजेति प्रवादः सार्वलौकिकः।[२]

विष्णुधर्मोत्तर में कोष को राज्य रूपी वृक्ष का मूल बतलाया गया है[३] और सरस्वती विलास[४] ने कोष को राज्य की अन्य प्रकृतियों की वृद्धि का कारण माना है। इन सभी ने कोष के विषय में मनु को ही आधार माना है, क्योंकि मनु कोष तथा राष्ट्र को राजा के ही आधीन मानते हैं—

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रं च दूते सन्धिविपर्ययौ॥[५]

इस प्रकार कोष के बिना राजा न तो प्रसन्नता को ही प्राप्त कर सकता है और न उसका कोई अस्तित्व ही शेष रह जाता है। कोष में धन कम होने से राजा प्रजा को कष्ट देना प्रारम्भ कर देता है और प्रजा पीड़ित होकर राजा का मूलोच्छेद करने लगती है।[६]

कोष-संचय का उद्देश्य

राजा कोष की वृद्धि अनेक उद्देश्यों के आधार पर करता है। सोमेश्वर ने अपने सम्पूर्ण कोष को चार भागों में विभक्त किया था। उसके तीन भाग द्वारा वह धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि करता था और शेष बचे हुये एक भाग द्वारा कोष की वृद्धि करता था—

राष्ट्रादायातवित्तस्य चतुर्भागान् प्रकल्पयेत्।
धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं कुर्याद् भागत्रयं नृपः॥[७]

कौटिल्य ने कोष को धर्म तथा काम का आधार माना है।[८] वे संसार में अर्थ को प्रधान वस्तु मानते हैं[९] और धर्म तथा काम को अर्थ के आधीन मानते हैं—

---

१. महा० शान्ति पर्व १३०।३५।

राज्ञः कोशबलं मूलं कोशमूलं पुनर्बलम्।
तन्मूलं सर्वधर्माणां धर्ममूलाः पुनः प्रजाः॥

२. कामन्दकीय० १३।३३। ३. विष्णुधर्मोत्तर० २।६१।१७।

४. कोशस्तु सर्वथा अभिसंरक्ष्य इत्याह गौतमः। तन्मूलत्वात्प्रकृतीनामिति। सरस्वती विलास। पृ० ४६।

५. मनु० ७।६५। ६. अर्थ० २।१।१८।

७. मानसो० २।४।५३९।

८. "कोशो धर्मकामहेतुः" अर्थशास्त्र ८।१।५१।

९ "अर्थ एवं प्रधान इति कौटिल्यः" वही १।७।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अर्थमूलो हि धर्मकामाविति ।[1]

मनु भी कोष का उद्देश्य प्रजा को सुचारु रूप से पालन करना मानते हैं, क्योंकि उन्होंने उस राजा को नरकगामी बतलाया है जो अपनी प्रजा का संरक्षण न करके उससे अधिक धन लेता है और उसे पीड़ित करता है ।[2] शुक्र ने कोष का संग्रह बल, प्रजा संरक्षण तथा यज्ञ, इन तीन हेतुओं के लिये माना है, क्योंकि इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर कोषवृद्धि करने से राजा को लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं—

बलप्रजारक्षणार्थं यज्ञार्थं कोषसंग्रहः ।
परत्रेह च सुखदो नृपस्यान्यश्च दुःखदः ॥
स्त्रीपुत्रार्थं कृतो यश्च सोपभोगाय केवलः ।
नरकायैव स ज्ञेयो न परत्र सुखप्रदः ॥[3]

अर्थात् जो राजा कोष का केवल स्त्री तथा पुत्रादि के निमित्त संग्रह करता है, वह संचित किया हुआ कोष राजा को नरकगामी बनाता है ।

सोमेश्वर ने यह पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया है कि कोष का अधिकांश भाग धर्म तथा काम में व्यय करे ।[4] यह प्रसंग पूर्ण रूप से सोमेश्वर की प्रजापालन एवं उनकी धार्मिक भावना को स्पष्ट करता है । जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कौटिल्य ने अर्थ को धर्म और काम का मूल माना है किन्तु सोमेश्वर ने अर्थ को धर्म और काम का साधन मात्र माना है । यद्यपि मनु तथा शुक्र आदि महर्षियों ने कोष का उद्देश्य धर्म तथा काम का सेवन ही बतलाया है, किन्तु इनमें से किसी ने एतदर्थ कोष के निश्चित भाग का व्यय करने का उल्लेख नहीं किया । सोमेश्वर केवल अपने कोष के एक भाग द्वारा कोष का संचय करते थे । शेष धर्म एवं काम के कार्यों में लगाते थे ।

कोष संचित करने के सिद्धान्त

मानसोल्लास के राजनीति सम्बन्धी प्रकरण का सूक्ष्मावलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सोमेश्वर का कोषसंग्रह निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित है—

१. शनैः शनैः कोष संचय का सिद्धान्त
२. प्रजा-पालन अथवा प्रजा-परिपुष्टि का सिद्धान्त ।
३. वस्तु के अनुरूप धन-संग्रह का सिद्धान्त ।
४. श्रोत्रिय से कर न लेने का सिद्धान्त ।

---

१. वही १।७।११ । २. मनु० ८।३०७.३०८ ।
३. शुक्रनीति ४।११८.११९ । ४. मानसो० २।४।५४० ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

५. मुक्ता, मणि, रत्न तथा आभूषणादि-संग्रह का सिद्धान्त ।
६. धातुवाद एवं रसायन द्वारा कोष-संग्रह का सिद्धान्त ।
७. खनि-रक्षण का सिद्धान्त ।

शनैः शनैः कोष-संचय का सिद्धान्त—

सोमेश्वर का मत है कि राजा को धीरे-धीरे कोष का संचय करना चाहिये, क्योंकि इस प्रकार से संचित हुआ कोष एक दिन उसी प्रकार समृद्धि को प्राप्त करता है जिस प्रकार थोड़े-थोड़े जल-बिन्दुओं से तड़ाग पूर्ण हो जाता है और छोटे छोटे मिट्टी के कणों के एकत्र होने पर विशाल वल्मीकि (बांबी) का निर्माण हो जाता है—

> स्तोकस्तोकेन पूर्यन्ते तड़ागा जलबिन्दुभिः ।
> मृत्तिकाकणसंघातैर्वल्मीकिर्वर्धते यतः ॥[1]

शनैः शनैः कोष संचित करने का आदेश मनु ने भी दिया है । मनु का कथन है कि जिस प्रकार धीरे-धीरे दुग्धपान करते हुये बछड़े से गाय आनन्दित होती है, शनैः शनैः रक्तपान कर जोंक तृप्त हो जाती है और पशु को भी कष्ट नहीं होता उसी प्रकार धीरे-धीरे प्रजा से धन लेकर कोष का संचय करने पर कोष की वृद्धि अधिक होती है, जिसका न तो राजा को ही ध्यान रहता है और न प्रजा ही कष्ट का अनुभव करती है—

> यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः ।
> तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥[2]

इसी सिद्धान्त का समर्थन भीष्म ने भी किया है । वे इस सम्बन्ध में राजा को नीति का आश्रय लेने का आदेश देते हैं । उनका कथन है कि प्रजा को अधिक कर देने के लिये धीरे-धीरे उसी प्रकार तैयार करना चाहिये जिस प्रकार से एक छोटा बछड़ा धीरे-धीरे अधिक भार वहन करने योग्य बैल तैयार किया जाता है ।[3] जिस प्रकार उस छोटे बछड़े पर अधिक भार लाद देने से वह गिर जाता है उसी प्रकार प्रजा पर अचानक अधिक कर लगा देने से प्रजा पीड़ित होकर विद्रोह करने लग जायगी । अतः राजा को प्रजा पर कर लगा कर उसमें शनैः शनैः वृद्धि करनी चाहिये ।[4] यद्यपि इन सबका सिद्धान्त समान है, किन्तु सोमेश्वर का सिद्धान्त विशेष रूप से कोषसंग्रह से ही सम्बन्धित है । इसके अतिरिक्त शनैः शनैः धन संचित करने से कोष भी कभी क्षीण नहीं होता ।

---

१. वही २।४।५३७ । २. मनु० ७।१२९ ।
३. महा० शान्ति० ८८।८ । ४. वही ८८।७ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रजा-परिपुष्टि का सिद्धान्त—

राजा के द्वारा प्रजा का उचित रूप से पालन एवं वर्धन होने पर भी कोष की वृद्धि होती है।[१] उचित रूप से पालन किये जाने पर प्रजा अपने ऊपर लगाये हुये करों को हर्षपूर्वक देती है। प्रजा को परिपुष्ट करने के सिद्धान्त का अर्थ यही है कि प्रजा को प्रत्येक प्रकार से सुखी कर उससे इस प्रकार से धन लेकर कोष की वृद्धि की जाय कि उसे तनिक भी कष्ट न हो। सोमेश्वर ने जो "पालनाद् वर्धयेद् राजा"[२] का प्रयोग किया है, इसमें "पालनाद्" तथा "वर्धयेद्" शब्द क्रमशः प्रजापालन द्वारा प्रजा की प्रत्येक प्रकार की पुष्टि एवं उन्नति के भाव को प्रकट करते हैं।

मनु प्रजा का उचित रूप से पालन एवं रक्षा करने पर ही राजा को प्रजा द्वारा दिये गये करों का अधिकारी मानते हैं और प्रजा से कर ग्रहण करके भी उसका पालन न करने पर उस राजा को नरकगामी बतलाते हैं।[३] शुक्र ने भी प्रजा की रक्षा करने के कारण ही राजा को उसके द्वारा दिये हुए कर का भोक्ता माना है।[४] भीष्म ने महाभारत में कहा है कि जैसे गाय का उचित रूप से पालन करने पर उससे इच्छानुसार दुग्ध ग्रहण किया जा सकता है, वह दुग्ध दुहाने के लिये व्याकुल रहती है, उसी प्रकार प्रजा का लालन-पालन कर उसकी पुष्टि एवं उन्नति करने पर प्रजा स्वयं ही राजा को कर देती है, जिससे राजकोष की वृद्धि होती है।[५] इसी प्रसंग के अन्तर्गत भीष्म माता पुत्र,[६] माली[७] तथा कोयला[८] बनाने वाले की नीति का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। माता जिस प्रकार से संतुष्ट होकर पुत्र का दुग्ध द्वारा पालन करती है तथा जिस प्रकार माली वाटिका के वृक्षों एवं पुष्पों को सजा कर उन्हें वर्धित करता है, उसी प्रकार संतुष्ट होने पर पृथ्वी राजा के लिये अनेक विभूतियाँ उत्पन्न करती है। अतः राजा को चाहिये कि वह माली की भाँति अपनी प्रजा का पालन करे। कोयला बनाने वाले की नीति की भाँति राजा को अपनी प्रजा को नष्ट कर देने की चेष्टा न करनी चाहिये। माली की नीति को अपनाने का आदेश शुक्र ने भी दिया है।[९]

---

१. "पालनाद् वर्धयेद् राजा स्वकोशस्याभिवृद्धये।" मानसो० २।३।१५४।
२. वही ३. मनु० ९।२५३.२५४।
४. 'राजा रक्षार्थं सर्वभागभुक्'। शुक्र० १।७४।
५. महा० शान्ति० ७१।१७।
६. "दोग्ध्री धान्यं हिरण्यं च मही राज्ञा सुरक्षिता।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च तृप्ता माता यथा पयः।" वही ७१।१९।
७. "मालाकारोपमो राजन्…।" वही ७१।२०। ८. वही।
९. "मालाकार इव ग्राह्यो भागो नांगारकारवत्"। शुक्र० ४।२२३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वस्तु के अनुरूप धन संग्रह का सिद्धान्त

सोमेश्वर ने इस सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु पर उसी के अनुसार प्रजा पर कर लगाने का आदेश दिया है। इसी प्रसंग में उन्होंने कहा है—

"फलक्षेत्रानुरूपेण गृह्णीयात् तत्करं नृपः"[1]

अर्थात् राजा को फल तथा क्षेत्रादि के अनुरूप कर लगाना चाहिये। इस कर के लगाने में प्रजा की सामर्थ्य, समय तथा नियमादि का ध्यान रखा जाता है। भीष्म ने भी अधिक कर न लगाने का तथा कर लगाने में समय और सामर्थ्य का ध्यान रखने का आदेश दिया है—

आनुपूर्व्येण सान्त्वेन यथाकालं यथाविधि ॥[2]

वस्तु के अनुसार तथा सामर्थ्य को न देख कर अधिक कर लगाने वाले राजा को महाभारत में 'अतिखादी' के नाम से सम्बोधित किया गया है। ऐसे बहुभक्षी राजा से प्रजा पीड़ित होकर उससे द्वेष करने लगती है—

प्रद्विषन्ति परिख्यातं राजानमतिखादिनम् ॥[3]

राजा यदि प्रजा से अधिक कर ग्रहण करता है तो प्रजा भी पीड़ित होती है और राजा के भी विनाश की आशंका रहती है। इस प्रकार सोमेश्वर प्रजा के ऊपर अधिक कर लगाने के विरोधी हैं। वे प्रजा पर उसी मात्रा में कर लगाने के पक्षपाती हैं जितना प्रजा सामर्थ्य के अनुसार सरलता से दे सके। ऐसा करने पर राजा तथा प्रजा दोनों का कल्याण होता है और दोनों ही वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

श्रोत्रिय से कर न लेने का सिद्धान्त

सोमेश्वर के राज्य में ब्राह्मण से कर नहीं लिया जाता था।[4] यह प्रसंग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर ब्राह्मणों का बहुत आदर करता था। इसका उल्लेख अन्य स्थलों पर पूर्व भी हो चुका है।

मनु ने भी श्रोत्रिय से कर लेने का निषेध किया है।[5] नारद स्मृति में श्रोत्रिय से किसी प्रकार का गृह सम्बन्धी कर न लेने का आदेश दिया गया है, किन्तु व्यापार सम्बन्धी कार्यों में ब्राह्मणों से कर लिये जाने का आदेश दिया गया है—

सदा श्रोत्रियवर्ज्यानि शुल्कान्याहुः प्रजानता।
गृहोपभोगि यच्चैषां नतु वाणिज्यकर्मणि ॥[6]

---

१. मानसो० २।३[illegible]२४। २. महा० शान्ति० ८८।१२।
३. वही ८७।१९। ४. मानसो० २।३।१६६।
५. मनु० ८।३९४। ६. नारद स्मृति ६।१४।

१२ मा०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनु ने ऐसा आदेश दिया है कि राजा मृत्यु के समय भी ब्राह्मण से कर न ग्रहण करे और न राजा को अपने राज्य में श्रोत्रिय को क्षुधा से पीड़ित ही रखना चाहिये, क्योंकि यदि श्रोत्रिय क्षुधा से पीड़ित होगा तो उसकी क्षुधा के साथ ही साथ राजा का राज्य भी नष्ट हो जायगा।[1] विष्णुधर्मसूत्र[2] तथा गौतमधर्मसूत्र[3] आदि ग्रन्थों में भी ब्राह्मण के लिये कर का निषेध हुआ है।

कौटिल्य ने कुछ करों का श्रोत्रिय के लिये निषेध बतलाया है।[4] इस प्रकार के कर के निषेध के लिये उन्होंने 'परिहार' शब्द का प्रयोग किया है। खारवेल के हाथी गुम्फा शिलालेख में भी "ब्राह्मणानाम् जातिं परिहारं ददाति" ऐसा पाठ प्राप्त होता है। यह शिलालेख ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी का है।[5]

इसी प्रसंग में सोमेश्वर ने कहा है कि ब्राह्मण से किसी दशा में कर नहीं लेना चाहिये। यदि राजा आपत्ति में हो तब भी ब्राह्मण से कर न ले—

आपत्स्थितोऽप्याददीत श्रोत्रियान्न करं नृपः।[6]

इससे विदित होता है कि जिस समय देश मे आपत्ति या आक्रमण होने से देश की शांति भंग हो जाय उस समय प्रजा की रक्षा के लिये राजा प्रजा से थोड़ा-थोड़ा धन कर के रूप में ले सकता था और उससे प्रजा की रक्षा करता था किन्तु उस समय भी ब्राह्मणों से कर नहीं लिया जाता था।[7] महाभारत में भी भीष्म ने इस प्रकार बतलाया है कि बाह्य शत्रु का देश पर आक्रमण होने पर राजा ब्राह्मणों को छोड़कर शेष प्रजा को समझा-बुझा कर थोड़ा-थोड़ा धन वसूल कर सकता है।[8] इस प्रकार यह धन कोषवृद्धि में सहायक होता था। आपत्ति के समय प्रजा से लेकर यह धन उसी की रक्षा के निमित्त व्यय कर दिया जाता था। यह कर राजा के विशेषाधिकार को सूचित करता है।

धातुवाद रसायन सिद्धान्त

धातुवाद रसायन के आधार पर ताम्र से सुवर्ण तथा वंग से रौप्य बनवा कर राजा अपने कोष की वृद्धि करता था।[9] तांबा तथा वग का सुवर्ण एवं रौप्य में परिवर्तन अनेक प्रकार से रसायन एवं चूर्णों के आधार पर होता था। इन दोनों ही विधियों का सोमेश्वर ने मानसोल्लास में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[10] इस प्रसंग से विदित होता है कि राज्य की टकसाल पर राजा का पूर्ण

---

१. मनु० ७।१३३.३४। २. विष्णु० ३।२६।
३. गौतम० १०।९.१२। ४. कौटिल्य २।१२।४५।
५. Epigraphika Indica Vol. XX p. 9.
६. मानसोल्लास २।३।१६६। ७. वही।
८. महा० शान्ति० ७१।२१। ९. मानसो० २।४।३७७।
१०. वही २।४।३७८.३९३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अधिकार होता था। राजा ही केवल तांबे तथा वंग से सुवर्ण एवं रौप्य बनाकर अपने कोष की वृद्धि कर सकता था। राजा की टकसाल में ही बने हुये रौप्यादिकों का प्रयोग राज्य में होता था। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर के समय में रसायन की क्रिया भी अत्यन्त उन्नतिपूर्ण थी।

मुक्ता, मणि, रत्न तथा आभूषणादि के संग्रह का सिद्धान्त

सोमेश्वर के समय में विशेष प्रकार के रत्नों का संग्रह कोष में होता था किन्तु कोष में रखने योग्य रत्नों को सोमेश्वर ने विशेष रूप से परीक्षा कर लेने का आदेश दिया है।[१] क्योंकि रत्नों को इन्होंने आयु तथा यश का वर्धक माना है।[२]

समुद्र के तट पर अपने अधिकारियों को नियुक्त कर राजा अनेक प्रकार की सुन्दर मुक्ताओं को निकलवाकर अपने कोष की वृद्धि करता था। मुक्ता निकलनेवाले स्थान की राजा विशेष रूप से रक्षा करवाता था।[3] इन वस्तुओं के अतिरिक्त राजा के कोष में वस्त्र, सुवर्ण, आभूषणादि का भी संग्रह होता था क्योंकि मानसोल्लास में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

> सुवर्णै रजतै रत्नैर्वस्त्रैराभरणैस्तथा।
> पूर्णो व्ययसहः कार्यः कोशो नित्यं महीभुजा॥[४]

खनिरक्षण का सिद्धान्त

सोमेश्वर के समय में खानों पर राजा का पूर्ण अधिकार होता था। इसी कारण राजा के लिये सुवर्ण, रजत, रत्न, मणि आदि की खानों की रक्षा का आदेश दिया है।[५] सोमेश्वर ने खानों की परीक्षा करने के लिये कुछ दृष्टान्तों का उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ वर्षा तथा शीतकाल में जहां निरन्तर गोधा निवास करे, जहां पर सदैव विच्छू तथा सर्प का निवास स्थान हो, जहां पर पृथ्वी पर खंजरीटों का भी संभोग दिखलाई पड़े, जहां बिना ईंधन के अग्नि जले वहां पर पृथ्वी के अन्तर निधि होती है।[६] इसी प्रकार और भी दृष्टान्त दिये हैं।[७] इन्हीं लक्षणों के अनुसार निधि से पूर्ण स्थान को जानकर राजा तीन, पांच, सात अथवा अधिक खनि शास्त्र के ज्ञाता साधकों के द्वारा वहां खुदवाकर उसे ग्रहण कर कोष की वृद्धि करे।[८]

---

१. वही २।४।४७३.५३५।
२. वही २।४।५३६ "आयुर्लक्ष्मीं जयं कीर्ति लभते रत्नसंग्रहात्।"
३. वही २।३।३६२। ४. वही २।४।३९४।
५. वही २।३।३३२। ६. मानसो० २।३।३३४.३५।
७. वही २।३।३३६.३४०। ८. वही २।३।३५८.६०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रुद्रदामन के शिलालेख में भी राजा को चांदी, सोना, हीरा तथा अन्य रत्नों द्वारा कोषवृद्धि करने का आदेश दिया गया है।[१]

कोष-संग्रह के साधन

प्राचीन काल में कोष का संग्रह मुख्यतः प्रजा द्वारा ग्रहण किये हुये कर द्वारा होता था। सोमेश्वर के समय में कोष के संचय के अनेक साधन थे। उनके ग्रन्थ में निम्नलिखित करों का प्रसंग प्राप्त होता है—

१ भूमि, धान्यादि पर कर
२ सुवर्ण पर कर
३ पशुकर
४ शिल्पियों एवं श्रमजीवियों पर कर
५ पण्य कर
६ खानों से निकली हुई वस्तुओं पर कर
७ पोत कर अथवा यातायात कर

भूमि, धान्यादि पर कर

सोमेश्वर के राज्य में जो उपज होती थी, प्रजा उस उपज का आठवां, बारहवां अथवा छठा भाग करके रूप देती थी—

अष्टमो द्वादशो वाऽपि षष्ठो वा धान्यतो नृपैः।[२]

यह कर धान्य के रूप में ही प्रजा से स्वीकार किया जाता था। यह प्रजा द्वारा कर के रूप में दिया हुआ धान्य राजा का ही समझा जाता था और उसी के कोष में एकत्र किया जाता था। समय पड़ने पर राजा उसी से प्रजा की उदरपूर्ति करता था अथवा फसल के समय निर्धन किसानों को राज्य की ओर से बोने के लिये धान्य मिल जाता था। इस प्रकार से राज्य में कृषकों को कष्ट नहीं होने पाता था। उपज पर कर लगाने के अतिरिक्त राजा क्षेत्र पर भी यथानुसार कर लगाता था। यह कर विशेष रूप से कृषकों से ही सम्बन्धित था।

मनु ने भी धान्य का का छठा, आठवां अथवा बारहवां भाग राज्य के कोष के संचय के निमित्त ग्राम के अधिकारी द्वारा जमा कराने का उल्लेख किया है।[3] कौटिल्य ने—

धान्यषड्भागं...प्रकल्पयामासुः।[४]

कहकर प्रजा से उपज का छठा अंश राजा को प्राप्त करने का आदेश दिया है। अनेक ग्रन्थों में इस कर के लिये 'बलि' शब्द मिलता है। कौटिल्य ने इस प्रसंग में बलि शब्द का प्रयोग न करके धान्य शब्द का ही प्रयोग किया है।

---

१. एपीग्रैफ़िका इण्डिका खण्ड ८ पृ० ३६।
२. मानसो० २।३।१६३।
३. मनु० ७।१३०।
४. अर्थशा० १।१३।७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किन्तु उनका तात्पर्य बलि से ही है। महाभारत में भीष्म ने भी उपज के छठे अंश को ही ग्रहण करना माना है।[1] मार्कण्डेय पुराण में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

"गृह्णतो बलिषड्भागं नृपतेर्नरको ध्रुवम्।"[2]

अर्थात् जो राजा प्रजा से बलि षड्भाग ग्रहण कर समय पड़ने पर उस धान्य द्वारा प्रजा की रक्षा नहीं करता वह नरकगामी होता है।

इस प्रकार अधिकांशतः उपज का छठा भाग कर के रूप में ग्रहण करने का आदेश दिया गया है। किन्तु सोमेश्वर ने छठे भाग के अतिरिक्त उपज का आठवां तथा बारहवां भाग भी ग्रहण करने का उल्लेख किया है।[3] इससे विदित होता है कि सोमेश्वर प्रजा में सबसे यथासामर्थ्य बलि लेते थे। यद्यपि उपज का छठा भाग ही सबसे लिया जाता था किन्तु किसी की इतनी सामर्थ्य न होती थी तो उससे आठवां तथा बारहवां भाग भी ग्रहण कर लिया जाता था। इसके अतिरिक्त उनके राज्य में फल तथा क्षेत्र के अनुसार धान्य कर ग्रहण किया जाता था।[4]

पशुकर

सोमेश्वर के समय में पशुओं के व्यापारियों से लाभ का पचासवां भाग कर के रूप में ग्रहण किया जाता था[5] और वह धन राजा के कोष में एकत्र किया जाता था। इस कर को प्रजा ने राजा मनु के कोष की वृद्धि के हेतु निर्धारित किया था। जिस समय प्रजा ने मनु को राजा के रूप में स्वीकार किया था उस समय ऐसा वचन दिया था कि हम पशु के लाभ का पचासवाँ भाग आप को देंगे।[6] शुक्र ने भैंस, बकरी, भेड़ तथा अश्वों की वृद्धि में से आठवाँ भाग राजा को ग्रहण करने का आदेश दिया है।[7] सोमेश्वर प्रजा के प्रति अधिक उदार थे और अपने राज्य में पशुओं के व्यापार की वृद्धि करना चाहते थे, इसी कारण वे इस सम्बन्ध में भीष्म तथा मनु की भांति कम कर लगाने के पक्षपाती थे।

सुवर्ण पर कर

सोमेश्वर ने सुवर्ण पर भी कर लगाने की व्यवस्था दी है। उनके समय में सुवर्ण के लाभ का पचासवाँ भाग कर के रूप में स्वीकार किया जाता था—

पंचाशत्तम आदेयो भागः पशुहिरण्ययोः।[8]

---

१. महा० शान्ति० ७१।१०, ६९।२५। २. मार्क० पु० १६।१२६।
३. मानसो० २।३।१६३। ४. वही २।३।१६४।
५. वही २।३।१६३। ६. महा० शा० ६७।२३।
७. शुक्रनीति ४।२३१। ८. मानसो० २।३।१६३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनु ने भी सुवर्ण का पचासवाँ भाग कर के रूप में लेने का आदेश दिया है।[1] महाभारत के प्रसंगों से विदित होता है कि उस समय में भी सुवर्ण पर लाभ का पचासवाँ भाग ही ग्रहण किया जाता था—

पशूनामधिपंचाशद्धिरण्यस्य तथैव च।[2]

कौटिल्य ने "...हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः"[3] कहकर हिरण्यकर की व्यवस्था दी है किन्तु उसकी दर का उल्लेख नहीं किया है। शुक्र ने सुवर्ण के स्वामी से लाभ का तृतीय, पंचम, सप्तम अथवा दशमांश कर रूप में लेने का आदेश दिया है।[4] शुक्र की अपेक्षा मनु तथा भीष्म इस कर के विषय में अधिक उदार हैं। सोमेश्वर ने भी मनु द्वारा कथित कर की दर को ही आधार माना है।

शिल्पियों एवं श्रमजीवियों पर कर

सोमेश्वर ने मिट्टी, पत्थर के बर्तनों, चमड़े की वस्तुओं, घृत, फल, पुष्प, रस, गन्ध आदि वस्तुओं पर कर लगाये जाने का आदेश दिया है।[5] इससे विदित होता है कि राज्य में जो श्रमजीवी एवं शिल्पी व्यक्ति रहते थे उनसे भी कर ग्रहण किया जाता था। इन सबसे लाभ का छठा अंश ग्रहण किया जाता था। मनु ने श्रमजीवियों तथा शिल्पियों से कर ग्रहण करने का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु यह कर धन रूप में नहीं ग्रहण किया जाता था। उनसे राजा महीने में एक दिन अपना काम करवा लेता था—

कारुकांछिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः।
एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः॥[6]

शुक्र ने श्रमजीवियों तथा शिल्पियों से पक्ष में एक दिन काम करवाने का आदेश दिया है।[7]

इस प्रकार मनु तथा शुक्र के समय में शिल्पियों का कोई आदर नहीं था। उनसे राजा बेगार भी लेता था। सोमेश्वर इस बेगार के पक्ष में नहीं थे क्योंकि उन्होंने इन शिल्पियों से कर ग्रहण करने का आदेश दिया है। यह कर उनकी वस्तुओं के लाभ के अनुसार छठा अंश ग्रहण किया जाता था। इसके अतिरिक्त घृत, मधु, शाक, ओषधि, मूल, फल तथा रस आदि पर भी छठा भाग कर

---

१. मनु० ७।१३० । २. महा० शान्ति पर्व ६७।२३ ।
३. अर्थ० १।१३।७ । ४. शुक्र० ४।२२८ ।
५. मानसो० २।३।१६४.१६६ । ६. मनु० ७।१३८ ।
७. कारुशिल्पिगणात्पक्षे दैनिकं कर्म कारयेत् ॥ शुक्र० ४।२३२ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के रूप में ग्रहण किया जाता था।[1] सोमेश्वर ने जो इस प्रसंग में रस शब्द का प्रयोग किया है, वह रस संभवतः लवण के लिये प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। इस लवण का भी छठा भाग कर के रूप में ग्रहण किया जाता था। कौटिल्य ने भी लवण पर छठा अंश कर के रूप में लिये जाने का आदेश दिया है—

आगन्तुकलवणं षड्भागं दद्यात्।[2]

महाभारत में भी लवण कर लेने का आदेश दिया गया है।[3] इस प्रकार यदि देखा जाय तो सभी ग्रंथों ने श्रमजीवियों एवं शिल्पियों पर कर लगाने का आदेश दिया है, किन्तु उन सबके सिद्धान्तों से सोमेश्वर का सिद्धान्त बिल्कुल भिन्न है। सोमेश्वर अपने राज्य में किसी भी व्यक्ति से व्यर्थ में कार्य न करवाता था और शिल्पियों एवं श्रमजीवियों से धन के रूप में कर ग्रहण करता था जिससे कोष की वृद्धि होता थी।

पण्य कर

यह कर धन पर लगता था और प्राप्त हुये प्रसंग से विदित होता है कि यह कर व्यापारियों से ही वसूल किया जाता था। व्यापारियों को लाभ होने पर उनके धन का छठा भाग सोमेश्वर के राज्य में कर के रूप में ले लिया जाता था।[4] मनु ने इस कर के लिये शुल्क शब्द का प्रयोग किया है, जो उस समय व्यापारियों के धन पर लगाया जाता था।[5] शुक्र ने क्रय-विक्रय की वस्तुओं पर दिये जाने वाले कर को शुल्क नाम से सम्बोधित किया है।[6] कौटिल्य ने भी शुल्क ग्रहण करने वाले स्थान का उल्लेख किया है।[7] महाभारत में शुल्क को ग्रहण करने के लिये आप्तपुरुषों की नियुक्ति करने का आदेश दिया गया है।[8] मनु ने व्यापारियों के लाभ का बीसवां भाग शुल्क रूप में ग्रहण करने का आदेश दिया है—

शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः।
कुर्युरर्घं यथा पण्यं ततो विंशं नृपो हरेत्॥[9]

सोमेश्वर ने इसी कर के लिये संभवतः पण्य कर का प्रयोग किया है और पण्य का छठा अंश ग्रहण करने का आदेश दिया है।[10]

---

१. मानसो० २।३।१६४.१६५। २. अर्थ० २।१२।३८।
३. महा० शा० ६७।२३। ४. मानसो० २।३।१६४।
५. मनु० ८।३०७।
६. 'विक्रेतृक्रेतृतो राजभागः शुल्कमुदाहृतम्'। शुक्र० ४।२१७।
७. अर्थ० ३.१६।२२। ८. महा० शान्ति० ६९।२९।
९. मनु० ८।३९८। १०. मानसो० २।३।१६४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

खानों से निकली हुई वस्तुओं पर कर

सोमेश्वर के राज्य में सोने, चांदी तथा रत्नों की खानों की राजा की ओर से पूर्ण रूप से रक्षा की जाती थी और उन खानों को खोदने से जो भी निधि निकलती थी उन सब पर राजा कर ग्रहण कर अपने कोष की वृद्धि करता था।[1] इसके अतिरिक्त राजा उन खानों को खुदवाकर भी उनका धन ग्रहण करता था।[2] क्योंकि सोमेश्वर का मत था कि विधाता ने राजा को बाह्य एवं आन्तरिक सभी प्रकार की विभूतियों का स्वामी बनाया है।[3] शुक्र ने खान के स्वामी का अधिक लाभ होने पर तृतीय, पंचम, सप्त तथा दशम भाग राजा को ग्रहण करने का आदेश दिया है।[4] कौटिल्य ने खन्यध्यक्ष को वज्र, मणि, मुक्ता, प्रवाल आदि की उत्पत्ति का उचित रूप से प्रबन्ध करने का आदेश दिया है।[5] मनु[6] तथा भीष्म[7] ने सुवर्ण के स्थान पर जो "आकर कर" का प्रयोग किया है, वही संभवतः खानों से सम्बन्धित कर होगा, क्योंकि कौटिल्य ने खानों के लिये 'आकर' तथा खन्यध्यक्ष के लिये 'आकराध्यक्ष' का प्रयोग किया है।[8] सोमेश्वर के समय में सुवर्ण कर अलग से भी ग्रहण किया जाता था जिसका उल्लेख पूर्व में हो चुका है कि सोने का पचासवां भाग राजा कर रूप में ग्रहण करता था।[9] इसके अतिरिक्त खानों से निकलने वाले सोने पर तथा अन्य मणियों पर राजा अलग से कर ग्रहण करता था।[10] इस प्रकार सोमेश्वर के समय में सुवर्ण सम्बन्धी कर दो प्रकार से लिया जाता था।

पोत-सम्बन्धी

सोमेश्वर ने मानसोल्लास में समुद्र के समीप स्थित हुए सभी पुरों एवं बन्दरगाहों की उचित प्रकार से रक्षा करने का आदेश दिया है। समुद्र के किनारे बन्दरगाहों की रक्षा करने के लिये राजा अपने अध्यक्षों को नियुक्त कर देता था और जो जहाज उसके राज्य में स्थित बन्दरगाहों के समीप आकर रुकते थे उनसे राजा के अधिकारी गण दशमांश लेते थे।

निजवेलातटस्थानां पोतवाहनकर्मणाम्।
पोते प्रत्यागते तस्माद् दशमांशं हरेन्नृपः॥[11]

१. वही २।३।३३२।
२. वही २।३।३६०।
३. वही २।३।३६१।
४. शुक्र० ४।२२८।
५. कौटिल्य २।१२ ३४।
६. मनु० ७।१३०।
७. महा० शान्ति० ६९।२९।
८. कौटिल्य २।१२।३५, २।१२।४६।
९. मानसो० २।३।१६३।
१०. वही २।३।३३२।
११. वही २।४।३७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके अतिरिक्त यदि दैवयोग से वायु के प्रवाह के साथ कोई जहाज़ बन्दरगाह पर आ जाता था तो राजा उससे अपनी इच्छानुसार कर ग्रहण कर लेता था।[1] यह प्रसंग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देता है कि सोमेश्वर के समय में जहाजों द्वारा अन्य देशों से व्यापार होता था और बन्दरगाहों की व्यवस्था बड़ी ही सुसंगठित थी। मनु ने संतरण कर का उल्लेख किया है जो नदी-नालों को पार करने के लिये देना पड़ता था। मनु के समय में नदी-नालों को पार करने के लिये राजा की ओर से पुल, नाव तथा डोंगियों का प्रबन्ध रहता था और इनका प्रयोग करने वाले व्यक्ति को यह कर देना पड़ता था।[2] इस कर को मल्लाह लोग ही ग्रहण करते थे जिनका उचित प्रबन्ध बन्दरगाहों पर राज्य की ओर से होता था। महाभारत में भी प्राप्त हुये तरण-कर से कोष की वृद्धि करने का आदेश दिया गया है। महाभारत काल में यह कर आप्त पुरुषों द्वारा ग्रहण किया जाता था।[3] कौटिल्य ने भी व्यापारी के लाभ को जानने के प्रसंग में अनेक प्रकार के करों के साथ 'तरदेय' का प्रयोग कर तरण-कर की ओर संकेत किया है।

इस प्रकार इन सभी ग्रन्थों में तरण-कर का उल्लेख हुआ है। किन्तु इसकी दर का वर्णन किसी ने नहीं किया है। सोमेश्वर के समय में अन्य देशों के साथ व्यापार बहुत ही बढ़ा-चढ़ा था। अतः जहाज़ों के आने पर राज्य की ओर से नियुक्त किये हुये पोतवाहक उन सबसे दशमांश कर लेते थे।[4] इसका निरीक्षण राजा भली प्रकार करता था क्योंकि इस प्रसंग में सोमेश्वर ने 'हरेन्नृपः'[5] तथा 'स्वेच्छया नृपः'[6] शब्दों का प्रयोग किया है।

दुर्ग

दुर्ग भी राज्य की रक्षा का प्रधान अंग है। इसी कारण राज्य के सप्तांगों में इसको भी प्रधान स्थान प्रदान किया गया है। मनु दुर्ग को राष्ट्र से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसी कारण उन्होंने पुर अथवा दुर्ग को राष्ट्र के पूर्व स्थान दिया है।

स्वाम्यमात्यो पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा।
सप्तप्रकृतयो ह्येताः सप्तांगं राज्यमुच्यते॥[7]

दुर्ग राष्ट्र की रक्षा में बड़े सहायक सिद्ध होते हैं क्योंकि युद्ध के समय इन्हीं का आश्रय लेकर सैनिक अपने शत्रुओं का सामना करते हैं। दुर्ग का आश्रय

१. वही २।४।३७६।
२. मनु० ८।४०४.४०५।
३. महा० शा० ६९।२९।
४. मानसो० २।३।३७५।
५. वही।
६. वही २।३।३७६।
७. मनु० ९.२९४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लेने वाले राजा को शत्रु नहीं नष्ट कर सकता। इससे जन, कोश तथा अपनी रक्षा होती है।[1] दुर्ग में से एक व्यक्ति सौ शत्रुओं को पराजित कर सकता है ऐसा मनु का कथन है—

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते॥[2]

अतः यह राष्ट्र की रक्षा का विशेष अंग है। इसी कारण इसकी रक्षा पर राजा को अधिक ध्यान देना चाहिये। बृहस्पति ने दुर्ग के विषय में लिखा है—

आत्मदारार्थलोकानां संचितानां तु गुप्तये।
नृपतिः कारयेद्दुर्गं प्राकारद्वारसंयुतम्॥[3]

सोमेश्वर ने दुर्ग के विषय में विशेष रूप से कुछ कहने के अतिरिक्त दुर्गों के प्रकारों पर विशेष बल दिया है। उन्होंने जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, पाषाण, इष्टिका, मृत्तिका, वनदुर्ग, मरुदुर्ग दारु तथा नरदुर्ग इन नौ प्रकार के दुर्गों[4] का उल्लेख करने के साथ ही साथ प्रत्येक के लक्षणों का भी वर्णन किया है। जो दुर्ग अगाध जल से वेष्टित हो वह जलदुर्ग, बड़ी कठिनाई से चढ़ सकने योग्य गिरि पर बना हुआ तथा जल से घिरा हुआ गिरिदुर्ग होता है, पत्थर से निर्मित दुर्ग पाषाण दुर्ग तथा इष्टिकाओं से सुचारु रूप से बना हुआ, लिपा हुआ तथा अत्यन्त निर्मल दुर्ग इष्टिका दुर्ग कहलाता है। यह चारों ओर से खूब गहरी खांई (परिखा) से घिरा होता है। मुलायम मिट्टी से बना हुआ दुर्ग मृत्तिकामय तथा घने कण्टक एवं शाखाओं से युक्त दुर्ग वनदुर्ग कहलाता है। जिस दुर्ग के अन्दर जल सुचारु रूप से सुरक्षित हो किन्तु बाहर से जल का चिह्न बहुत ढूंढ़ने पर भी न ज्ञात हो ऐसे मरुस्थल में स्थित दुर्ग को मरुदुर्ग कहा जाता है। इसी प्रकार दारु तथा वेणु आदि से पूर्ण दारुदुर्ग तथा अनेक अस्त्र-शस्त्र एवं महायोधाओं से पूर्ण दुर्ग नरदुर्ग कहलाता है।[5] इनमें से जल तथा गिरि दुर्ग को सोमेश्वर ने सर्वोत्तम, वनदुर्ग को मध्यम तथा नरदुर्ग को निम्न श्रेणी का दुर्ग बतलाया है।[6] यह विभाग सोमेश्वर ने सम्भवतः शत्रु की कठिनाई के अनुसार किया है क्योंकि जलदुर्ग विशाल जलराशि के मध्य स्थित होने के कारण अगम्य होते हैं। शत्रु को वहां तक पहुंचने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता

१. रम्यं पशव्यमाजीव्यं जांगलं देशमावसेत्।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकोशात्मगुप्तये॥ याज्ञ० १।३२१।
२. मनु० ७।७४।
३. राजनीति प्रकाश पृ० २०२ और राजधर्म काण्ड पृ० २८।
४. मानसोल्लास २।५।५४१-४२। ५. वही २।५।५४४-५४८।
६. वही २।५।५४९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। इसी प्रकार गिरिदुर्ग ऊंची एवं अगम्य पहाड़ियों पर स्थित होता है जिससे शत्रु शीघ्रता से वहां न पहुंच सके। किन्तु वनदुर्ग में शत्रु की पहुंच जल तथा गिरिदुर्ग की अपेक्षा अधिक शीघ्र हो सकती है। दुर्ग के समीप पहुंच कर उसे अवश्य कठिनाई उठानी पड़ती है इसीलिए इसे मध्यम दुर्ग बतलाया है। नर तथा दारु दुर्ग में शत्रु शीघ्र ही पहुंच कर आक्रमण कर सकता है। इसी कारण सोमेश्वर ने इन दुर्गों को निम्न श्रेणी में रखा है। यह दुर्गों का विभाजन उनके सूक्ष्म राजनीतिविषयक ज्ञान को स्पष्ट करता है।

दुर्गों के विभाजन के विषय में इसी प्रकार के अन्य प्रसंग अन्य स्थलों पर प्राप्त होते हैं। कौटिल्य ने चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया है[1]: प्रथम औदक, जो सम्भवतः एक द्वीप की भांति जल से घिरा होता है अथवा अत्यन्त गहरी भूमि (परिखा) आदि से सुरक्षित हो, द्वितीय पार्वत, जो गिरिदुर्ग के समान पर्वतीय चट्टानों से निर्मित होता है अथवा जो अत्यन्त भयानक गुफा के रूप में होता है, तीसरा धान्वन, जो मरुभूमि में स्थित हो और जहाँ जल-शून्य तथा उजाड़ स्थल चारों ओर हो, चौथा जंगल में स्थित दुर्ग है जो नरकुल तथा अनेक प्रकार की झाड़ियों एवं जल आदि से पूर्ण हो। कौटिल्य द्वारा कथित औदक, पार्वत, धान्वन तथा वनदुर्ग सोमेश्वर के जल, गिरि, मरु तथा वनदुर्ग से मिलते-जुलते हैं। कौटिल्य ने इन चारों में प्रथम दो दुर्गों को अधिक महत्त्व प्रदान किया है। औदक तथा पार्वत दुर्गों को महत्त्वशाली स्थानों की रक्षा का आश्रय माना है।[2]

पुराणों में भी दुर्गों के विषय में विभिन्न प्रकार के प्रसंग प्राप्त होते हैं। वायु पुराण[3] में चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख हुआ है किन्तु मत्स्य तथा अग्निपुराण[4] में ६ प्रकार के दुर्गों का वर्णन हुआ है। मनु ने धनुदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग, गिरिदुर्ग तथा नृदुर्ग इन दुर्गों का वर्णन किया है।[6] महाभारत[7], विष्णुधर्मसूत्र[8] तथा विष्णुधर्मोत्तर[9] में भी छः प्रकार के दुर्गों का

---

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र २।३।२। २. वही २।३।३–४।

३. वायु पुराण ८।१०८। ४. मत्स्य० २१७।६–७।

५. अग्नि० २२२।४–५।

६. धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
गिरिदुर्गं नृदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥ मनु० ७।७०।

७. महा० शान्ति० ५६।३५ तथा ८६।४–५।

८. विष्णुधर्मसूत्र ३।६।

९. विष्णुधर्मोत्तर २।२६।६–९ और ३।३२३।१६–२१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वर्णन हुआ है। श्रीमद्भागवत पुराण में शस्त्रदुर्ग का प्रसंग मिलता है।[1]

शुक्र ने दुर्गों के नाम इस प्रकार दिये हैं[2]—ऐरिणदुर्ग, परिख दुर्ग, पारिध-दुर्ग, वनदुर्ग, धन्वदुर्ग, जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, सैन्यदुर्ग तथा सहायदुर्ग। जिसके समीप गड्ढे, कांटे, पत्थर आदि हों वह ऐरिण दुर्ग है और जिसके चारों ओर खांई खुदी हो उसे पारिख दुर्ग कहते हैं। जिस दुर्ग में ईंट, पत्थर, मिट्टी तथा भित्ति का परकोटा हो वह पारिध दुर्ग है। जो बड़े-बड़े काँटों वाले वृक्षों से पूर्ण हो वह वनदुर्ग है। जिसके चारों ओर जल का अभाव हो वह धन्वदुर्ग कहलाता है और जो चारों ओर जल से घिरा हो वह जलदुर्ग कहलाता है। जो ऊँचे स्थान पर एकांत में बना हो तथा जहाँ जल का अभाव हो वह गिरिदुर्ग है। जिसमें बहुत से शूरवीर रहते हों और जो भेदा न जा सके वह सैन्यदुर्ग है। जिसमें शूरों के अनुकूल बन्धुजन रहते हों वह सहाय-दुर्ग है।[3] इनमें से सहाय दुर्ग तथा सैन्य दुर्ग सब दुर्गों के साधन होते हैं—

सहायसैन्यदुर्गे तु सर्वदुर्गप्रसाधके।[4]

शुक्र के मतानुसार पारिख दुर्ग से ऐरिण और ऐरिण से पारिध और उससे वन श्रेष्ठ होता है। वनदुर्ग से धन्वदुर्ग, धन्वदुर्ग से जलदुर्ग और उससे गिरिदुर्ग श्रेष्ठ होता है—

पारिखादैरिणं श्रेष्ठं पारिधं तु ततो वनम्।
ततो धन्वं जलं तस्माद्गिरिदुर्गं ततः स्मृतम्॥[5]

मनु ने भी गिरिदुर्ग को सर्वोत्तम माना है और उसे कठिनता से जीता जाने वाला बताया है—

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत्।
एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते॥[6]

किन्तु महाभारत[7] नृदुर्ग को सर्वोत्तम बतलाता है। परशुरामप्रताप[8] में आठ प्रकार के दुर्गों का उल्लेख हुआ है और दुर्ग के चारों ओर पत्थर, ईंट तथा मिट्टी की दीवाल बनवाने का आदेश दिया है।[9]

अनेक प्रकार के दुर्गों के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने दुर्ग में रखी जाने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का वर्णन किया है। सोमेश्वर के अनुसार राजा

---

१. गिरिदुर्गः शस्त्रदुर्गंजलाग्न्यनिलदुर्गमम्। श्रीमद्भागवत १०।५९।३।
२. शुक्रनीति ४।८५०।
३. वही ४।८५०–८५४।
४. वही ४।८५५।
५. वही ४।८५४–५५।
६. मनु० ७।७१।
७. महा० शान्ति० ५६।३५।
८. परशुरामप्रताप राजवल्लभ काण्ड Folio।
९. वही।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का यह परम कर्तव्य है कि वह दुर्ग के प्रमुख द्वार को गुप्त बनवाये और उसमें सब प्रकार के आयुध, अस्त्र, शस्त्र, बड़े-बड़े पत्थर, बालू, कुदाल, रज्जु, बेंत, पिटक, सभी प्रकार के बर्तन, औषधि, सब प्रकार के वादित्र, यवस, प्रभूत मात्रा में ईंधन, गुड़, सब प्रकार के तेल, घृत, मधु, सब प्रकार के अन्न, दुग्ध, कुम्भ, आर्शीविष जिनसे कि व्याघ्र सिंह आदि को बांधा जा सके, तथा अन्य सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुयें रखे जो समय पर उसके काम आ सकें।[१]

दुर्ग में रखने की सामग्री का अन्य ग्रन्थों में भी वर्णन हुआ है। कौटिल्य ने दुर्ग के अन्दर सभी वस्तुओं को रखने के लिए अलग-अलग स्थान का वर्णन किया है और प्रत्येक वस्तु रखने के लिये तथा प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति के निवास स्थान के लिये दिशाओं का भी उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ अन्तःपुर का द्वार पूर्व या पश्चिम की ओर[२] तथा पुरोहित का निवासस्थान अन्तःपुर के पूर्वोत्तर भाग में करावे।[३] माला, गन्ध, अन्न, घी, आदि की दूकानें तथा क्षत्रियों का निवासस्थान पूर्व दिशा की ओर, भाण्डागार, अक्षपटल, आय-व्यय की गणना करने का स्थान तथा सोने-चाँदी की दूकानें दक्षिण दिशा में हों।[४] शराब, मांस की दूकानें तथा नट, वैश्य आदि के निवासस्थान दक्षिण दिशा में हों।[५] बाग-बगीचे, कूप, तड़ाग, खेत आदि उसमें हों, खेतों में क्यारियां बनी हों तथा उनमें तरकारियाँ बोई हों।[६] दुर्ग के अन्दर घी, तेल, क्षार, नमक, दवाई, सूखे शाक, भुस, सूखा मांस, घास, लकड़ी, ईंधन, लोहा, चमड़ा, कोयला, स्नायु, विष, सींग, बाँस, हथियार, कवच, पत्थर, सारदारु आदि इतनी पर्याप्त मात्रा में एकत्र करे कि वर्षों तक चलती रहे।[७] इसके अतिरिक्त उन वस्तुओं का राजा को सदैव निरीक्षण करते रहना चाहिये तथा पुरानी वस्तुओं के स्थान पर नई वस्तुओं को रखवाना चाहिए।[८] दुर्ग के अन्दर जो सेना हो उसके अंग का निरीक्षण करने के लिए अलग-अलग अध्यक्ष रखना चाहिये।[९] इस प्रकार कौटिल्य के मत में दुर्ग सभी प्रकार की सामग्रियों से पूर्ण होने चाहिये।

मनु का भी कथन है कि दुर्ग को धन-धान्य, वाहन, बल, ब्राह्मण, सब ऋतुओं के फल तथा पुष्प, आयुध, देवमंदिर, अग्निशाला, जल तथा वृक्षादि

१. मानसोल्लास २।५। ५५० ५५।
२. कौ० २।४।१०। अन्तःपुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत्।
३. वही २।४।१३। ४. वही २।४।१४।
५. वही २।४।१८। ६. वही २।४।२३।
७. वही २।४।२४। ८. 'नवेनानवं शोधयेत्' अर्थ० २।४।३५।
९. 'हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत्' वही २।४।३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से पूर्ण होना चाहिये।[1] मनुस्मृति की कुछ प्रतियों में 'उदकेन च' के स्थान पर 'उदकेन्धनैः' पाठ भी प्राप्त होता है। इससे दुर्ग में इन्धन रखने का भी प्रसंग प्राप्त होता है।

उपर्युक्त सभी सामग्रियों का वर्णन सोमेश्वर ने अपनी दुर्ग से सम्बन्धित सामग्री के प्रकरण में किया है किन्तु उन्होंने दुर्ग के अन्तर्गत अनेक प्रकार के भवनों के निर्माण का प्रसंग नहीं दिया है और न उन भवनों के निर्माण के विषय में दिशाओं का ही उल्लेख किया है।

सैन्यबल

राज्य में स्थापित दुर्गों के महत्व को प्रदर्शित करने के पश्चात् सोमेश्वरदेव ने सैन्यबल के प्रकार एवं महत्व को प्रदर्शित किया है। शुक्र ने बल की परिभाषा देते हुये कहा है कि जिसका आश्रय लेकर मनुष्य निःशंक होकर कार्य करता है वह बल कहलाता है—

अशंकितक्षमो येन कार्यं कर्तुं बलं हि तत्।[2]

उन्होंने बल छः प्रकार का बताया है—शारीरिक बल, आत्मिक बल, सैन्यबल, अस्त्रबल, बुद्धिबल तथा आयुबल—

शारीरं हि बलं शौर्यबलं सैन्यबलं तथा।
चतुर्थमास्त्रिकबलं पंचमं धीबलं स्मृतम्॥
षष्ठमायुर्बलं........................।[3]

शुक्र ने सैन्यबल को बहुत महत्वपूर्ण माना है। उनका कथन है कि जिस राजा के पास नीति और सैन्यबल होता है उसके पास लक्ष्मी दौड़ कर आती है—

तत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीस्सर्वतोमुखी।[4]

कौटिल्य ने सैन्यबल को दण्ड नाम से सम्बोधित किया है—

'स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोषदण्डमित्राणि प्रकृतयः।'[5]

कौटिल्य के अनुसार राजा को दो प्रकार के कोपों से सदैव भय रहता है[6]—प्रथम

---

१. तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च॥
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम्॥ मनुस्मृति ७।७५–७६।

२. शुक्रनीति १।३२३।
३. वही ४।८६८–६९।
४. वही १।१७।
५. कौटिल्य अर्थशास्त्र ६।१।१।
६. वही २।२।८। राज्ञो अभ्यन्तरो बाह्यो वा कोप इति।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अमात्यों का कोप जो आन्तरिक कोप कहलाता है[1] और घर में रहने वाले सर्प की भांति अधिक भयप्रद होता है—

अहिभयादभ्यंतरः कोपो बाह्यकोपात्पापीयान् ।[2]

दूसरा कोप बाह्य कोप है जो शत्रु राजाओं के द्वारा आक्रमण के रूप में होता है। इन दोनों ही से राजा को सैन्यबल तथा कोष पर अपना पूर्ण अधिकार जमाकर अपनी रक्षा करनी चाहिये।[3]

मनु ने शब्द का व्यापक अर्थ लिया है। उनका कथन है कि संसार की स्थिति दण्ड के अधीन है—

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च॥[4]

महाभारत के अनुसार दण्ड के दो रूप हैं--प्रकाश तथा गुप्त। सेना अथवा बल उसका प्रकाश रूप है।[5]

चतुरंग बल

शुक्र ने सेना की परिभाषा देते हुए कहा है कि शस्त्रों और अस्त्रों से सुसज्जित मनुष्यों के समुदाय को सेना कहते हैं--

सेना शस्त्रास्त्रसंयुक्ता मनुष्यादिगणात्मिका।[6]

सोमेश्वर ने चार प्रकार की सेना का उल्लेख किया है जिसके अन्तर्गत पदाति, अश्व, गज तथा रथ आ जाते हैं—

ईदृग्चतुर्बलं विद्वान् युद्धाय विजितश्रमः।[7]

शुक्र ने सेना के मुख्य दो भाग बतलाये हैं—स्वगमा तथा अन्यगमा।[8] स्वगमा के अन्तर्गत पदाति सेना तथा अन्यगमा के अन्तर्गत रथ, अश्व तथा गज आदि वाहनों पर चलनेवाली सेना आ जाती है। सेना के यह चार अंग चतुरंग बल के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन चार अंगों के अतिरिक्त अन्य अंगों का उल्लेख भी कहीं कहीं पर हुआ है। शुक्र ने सेना में ऊँटों का भी होना आवश्यक बतलाया है। इसके अतिरिक्त बैलों तथा खच्चरों का प्रयोग भी भारवहन करने के लिये होता था।[9] रघुवंश में छः अंगों वाली सेना द्वारा रघु के दिग्विजय करने का उल्लेख हुआ है—

---

१. वही ८।२।४।
२. वही ८।२।३।
३. वही ८।२।५।
४. मनुस्मृति ७।१५।
५. महाभारत शान्तिपर्व ५९।४०।
६. शुक्रनीति ४।८६४।
७. मानसोल्लास २।६।६८४।
८. स्वगमान्यगमा चेति द्विधा। शुक्र० ४।८६४।
९. वही ४।८८४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया ।[1]

महाभारत में प्रकाश दण्ड के अन्तर्गत रथ, हाथी, अश्व, पैदल के साथ ही विष्टि, नौकर, चर तथा उपदेशक को भी सेना का ही अंग माना है—

रथा नागा हयाश्चैव पादाताश्चैव पाण्डव ।
विष्टिर्नाविश्चराश्चैव देशिका इति चाष्टमम् ॥[2]

सोमेश्वर ने सेना के केवल चार अंगों का उल्लेख किया है। इसका कारण सम्भवतः यही हो सकता है कि सोमेश्वर ने शान्ति के समय राजा के समीप रहनेवाली सुरक्षित सेना (Reserved Force) का ही वर्णन किया है। इस कारण युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय भारवहन करनेवाले खच्चर, ऊँट आदि के उल्लेख की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। इसके अतिरिक्त यदि भारवहन करने के लिये पशु आदि की आवश्यकता भी पड़ती थी तो उनका उल्लेख सोमेश्वर ने सेना के स्वतन्त्र अंग के रूप में नहीं किया है यद्यपि चिकित्सा के प्रकरण में उन्होंने ऊँट आदि के स्वास्थ्य का ध्यान रखना राजा के लिये आवश्यक बतलाया है।[3]

पदातिबल

सोमेश्वर ने सेना को छः प्रकार की बतलाया है—

मौलं भृत्यं तथा मैत्रं श्रेणमाटविकं बलम् ।
अमित्रमपरं षष्ठं सप्तमं नोपलभ्यते ॥[4]

अर्थात् सोमेश्वर के विचार से मौल, भृत्य, मित्र, श्रेणी, आटविक तथा अमित्र ये छः प्रकार की सेनायें हैं। वंश के क्रम से आई हुई सेना पैतृक अथवा मौल, अधिक धन देकर बनाई हुई सेना भृत्य, मित्रता स्थापित करके बनाई हुई सेना मित्र, जन्म कर्म से सम्बन्धित तथा निश्चित समय पर सहायता देने वाली सेना श्रेणी, पर्वत प्रदेश में रहने वाले निषाद तथा म्लेच्छादिकों से पूर्ण सेना आटविक तथा शत्रु की सेना से आक्रान्त होकर भागे हुये सैनिक जो आकर दस्यु भाव स्वीकार कर लें ऐसे व्यक्तियों से बनी हुई सेना अमित्र कहलाती है।[5]

अमित्र सेना के विषय में सोमेश्वर ने लिखा है —

सन्निधौ न च तत्कार्यं विश्वसेन्न कदाचन ।
युद्धेषु पुरतः कार्यं नृपैर्युद्धविशारदैः ॥[6]

---

१. रघुवंश ४।२६ ।
२. महाभारत शान्ति पर्व ५९।४१ ।
'अंगान्येतानि कौरव्य प्रकाशानि बलस्य तु' । वही-५९।४२ ।
३. मानसोल्लास २।६।६४० ।
४ वही २।६।५५६ ।
५. वही २।६।५५६–५६० ।
६. वही २।६।५६१ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अर्थात् बुद्धिमान तथा युद्ध में प्रवीण राजा को चाहिये कि वह अमित्र सेना को कभी अपने समीप न रखे और न उस पर कभी विश्वास ही करे। युद्ध होने पर सबसे आगे उसी सेना को रखे।

इस छः प्रकार की सेना में मौल, भृत्य तथा मित्र इन तीन प्रकार की सेनाओं को सोमेश्वर ने सर्वश्रेष्ठ,[1] श्रेणी बल को मध्यम[2] तथा आटविक सेना को अधम[3] प्रकार की सेना माना है।

सोमेश्वर के इस विभाजन से विदित होता है कि मुख्यतः पाँच प्रकार की सेनायें ही राजा से सम्बन्धित थीं। छठी प्रकार की सेना राजा से सम्बन्धित तो अवश्य होती थी किन्तु राजा उसे दूर ही रखता था। वंश के क्रम से वेतन लेकर चली आती हुई मौल सेना तथा भृत्य सेना राजा की सबसे अधिक सहायता करती थी। इसके अतिरिक्त युद्ध के समय अपनी रक्षा करने के लिये राजा अन्य राजाओं से जो मित्रता करता था उस राजा की सेनायें भी युद्ध के समय सहायता करती थीं किन्तु राजा की सहायता यह सेना उतनी भक्तिपूर्वक नहीं करती थीं जितनी मौल तथा भृतक सेना करती थी। श्रेणी सेना को सोमेश्वर ने जन्म तथा कर्म से सम्बन्धित कहकर उसे निश्चित समयवाली बतलाया है।[4] संभवतः उनके समय में शिल्पी व्यक्ति जन्म तथा कर्म के अनुसार अपने अलग-अलग समुदाय बनाकर रहते थे। उन्हीं को श्रेणी कहते थे। उन्हीं में से कुछ व्यक्तियों के समुदाय ऐसे भी थे जो समय-समय पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग कुशलतापूर्वक करते थे और राजा समय पड़ने पर उन्हीं की सहायता माँगता होगा। ऐसे व्यक्तियों के लिये शस्त्रोपजीवी शब्द का प्रयोग हुआ है।[5] यह बल आवश्यकता पड़ने पर ही प्रयोग में लाया जाता था।

सोमेश्वर ने सेनाओं का यह विभाजन कौटिल्य के आधार पर किया है, क्योंकि कौटिल्य ने भी 'मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीबलानां समुद्दानकालाः'[6] कहकर छः प्रकार की सेनाओं का प्रसंग दिया है और "पूर्वपूर्वश्चैषां श्रेयः संनाहयितुम्"[7] कहकर उत्तर की अपेक्षा पूर्व की सेना को अधिक श्रेष्ठ बतलाया

१. श्रेष्ठमेतद्बलत्रयम्। वही २।६।५५७।
२. तद्बलं श्रेणमाख्यातं तच्च मध्यममिष्यते। वही २।६।५५८।
३. अधमं तत् समाख्यातं बलमाटविकं बुधैः। वही २।६।५५९।
४. वही २।६।५५८।
५. 'सूत्रकर्मा विशेषज्ञा ये च शस्त्रोपजीविनः।'
वा० रा० अयो० सर्ग ८३ श्लो० १२
'काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोपजीविनः।' कौ० ११।१।५।
६. कौ० अर्थशास्त्र ९।२।१। ७. वही ९।२।३५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। इस प्रकार कौटिल्य के मत से अटवी बल सबसे अधम प्रकार का बल है।

रामायण में केवल मौल, भृत्य, मित्र तथा अटवी इन चार प्रकार की सेनाओं का प्रसंग प्राप्त होता है।[१] महाभारत के आश्रमवासिक पर्व में मौल, भृत्य, अटवी तथा श्रेणी बल का प्रसंग प्राप्त होता है—

आददीत बलं राजा मौलं मित्रं बलं तथा।
अटवीबलं भृतं चैव तथा श्रेणीबलं प्रभो॥[२]

इसके अतिरिक्त इसमें मौल तथा मित्र बल को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और श्रेणी तथा भृत बल को समान माना गया है—

तत्र मित्रबलं राजन् मौलं चैव विशिष्यते।
श्रेणीबलं भृतं चैव तुल्ये एवेति मे मतिः॥[३]

बलभी के ध्रुवसेन प्रथम के दानपत्र में राजा को मौल, भृत्य, मित्र तथा श्रेणी सेनाओं द्वारा अपना राज्य विस्तार करने का आदेश दिया है।[४] शुक्रनीति में सेना के लिये प्रयुक्त कुछ नाम उपर्युक्त नामों के पर्याय विदित होते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त 'साद्यस्क'[५] शब्द सम्भवतः भृतक का पर्याय है। इसके अतिरिक्त अटवी के स्थान पर आरण्यक[६] तथा अमित्र के स्थान पर शत्रुबल[७] नाम शुक्रनीति में प्राप्त होते हैं। राजनीतिरत्नाकर में अमित्र बल का अरिबल नाम से उल्लेख हुआ है।[८]

इस प्रकार सोमेश्वर ने सेना के विभाजन में विशेष रूप से कौटिल्य के विभाजन को ही अपनाया है। अन्तर केवल इतना है कि कौटिल्य का विभाजन विशेषतः युद्धकालीन सेना का विभाजन प्रकट होता है, क्योंकि उन्होंने इन सेनाओं के युद्ध में तैयार होने के समय का उल्लेख किया है—

"मौलभृत..........समुद्दानकालाः॥[९]

किन्तु सोमेश्वर का विभाजन शान्तिकालीन सेना का विभाजन प्रतीत होता है।

कौटिल्य ने उपर्युक्त छः प्रकार की सेनाओं के अतिरिक्त एक सातवीं प्रकार की 'औत्साहिक' नाम की सेना का भी वर्णन किया है—

---

१. वा० रा० युद्धकाण्ड १७।२४।

२. महाभारत आश्रमवासिक पर्व ७।७। ३. वही ७।८।

४. Epigraphica Indica Volume XI, page 106.

५. शुक्र० ४।८७२। ६. वही ४।८७७।

७. वही ४।८७८। ८. राजनी० र० पृ० ३८।

९. कौ० अर्थ० ९।२।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

"सैन्यमनेकजानीयस्थमुक्तमनुक्तं वा विलोपार्थं यदुत्तिष्ठति तदौत्साहिकम् ।"[१] यह अस्थायी सेना है और युद्ध के समय विशेष परिस्थिति के अन्तर्गत बनती है । सोमेश्वर ने इस प्रकार की सेना का नाम तक नहीं लिया है प्रत्युत उनका कथन है कि सेनायें छः प्रकार की होती हैं, सातवीं प्रकार की सेना कोई नहीं है "सप्तमं नोपलभ्यते"।[२] इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि सोमेश्वर ने सेना का विभाजन शान्तिकालीन सेना का ध्यान रखकर किया है, युद्धकालीन सेना के अनुसार नहीं ।

सेना के अस्त्र-शस्त्र

सेना के प्रकारों तथा विभाजन के पश्चात् पदाति सेना के अस्त्र-शस्त्र का वर्णन सोमेश्वर ने किया है । लौह, चर्म तथा कार्पास से रचे तथा शल्क आदि से निर्मित दृढ़ संग्रह सेना के लिये करना चाहिये ।[३] प्रत्येक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, भुजत्राण (बाहु की रक्षा का शस्त्र) शिरस्त्राण, (शिर को बचाने की लोहे की टोपी), अङ्गत्राण (अंगों को बचाने का लोहे का कवच), पताका, ध्वजा तथा स्तम्भों से सेना को सुशोभित रखना चाहिये ।[४] इसके अतिरिक्त बेंत, बांस, काष्ठ तथा चमड़े के दृढ़ बन्धनों से सेना के चारों ओर गोला तथा घेरा बनाना चाहिए तथा सेना को छिपाने एवं उसकी रक्षा के लिये कवचों का निर्माण कराना चाहिए ।[५] व्याघ्र चर्म से आच्छादित सुवर्ण के विचित्र फलकों को सदैव अपने बल में रखना चाहिए ।[६]

इसके अतिरिक्त सेना में कुछ खड्ग धारण करने वाले, कुछ भाले धारण करने वाले, कुछ बर्छी, चक्र तथा मुद्गर धारण करने वाले, कुछ शक्ति, शूल तथा छुरिका धारण करने वाले, कुछ यन्त्रमुक्त आयुधों से युक्त, कुछ धनुर्धारी तथा कुछ फरसा धारण करने वाले सैनिक थे ।[७]

धनुर्वेद के अनुसार आयुध चार प्रकार के होते हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त तथा यन्त्रमुक्त । नीतिप्रकाशिका में यन्त्रमुक्त की अपेक्षा मन्त्रमुक्त आयुधों का उल्लेख है ।[९] मानसोल्लास में आयुधों के प्रकार के विषय में निम्नलिखित प्रसंग प्राप्त होता है :

---

१. वही ९।२।२६ । २. मानसोल्लास २।६।५५९ ।
३. वही २।६।५६२ । ४. वही २।६।५६३ ।
५. वही २।६।५६४ । ६. वही २।६।५६५ ।
७. वही २।६।६८१-८२ ।
८. अग्निपुराण (२४९-२५२) तथा विष्णुधर्मोत्तर (II, १७८-१८२) में धनुर्वेद का सारांश प्राप्त होता है ।
९. नीतिप्रकाशिका २।११-१३ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यन्त्रमुक्तायुधाः केचित्केचिन्मुक्तायुधास्तथा ।
असुक्तायुधहस्ताश्च मुक्तायुधकरास्तथा ॥[१]

इस श्लोक में 'मुक्तायुध' शब्द का दो बार प्रयोग त्रुटिपूर्ण विदित होता है। सम्भवतः दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'मुक्तायुधकरास्तथा' के स्थान पर 'मुक्तामुक्तकरास्तथा' यह शुद्ध पाठ होना चाहिए, क्योंकि चक्रादि मुक्तामुक्तायुधों का उल्लेख उन्होंने आयुधों की सूची में किया है। इस प्रकार सोमेश्वर ने चार प्रकार के आयुधों का उल्लेख किया है—

१. यन्त्रमुक्त यथा तीर
२. असुक्तायुध यथा खड्ग, परशु, कुन्त आदि
३. मुक्तामुक्त यथा चक्रादि
४. मुक्तायुध यथा शक्ति आदि।

सैनिकों का वेतन

सोमेश्वर को सैनिकों के यथासमय वेतन मिल जाने का बड़ा ध्यान था जिससे सेना में असंतोष न फैले। वह विश्वस्त जनों को नियुक्त कर इस बात की जांच करता था और कभी-कभी स्वयं भी निरीक्षण करता था।[२] उनकी सेना में वेतन कई प्रकार से दिया जाता था। कुछ सैनिक दैनिक वृत्ति (Daily wages) वाले थे। कुछ को मासिक, कुछ को त्रैमासिक, कुछ को चार मास के उपरान्त, कुछ को छः मास के उपरान्त तथा कुछ को वार्षिक वेतन मिलता था।[३] वेतन सम्बन्धी विशेष विवरण बन्धुभृत्यादि प्रकरण के अन्तर्गत दिया जा चुका है।

सेना में अश्व का महत्व

भारतीय साहित्य में आदि काल से ही अश्व का बड़ा महत्व रहा है। वैदिक काल से ही भारत में इसकी खयाति रही है, क्योंकि वेदों में इसके बहुत प्रसंग मिलते हैं[४] किन्तु यह कहना बहुत कठिन है कि यह किस देश का प्राणी है। अश्व का सम्बन्ध केवल मानव जगत से ही नहीं वरन् देवताओं के साथ भी है। यज्ञ के अवसर पर आहुति रूप से यह देवताओं को प्रदान किया जाता था। इस वाजिमेध यज्ञ का वैदिक साहित्य में विस्तृत विधान मिलता है। सूर्य के रथ में जुड़े हुए सात अश्व तो प्रसिद्ध ही हैं।

वाजिशास्त्र के आचार्य पाण्डुनन्दन नकुल अश्व की प्रशंसा करते हुए

---

१. मानसोल्लास २।६।६८३। २. वही २।६।५७०।
३. वही २।६।५६८–६९।
४. ऋग्वेद १।२२।६–७–८, ६।४६।१३–१४, अथर्ववेद ४।२१।४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कहते हैं कि तुरंगों के द्वारा धर्मार्थ-काम की सिद्धि होती है। अश्वों से पृथ्वी तथा लक्ष्मी हस्तगत होती है, उनसे विपुल यश तथा विजय की भी प्राप्ति होती है :

अश्वैर्हस्तगता पृथ्वी श्रीरश्वैः विपुलं यशः।
विजयश्च भवेदश्वैरश्वो हि......भूषणम् ॥[१]

जहां पर सब लक्षणों से युक्त अश्वों का वास होता है वहां सभी सम्पत्तियां रहती हैं—

राजा राष्ट्रं यशो लक्ष्मीः धर्मकामार्थसम्पदः।
वाजिनो यत्र तिष्ठन्ति सर्वलक्षणसंयुताः ॥[२]

इसके अतिरिक्त जिसके प्रांगण में एक दिन भी अश्वों का वास होता है सागर पर्यन्त पृथ्वी उसके हाथ में आ जाती है और जिसकी सेना अश्वसमूहों से पूर्ण रहती है उसके गृह में लक्ष्मी विष्णु भगवान के वक्षःस्थल को छोड़कर आ विराजती है—

तस्य सागरपर्यन्ता हस्ते तिष्ठति मेदिनी।
एकाहमपि यस्याश्वा निवसन्ति महाजिरे॥
विष्णोर्वक्षःस्थलं मुक्त्वा लक्ष्मीस्तस्य गृहे स्थिरा।
निवसत्यश्वसंघातैः संपूर्णा यस्य वाहिनी॥[३]

युद्ध के लिये तो अश्व प्राण ही हैं। उनके बिना सेना उसी प्रकार श्रीहीन हो जाती है जैसे चन्द्र के बिना रात्रि और पति से हीन पतिव्रता स्त्री—

चन्द्रहीना यथा रात्रिः पतिहीना पतिव्रता।
हयहीना तथा सेना विस्तीर्णापि न शोभते॥[४]

अश्वों में सबसे बड़ा गुण यह है कि वे निर्भीक होते हैं और हर प्रकार के स्थल में विचरण कर सकते हैं। वे हर प्रकार के वातावरण को अपने अनुकूल बना लेते हैं और अपने सवार की इच्छा को भली प्रकार समझ लेते हैं। इस प्रकार शरीर एवं रचना द्वारा वे युद्ध के लिये बहुत उपयुक्त होते हैं। वे बहुत शीघ्र एकत्र हो जाते हैं और आवश्यकतानुसार शीघ्र ही फैल जाते हैं और शत्रु को देखकर तुरन्त उसका अन्त कर देते हैं—

---

१. नकुल अश्वशास्त्र १,१०। २. वही १।११।
३. वही १।१२–१३। ४. वही १।१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्षणादेकत्वमायान्ति क्षणाद्यान्ति सहस्रधा।
क्षणात्सुख्यं रिपुं वीक्ष्य नयन्ति यमसादनम् ॥[१]

जब वे एक साथ युद्ध करते हैं तो पारस्परिक सहयोग की भावना प्रकट करते हैं और अकेले पड़ जाने पर निर्भय होकर आगे बढ़ते हुए विपत्तियों का सामना करते हैं। वे प्रत्येक ऋतु में सरलता से कार्य कर सकते हैं और कई दिन तक बिना खाये-पिये रह सकते हैं—

जितशीतातपा ये च जितत्रासा जिताशनाः।[२]

सुयोग्य राजा होने के कारण सोमेश्वरदेव अश्वों के गुणों से भली भाँति परिचित थे। उनका विचार था कि शिक्षित अश्वों से युक्त होने पर ही उत्तम सेना का निर्माण हो सकता है—

शिक्षितैर्बहुभिर्वाहैस्संयुक्तं बलमुत्तमम्।[३]

इसके अतिरिक्त दूर के शत्रु भी उत्तम घोड़ों द्वारा वश में हो जाते हैं—

साध्यन्ते तुरगैरेव दूरस्था अपि वैरिणः।[४]

उनका यह मत नकुल के मत से समानता रखता है। नकुल की निम्नलिखित पंक्ति मानसोल्लास की उपर्युक्त पंक्ति से मिलती है—

दूरदेशान्तरस्थोऽपि रिपुस्तिष्ठति शंकितः।[५]

इसके अतिरिक्त जैसा ऊपर नकुल के उद्धरण द्वारा कहा जा चुका है महाराज सोमेश्वर भी इस बात को मानते थे कि अश्वों द्वारा ही कीर्ति मिलती है और अश्वों द्वारा पृथ्वी अथवा राज्य स्थिर रहता है—

लभ्यते तुरगैः कीर्तिर्यस्याश्वास्तस्य भूस्स्थिरा।[६]

इसलिये मानसोल्लास की द्वितीय विंशति में जहां राज्य को स्थिर रखने के अन्य उपायों का उल्लेख है वहां अश्वबल को भी उन्हीं उपायों के अन्तर्गत स्थान दिया है।

इस प्रकार के उपयोगी पशु की शिक्षा तथा उसके भरण-पोषण का ध्यान भी महाराज सोमेश्वर को बहुत था। उनका कथन है कि अश्वों को कोमल घास, जौ, चना आदि खाद्य पदार्थों तथा तेल, घृत आदि रसों से पुष्ट करना चाहिये और प्रतिदिन प्रातःकाल प्रयत्न से उन्हें चलाना चाहिये। तभी वे काम के योग्य होते हैं।[७]

---

१. वही।
२. वही।
३. मानसोल्लास २।६।५७३।
४. वही २।६।५७४।
५. नकुल अश्वशास्त्र।
६. मानसोल्लास २।६।५७४।
७. वही २।६।५७५–७७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बारहवीं शताब्दी में अश्वों का बहुत मान था, इसका प्रमाण गोदावर मिश्र के हरिहरचतुरंग नाम के ग्रन्थ से भी मिलता है। यह ग्रन्थ बारहवीं शतक के अन्त का है।[१] उक्त ग्रन्थ के अनुसार धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों का उचित रूप से पालन करने के लिये राजा को सदैव सब प्रकार से अश्वों की रक्षा करनी चाहिये—

तस्माद्धर्मार्थकामार्थं पार्थिवैस्स्वार्थवेदिभिः।
सर्वदा सर्वथा यत्नाद्रक्षणीयास्तुरंगमाः॥[२]

अश्वबल

महाराज सोमेश्वर का कथन है कि सुशिक्षित सैन्धव, यवन, तथा काम्बोज अश्वों से युक्त सेना उत्तम होती है।[३] अर्थशास्त्र में युद्ध के लिये चार प्रकार के उत्तम घोड़ों का वर्णन किया है—

प्रयोज्यानामुत्तमाः काम्बोजकसैन्धवारट्टजवनायुजाः।[४]

इस प्रकार से काम्बोज, सैन्धव, आरट्टज तथा वनायुज इन चार प्रकार के घोड़ों को ही युद्ध के लिये सेना में रखना चाहिये। इसमें से सोमेश्वर ने केवल तीन ही प्रकार के घोड़ों का उल्लेख किया है काम्बोज, सैन्धव तथा वनायुज। वनायु अरब देश का प्राचीन नाम है इसीलिये सोमेश्वर ने सम्भवतः यवन शब्द का प्रयोग किया है। काम्बोज तथा सैन्धव घोड़े पुराण तथा महाकाव्यों में भी युद्ध के लिये उपयुक्त बताये गये हैं। प्राचीन काल के युद्ध में काम्बोज अश्वों की सेना अवश्य रहती थी। उन अश्वों के नाम भी होते थे।[५]

महाभारत में शल्य तथा कृष्ण का नाम महान् अश्वारोहियों में गिना जाता है।[६] ये अश्वारोही तीर, खड्ग तथा भाले रखते थे और उष्णीष तथा कवच धारण करते थे।[७] अश्वों को शीघ्र गतिवाला बनाने तथा उत्साह से भरने के लिये उन्हें युद्ध के पूर्व मदिरापान कराया जाता था।[८] सम्भवतः यही नियम सोमेश्वर के समय में भी था क्योंकि उन्होंने "साध्यन्ते तुरगैरेव दूरस्था अपि वैरिणः"[९] लिखकर घोड़े के उन्मत्त स्वभाव को प्रदर्शित किया है। इस अश्व सेना पर विजय का तथा सेना की रक्षा का बहुत कुछ भार रहता

---

१. Dikshitar-war in Ancient India p. 175.
२. हरिहरचतुरंग ३।३।
३. मानसोल्लास २।६।५७३।
४. कौटिल्य० २।३०।३२।
५. वा० रा० १।६।२३-२४।
६. महाभारत द्रोणपर्व ३१।५९-६०।
७. वही कर्ण पर्व ४४।६४-६७।
८. वही द्रोणपर्व ११२।५६।
९. मानसोल्लास २।६।५७४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था। इसी कारण सोमेश्वर ने घोड़ों को शिक्षित बनाने का प्रसङ्ग दिया है।[१] कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में अश्व की शिक्षा का वर्णन किया है।

इन चार प्रकार के घोड़ों के अतिरिक्त कौटिल्य ने वाह्लीक प्रदेश के घोड़ों को भी युद्ध के लिये उपयुक्त बतलाया है। कौटिल्य के अनुसार ये मध्यम प्रकार के अश्व हैं।[२] इन वाह्लीक अश्वों के प्रसंग रामायण[३] तथा महाभारत[४] में भी प्राप्त होते हैं। सोमेश्वर ने वाह्लीक अश्वों को उत्तमोत्तम अश्वों के अन्तर्गत लिया है—

काम्बोजयवनास्तेजी वाह्लीकाश्चातलास्तथा।
तोख्खारका खकेकाणा एते सहोत्तमोत्तमाः॥[५]

वाह्लीक अश्वों की समता नकुल ने वर्ण-रूपादि में काम्बोजों से की है। ये महा गति वाले तथा रूप और सौन्दर्य से युक्त होते हैं।

वाह्लीकाः काम्बोजैः समानसंस्थानवर्णरूपाश्च।
तेषामयं विशेषो दीर्घोदरपृष्ठवंशास्ते॥
परिणाहायामाभ्यामधिकाः किंचिन्महेत्तणाः शूराः।
हृत्पृष्ठमूर्तिदीर्घा दीर्घग्रीवा दशनकेशाश्च॥
मधुपिंगलामिनयता कुद्धास्ते दन्तखादिनः कथिताः।
भर्तुश्च वत्सलाः स्युर्महाजवा रूपसौन्दर्यसम्पन्नाः॥[६]

सेना में गज का महत्व

गज प्रारम्भ ही से ऐश्वर्यशाली एवं उपयोगी वाहन माना गया है। इसी कारण भारतीय साहित्य के आचार्यों ने इसकी उत्पत्ति, बांधने का उपाय, लक्षण तथा शिक्षा आदि का विशेष प्रकार से वर्णन किया है। गजविषयक अनेक प्रसंग हमें वेदों में प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के दशम मंडल में दो युद्ध करते हुये हाथियों का वर्णन हुआ है।[७] ऋग्वेद की आरम्भ की संहिताओं में इसे केवल जंगली पशु बताया गया है किन्तु पश्चात् के साहित्य में इसको हस्तिन्[८] (हाथ वाला) नाम से विभूषत किया गया है। अग्नि,[९] मत्स्य[१०] आदि पुराणों में हाथी के लक्षणों

---

१. वही ४।४ ४३।
२. कौटिल्य० २।३०।३३।
३. वा० रा० १।६।२२।
४. महाभारत सौप्तिक १३।२।
५. मानसोल्लास ३।४।६६९।
६. नकुल अश्वशास्त्र।
७. ऋग्वेद १०।१०६।६।
८. Cambridge History of India Vol. I p. 81.
९ अग्निपुराण २४२।२४।
१०. मत्स्य पु० २१५।३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का उल्लेख है। महाभारत[1] तथा रामायण[2] में भी गजविषयक साहित्य उपलब्ध होता है। कौटिल्य[3] ने अपने अर्थशास्त्र में गजों का विस्तृत विवरण दिया है। शुक्रनीति में गजों के लक्षण आदि का प्रतिपादन किया गया है।[4] बृहस्पति संहिता में गजों के विभाजन पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। मातंगलीला गजशास्त्र सम्बन्धी सुन्दर ग्रन्थ है। इस प्रकार गजों पर महान् साहित्य उपलब्ध होता है।

सोमेश्वर ने मानसोल्लास में गज की बड़ी प्रशंसा की है। वे योग्य तथा सुशिक्षित हाथियों को विजय का कारण मानते हैं और 'एको विजयते दन्ती'[5] कहकर सेना के मध्य उसे सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हैं—

शिक्षितैस्सज्जितैश्शूरैः लभ्यते विजयो युधि ।[6]

अन्य ग्रन्थों में भी गज को विजय दिलाने वाला बतलाया है—

गजाः सर्वबलश्रेष्ठाः पार्थिवानां जयप्रदाः ॥
तेषाममितसत्त्वानां कर्तव्यमनुपालनम् ।
बलसाविधिज्ञेन कर्तव्यमनुपालनम् ॥[7]

ये गज रण में अपने पक्ष की सदैव रक्षा करते है और शत्रु के पक्ष का नाश करते हैं। जिस प्रकार दुर्ग को तोड़ना एवं उस पर विजय प्राप्त करना कठिन होता है उसी प्रकार इन्हें भी शत्रु सेना शीघ्रता से नष्ट नहीं कर पाती—

भंजने मर्दने चैव नागा वज्रोपमाः स्मृताः ।
स्वसैन्यं परिरक्षन्ति परसैन्यं द्रवन्ति च ॥[8]

गजों को सेना का भूषण माना गया है।[9]

गज राजा का बन्धु तथा सखा माना गया है। इसके समान योधा तथा महाकाय पशु अन्य नहीं है—

नास्ति हस्तिसमो बन्धुर्नास्ति हस्तिसमः सखा ॥
नास्ति हस्तिसमो योधो नास्ति हस्तिसमो रिपुः ।
नास्ति हस्तिसमो कायो नास्ति हस्तिसमो बली ॥[10]

---

१. महाभारत शान्ति पर्व ५९।४१ । २. वा० रा० ७।६४।२–४ ।
३. कौटिल्य अर्थ० २।३२ । ४. शुक्रनीति ४।९०५–९६५ ।
५. मानसोल्लास २।६।६२१ । ६. वही २।६।६२० ।
७. हस्त्यायुर्वेद ५ १–२ । ८. हस्त्यायुर्वेद ५।११ ।
९. पृथिव्या भूषणं मेरुः शर्वर्य्या भूषणं शशी ।
नगाणां भूषणं विद्या सैन्यानां भूषणं गजाः । वही ५।२३ ।
१०. वही अध्याय ५ श्लोक ३३–३४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार सिद्ध है कि गज के बिना राजा का कोई अस्तित्व नहीं है। राजा के पास चाहे जितना वैभव हो, चाहे जितनी विशाल सेना हो, किन्तु वह यदि गज से हीन है तो राजा का वैभव तथा उसकी सेना सब व्यर्थ समझी जाती है और उसका वैभव अपूर्ण ही रह जाता है—

दृश्यन्ते ये सदा राजन् हीनेष्वपि हि दन्तिषु।
चंद्रहीना यथा रात्रिः सस्यहीना वसुंधरा॥
गजहीना तथा सेना विस्तीर्णाऽपि न शोभते।
एते चान्येऽपि बहवो वारणानां गुणाः स्मृताः॥[1]

गज-बल

महाराज सोमेश्वर का कथन है कि उत्तम जाति के, कलिंग वन में उत्पन्न हुए, अत्यन्त शिक्षित गजों एवं शूरवीरों से सुसज्जित सेना ही युद्ध में विजय का एकमात्र कारण है—

वारणैर्भद्रजातीयैः कालिंगवनजन्मिभिः।
शिक्षितैः सज्जितैः शूरैर्लभ्यते विजयो युधि॥[2]

अत्यन्त शूरवीर, महाकाय, सभी शुभ लक्षणों एवं मदोन्मत्त लोचनों से युक्त गज ही विजय को प्राप्त कराते हैं।[3] सोमेश्वर ने गजों के विषय में कहा है—

मुख्यं दन्तिबलं राज्ञां समरे विजयैषिणाम्।
तस्मान्निजबले कार्या बहवो वारणोत्तमाः॥[4]

इस प्रकार सोमेश्वर गजसेना को युद्ध में विजय का प्रधान अंग मानते हैं और उन उत्तम गजों को उचित रूप से स्वस्थ बनाने का प्रसंग गज-चिकित्सा के अन्तर्गत दिया है। उन्हें भली प्रकार स्वस्थ बनाने का विस्तारपूर्वक वर्णन गजचिकित्सा[5] के अन्तर्गत हुआ है।

हाथियों के युद्ध का प्रसंग वेदों में भी प्राप्त होता है।[6] कौटिल्य ने "हस्तिप्रधानो विजयो राज्ञां"[7] कहकर गजबल को राजा का प्रमुख बल माना और शत्रु सेना का नाश करने के लिये हाथी को मुख्य माना है—

हस्तिप्रधानो हि परानीकवध इति।[8]

सोमेश्वर की "मुख्यं दन्तिबलं राज्ञां समरे विजयैषिणाम्" पंक्ति का आधार

---

१. वही ३७–३८।
२. मानसो० २।६।६२०।
३. वही २।६।६२१।
४. वही २।६।६२२।
५. वही २।६।६२९.६७४।
६. ऋग्वेद १०।१०६।६।
७. अर्थशास्त्र २।२।१४।
८. वही ७।११।१९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संभवतः कौटिल्य की "हस्तिप्रधानो विजयो राज्ञाम्" पंक्ति है। कामन्दक-नीतिसार में भी—

"नागेषु हि क्षितिभुजां विजयो निबद्धस्तस्माद्गजाधिकबलो नृपतिः स्यात् ॥"[१]

यह प्रसंग गजबल की मुख्यता को द्योतित करता है। बुद्धभूषण[२] में इस प्रकार कहा गया है कि जहां पर बलवान गज होते हैं वहाँ पर विजय अवश्य होती है। नीति-वाक्यामृत में भी गजबल को प्रधान माना गया है—

"बलेषु हस्तिनः प्रधानमंगं स्वैरवयवैरष्टायुधा हस्तिनो भवन्ति ॥"[3]

कौटिल्यने सात प्रकार से हाथियों को शिक्षित बनाने का वर्णन किया है—

सांन्नाह्यः सप्तक्रियापथः। उपस्थानं संवर्तनसंयामं
वधावधौ हस्तियुद्धं नागरायणं सांग्रामिकं च ॥[४]

युद्ध के लिये हाथी को शिक्षित करना आवश्यक है, क्योंकि नीतिवाक्यामृत में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

अशिक्षिता हस्तिनः केवलमर्थप्राणहराः ॥[५]

अर्थात् अशिक्षित हाथी केवल धन का तथा प्राणों का नाश करनेवाले होते हैं। वास्तव में यदि गज को युद्ध सम्बन्धी शिक्षा न दी जाय तो वह निश्चय ही सेना में स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करेगा और अपनी इच्छानुसार अन्न को खाकर सैनिकों को हानि पहुँचायेगा। यशस्तिलकचम्पू में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि जिस राजा के पास विनीत गज नहीं होते वह नाममात्र का राजा है और युद्ध में वही गज उसके आत्मवध तथा विनाश का कारण होते हैं—

न विनीता गजा येषां तेषां ते नृप केवलम्।
क्लेशायापि विनाशाय रणे आत्मवधाय च ॥[६]

इसी कारण कौटिल्य ने गजों को शिक्षित बनाने के लिये हाथी के अध्यक्ष का प्रसंग दिया है—

"हस्त्यध्यक्षो हस्तिवनरक्षां दम्यकर्मक्षान्तानां हस्तिहस्तिनी-
कलभानां शालास्थानशय्याकर्मविधायवसप्रमाणं कर्मस्वायोगं
बन्धनोपकरणं सांग्रामिकमलंकारं चिकित्सकानीकस्थायुकवर्गं
चानुतिष्ठेत् ॥"[७]

---

१. कामन्दकनीतिसार १९।६२।
२. 'यतो नागास्ततो जयः' बुद्धभूषण पृ० ४२।
३. नीतिवाक्यामृत बलसमुद्देश पृ० २०७।
४. कौटिल्य० २।३२।५.६। ५. नीतिवाक्यामृत २२।५ पृ० २०८।
६. यशस्तिलक० खंड ३ पृ० ४९१। ७. अर्थशास्त्र २।३१।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर ने भी गजों को महामात्र द्वारा शिक्षा देने का उल्लेख किया है।[1]

रथ-बल

गजों के पश्चात् महाराज सोमेश्वर सेना के रथों का वर्णन करते हैं। उनका कथन है कि अनेक आयुधों से पूर्ण, पताका तथा ध्वजा आदि से सुशोभित, चार अश्वों से युक्त, अत्यन्त दृढ़ चित्त वाले सारथी से युक्त तथा अनेक महारथियों से पूर्ण बहुत से रथ राजा को विजय की इच्छा से अपनी चतुरंगी सेना में रखना चाहिये।[2]

युद्ध में रथों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है। ऋग्वेद के छठे मण्डल में कुछ सूक्त ऐसे प्राप्त होते हैं जो रथ के सारथी को सम्बोधित करते हुए कहे गये हैं।[3] इसी प्रकार के प्रसंग अथर्ववेद[4] तथा ब्राह्मणों[5] में भी प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में इन्द्र द्वारा केशिन् के रथ पर आक्रमण करने का प्रसंग प्राप्त होता है।[6] ऐतरेय ब्राह्मण में रथ के सारथियों का सेना के योद्धाओं से अलग वर्णन प्राप्त होता है।[7] तैत्तिरीय ब्राह्मण में रथकार नाम का एक अलग समुदाय होने का प्रसंग प्राप्त होता है। ये लोग केवल रथ ही बनाते थे।

रामायण[8] तथा महाभारत काल[9] में भी युद्ध के समय रथों का प्रयोग होता था। महाभारत में वासुदेव, मातलि आदि योग्य सारथियों के प्रसंग प्राप्त होते हैं। पुराणों में भी रथों के प्रसंग अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। मार्कण्डेय पुराण में रथों के प्रयोग का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है—

> रथोद्वहनखिन्नाश्च ते इमे रथवाजिनः।
> दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव॥
> निमित्तानि च भूयिष्ठं यानि प्रादुर्भवन्ति नः।
> तेषु तेष्वभिपन्नेषु लक्षयाम्यप्रदक्षिणम्॥
> देशकालौ च विज्ञेयौ लक्षणानींगितानि च।
> दैन्यं खेदश्च हर्षश्च रथिनश्च बलाबलम्॥
> स्थलनिम्नानि भूमेश्च समानि विषमानि च।
> युद्धकालश्च विज्ञेयो परस्यान्तरदर्शनम्॥

---

१. मानसोल्लास २।३।२९६। २. वही २।६।६७९.६८०।
३. ऋग्वेद ६।४७।२६। ४. अथर्ववेद ६।१२५।
५. ऐतरेय ब्रा० ५।२१। ६. अथर्ववेद ७५।१.७।
७- ऐतरेय ब्रा० २।३७, ५।२१, १०।५, २४।३, ३४।१।
८. वा० रा० युद्धकांड १०६।१६.२०।
९. महाभारत शान्ति पर्व ५९।४१ ४२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपयानापयाने च स्थानं प्रत्यपसर्पणम्।
सर्वमेतद्रथस्थेन ज्ञेयं रथकुटुम्बिना॥

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने रथाध्यक्ष का प्रसंग दिया है, जिसका कार्य नये रथ बनवाना था।[1] कौटिल्य ने देवरथ, पुष्परथ, सांग्रामिक, पारियाणिक, परपुराभिगामिक तथा वैनयिक आदि विभिन्न प्रकार के रथों का वर्णन किया है।[2] इन रथों के अतिरिक्त शुक्र के समय में एक प्रकार के लौहरथ का प्रयोग होता था—

लौहसारमयश्चक्रः सुगमो मंचकासनः।
स्वादोलायितरूढस्तु मध्यमासनसारथिः॥
शस्त्रास्त्रसंधायुदर इष्टच्छायो मनोरमः।
एवं विधो रथो राज्ञा रक्ष्यो नित्यं सदश्वकः॥[3]

वैदिक काल में रथ दो अश्वों द्वारा खींचा जाता था और वह दो पहियों से युक्त होता था।[4] किन्तु अश्विन् के रथों में तीन पहियों का उल्लेख हुआ है।[5] पुराण काल में कहीं-कहीं रथ में पाँच घोड़े जोते जाने का प्रसंग प्राप्त होता है—

स एकदा महेष्वासो रथं पंचाश्वमाशुगम्।[6]

महाभारत में बड़े-बड़े योद्धाओं के रथ में चार घोड़े जुतते थे।[7] महाराज सोमेश्वर के समय तक इस पद्धति में किसी प्रकार का भी अन्तर न आने पाया था। मानसोल्लास के प्रसंगों से विदित होता है कि तत्कालीन समय में भी रथ चार अश्वों द्वारा ही खींचे जाते थे—

चतुर्भिस्तुरगैर्युक्ता दृढाः सारथिनोदिताः।[8]

युद्ध में काम आने वाले सांग्रामिक रथ ध्वजा से युक्त होने चाहिये, क्योंकि ध्वजा के ही नाम से सेना ध्वजिनी के नाम से प्रसिद्ध है।[9] उस ध्वजा पर

---

१. स रथकर्मान्तान्कारयेत् अर्थ० २।३३।२

२. देवरथपुष्परथसाँग्रामिकपारियाणिकपरपुराभियानिकवैनयिकांश्च रथान् कारयेत्॥ वही २।३३।५।

३. शुक्रनीति ४।९२।९४।

४. ऋग्वेद ५।३०।१, ५।३६।५, ६।२३।१।

५. ऋग्वेद १।११८।२, १।१५७।३, १०।४१।१।

६. श्रीमद्भागवत पु० ४।२६।१।

७. महा० आ० १९८।१५, उद्योग० ४८।५०, द्रोण० १४५।८१।

८. मानसो० २।६।६७९।   ९. महाभारत उद्योग पर्व १५५।२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किसी प्रकार की प्रतिमा, पशु अथवा पुष्प का चिह्न प्रतीक रूप में रहना चाहिये। भीष्म की ध्वजा पर ताड़ का वृक्ष प्रतीक रूप में चिह्नित था। ध्वजा के चिह्नों के अतिरिक्त ये रथ मालाओं तथा आतपत्रों से खूब सजाये जाते थे।[१] रथों को खूब सजाने की प्रथा सोमेश्वर के समय में भी प्रचलित थी किन्तु रथ आतपत्रों द्वारा ढका नहीं जाता था—

अनेकायुधसंकीर्णाः पताकाध्वजराजिताः।[२]

इस प्रकार से सोमेश्वर के समय में सेना का रूप अत्यन्त सुसंगठित था। सोमेश्वर ने विजय की आकांक्षा रखने वाले राजा को इसी प्रकार की चतुरंगी सेना द्वारा आलस्यरहित होकर शत्रु का संहार करने का आदेश दिया है।

सुहृद्

सोमेश्वर एक अत्यन्त प्रतिभावान् राजा था और उसका प्रजा पर पूर्ण अधिकार था, क्योंकि वह अपनी निरंकुशता न चला कर प्रजा का ध्यान रखकर प्रत्येक कार्य करता था। सोमेश्वर ने सुहृद् को राजा का बड़ा सहायक माना है। मित्र भी राष्ट्र का प्रधान अंग है। सोमेश्वर ने सुहृद् के लक्षणों का वर्णन निम्न प्रकार से किया है

कुलीनं च सुशीलं च सुखे दुःखे च सम्मतम्।
अमायं दृढचित्तं च धनैः प्राणैरवंचकम्॥
नीतिज्ञं शौचसंपन्नं व्यसनेष्वपराङ्मुखम्।
कुर्वीत नृपतिर्मित्रं धर्मार्थसुखसिद्धये॥[3]

प्राचीन धर्मग्रंथों में भी सुहृद् को बड़ा सम्मान प्रदान किया गया है। मनु ने राजा के तीन प्रकार के फलों का वर्णन किया है[४] और सुहृद् के विषय में लिखा है—

हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम्॥[५]

अर्थात् राजा के मित्र, हिरण्य तथा भूमिलाभ में मित्रलाभ सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि राजा सुवर्ण और भूमि प्राप्त करके उतना नहीं बढ़ता जितना भविष्य में काम आने वाले योग्य तथा स्थिर मित्र को प्राप्त कर बढ़ता है। अतः मनु ने

१. वही द्रोण पर्व ७।१०५। २. मानसो० २।६।६७९।
३ मानसो० २।७।६८५.६८६।
४. मित्रं भूमिं हिरण्यं वा सम्पश्यंस्त्रिविधं फलम्। मनु० ७।२०६।
५. वही ७।२०८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

योग्य मित्र को ही राजा की वृद्धि का कारण माना है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी हिरण्यलाभ तथा भूमिलाभ से मित्रलाभ को अधिक उत्तम बतलाया है—

हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः।
अतो यतेत तत्प्राप्त्यै रक्षेत्सत्यं समाहितः॥[१]

किन्तु कौटिल्य का मत इससे विपरीत है। वे भूमिलाभ को ही सर्वप्रधान बतलाते हैं, क्योंकि अर्थशास्त्र में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

"संहितप्रयाणे मित्रहिरण्यभूमिलाभानामुत्तरोत्तरो लाभः श्रेयान्। मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवतो मित्रं हिरण्यलाभात्। यो वा लाभः सिद्धः शेषयोरन्यतरं साधयति स श्रेयान्।"[२]

महाभारत में धन को तीनों वस्तुओं में प्रधान माना गया है—

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचित्सुहृत्।
अर्थैस्तु निबध्यन्ते मित्राणि रिपवस्तथा॥[३]

सोमेश्वर ने सुहृद् को धर्म और सुख की सिद्धि का साधन मान कर उसे सुवर्ण, भूमि आदि से श्रेष्ठ माना है—

कुर्वीत नृपतिर्मित्रं धर्मार्थसुखसिद्धये।[४]

विष्णुधर्मोत्तर सामर्थ्य के आधार पर ही शत्रु तथा मित्र बनने का उल्लेख करता है—

नास्ति जात्या रिपुर्नाम मित्रं नाम न विद्यते।
सामर्थ्ययोगाज्जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा॥[५]

कामन्दकीय नीतिसार में सुहृद् के लिये शुद्ध हृदय वाला, परिश्रमी, उदार, वीर, सुख-दुःख में हाथ बटाने वाला, हितकारी, सत्यवादी, अपने मित्र की इच्छित वस्तु के प्रति ध्यान देने वाला बतलाया है।[६] इसी में सुहृद् को धर्म, अर्थ, तथा काम पुरुषार्थ की प्राप्ति का साधन बताया गया है।[७]

सोमेश्वर ने राजा को कुलीन, सुशील, सुख-दुःख में समान स्थिति वाला, दृढ़ चित्तवाला, प्राणों तथा धन के प्रति उदार, नीतिज्ञ, शुद्ध हृदय तथा व्यसनों से विमुख सुहृद् बनाने का आदेश दिया है और सुहृद् को धर्म, अर्थ तथा सुख एवं काम की सिद्धि का साधन माना है।[८]

---

१. याज्ञ० १।३५२।
२. अर्थ० ७।९।१.३।
३. महा० शा० १३८।११०।
४. मानसोल्लास २।७।६८६।
५. विष्णुधर्मोत्तर २।१४५।१४।
६. कामन्द० ४।७५.७६।
७. कामन्दक ४।७२।
८. मानसोल्लास २.७।६८५.८६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनु ने धर्मज्ञ, कृतज्ञ, प्रसन्नचित्त, प्रीति करने वाले मित्र को उत्तम माना है किन्तु वे बुद्धिमान तथा कुलीन शत्रु को कठिन बतलाते हैं।[१]

२. सोमेश्वर तथा शक्तित्रय

राज्य के सप्तांगों का वर्णन कर चुकने के पश्चात् सोमेश्वर ने उन तीनों शक्तियों का वर्णन किया है जो राज्य का विस्तार करने, उसे सुचारु रूप से चलाने तथा उत्साहपूर्वक प्रजा एवं राष्ट्र का पालन करने में सहायक सिद्ध होती हैं। ये तीनों शक्तियाँ प्रभु, मन्त्र तथा उत्साह के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से तीनों ही उत्साह की द्योतिका हैं। प्रभु शक्ति का दूसरा नाम प्रभाव भी है। महाभारत के आश्रमवासिक पर्व में ये तीनों ही शक्तियां राजा के ऐश्वर्य के लिये अत्यन्तावश्यक बतलाई गई हैं।[२]

सरस्वतीविलास में गौतमधर्मसूत्र का एक सूत्र ऐसा प्राप्त होता है जो इन तीनों ही शक्तियों का आधार कोष को बतलाता है—

अत एव गौतमसूत्रम्। प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तयस्तन्मूलाः इति।
तन्मूलाः कोशमूला इत्यर्थः।[३]

कौटिल्य ने "बलं शक्तिः"[४] कहकर बल को ही शक्ति बताया है और तीनों शक्तियों के विषय में लिखा है—

ज्ञानबलं मन्त्रशक्तिः। कोशदण्डबलं प्रभुशक्तिश्च। विक्रमबलमुत्साहशक्तिः।[५]

राजा अपनी बुद्धि का आश्रय ग्रहण कर जितने भी कार्य करता है उसे मन्त्र शक्ति कहते हैं। कोष तथा दण्ड प्रभुशक्ति के अन्तर्गत आते हैं। वास्तव में कोष तथा दण्ड जिस राजा का जितना ही विशाल एवं दृढ़ होगा उतना ही राजा के ऐश्वर्य एवं प्रभाव का विस्तार होगा।

प्रभु-शक्ति

सोमेश्वर ने सर्वप्रथम प्रभुशक्ति का वर्णन किया है। उसके अन्तर्गत आत्मायत्त, दूतायत्त, तथा सचिवायत्त इन तीन प्रकार के शासनों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[६] उन्होंने आत्मायत्त शासन को श्रेष्ठ, दूयायत्त शासन को मध्यम तथा सचिवायत्त शासन को निम्न प्रकार का शासन बतलाया है।[७] जिस

१. मनुस्मृति ७।२०९।१०।
२. महाभारत आश्रमवा० ७।६।
३. सरस्वतीविलास पृष्ठ ४६।
४. कौ० अर्थ० ६।२।४०।
५. वही ६।२।४२.१५।
६. मानसोल्लास २।८।६८७.६९५।
७. वही २।६।६८७।

आत्मायत्तो नृपः श्रेष्ठो द्वयायत्तस्तु मध्यमः।
कनिष्ठः सचिवायत्त इति नीतिविदो विदुः॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राज्य में सचिव की शक्ति सर्वप्रधान होती है और वह सचिव अभिमान से पूर्ण होकर ऐसा सोचता है कि राजा मेरे वश में है, मैं जो कुछ आज्ञा दूं अथवा करूँ उसका कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता ऐसे राज्य को सोमेश्वर ने निम्न प्रकार का राज्य माना है।[1] वास्तव में वह राज्य अधिक दिन तक स्थायी नहीं रह सकता। सचिव जैसा चाहता है वैसा ही करता है जिससे राज्य में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है और वही अशान्ति राजा के नाश का कारण हो जाती है।

जिस राज्य में सचिव ऐसा सोचता है कि जो कुछ विज्ञप्ति मेरे द्वारा की जायगी वह राजा अवश्य ही स्वीकार कर लेगा ऐसा सोचकर जहाँ राजा तथा सचिव दोनों की सम्मति से राज्यशासन चलता है वह द्वयायत्त शासन है।[2] ऐसे राज्य को सोमेश्वर ने सुख का प्रदान करने वाला माना है। इस प्रकार के राज्य में सचिव के साथ ही साथ राजा का भी शासन में हाथ रहता है।

तीसरे प्रकार का राज्य आत्मायत्त है। इस प्रकार के शासन को सोमेश्वर ने सर्वश्रेष्ठ बतलाया है।[3] आत्मायत्त शासन में सचिव का ऐसा विचार होता है कि बिना राजा की आज्ञा के मैं अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार का भय सचिव के हृदय में विद्यमान रहता है और वह सदैव स्वामी के प्रति भक्तिभावना रखता है। ऐसे भय एवं श्रद्धा से पूर्ण राज्य को सोमेश्वर ने सुख एवं समस्त निधियों का देने वाला, अधिक समय तक स्थिर रहने वाला, सर्वश्रेष्ठ राज्य बतलाया है।[4] इस शासन में अनुग्रह, निग्रह, दान, अदान, निवृत्ति, ग्रहण तथा मोक्षादि कार्यों को करने में राजा ही समर्थ होता है और उसी की आज्ञा मान्य होती है। ऐसे पूर्णरूप से अपनी शक्ति के प्रभाव से युक्त राजा राज्य का प्रभु कहलाता है।[5]

इन तीनों प्रकार के राज्यों के वर्णन द्वारा सोमेश्वर ने राजा की तीन प्रकार की स्थितियों का संकेत किया है। तीनों प्रकार के राज्यों की स्थिति केवल राजा

---

१. मानसोल्लास २।६।६८८.८९
मदधीनमिदं राज्यं राजा च वशगो मम।
कनिष्ठं तत्र तद् राज्यं सचिवायत्तमुच्यते॥

२ मानसो० २।८।६९०.६९१

३. "श्रेष्ठं स्थिरतरं सम्यगात्मायत्तं प्रकीर्तितम्।" मानसो० २।८।६९३।

४. मानसो० २।८।६९२.६९४।

५. स्वयं समर्थो यो राजा स्वाज्ञा चैव निरर्गला।
निजशक्त्या समायुक्तः स प्रभुः प्रभुरुच्यते॥
मानसो० २।८।६९५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा सचिव के मध्य स्थित है। सचिवायत्त शासन में राजा नाम मात्र का ही स्वामी रहता है। राज्य के शासन का उसे कुछ भी ध्यान नहीं रहता। सचिव राजा को हृदय से अपना स्वामी अथवा प्रभु नहीं समझता। इसी कारण इस राज्य में स्थित राजा की शक्ति को प्रभुशक्ति के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता।

द्वयायत्त शासन में भी राजा के हाथ में शासन-सम्बन्धी शक्ति अधिक नहीं होती। शासन-संचालन का सम्पूर्ण कार्य सचिव के हाथ में ही रहता है, किन्तु प्रत्येक कार्य करने के पूर्व वह राजा की सम्मति अवश्य ले लेता है। इस राज्य में भी राजा राज्य का पूर्णरूपेण स्वामी नहीं समझा जाता। इसी कारण ऐसे राज्य में स्थित हुई प्रजा की शक्ति भी प्रभु शक्ति के अन्तर्गत नहीं कही जा सकती।

आत्मायत्त शासन में राजा राज्य के प्रत्येक कार्य में अपना हाथ रखता है। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का वह केन्द्र होता है। सचिवादि सम्मान-मिश्रित भय से राज्य का प्रत्येक कार्य करते हैं। राजा ही सम्पूर्ण राज्य का स्वामी समझा जाता है। उसे राज्य में प्रत्येक कार्य करने का अधिकार है। अतः आत्मायत्त शासन में स्थित शक्ति को प्रभुशक्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। सोमेश्वर ने प्रभुशक्ति अध्याय के अन्त में प्रभुशक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है—

आज्ञारूपेण या शक्तिः सर्वेषां मूर्धनि स्थिता।
प्रभुशक्तिर्हि सा ज्ञेया सप्रमामहिमोदया॥[1]

कौटिल्य ने जो प्रभु शक्ति को कोष तथा दण्ड पर आधारित बतलाया है, वह बिल्कुल सत्य है। कोष पर अपना पूर्णरूपेण अधिकार होने पर ही राजा सुखपूर्वक प्रजा का पालन कर सकता है और दण्ड को उचित रूप से धारण कर अपने उचित न्याय द्वारा प्रजा को शान्त एवं सुखी रख सकता है। सोमेश्वर भी कौटिल्य के इसी मत से सहमत हैं ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि सोमेश्वर ने जो अनुग्रह, निग्रह तथा दान-अदान में राजा को सर्वेसर्वा माना है, यह चारों ही कार्य कोष से सम्बन्धित हैं और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति आदि कार्य दण्डादि से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। जिस राजा को कोष तथा दण्ड पर पूर्ण अधिकार होगा वही भली प्रकार शान्तिपूर्वक राज्य कर सकता है। इसी कारण सोमेश्वर ने उसी राजा में स्थित शक्ति को प्रभु शक्ति स्वीकार किया है जिसकी आज्ञा सम्पूर्ण राज्य के सिर पर विद्यमान रहती है किन्तु प्रत्यक्षरूप से तो सोमेश्वर ने प्रभुशक्ति को आज्ञा एवं शासन शक्ति के रूप में स्वीकार किया

१. मानसो० २।८।६९६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। कामन्दकीयनीतिसार ने भी "सुकोशदण्डौ प्रभुशक्तिमाहुः"[1] कहकर कोष एवं दण्ड पर स्थित हुई शक्ति को ही प्रभुशक्ति माना है। नीतिवाक्यामृत ने भी "कोषदण्डबलं प्रभुशक्तिः" कहा है।[2]

मन्त्रशक्ति

मन्त्र शक्ति के प्रकरण में सोमेश्वर ने मन्त्रशक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है—

कामात् क्रोधाद् भयाद्न्यल्लोभ्यमानो न मुह्यति।
यथा शक्त्या युतः कार्ये मन्त्रशक्तिस्तु सा स्मृता॥[3]

अर्थात् जिस शक्ति से युक्त होकर मनुष्य कार्य में काम, क्रोध, भय, लोभ तथा अन्य तृष्णाओं से आकृष्ट नहीं होता वही मन्त्रशक्ति है।

परिभाषा के पश्चात् महाराज सोमेश्वर मन्त्रों के पांच अंगों का उल्लेख करते हैं—

१. कार्यसाधन के उपाय, २. उसके करने में समर्थ सहायक, ३. देश-काल विचार, ४. विघ्नों की प्रतिक्रिया तथा ५. कार्यसिद्धि का सुख। कार्यसाधन के गुप्त वाक्य, गुप्त इंगित तथा गुप्त आकृति ये तीन उपाय बताये हैं। इनसे पूर्ण जो मन्त्र होता है वह पुण्य फल का देने वाला होता है।[4] कार्य की सिद्धि में सहायक व्यक्तियों का वर्णन सोमेश्वर इस प्रकार करते हैं—

बधिरांधजडान् मूकान् व्याधितान् वृद्धबालकान्।
प्रिया अपि स्त्रियो म्लेच्छांस्तिरश्चोऽपि शुकादिकान्॥
श्रुतिगोचरतो देशात् तथा लोचनगोचरात्।
धारयेत् परतो यत्नात् तत्र काले नरेश्वरः॥[6]

अर्थात् राजा को इनके अतिरिक्त व्यक्तियों से मन्त्र करना चाहिये, क्योंकि ये कार्य की सिद्धि में बाधक हैं।

मन्त्र करने के लिये सोमेश्वर ने देश-काल का भी विचार करने का आदेश दिया है। राजा जब मन्त्र करे तो किसी उन्नत स्थान में, प्रासाद में, एकांत स्थान में, अरण्य में, निर्जन स्थान में जिससे अन्य व्यक्ति न जान सके।[7] बहुत जनों के बीच किया हुआ मन्त्र शीघ्र ही प्रकट हो जाता है किन्तु दो

१. कामन्दकीयनीतिसार १५।३२।
२. नीतिवाक्यामृत पृष्ठ ३२२।३२३।
३. मानसोल्लास २।९।७२१।
४. वही २।९।६९७।
५. वही २।९।७०१।
६. मानसोल्लास २।९।७०२.३।
७. मानसोल्लास २।९।७०४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यक्तियों के मध्य किया हुआ मन्त्र न तो नष्ट होता है और न शीघ्र ही प्रकट होता है। अपने आप सोचा हुआ मन्त्र ब्रह्मा भी नहीं जान सकते, ऐसा मत है—

बहुभिर्भिद्यते मंत्रो द्वाभ्यां मंत्रो न नश्यति।
आत्मना विहितो मन्त्रो ब्रह्मणाऽपि न भिद्यते॥[१]

स्थान के अतिरिक्त मन्त्र करने के लिये समय मध्याह्न, भोजन करने के पश्चात्, थकावट दूर हो जाने के बाद अथवा रात्रि के ऊपर भाग में अथवा निद्रा चले जाने पर सुखपूर्वक उठकर बताया है।

राजा को मन्त्रियों के साथ अथवा स्वयं निम्नलिखित विषयों पर मन्त्रणा करनी चाहिये—

धर्म, अर्थ, काम करने तथा न करने योग्य कार्य, बल, अबल, मित्र, अमित्र, देशरक्षा, शत्रुदमन, अर्थार्जन के उद्यम, भृत्यों के भरण-पोषण, पुत्रों के लिये नीति-शिक्षा, स्त्रियों की रक्षा, गज तथा अश्व की शिक्षा, दुष्ट अमात्य की चेष्टा, आय, व्यय, दुष्टदमन, शिष्टों का पालन, वर्णाश्रम धर्म का पालन, दुर्गों की रक्षा, आत्मरक्षा, प्रकृतियों के सद्भाव, धन-धान्य की वृद्धि, शान्तिक, पौष्टिक, नित्य तथा नैमित्तिक कर्म आदि। इस प्रकार सोमेश्वर ने राजा के योग्य विचारणीय कर्मों एवं विषयों का विवरण दिया है।[२]

तत्पश्चात् वे मन्त्रणा करने की विधि का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

आहूय मन्त्रिणः सर्वान् मन्त्रयेत पृथक् पृथक्।
अभिप्रायं विदित्वैषां गुणदोषौ विचारयेत्॥[३]

राजा को चाहिये कि वह अलग-अलग सब मन्त्रियों को बुलाकर उनकी सलाह प्रत्येक विषय पर ले और फिर उस पर गुण-दोष का विचार कर कार्य करे तभी कार्य में सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

किं कृतं करणीयं किं क्रियमाणं च किं मया।
किं सिद्धं किमु साध्यं मे इति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः॥[४]

राजा सदैव अधिक लाभ करने वाला, सुसाध्य, धर्म तथा कीर्ति को बढ़ाने वाला तथा सुख प्रदान करने वाला कार्य अपनी इच्छा से विचार कर करे, ऐसा आदेश राजा के लिये दिया गया है।[५] इस प्रकार विचार करने पर राजा विघ्नों का नाश कर शान्ति स्थापित कर सकता है।

---

१. वही २।९।७०० । २. मानसो० २।९।७०६।१४ ।
३. वही २।९।७१५ । ४. मानसोल्लास २।९।७१७ ।
५. वही २।९।७१८ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्त में सोमेश्वर उन विषयों एवं दुर्मन्त्रों के विषय में बतलाते हैं जिन पर राजा को मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये। जो समान आय-व्यय वाले, अथवा अधिक व्यय वाले तथा सैकड़ों उपाय करने पर भी असाध्य विषय हों उन पर राजा को मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये।[1] इसके अतिरिक्त अधर्म तथा अपयश का विस्तार करने वाले दुर्लभ, क्लेशदायी विषयों पर भी मन्त्रणा न करनी चाहिये। इन विषयों को सोमेश्वर ने दुर्मन्त्र के नाम से सम्बोधित किया है—

अधर्म्यमयशस्यं च पश्चात्तापकरं च यत्।
दुर्लभं क्लेशबहुलं दुर्मन्त्रं तन्न मन्त्रयेत्॥[2]

इस प्रकार सोमेश्वर ने मन्त्र करने के उपायों का, उसके सहायक व्यक्तियों का, मन्त्रणा करने के लिये देश-काल, विचारणीय विषयों, विघ्नों के नाश करने के उपायों तथा न मन्त्रणा करने योग्य विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

कौटिल्य ने मन्त्रशक्ति के विषय में कहा है—

"मन्त्रशक्तिः श्रेयसी। प्रज्ञाशास्त्रचक्षुर्हि राजाल्पेनापि प्रयत्नेन मन्त्रमाधातुं शक्तः। परानुत्साहप्रभावतश्च··· धातुम्।[3] अर्थात् मन्त्रशक्ति अधिक श्रेष्ठ होती है क्योंकि प्रज्ञा एवं शास्त्ररूपी चक्षुओं द्वारा राजा अल्प प्रयत्न करके मन्त्र का अनुष्ठान कर सकता है और प्रतिद्वन्द्वी राजाओं को उत्साह-प्रभावशक्ति के कम होने पर भी मन्त्रशक्ति द्वारा वश में कर सकता है।

उत्साह शक्ति

उत्साह शक्ति के प्रकरण में सोमेश्वर ने सर्वप्रथम राजा के विक्रम का वर्णन किया है। भूमि, द्रव्य, गज, अश्व तथा रत्नादि को ग्रहण करने के लिये जो राजा शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेने के लिये उद्यत होता है वह विक्रमशाली राजा होता है। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ किया हुआ कार्य दैवयोग से यदि सिद्ध अथवा पूर्ण नहीं होता तो भी उसे पूर्ण करने के लिये उसी कार्य को बार बार करने में जो राजा लेशमात्र भी थकित एवं शान्त नहीं होता वह राजा उत्साही होता है।[4] इस प्रकार से विभूति प्राप्त करने के उद्यम करने में जिस राजा के हृदय में नित्य ही उत्साहपूर्ण प्रवृत्ति विद्यमान रहती है उसी शक्ति एवं विक्रम को सोमेश्वर ने उत्साह शक्ति माना है।[5]

---

१. वही २।१९।७।१९।   २. वही २।१९।७२०।

३. कौटिल्य अर्थशास्त्र ९।१।१४.१५।

४. मानसोल्लास २।१०।७२२.२३।   ५. वही २।१०।७२४।

"यस्य स्यादुद्यमे नित्यं चित्तमुत्साहसंयुतम्।
उत्साहशक्तिः सा ज्ञेया नृपाणां भूतिमिच्छता॥"

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर ने उत्साह शक्ति की परिभाषा में कौटिल्य का पूर्णरूप से अनुसरण किया है। कौटिल्य ने भी विक्रम बल को उत्साह शक्ति माना है।[१] नीतिवाक्यामृत भी 'विक्रमो बलं चोत्साहशक्तिस्तत्र रामो दृष्टान्तः'[२] ऐसा कहकर राम को उत्साह शक्ति का प्रतीक माना है। कामन्दकीय नीतिसार में भी उत्साह शक्ति के विषय में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

उत्साहशक्तिं वलवद्विचेष्टां त्रिशक्तियुक्तो भवतीह जेता।[३]

इस प्रकार से उत्साह शक्ति ही विजय का कारण मानी गई है। दशकुमारचरित में उत्साह शक्ति को निश्चित किये हुये अर्थ का निर्वाह करने वाला माना गया है।[४]

वास्तव में उत्साह शक्ति ही विजय का कारण है। प्रत्येक राजा अपने यश एवं ऐश्वर्य का प्रसार करने के लिये अपने राज्य की सीमा के विस्तार के साथ ही साथ अपनी विभूति की वृद्धि भी करना चाहता है। इसी तीव्राकांक्षा के साथ ही साथ उसके हृदय में शत्रु की विभूति को जीतने की लालसा प्रज्वलित हो उठती है। वह बार-बार उस सफलता को प्राप्त करने का अधिकाधिक प्रयास करता है और वही पुनः-पुनः प्रयास की शक्ति उत्साह शक्ति कहलाती है। इसी उत्साह शक्ति से शून्य हृदय वाला राजा दिन-प्रतिदिन पतनोन्मुख होता जाता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यही उत्साह शक्ति राजा के ऐश्वर्य एवं महत्व की वृद्धि का आधार है। इसी का आश्रय ग्रहण कर राजा किसी प्रकार की सफलता प्राप्त करने के लिये बार-बार उद्यम एवं प्रयास करता है और दैव के द्वारा असिद्ध वस्तु को भी सिद्ध कर लेता है। पञ्चतन्त्र में इसी उत्साह शक्ति के विषय में कहा गया है —

उत्साहशक्तिसम्पन्नो हन्याच्छत्रुं लघुर्गुरुम्॥[५]

अतः उत्साह शक्ति का राजा के हृदय में विद्यमान होना अत्यन्तावश्यक है।

३. सोमेश्वर तथा षाड्गुण्य

शक्तियों के प्रकरण के पश्चात् सोमेश्वर ने षड्गुणों का वर्णन किया है। जिस प्रकार अपने राज्य की सुख-शान्ति के लिये राजा प्रभु, मन्त्र तथा उत्साह शक्तियों का आश्रय लेता है उसी प्रकार संधि, विग्रह, आसन, यान,

---

१. "विक्रमबलमुत्साहशक्तिः" अर्थशास्त्र ६।२।४५।

२. नीतिवाक्यामृत पृष्ठ ३२२.२३। ३. कामन्दकीय० १५।३२।

४. "मन्त्रेण हि विनिश्चयोऽर्थानां प्रभावेण प्रारम्भः। उत्साहेन निर्वहणम्" दशकुमारचरित उच्छ्वास ८।

५. पंचतन्त्र ३।३०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आश्रय तथा द्वैधीभाव इन छः गुणों का प्रयोग राजा समय को देखकर अपनी इच्छानुसार कर सकता है।

कौटिल्य ने षड्गुणों का सम्बन्ध मण्डल सिद्धान्त से बतलाया है—

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डलं योनिः।

सन्धिविग्रहासनयानसंश्रयद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः॥[1]

राजा प्रभु, मन्त्र तथा उत्साह शक्ति को ध्यान में रखकर षड्गुणों का प्रयोग करे। वातव्याधि ने छः गुणों के स्थान पर केवल सन्धि तथा विग्रह इन दो को ही माना है। उनके मत से अन्य चार इसी के अन्तर्भूत हो जाते हैं।[2] सरस्वती-विलास में सन्धि आदि छः गुणों के विषय में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

"तथा च गौतमसूत्रम्। चतुरुपायानवलम्ब्य सन्धिविग्रहयानासनद्वैधीभावाश्रयाख्यान् गुणान् परिकल्पयेत्।"[3] मनु ने राजा को इन छः गुणों पर भली प्रकार विचार करने का आदेश दिया है।[4] किन्तु राजा को सदैव समय देखकर उनका प्रयोग करना चाहिये—

आसनं चैव यानं च सन्धिं विग्रहमेव च।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुंजीत द्वैधं संश्रयमेव च॥[5]

याज्ञवल्क्यस्मृति में भी इन छः गुणों का वर्णन हुआ है—

सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनसंश्रयौ।
द्वैधीभावं गुणानेतान् यथावत् परिकल्पयेत्॥[6]

इसके अतिरिक्त कामन्दकीय नीतिसार,[7] अग्निपुराण,[8] विष्णुधर्मोत्तर[9] तथा राजनीतिप्रकाश[10] में भी इन गुणों पर प्रकाश डाला गया है। मनु ने इन छः गुणों में से प्रत्येक को दो प्रकार का बताया है।[11] इससे विदित होता है कि सभी गुणों का प्रयोग करना राजा के लिये अनिवार्य था।

---

१. कौटिल्य ७।१।१ २।

२. "द्वैगुण्यमिति वातव्याधिः।" कौ० अर्थशास्त्र ७।१।३।

३. सरस्वतीविलास पृ० ४२।

४. "संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा।" मनु० ७।१६०

५. मनु० ७।१६१। ६. याज्ञ० १।३४६।

७. कामन्दक० ९।१६। ८. अग्नि पु० २४०।

९. विष्णुधर्मोत्तर १।१५०।३.५।

१०. राजनीतिप्रकाश पृ० ३२४.४१३। ११. मनु० ७।१६२.१६८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संधि

इस प्रकरण में सर्वप्रथम सोमेश्वर ने संधि की परिभाषा इस प्रकार दी है—

नाक्रान्तिसाध्यो यः कश्चिद् देशकालाद्यपेक्षया।
तेन सार्धं प्रकुर्वीत संधिं नीतिविचक्षणः ॥[1]

अर्थात् जब एक राजा दूसरे राजा को देश तथा काल का विचार करके जीतने में असमर्थ होता है तब वह उसके साथ मित्रता कर लेता है उसी को नीति के जानने वाले संधि कहते हैं।

संधि की परिभाषा दे चुकने के पश्चात् सोमेश्वर संधि की अवस्थाओं का वर्णन करते हैं। जब कोई विजयी राजा शत्रु को अपने से अधिक एवं उच्च स्तर पर देखता है अथवा उसके बल से पीड़ित होकर उसे जीतने में अपने को असमर्थ देखता है उस समय वह निर्बल राजा उससे संधि कर लेता है।[2] कौटिल्य ने 'पणबंधः संधिः'[3] कहकर दो राजाओं को कुछ शर्तों पर मित्रता हो जाने को संधि बतलाते हैं। विष्णुधर्मोत्तर[4] में भी शर्तों पर आधारित मित्रता को ही संधि माना गया है। कौटिल्य का संधि करने के विषय में ऐसा मत है कि जब राजा शत्रु से अपने को अधिक निर्बल समझे तो उसके साथ सन्धि करले[5] अथवा शत्रु की वृद्धि उस समय समान होने पर भी उदयोन्मुखी हो तो निर्बल राजा शत्रु से सन्धि अवश्य कर ले।[6] मनु ने भी ऐसा ही कहा है—

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा संधिं समाश्रयेत् ॥[7]

वास्तव में जब अपनी विजय की आशा न देखे तब संधि का ही आश्रय लेना अच्छा है।

सोमेश्वर ने "संधिश्चतुर्विधः" कहकर चार प्रकार की संधियों का वर्णन अपने मानसोल्लास में किया है। वे क्रमशः मैत्र, सम्बन्धज, परस्परोपकाराख्य, तथा उपहार हैं।[8] सोमेश्वर का कथन है कि जब किसी व्यक्ति को अत्यन्त

---

१. मानसो० २।१२।७२५। २. वही २।११।७२५ ७२७।
३. अर्थ० ७।१।६।
४. "पणबन्धः स्मृतः संधिः॥" विष्णुधर्मोत्तर २।१५०।३.५।
५. "परस्माद्धीयमानः संदधीत।" अर्थशास्त्र ७।१।१२।
६. "तुल्यकालफलोदयायां वा वृद्धौ संधिमुपेयात्॥" अर्थ० ७।१।२३।
७. मनु० ७।१६९।
८. "संधिश्चतुर्विधः प्रोक्तो मैत्रः सम्बन्धजस्तथा।
परस्परोपकाराख्य उपहारस्तथैव च॥"
मानसो० २।११।७२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सज्जन जानकर उसके गुणों से आकृष्ट होकर जो मित्रता की जाती है वह मित्र संधि, किसी कार्य के वशीभूत होकर अपनी कन्या देकर जो संधि की जाती है वह सम्बन्धज, एक दूसरे के प्रत्युपकार करने के विचार से वशीभूत होकर की हुई संधि परस्परोपकाराख्य तथा गज, अश्व, रत्न, सुवर्ण, भूमि आदि देकर की हुई संधि उपहार संधि कहलाती है।[1]

कौटिल्य ने तीन प्रकार की संधियों का उल्लेख किया है जो क्रमशः दण्डोपनत, कोषोपनत तथा देशोपनत हैं। इनमें से दण्डोपनत संधि के अन्तर्गत तीन प्रकार की संधियों का वर्णन हुआ है—१. आमिष संधि, जिसमें हारा हुआ राजा जेता शत्रु के द्वारा कथित सेना तथा अपनी शक्ति के अनुसार पर्याप्त धनादि देकर स्वयं जाकर शत्रु की सेवा करता है, २. पुरुषान्तर अथवा आत्मरक्षण संधि, जिसमें राजकुमार या सेनापति को शत्रु के समक्ष उपस्थित कर संधि की जाती है। किसी पुरुषविशेष को समर्पित करने के कारण इसका पुरुषान्तर नाम पड़ा, ३. अदृष्टपुरुष अथवा दण्डमुख्यात्मरक्षण संधि, इसमें निर्बल राजा शत्रु के समक्ष ऐसी प्रतिज्ञा करता है कि अवसर पड़ने पर शत्रु का कार्य सिद्ध करने में स्वयं जाऊँगा अथवा मेरी सेना जायगी। इस प्रकार से राजा तथा सेना के प्रमुख व्यक्ति की रक्षा भी हो जाती है और शत्रु के समक्ष किसी व्यक्ति को उपस्थित भी नहीं करना पड़ता। यही तीनों संधियां दण्डोपनत संधि के अन्तर्गत हैं।[2]

कोशोपनत संधि के अन्तर्गत परिक्रय, उपग्रह, अत्यय तथा कपाल संधियां आ जाती हैं। युद्ध में पकड़े हुये अमात्य को जब बलवान शत्रु से पर्याप्त धन-राशि देकर छुड़ाया जाय तब परिक्रय संधि, वही धनराशि जब थोड़ी-थोड़ी किश्तों में दी जाय तब उपग्रह संधि, वही धनराशि जब नियत स्थान तथा नियत समय पर शत्रु को दी जाय तब वही उपग्रह संधि अत्यय संधि कहलाती है। इसे सुवर्ण संधि भी कहते हैं। किन्तु जब शत्रु द्वारा कथित धनराशि उसी क्षण चुका दी जाय तब वह कपाल संधि कहलाती है। ये चारों ही संधियां धन से सम्बन्धित होने के कारण कोष का क्षय करने वाली हैं, इसी कारण इनका नाम कोशोपनत संधि पड़ा।[3]

देशोपनत संधि के अन्तर्गत आदिष्ट, उच्छिन्न, अवक्रय तथा परदूषण ये चार संधियां आ जाती हैं। जब निर्बल राजा अपने देश तथा प्रकृति के रक्षार्थ कुछ भूमि शत्रु को देकर उससे संधि करता है तब वह संधि आदिष्ट होती है।

---

१. मानसो० २।११।७२६.३२। २. कौ० ७।३।२४.२७।

३. कौटिल्य अर्थ० ७।३।२८.३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राजधानी तथा दुर्गों को छोड़ कर जब सम्पूर्ण भूमि शत्रु को दे दी जाय तब वह उच्छिन्न संधि कहलाती है। अवक्रय संधि में राजा भूमि में उत्पन्न हुई वस्तु के दान द्वारा भूमि को छुड़ा कर संधि करता है, किन्तु परदूषण संधि में भूमि में उत्पन्न हुई वस्तु के साथ कुछ और भी देना पड़ता है। ये सभी संधियां भूमि को प्रदान कर की जाती हैं, जिससे भूमिराशि का क्षय होता है। इसी कारण ये संधियां देशोपनत के नाम से प्रसिद्ध हैं।[१]

उपर्युक्त दण्डोपनत आदि तीनों प्रकार की संधियां हीन संधियां मानी गई हैं, क्योंकि इनमें निर्बल राजा अपनी विभूति का क्षय कर बली राजा से संधि करता है।[२] इस प्रकार कौटिल्य ने सम, हीन तथा अधिक शक्ति एवं विभूति को संधि का कारण माना है।

कामन्दकीयनीतिसार[३] तथा अग्निपुराण[४] में साधारण रूप से सोलह प्रकार की संधियों का उल्लेख हुआ है। कामन्दकीय नीतिसार मैत्र, सम्बन्धज, परस्परोपकाराख्य तथा उपहार इन चार संधियों में उपहार संधि को ही प्रमुख मानता है और मैत्र को छोड़कर शेष संधियों को उपहार संधि का ही प्रकार बतलाता है—

एक एवोपहारस्तु सन्धिरेतन्मतं हि नः।
उपहारस्य भेदास्तु सर्वेन्ये मैत्रवर्जिताः॥
अभियोक्ता बली यस्मादलब्ध्वा न निवर्तते।
उपहारादृते तस्मात् सन्धिरन्यो न विद्यते॥[५]

मित्र संधि में संधि करते समय कोई भी वस्तु उपहार के रूप में नहीं दी जाती, इसी कारण संभवतः यह संधि उपहार के अन्तर्गत नहीं मानी जा सकती। इस प्रसंग से विदित होता है कि कामन्दकनीतिसार में भी विशेषतः मैत्र, सम्बन्धज, परस्परोपकाराख्य तथा उपहार इन चार संधियों को ही मुख्य माना है। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से सोमेश्वर ने कामन्दकनीतिसार को ही संधि के विषय में आधार माना है, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से कौटिल्य द्वारा कथित दण्डोपनत, कोशोपनत तथा देशोपनत संधियां इन्हीं चारों के अन्तर्गत आ गई हैं।

विग्रह

विग्रह के प्रकरण में सोमेश्वर ने बतलाया है कि राजा सुन्दर यत्नों, सहायकों,

---

१. अर्थ ७।३।३३-३६। २. वही ७।३।३७।
३. कामन्दक० ९।२.१८। ४. अग्नि पु० २४०।
५. कामन्दक० ९।२१.२२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सामर्थ्य, बल के अनुसार मंत्रों से हीन राजा के साथ विग्रह करे।[1] विग्रह का अर्थ बिगाड़ करना अथवा हानि पहुंचाना है। इसी कारण कौटिल्य ने "अपकारो विग्रहः"[2] कहकर विग्रह की परिभाषा दी है। किसी राजा का अपकार करना ही उसके साथ विग्रह करना है। विग्रह उसी से करना उचित है जो अपने से हीन हो।[3]

सोमेश्वर ने मानसोल्लास में आठ प्रकार के विग्रहों का वर्णन किया है जो क्रमशः कामज (स्त्री के कारण उत्पन्न हुआ विग्रह), लोभज । जो (दूसरे का धन हरण करने के विचार से किया जाय), भूभव (जो भूमि को ध्यान में रख कर किया जाय), मानसंभव (जो मान रक्षा के लिये किया जाय), अभयाख्य (जो विग्रह शरणागत की रक्षा को ध्यान में रखकर किया जाय), इष्टज (जब मित्र, बन्धु अथवा भृत्य के लिये विग्रह किया जाय), मदोत्थित (जो मदिरा के मद, विद्या अथवा धन के गर्व, तथा यौवन से उत्पन्न हुआ विग्रह हो) । इस प्रकार के गर्व से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और उस अविवेकावस्था के वशीभूत हो कर मनुष्य जो विग्रह करता है वही मदोत्थित विग्रह होता है तथा एकद्रव्याभिलाष (जो किसी एक ही अर्थ की दृष्टि से आपस में विग्रह होता है) हैं।[4]

कामन्दकनीतिसार में विग्रह अथवा वैर पांच प्रकार का बताया गया है— १. सौतेले भाई का वैर, २. भूमि से सम्बन्धित वैर, ३. स्त्री से सम्बन्धित वैर, ४. शाब्दिक वैर, ५. त्रुटियों से उत्पन्न वैर।[5]

अग्निपुराण[6] में भी इसी प्रकार पाँच प्रकार के विग्रहों का वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त कामन्दक नीतिसार[7] तथा अग्निपुराण[8] में १६ प्रकार के ऐसे प्रसंग प्राप्त होते हैं जो विग्रह के कारण बन जाते हैं। अधिकांशतः विग्रह राज्य को छीन लेने से तथा स्त्री, घोड़े और हाथी के कारण, दूसरे की सम्पत्ति से, अभिमान एवं मद से तथा प्रजा को सताने से उत्पन्न होता है। अग्निपुराण में भी इन्हीं विषयों का उल्लेख हुआ है।

सोमेश्वर ने जो आठ प्रकार के विग्रहों का वर्णन किया है वह सम्भवतः उन्होंने कामन्दक नीतिसार के आधार पर ही लिखा है। उपर्युक्त प्रसंगों में जो विग्रह के विषय प्राप्त होते हैं उनमें स्त्री, धन, भूमि, मद, सौतेले भाई आदि से

१. मानसो० २।१२।७३३। २. कौटिल्य० अर्थ० ७।१।७।
३. "अभ्युच्चीयमानो हि गृह्णीयात् ।।" अर्थ० ७।१।१३।
४. मानसो० २।१२।७३४.४२। ५. कामन्द० १०।१५।
६. अ० पु० २४०।१९। ७. कामन्द० १०।५।
८. अ० पु० २४०।२०.२४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्पन्न विग्रह के ही सोमेश्वर ने क्रमशः कामज, लोभज, भूभव, मदोत्थित तथा इष्टज आदि नाम दिये हैं। इस प्रकार जब कि कामन्दकादि ने विग्रह का विभाजन भूमि, स्त्री आदि विग्रह के कारणों के अनुसार किया है, सोमेश्वर ने उसका विभाजन मनुष्य की काम-लोभ-मदादि प्रवृत्तियों के आधार पर किया है और यही विभाजन अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है।

मनुस्मृति में मनु ने दो प्रकार के विग्रह बतलाये हैं[1]—प्रथम स्वयंकृत, द्वितीय अपने मित्र का अपकार होने से किया हुआ। इनका वर्णन मनु ने इस प्रकार किया है—

स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः॥[2]

विग्रह का आश्रय ग्रहण कर राजा पर्याप्त मात्रा में अपनी श्री एवं राज्य की वृद्धि कर सकता है।

यान

यान के प्रकरण में सोमेश्वर आक्रमण करने का सर्वप्रथम वर्णन करते हैं। यान की परिभाषा के विषय में कौटिल्य ने "अभ्युच्चयो यानम्"[3] कह कर शक्ति के आधिक्य को ही यान का कारण माना है। कामन्दकनीतिसार में जिस राजा की शक्ति तथा सेना अत्यन्त बलवती हो और जिसकी प्रजा राजा के गुणों के कारण उससे आकृष्ट हो ऐसे विजिगीषु राजा का सफलता के दृष्टिकोण से अन्य राजा पर आक्रमणार्थ प्रयाण करने को यान कहा गया है।[4] विष्णुधर्मोत्तर में यान को विजिगीषु द्वारा शत्रु के देश में यात्रा के नाम से संबोधित किया गया है—

जिगीषोः शत्रुविषये यानं विधीयते।[5]

सोमेश्वर के मतानुसार विधाता के द्वारा अपहृत कोष वाले, व्याधि से युक्त, व्यसनों में आसक्त, शत्रु से पीड़ित, बल तथा कोष से विहीन अथवा मित्र राजाओं द्वारा परित्यक्त राजा पर विजिगीषु राजा को विजय की सफलता के हेतु आक्रमण करना चाहिये।[6] राजा को शरत्काल अथवा वसन्त में अथवा शत्रु के नाश होने के लक्षण देख कर अपने अनुकूल शकुन का विचार कर आक्रमण

---

१. 'संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च' ॥ मनु० ७।१६२।
२. मनु० ७।१६४।
३. अर्थशास्त्र ७।१।९।
४. कामन्दक० ११।१।
५. विष्णुधर्मोत्तर २।१५।३–५।
६. मानसो० २।१३।७४३.७४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के लिये यात्रा करनी चाहिये।[1] मत्स्य पुराण में जिगीषु राजा के यान के विषय में कहा गया है कि जब शत्रु अपने शत्रुओं से पीड़ित हो अथवा आपत्तियों में फंसा हुआ हो, उस समय जिगीषु को आक्रमण करना चाहिये। अग्निपुराण[3] में भी इसी प्रकार का उल्लेख हुआ है, किन्तु कामन्दकनीतिसार में ऐसा भी प्रसंग प्राप्त होता है कि यदि अचानक आक्रमण करे तो आक्रमण करने के पूर्व शत्रु को दूत द्वारा सूचित कर देना चाहिये।[4] महाभारत में यान के समय का भी उल्लेख हुआ है। कृष्ण के पांडवों का दूत बनकर शरद ऋतु के अन्त में जाने का प्रसंग प्राप्त होता है—

कौमुदे मासि रेवत्यां शरदान्ते हिमागमे।"[5]

पुराणों में यान के पूर्व अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्य करने का आदेश दिया गया है। अग्निपुराण[6] तथा विष्णुधर्मोत्तर[7] में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि यान के सात दिवस पूर्व से राजा को गणपति, अश्विन, शिव, विष्णु तथा अपनी राजधानी के मंदिरों की प्रतिमाओं का पूजन प्रारम्भ कर देना चाहिये और उन देवताओं को आहुतियां भी प्रदान करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उसे उन रात्रियों में आने वाले स्वप्नों पर भी ध्यान देना चाहिए। मत्स्य[8] तथा अग्नि पुराण[9] में अच्छे तथा बुरे स्वप्नों के विषय पर प्रकाश डाला गया है। सोमेश्वर ने भी अपने निमित्त शुभ शकुन प्राप्त करने के पश्चात् यात्रा करने का आदेश दिया है।[10] इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य शकुन, नक्षत्र आदि का भी वर्णन किया है।[11]

सोमेश्वर ने यानविषयक सात प्रकार की यात्राओं का वर्णन किया है—

सन्धानजा पार्ष्णिरोधा मित्रविग्रहणी तथा।
द्वन्द्वनिर्व्याजजा कुल्या सप्तमी चापि शीघ्रगा॥[12]

अर्थात् सन्धानजा, पार्ष्णिरोधा, मित्रविग्रहणी, द्वन्द्वनिर्व्याज, कुल्या तथा शीघ्रगा

१. 'शरत्काले वसन्ते वा रिपोर्नाशमुपस्थिते।
निमित्तं शकुनं लब्ध्वा यात्रां कुर्वीत भूपतिः॥'
मानसो० २।१३।७४५।

२. मत्स्य पु० २४०।२। ३. अग्नि पु० २२८।१।२।
४. कामन्दक० १२।१। ५. महा० उद्योगपर्व ८३।५.७।
६. अग्नि पु० २३६।१.१८। ७. विष्णुधर्मोत्तर २।१७६।
८. मत्स्य० २४२। ९. अग्नि पु० २२९।
१०. मानसो० २।१३।७४५। ११. मानसो० २।१३।७५५.९२७।
१२. मानसो० २।१३।७४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ये सात प्रकार के यान हैं। पार्ष्णिग्राह[१] के साथ मित्रता करके तत्पश्चात् यान का अवलम्बन ले, उसे सन्धान यात्रा कहते हैं। पार्ष्णिग्राह के अवरोध के लिये आत्मबल बढ़ा कर अन्य राजाओं से मित्रता कर उनकी सेनायें लेकर जब राजा आक्रमण करने जाता है वह पार्ष्णिरोध यान कहलाता है। अपने मित्र राजाओं के सहित जो शत्रुओं से विग्रह कर उस पर आक्रमण करने के लिये जाता है उसे मित्रविग्रहणी यात्रा कहते हैं। शत्रु को बुलाकर उस पर स्वयं आक्रमण कर देने को द्वन्द्व यान कहते हैं। यह आक्रमण शत्रुओं का विनाश करने वाला होता है। जब स्वस्थ एवं बलिष्ठ राजा सब ओर से शत्रुओं का नाश करने के हेतु यात्रा करता है तब वह निर्व्याजा यात्रा कहलाती है। जो शत्रु के वंश के साथ युद्ध करने को प्रयाण करता है उसे कुल्या यात्रा कहते हैं। यह शत्रुओं के लिये अत्यन्त भयकारिणी होती है। शत्रु का विनाश करने के उद्देश्य से जो समस्त प्रमादों को त्याग कर सहसा युद्ध के लिये यात्रा करता है उसे शीघ्रगा यात्रा कहते हैं।[२]

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में यात्रा की स्थितियों का वर्णन किया है।[३] मनु ने दो प्रकार के यानों का वर्णन किया है—अकेले आक्रमण करना अथवा मित्र के साथ आक्रमण करना—

> एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया।
> संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते॥[४]

इस प्रकार यहां पर मनु का यान का अर्थ आक्रमण प्रतीत होता है।

सोमेश्वर का यात्रा का प्रकरण तत्कालीन युद्धों के विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डालता है।

आसन

कौटिल्य ने 'उपेक्षणमासनम्'[५] कह कर उपेक्षा कर देना ही आसन बतलाया है। इसके अतिरिक्त स्थान तथा उपेक्षण शब्दों को आसन के पर्यायवाची शब्द बतलाया है।[६] शत्रु के बराबर शक्ति का होना आसन कहलाता है, जब शत्रु की अपेक्षा अल्प शक्ति हो तो स्थान तथा उपायों का प्रयोग न करना अथवा कम करना उपेक्षण कहलाता है—

---

१. दूसरे के राज्य का जय करते हुये राजा के पीछे राज्य को दबाता हुआ पार्ष्णिग्राह कहलाता हैं। देखिये मनु० ७।२०७।

२. मानसो० २।१३।७४७।७५३।

३. कौटिल्य अर्थ० ७।५।

४. मनु० ७।१६५।

५. कौटिल्य अर्थ० ७।१।८।

६. 'स्थानमासनमपेक्षणं चेत्यासनपर्यायाः॥' अर्थ० ७।४।२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुणैकदेशे स्थानम् । स्ववृद्धिप्राप्त्यर्थमासनम् । उपायानामप्रयोग-उपेक्षणमिति ।।[1]

सोमेश्वर का कथन है कि वृष्टि न होने के कारण जल से रहित, दुर्भिक्ष से पूर्ण तथा बुरी स्थिति से पूर्ण अन्य राजा के देश में कभी आक्रमण नहीं करना चाहिये ।[2] इसके अतिरिक्त परस्पर विरोध द्वारा शत्रु के पतनोन्मुख होने पर बुद्धिमान राजा को तब तक ठहरना चाहिये जब तक उसका विनाश न हो जाय ।[3] इसमें से पूर्वांश में राजा के पास अवसर होते हुये भी वह उपायों का प्रयोग नहीं करता, इसी कारण यह उपेक्षण के अन्तर्गत लिया जा सकता है ।

सोमेश्वर ने मानसोल्लास में दस प्रकार के आसनों का उल्लेख किया है जो क्रमशः इस प्रकार हैं—

१. स्वस्थासन—शत्रु के निष्कण्टक राज्य को देख कर अपने स्थान पर स्थित रहना ।

२. उपेक्ष्यासन—मेरे द्वारा जो अनुष्ठान किया जायेगा वही दैव भी करेगा अतः उग्र दण्ड के प्रयोग से, व्यसन से तथा दुर्भिक्ष आदि से इसका नाश हो जायगा ऐसा सोचकर अपने स्थान पर स्थित रहना ।

३. मार्गरोधासन – पूर्ण वेग के प्रवाह वाली नदी से मार्ग अवरुद्ध हो जाने के कारण उसके दोष से जो स्थान ग्रहण किया जाय ।

४. दुर्गसाध्यासन —घास-फूस को हटाता हुआ दुर्ग को लेने के लिये उद्यत जो दुर्ग के उपांत प्रदेश में वास किया जाता है ।

५. राष्ट्रस्वीकरणासन —हठपूर्वक हथवा बलपूर्वक प्राप्त किये हुये राष्ट्र को वश में करने के हेतु वहां निवास करना ।

६. रमणीयासन—जो विजिगीषु राजा युद्धस्थल में शत्रुओं को मार कर वहाँ के रमणीय स्थान को देख कर यवस, इंधन तथा जल एवं धान्य से पूर्ण स्थान में अपनी इच्छा से रह जाता है, नीतितत्वज्ञ उसे रमणीयासन कहते हैं ।

७. निकटासन—अत्यन्त दूर पर स्थित शत्रु के लिये उद्यत राजा जब समीप जाकर अपना स्थान बनाता है ।

८. दूरमार्गासन—अत्यन्त दूर देश में जाकर अपना सम्पूर्ण कार्य समाप्त कर अपने देश को अत्यन्त दूर जान कर जहां कोई भा सम्बन्धी न हो ऐसे उचित स्थान में वर्षा ऋतु अथवा शरत्काल आने तक निवास करना ।

---

१. अर्थ० ७।४।४.६ । २. मानसो० २।१४।९२८ ।

३. मानसो० २।१४।९२९ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

९. प्रलोभासन—अन्य राजा के द्वारा मैं तुम्हें हाथी, घोड़े, धन, रत्न, दुर्ग, राष्ट्र आदि दूंगा, इस आश्वासन पर कुछ काल तक राजा जहां रहता है अथवा एक मास में, पक्ष में, दस दिन में, छः दिन में, पांच दिन में अथवा दो दिन में दूंगा ऐसा प्रलोभन देकर जो राजा को ठहरा लेता है और इसी आशा को धारण करता हुआ राजा चिर काल तक जहां ठहरता है उसी को मनीषियों ने प्रलोभासन कहा है।

१०. पराधीनासन—स्नेह अथवा वैर भाव से जब राजा अपने देश को नहीं जा पाता वह स्थान पराधीनासन कहलाता है। इस प्रकार इन दस आसनों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है।[१]

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में आसन ग्रहण करने के समय का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।[२] किन्तु आसनों के दस भेदों का विस्तृत वर्णन अन्यत्र नहीं प्राप्त होता। मनु दो प्रकार के आसनों का उल्लेख करते हैं—

१. पूर्व जन्म के दुष्कृत से अथवा यहां की बुराई से चुप होकर बैठना।

२. मित्र के अनुरोध से चुप हो कर बैठना—

क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात् पूर्वकृतेन वा।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम्॥[3]

आसन के प्रसंग से यही विदित होता है कि विशेष अवसर पर विशेष स्थिति को अपनाना आसन कहलाता है।

आश्रय

आसन के पश्चात् आश्रय की परिभाषा देते हुये सोमेश्वर लिखते हैं—

स्वयं हीनबलो राजा जयहेतुं न पश्यति।
बलिना पीड्यमानो यः क्षेमस्थानं समाश्रयेत्॥[४]

अर्थात् स्वयं हीन शक्ति वाला होने पर जब राजा अपनी विजय के लक्षण नहीं देखता अथवा बलवान राजा द्वारा पीड़ित किया जाता है तो वह क्षेमस्थान का आश्रय लेता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में आसन का ही नाम दिया है और अपनी रक्षा के लक्षण न देख कर अपना सर्वस्व बलवान राजा के समक्ष अर्पण कर देने को ही संश्रय बतलाया है।[५] संश्रय के विषय में कौटिल्य ने कहा है कि जब कोई राजा आश्रय की शरण ले तो सदैव अपने शत्रु एवं प्रतिद्वन्द्वी

१. मानसो० २।१४।९३०.९४८। २. अर्थ० ७।४।७.२६।
३. मनु० ७।१६५। ४. मानसो० २।१५।९४९।
५. 'परार्पणं संश्रयः।' अर्थ० ७।१।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राजा से अधिक बलवान राजा की शरण ले ।[1] इसके अतिरिक्त दो बलवान राजाओं के मध्य पड़ जाने पर जो अपनी रक्षा करने में अधिक समर्थ हो उसी की शरण संश्रय ग्रहण करने वाले राजा को लेनी चाहिये[2] अथवा जो समीप में स्थित हो उसका आश्रय ग्रहण करे ।[3] यदि दोनों ही बलवान राजा समीप में हों तो दोनों के साथ कपाल संधि कर ले ।[4] आश्रय-भूत राजा बलवान राजा के उपकार करने में लगा रहता है, उसका अपना रंचमात्र भी व्यक्तित्व शेष नहीं रह जाता ।[5] इसी प्रकार और भी संश्रय के नियमों का वर्णन कौटिल्य ने किया है ।

सोमेश्वर ने तीन प्रकार के आश्रयों का वर्णन किया है[6]—

१. सत्संश्रय—अत्यन्त हीन शक्तिवाला राजा महान् बलशाली शत्रु से पीड़ित होकर उसे सत्संश्रय जानकर उसी का आश्रय ग्रहण कर लेता है अथवा बहुत से सद्गुणों को देखकर उसी शत्रु के आश्रित अपने को कर देता है, उसी को सत्संश्रय कहते हैं ।

२. अन्यसंश्रय—अपने को हीन समझ कर तथा शत्रु द्वारा पीड़ित होने पर, शत्रु को गुणहीन एवं दुष्ट प्रकृति का समझ कर बलशालिनी क्रियाओं से युक्त, धर्मज्ञ तथा सत्यवादी एवं अधिक गुणों से युक्त किसी अन्य राजा के आश्रित होने को अन्यसंश्रय कहते हैं ।

३. दुर्गसंश्रय—बलशाली शत्रु अथवा समान शक्ति वाले रिपु से पीड़ित किये जाने पर जो दुर्ग का आश्रय ग्रहण किया जाता है ।

इन तीनों प्रकार के संश्रय का वर्णन कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है । कौटिल्य ने अत्यन्त बलशाली प्रतिद्वन्द्वी राजा का (यदि उसके समान शक्तिशाली कोई न हो) आश्रय ग्रहण करने का,[7] तथा अपनी रक्षा करने में समर्थ किसी अन्य बलवान, राजा का आश्रय ग्रहण करने का,[8] तथा अपनी रक्षा की आशा न देख कर दुर्ग का आश्रय ग्रहण कर द्वैधीभाव का प्रयोग करने

१. 'यद्बलः सामन्तस्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत्' । अर्थ० ७।२।७ ।
२. 'बलीयसोर्वामध्यगतस्त्राण समर्थमाश्रयेत्' ।। अर्थ० ७।२।१४ ।
३. 'यस्य वान्तर्दधिः स्यात्' । अर्थ० ७।२।१५ ।
४. 'उभौ वाकपालसंश्रयस्तिष्ठेत्' । अर्थ० ७।२।१६ ।
५. 'संश्रितस्तु परस्योपकरोति नात्मनः' ।। अर्थ० ७।२।६ ।
६. मानसो० २।१५।९५०.९५५ ।
७. तद्विशिष्टबलाभावे तमेवाश्रितः कोशदण्डभूमीनामन्यतमेनास्योपकर्तुम् दृष्टः प्रयतेत् ।। अर्थ० ७।२।८ ।
८. अर्थ० ७।२।१४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का आदेश दिया है।[१] परन्तु इन तीनों प्रकार के आश्रयों का कौटिल्य ने नाम नहीं दिया है। सोमेश्वर ने इन्हीं तीनों का क्रमशः सत्संश्रय,[२] अन्यसंश्रय[३] तथा दुर्गसंश्रय[४] नाम दिया है। मनु ने दो प्रकार के संश्रयों का वर्णन किया है—

१. शत्रुओं से पीड़ित होने पर किसी की शरण लेना,

२. सज्जनों के साथ व्यपदेशार्थ शरण लेना—

> अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः।
> साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधं संश्रयः स्मृतः॥[५]

समय आ पड़ने पर राजा के लिये आत्मरक्षार्थं अन्य राजा का संश्रय भी आवश्यक था।

द्वैधीभाव

सोमेश्वर ने सर्वप्रथम द्वैधीभाव का किस प्रकार आचरण करना चाहिये इसका उपदेश दिया है। दो बली शत्रुओं के मध्य वाणी द्वारा अपने को समर्पित करता हुआ कौए की आंख की भांति द्वैधीभाव का आचरण करे और लाभ, प्राप्ति, भय अथवा योग क्षेम के लिये उद्यत हुआ राजा उन दोनों के मध्य चिरकाल तक द्वैधीभाव का आचरण करता हुआ निवास करे[६] अर्थात् उसके द्वैधीभाव के आचरण के विषय दोनों ही शत्रु जान न पावें और वह उन दोनों ही शत्रुओं को इस प्रकार से वश में कर ले। जब दो प्रकार की विपरीत भावनाओं द्वारा एक ही व्यक्ति दो विभिन्न व्यक्तियों को प्रसन्न करे उसी को सोमेश्वर ने द्वैधीभाव का आचरण माना है और इसी कारण उन्होंने इस द्वैधीभाव के आचरण की तुलना काकाक्षि से दी है क्योंकि कौआ एक ही आँख से समानरूप से अपने दोनों ओर की वस्तुओं को देखता है।

कौटिल्य ने भी संधि तथा विग्रह दोनों गुणों के एक साथ प्रयोग करने को ही द्वैधीभाव कहा है—

> "संधिविग्रहोपादानं द्वैधीभाव इति······॥"[७]

कौटिल्य ने द्वैधीभाव के आचरण के विषय में स्पष्टरूप से लिखा है—

> "सहायसाध्ये कार्ये द्वैधीभावं गच्छेत्॥"[८]

अर्थात् यदि किसी कार्य में सहायता की अपेक्षा हो तो द्वैधीभाव का आचरण

---

१. दुर्गापाश्रयो वा द्वैधीभूतस्तिष्ठेत्॥ अर्थ० ७।२१।

२. मानसो० २।१५।९५२। ३. वही २।१५।९५४।

४. वही० २।१५।९५५। ५. मनु० ७।१६८।

६ मानसो० २।१६।९५६.५७। ७. अर्थ० ७।१।११।

८. अर्थ० ७।१।१७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर में "बलार्धेन प्रयाणं तु द्वैधीभावं तदुच्यते"[1] कहकर आधे बल के सहित प्रयाण को ही द्वैधीभाव बतला कर उसके आचरण को श्रेष्ठ माना गया है। यह द्वैधीभाव की परिभाषा सब से भिन्न है।

सोमेश्वर ने नीतिशास्त्रज्ञ विद्वानों द्वारा कथित पाँच प्रकार के द्वैधीभाव का आचरण किया है—

१. मिथ्याचित्त—जो मन में विरोध माने, किन्तु मुख से प्रिय भाषण करे।

२. मिथ्यावचन—जिसमें वाणी अत्यन्त प्रिय बोले, किन्तु कर्मों में बिल्कुल उसके विपरीत आचरण करे।

३. मिथ्याकरण—जब शत्रु के हृदय में थोड़ा-थोड़ा विश्वास उत्पन्न करते हुए अपनी दूषित भावनाओं द्वारा बहुत बड़े कार्य का विनाश कर दिया जाय, ऐसे द्वैधीभाव के आचरण को मिथ्याकरण कहते हैं।

४. उभयवेतन—जो दो राजाओं के मध्य एक स्थान से गुप्त वेतन तथा अन्य स्थान से प्रकाशित वेतन लेता हुआ गुप्तरूप से रह कर शत्रु के अलक्षित मंत्र को जान कर अपने स्वामी से निवेदन कर देता है, ऐसा आचरण करने वाले को उभयवेतन कहा जाता है।

५. युग्मप्राभृतक—मेरे शत्रुओं को रोक लो, इस प्रकार से एक राजा को उद्देशित करता हुआ उसे गज तथा अश्वादि देकर संतुष्ट कर तथा तुम्हारे रिपुओं को रोकूँगा और समय पड़ने पर मैं अपनी सेना भेजूँगा ऐसा कहकर अन्य राजा को प्रसन्न करता है। इस प्रकार के वचनों को बोल कर द्वैधीभाव का आचरण करता हुआ जहाँ पर राजा उन दोनों ही शत्रु राजाओं के मध्य अपने लाभ एवं रक्षा की इच्छा से निवास करता है उसे युग्मप्राभृतक कहते हैं।[2]

कौटिल्य ने भी अधिकांशतः इन सभी प्रकार के द्वैधीभाव का वर्णन किया है,[3] किन्तु इनके नामों का उल्लेख नहीं किया है। मनु ने दो प्रकार के द्वैधीभावों का वर्णन किया है, १—अर्थसिद्धि के लिए कुछ सेना एक स्थान पर स्थापित कर देना और २—कुछ सेना लेकर अपनी रक्षा के हेतु दुर्ग में निवास करना—

बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थ सिद्धये।
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षड्गुण्यगुणवेदिभिः॥[4]

किन्तु मनु तथा कौटिल्य द्वारा कथित द्वैधीभाव के आचरण से सोमेश्वर के

१. विष्णुधर्मोत्तर २।१५०।३.५। २. मानसो० २।१६।९५८.९६९।
३. कौटिल्य अर्थशास्त्र ७।७।१.५०।
४. मनु० ७।१६७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वैधीभाव का आचरण बिल्कुल भिन्न है। मनु तथा कौटिल्य ने शत्रु के विरुद्ध द्वैधीभाव का आचरण करने का आदेश दिया है, किन्तु सोमेश्वर द्वारा कथित द्वैधीभाव के आचरण में निर्बल राजा अपने शत्रु का भी विश्वासपात्र बना रहता है और गुप्त रीति से शत्रु का भेदन भी कर देता है।

३. सोमेश्वर तथा उपायचतुष्टय

प्रत्येक वीर राजा को अपने राज्य के विस्तार एवं अपनी प्रजा पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए चार उपायों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। ये चार उपाय साम, दान, भेद तथा दण्ड हैं।

सोमेश्वर इन चारों उपायों में साम को सर्वोत्तम, भेद को मध्यम, दान को अधम तथा दण्ड को कष्टतम बतलाते हैं।[१] बिना द्रव्य की हानि के तथा अपायरहित कार्य की सिद्धि हो जाने के कारण साम उपाय अत्यन्त उत्तम माना गया है। संदेहरूप होने के कारण भेद मध्यम माना गया है। धन के क्षय होने पर भी सिद्धि भाग्याधीन होने के कारण दान अधम उपाय है। इसके अतिरिक्त दण्ड कष्टतम उपाय है क्योंकि लाभ प्राप्ति के लिए युद्ध किया जाता है किन्तु उसमें विजय, राज्य तथा जीवन भी संदेह में पड़ जाता है।[२] इन चारों उपायों का उल्लेख रामायण में भी प्राप्त होता है।[३] मनु ने उपायों द्वारा ही शत्रु को वश में करने का आदेश दिया है और राज्य की वृद्धि में साम तथा दण्ड को अधिक उपयोगी माना है।[४] याज्ञवल्क्य ने भी "उपायाः सामं दानं च भेदो दण्डस्तथैव च"[५] कह कर चारों उपायों का वर्णन किया है। शुक्र ने शत्रु का विनाश सामादि उपायों द्वारा बताया है।[६] उपायों के महत्त्व का प्रदर्शन उन्होंने इस प्रकार किया है—

---

१. उपायेषूत्तमं साम भेदो मध्यम इष्यते।
उपप्रदानमधमं दण्डः कष्टतमः स्मृतः॥ मानसो० २।१७।९७२।

२. वही २।१७।९७३.७६।

३. न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते। न दानमर्थोपचितेषु युज्यते॥
न भेद साध्या बलदर्पिता जनाः। पराक्रमस्त्वेव ममेह रोचते॥
वा० रा० सुन्दर० ४१।२.३।

४. एवं विजयमानस्य ये स्युः परिपन्थिनः।
तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः॥
सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डितः।
सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये॥ मनु० ७।१०७.१०९।

५. याज्ञ० १।३४६

६. विनाशनी यास्ते सर्वे सामादिभिरुपक्रमैः।
मित्रशत्रु यथायोग्यैः कुर्यात्स्ववशवर्तिनौ॥ शुक्र ४।२१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपायेन यथा व्यालो गजः सिंहोऽपि साध्यते।
भूमिष्ठाः स्वर्गमायान्ति वज्रं भिंदंत्युपायतः॥[1]

अर्थात् उपाय के द्वारा गज, व्याल तथा सिंह भी वश में हो जाते हैं और मृत्युलोक के जीव स्वर्ग तक पहुँच जाते हैं। इसके अतिरिक्त मदोन्मत्त हाथी के सिर पर भी पैर रखा जा सकता है—

"उपायेन पदं मूर्ध्नि न्यस्यते मत्तहस्तिनाम्॥[2]

इस प्रकार से उपाय द्वारा सब कुछ साध्य हो जाता है।

हाथीगुम्फा के शिलालेख में राजा खारवेल के द्वारा इन्हीं साम, दण्ड तथा संधि आदि नियमों का आश्रय ग्रहण कर विजय प्राप्त करने का उल्लेख हुआ है।[3] मत्स्य,[4] अग्नि[5] आदि पुराण तथा बृहस्पति[6] सूत्र एवं विष्णुधर्मोत्तर[7] में सात प्रकार के उपायों का वर्णन हुआ है, किन्तु इन सभी के उपाय भिन्न हैं। पुराणादि साम, दान, दण्ड, भेद, माया, उपेक्षा तथा इन्द्रजाल इन सात उपायों को मानते हैं, किन्तु बृहस्पति सूत्र[8] यद्यपि इन सभी सातों उपायों को मानता है, किन्तु इन्द्रजाल के स्थान पर वध नाम का उपाय बतलाता है। कुछ ग्रन्थ माया, अक्ष तथा इन्द्रजाल मानते हैं।[9] महाभारत के सभापर्व[10] में सात प्रकार के उपायों का उल्लेख हुआ है, किन्तु वनपर्व[11] में केवल साम, दान, भेद, दण्ड तथा उपेक्षा इन पांच प्रकार के उपायों का प्रसंग प्राप्त होता है। किन्तु साम, दान, भेद तथा दण्ड यह चार उपाय सर्वप्रसिद्ध हैं। इन चारों ही उपायों का विष्णुधर्म सूत्र में शत्रु, मित्र, उदासीन पर यथायोग्य समय का विचार कर प्रयोग करने का आदेश दिया गया है—

"शत्रुमित्रोदासीनमध्यमेषु सामभेददानदण्डान् यथार्हं यथाकालं प्रयुंजीत्"[12]

साम

सोमेश्वर ने साम के आचरण के विषय में बतलाया है कि कुलीनों, कृतज्ञों, उदार चित्तवालों, साधुओं, कार्य करने वाले मेधावियों के साथ सर्वप्रथम साम का ही प्रयोग करना चाहिये। सोमेश्वर ने पांच प्रकार के साम उपायों का वर्णन किया है—

---

१. शुक्र० ४।२२। २. वही ४।११२८।

३. Epigraphica Indica vol. xx page 79, 88.

४. मत्स्य पु० २२२।२। ५. अग्नि पु० २२६।५.६।

६. बृ० सू० ५।१.३.। ७. विष्णुधर्मोत्तर २।१४६.१४९।

८. बृ० सू० ५।२६३। ९. सरस्वतीविलास पृ० ४२।

१०. महा० सभा० ५।२१। ११. महा० वन० १५०।४२।

१२. विष्णुधर्मसूत्र ३।३८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१. कर्णसुभग—मधुर वचनों से युक्त उपाय।

२. दैविक—जो साम विश्वासोत्पादक उपायों से तथा देवताओं की शपथों से पूर्ण हो।

३. स्मारक— यह पहिले तुम्हारा बान्धव था, पीछे से तुम्हारे द्वारा भुला दिया गया इस प्रकार के स्मरण कराने योग्य वचनों से जो पूर्ण हो।

४. लोभज—ग्राम, पुर, राष्ट्र, घोड़े, हाथी तथा धन आदि दूंगा, ऐसे वचनों से पूर्ण साम लोभज कहलाता है।

५. निजार्पण—जिस साम में ऐसा कहा जाय कि मैं आपके कार्य में स्वयं अपना शरीर अर्पित कर दूँगा।

इन पांच प्रकार के सामों का वर्णन मानसोल्लास में हुआ है।[1] शुक्रनीति में शत्रु तथा मित्र के विचार से साम दो प्रकार का माना गया है। तुम्हारे समान मेरा कोई दूसरा मित्र नहीं है यह मित्रविषयक साम है तथा हम लोगों को दूसरे का अनिष्ट न करना चाहिये और समय पड़ने पर एक दूसरे को सहायता करनी चाहिए, यह शत्रुविषयक साम बतलाया गया है।[2] इस प्रकार साम का आधार ग्रहण कर कोई भी राजा शत्रु अथवा बिगड़े हुए मित्र को समझा-बुझा कर अपने अनुकूल बना सकता है।

भेद

साम उपाय के पश्चात् सोमेश्वर ने भेद उपाय का वर्णन किया है। जो शत्रु साम द्वारा वश में न हो उस मद से उन्मत्त शत्रु को भेद उपाय द्वारा वश में करना चाहिये तथा जिस प्रकार से हंस नीर-क्षीर का अलग-अलग विश्लेषण कर देता है, उसी प्रकार भेदोपाय द्वारा शत्रुओं का भी विश्लेषण करना चाहिये।[3] सोमेश्वर भेद उत्पन्न करने के नियम का निम्न प्रकार से वर्णन करते हैं—

शत्रुस्थैरात्मपुरुषैर्गूढैरुभयवेतनैः।
भीतापमानितान् क्रुद्धान् भेदयेच्च नृसंगतान्॥[4]

अर्थात् जो डरे हुए हैं, अपमानित हैं, क्रुद्ध हैं उनमें शत्रु के यहां स्थित गूढ़ तथा उभयवैतनिक आत्मपुरुषों द्वारा भेद उत्पन्न करा कर विजिगीषु राजा को उन पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। इस प्रकार भेद उत्पन्न करने के प्रमुख कारण राजा के जासूस ही होते हैं। यह भेद छः प्रकार का होता है[5]—

---

१. मानसो० २।१७।९७९.९८५।   २. शुक्र० ४।२५.२८।
३. मानसो० २।१८।९८६.८७।   ४. वही २।१८।९८८।
५. भेदोऽत्र षड्विधः॥ मानसो० २।१८।९८९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१. प्राणहा—मेरे द्वारा यह मंत्र भली प्रकार जान लिया गया है कि राजा तुमको आज या कल ही मारना चाहता है, किन्तु तुमको अभी तक नहीं पता ऐसा कह कर जो विश्वास उत्पन्न करा कर भेद उत्पन्न करता है।

२. मानभंग—तुम्हारे शत्रु से पीड़ित होकर राजा तुम्हारा मानापहरण करेगा ऐसा कहकर जहां द्वेष अथवा भेद उत्पन्न किया जाता है।

३. धनहानि—जब उभयवैतनिक व्यक्ति किसी धनिक व्यक्ति के लिये राजा से कहे कि यह बहुत धनवान है, किन्तु आप को कुछ नहीं देना चाहता, किसी प्रकार इसके धन का अपहरण करना चाहिये। राजा से इस प्रकार की मंत्रणा करके उस धनी व्यक्ति से जाकर कहे कि यह अर्थ का लुब्धक राजा तुम्हारे धन को हर लेगा। इस प्रकार चुगली करके जो उभयवैतनिक भृत्य दोनों में भेद उत्पन्न करा दे।

४. बन्धक—तुम्हारा स्वामी तुममें विश्वास नहीं करता इस कारण वह तुम्हें कभी भी हथकड़ियों द्वारा बांध कर कारागार में डाल देगा ऐसे वचनों द्वारा विश्वास उत्पन्न कर अपने स्वामी के हित में रत हुआ भृत्य भेद उत्पन्न करता है।

५. दाराभिलाषक—तुम्हारी रूपसम्पना तथा नवयौवनशालिनी भार्या को राजा चाहता है ऐसा मुझसे वर्णन कर रहा था। वह तुम्हारे जीवित रहने पर उसे नहीं प्राप्त कर सकता, इसी कारण वह तुमसे विद्रोह करेगा। इस प्रकार के वचनों द्वारा जब दो राजाओं के मध्य भेद उत्पन्न कर दिया जाता है। यह दाराभिलाषक भेद कहलाता है।

६. अंगभंग—यह इस कुल में उत्पन्न हुआ है, इस कारण कभी न कभी वह राज्य प्राप्ति की इच्छा अवश्य करेगा और आपके हाथ तथा नेत्र निश्चय ही कटवा अथवा छिदवा देगा। इस प्रकार कह कर जो भेद उत्पन्न किया जाय।

इस प्रकार से सम्यक् रूप से शत्रुओं की प्रकृति में भेद उत्पन्न करके शत्रु राजा का हृदय वज्ररूपी भेद से भिन्न करता है और भेद उत्पन्न करवा कर निश्चय ही अपने विरोधी राजाओं पर विजय प्राप्त करता है।[1]

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भेद के नियमों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, जो सभी मानसोल्लास में मिलते हैं।[2] अर्थशास्त्र में भेद के उपाय के विषय में कहा गया है कि सामन्त, आटविक, यातव्य, शत्रु के कुल में उत्पन्न हुआ कोई सम्बन्धी किसी नज़रबन्द हुए व्यक्ति के पुत्र आदि में से किसी को अपनी ओर मिला कर, उसके द्वारा कोष तथा धनादि की याचना करवा कर सामन्तादि में भेद उत्पन्न करे—

---

१. मानसो० २।१८।१००४। २. कौटिल्य अर्थशास्त्र ११।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमोपग्रहेण । कोशदण्डभूमिदाययाचनमिति भेदमाचरेत् ॥[१]

शुक्र ने मित्र तथा शत्रु के भेद से दो प्रकार के भेदों का वर्णन किया है,[२] जिसमें उन्होंने स्त्रीविषयक भेद का भी वर्णन किया है—

परस्परं प्रातिकूल्यं रिपुसेनपमंत्रिणाम् ।
भवेद्यथा तथा कुर्यात्तत्प्रजायाश्च तत्स्त्रियाः ॥[३]

जिन उपायों द्वारा शत्रु राजा का सेनापति, मंत्रियों, प्रजा तथा रनिवास की स्त्रियों से विरोध हो जाय, उन्हीं उपायों को विजिगीषु राजा को अपनाना चाहिये। इस प्रकार बलवान शत्रु को भी भेद उपाय का आश्रय ग्रहण कर वश में किया जा सकता है। अतः शत्रु को शक्तिहीन बनाने का सर्वोत्तम उपाय भेद है।

दान

सोमेश्वर ने अर्थभार का दान, कुल का स्वाधिकार, वेतन न देना तथा द्रव्यापहरण ये शत्रुता के चार कारण माने हैं,[४] अतः उन्होंने विरक्त हुए मन्त्रियों, अमात्यो, सचिव, सामन्त, मान्यक, भृत्य, बान्धव, अन्तर्वर्तीजन तथा युद्ध में बुद्धि द्वारा सहायता करने वाले व्यक्तियों को दान द्वारा प्रसन्न रखने का राजा को आदेश दिया है।[५] जो लोभी तथा व्यसनों में आसक्त चित्तवाले व्यक्ति हैं उन्हें भी शत्रु पर विजय प्राप्त करने को इच्छा से राजा को दान द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिये।[६] इसके अतिरिक्त रागादि से हीन अपने सचिवादि को सन्तुष्ट करने के लिये राज्य की वृद्धि के हेतु उन्हें दान देना चाहिये।[७] इस प्रकार सोमेश्वर ने इन व्यक्तियों को दान के लिए उपयुक्त बतलाया है। पर्याप्त धनादि के दान द्वारा भी राजा बहुत से व्यक्तियों को अपने देश की वृद्धि के हेतु अपने वश में कर सकता है।

इन दान के योग्य पात्रों को देने के लिये सोमेश्वर ने सोलह प्रकार[८] के दानों का वर्णन किया है, जो क्रमशः निम्नलिखित हैं—

---

१. अर्थशास्त्र ७।१६।८।

२ मित्रेन्यमित्रसुगुणान्कीर्तयेद्भेदनं हि तत् ॥ शुक्र० ४।२६।
शत्रुसाधकहीनत्वकरणात्प्रबलाश्रयात् ।
तद्धीनतोज्जीवनाच्च शत्रुभेदनमुच्यते ॥ शुक्र० ४।३०।

३. शुक्र० ४।११३०।

४. मानसो० २।१९।१००५। ५. वही २।१९।१००६.७।

६. वही २।१९।१००८। ७. वही २।१९।१००९।

८. वही २।१९।१०१२.१०२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१. अभीष्ट—जो वस्तु जिसे प्रिय हो उसकी रुचि के अनुसार उसे वही वस्तु प्रदान कर सन्तुष्ट करना।

२. हायन—एक वर्ष तक कुटुम्ब का भरणपोषण करने के लिये जो दान दिया जाय।

३. देश्य—जिसमें राष्ट्र तथा देशादि दान दिया जाय।

४. करज—जिसमें राष्ट्र द्वारा बनाया हुआ कर दान दिया जाय।

५. दन्ति—गजदान देना।

६. सतिज—अश्व दान देना।

७. ग्रामज—जिसमें कर लेकर अथवा बिना कर लिये हुये ग्राम दिया जाय।

८. शासन—जो दान पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र द्वारा भी लुप्त न हो।

९. भूषा, रत्न, सोना तथा आभूषण का दान।

१०. वसन दान—जिसमें नाना वर्णों तथा नाना प्रकार के सूत्रों से युक्त अनेक देशों के बने हुए सूक्ष्म एवं नवीन वस्त्र दान दिये जायं।

११. प्रतिपत्तिक—जब आसन, चमर, छत्र तथा यान आदि वस्तुयें सम्मानपूर्वक दी जायं।

१२. आकर—जहाँ पर भूमि से रौप्य, कांचन तथा रत्नादि निकलते हों, उस खनि भूमि का दान 'आकर' दान कहलाता है।

१३. रुक्मज—जिसमें श्रेष्ठ निष्क बहुत मात्रा में दिये जायं।

१४. कन्यादान—शुभ लक्षणों वाली, आभूषणों से सुसज्जित कन्या का विधिपूर्वक दान करना।

१५. वैश्य—जब रूप, यौवन से सम्पन्न तथा गीत नृत्यादि में चतुर वेश्या दी जाय।

१६. वेलाकर—जब पुण्यमयी रत्नाकर वेला ने नगर तथा वस्तु आदि दी जाय।

सोमेश्वर दान का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि जो भेद उपाय द्वारा असाध्य है वह भी दान द्वारा साध्य हो जाता है और भली प्रकार दिया हुआ दान दोनों लोकों को जीतने वाला होता है।[1] इस संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो दान द्वारा वश में न किया जा सकता हो, क्योंकि देवता भी दान के द्वारा मनुष्यों के वश में हो जाते हैं।[2] सोमेश्वर ने दान को सर्वश्रेष्ठ

१. मानसो० २।१९।१०२८।

२. न सोऽस्ति लोके दानेन वशगो यो न जायते।
देवा अपि भवन्तीह वशगाः सर्वदेहिनाम्॥ मानसो० २।१९।१०२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बतलाकर श्रेष्ठ दान को सभी अर्थों का साधक बतलाया है। दानशील राजा इस संसार में देवता के समान पूजा जाता है।[१]

कौटिल्य ने दान के विषय में लिखा है—

भूमिद्रव्यकन्यादानभयस्य चेति दानमाचरेत्॥[२]

इससे विदित होता है कि वे भूमि, द्रव्य, कन्या तथा अभयदान को उपाय के अन्तर्गत मानते हैं। सोमेश्वर द्वारा कथित सोलह प्रकार के दान भी विशेषतः भूमि, द्रव्य, कन्या तथा अभय दान से ही सम्बन्धित हैं। शुक्र ने शत्रु तथा मित्र के विचार से दो प्रकार के दानों का उल्लेख किया है। मेरा जो कुछ है सब तुम्हारा ही है, यहाँ तक कि जीवन भी तुम्हारे लिए अर्पित है इस प्रकार के वचन मित्रविषयक दान को सूचित करते हैं, किन्तु कुछ ग्राम तथा धन देकर प्रबल शत्रु को एक वर्ष के लिये सन्तुष्ट कर देना अमित्रविषयक दान है—

मम सर्वं तवैवास्ति दानं मित्रे सजीवितम्।

....

करैर्वा प्रमितैर्ग्रामैर्वत्सरे प्रबलं रिपुम्।
तोषयेत्तद्धिदानं स्याद्यथा योग्येषु शत्रुषु॥[३]

इस प्रकार दान को भी शुक्र ने शत्रु तथा मित्र से संबंधित बतलाया है। अतः बिगड़े हुए मित्र को शान्त करना तथा शत्रु को द्रव्य द्वारा प्रसन्न कर आत्मरक्षा करना ही दान कहा जाता है। दान द्वारा अनेक असाध्य व्यक्तियों पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

दण्ड

साम, भेद तथा दान उपायों के पश्चात् सोमेश्वर ने दण्ड उपाय का वर्णन किया है। जो शत्रु साम, भेद तथा दान उपाय द्वारा वश में न किया जा सके, उसे वश में करने के लिये राजा को उस पर दण्ड उपाय का प्रयोग करना चाहिये। किन्तु दण्ड उपाय का प्रयोग करने के पूर्व राजा को अपनी शक्ति एवं बल की मात्रा का ज्ञान कर लेना चाहिये।[४] सोमेश्वर ने पूर्व में ही दण्ड को अत्यन्त कष्टतम उपाय बतलाया है, इसी कारण जब कोई उपाय न चले तभी उसका प्रयोग करने का आदेश दिया है।[५] मनु ने भी कहा है कि यदि अन्य तीन उपायों से शत्रु वश में न हो तो दण्ड उपाय का प्रयोग कर उसे वश में करना चाहिये—

---

१. दानं श्रेयस्करं श्रेष्ठं दानं सर्वार्थसाधकम्।
दानशीलो नृपो लोके देववत् पूज्यते जनैः॥ वही २।१९।१०३०।

२. कौटिल्य अर्थ० ७।१६।७। ३. शुक्र० ४।२५.२९।

४. मानसो० २।२०।१०३१.३२। ५. वही २।१७।९७३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः ।
दण्डेनैव प्रसह्यैतांश्छनकैर्वशमानयेत् ॥[१]

मनु ने दण्ड का प्रयोग राजा के लिये आवश्यक माना है, क्योंकि वे दण्ड को ही राष्ट्र की स्थिति का कारण मानते हैं ।[२] याज्ञवल्क्य का भी ऐसा मत है कि जिस समय और कोई उपाय से काम न चले उस समय दण्ड उपाय का आश्रय ग्रहण करना चाहिए—

सम्यक्प्रयुक्ताः सिद्ध्येयुर्दण्डस्त्वगतिका गतिः ।[३]

याज्ञवल्क्य के "दण्डस्त्वगतिका गतिः" पाद का प्रसंग बृहत्पाराशर में भी प्राप्त होता है—

न युद्धमाश्रयेत्प्राज्ञो न कुर्यात् स्वबलाश्रयम् ।
....
वदन्ति सर्वे नीतिज्ञा दण्डस्त्वगतिका गतिः ॥[४]

कामन्दकनीतिसार भी इसी प्रकार के मत का अनुमोदन करता है ।[५] शुक्र ने भी दण्ड का उसी समय आचरण करने का आदेश दिया है, जिस समय अपने प्राणों का संशय हो—

सामैव प्रथमं श्रेष्ठं दानं तु तदनन्तरम् ।
सर्वदा भेदनं शत्रोर्दण्डनं प्राणसंशये ॥
प्रबलेरौसामदाने सामभेदौधिके स्मृतौ ।
भेददण्डौ समे कार्यौ दण्डः पूज्यः प्रहीनके ॥[६]

विष्णुधर्मसूत्र में भी दण्ड का अत्यन्त विचार कर प्रयोग करने का आदेश दिया है ।[७] महाभारत में कृष्ण ने युधिष्ठिर को क्रमशः इन चारों के प्रयोग का उपदेश दिया है ।[८]

सोमेश्वर ने अपने दण्ड के प्रकरण में दो प्रकार के दण्डों का उल्लेख किया है—

१. बलिष्ठ शत्रुओं एवं व्यक्तियों के साथ प्रयोग में लाये जाने वाले दण्ड ।

---

१. मनु० ७।१०८ ।
२. सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पंडिताः ।
सामदण्डौ प्रशसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ।। मनु० ७।१०९ ।
३. याज्ञ० १।३४६ ।
४. बृहत्पाराशर संहिता पृ० २८४ ।
५. कामन्दक० १८।१ ।
६. शुक्र० ४।३४.३५ ।
७. विष्णुधर्मसूत्र ३।३८ ।
८. महा० उद्योगपर्व १४८ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

२. निर्बल एवं अशक्त व्यक्तियों को दिये जाने वाले दण्ड ।[१]

शक्तिशाली व्यक्तियों को दिये जाने वाले बारह प्रकार के दण्डों[२] का प्रसंग मानसोल्लास में प्राप्त होता है—

१. देशनाशक—जहाँ पर शत्रु के वनों को काट कर, जलाशयों को तुड़वा कर ग्रामों को जलवा दे वह देशनाशक दण्ड होता है ।

२. जनांगछेदन—जिस दण्ड में देशवासियों की नासिका, दोनों कान आदि कटवा दिये जांय ।

३. गोग्रह—जब शत्रु के देश में उत्पन्न हुए सभी पशु बलपूर्वक हरण कर लिये जांय ।

४. धान्य हरण—जो अन्दर छिपाकर रखा हुआ हो, बाज़ार में ढेर हो तथा जो एतदर्थ निर्मितपात्रों में एकत्र हो, ऐसे रिपु के राष्ट्र में स्थित धान्य का हरण धान्यहरण दण्ड कहलाता है । यह दण्ड देश में दुर्भिक्ष का करने वाला है ।

५. बन्दिग्राह जहाँ पर गृहस्थ, कुटुम्बी, धनिक, व्यापारी आदि बंदी बना लिये जांय वह बन्दिग्राह दण्ड होता है ।

६. देशहारक—देश के सभी व्यक्तियों को अभयदान देकर वहां स्थित रहकर राष्ट्र को आत्मसात कर ले वह देशहारक दण्ड होता है ।

७. धनादान अथवा बलादान—जब सैनिकों द्वारा ग्राम पर आक्रमण कर बलपूर्वक वहाँ का सभी सोना आदि हरण कर लिया जाय ।

८. सर्वस्वहरण—जब महती सेना द्वारा शत्रु के अत्यन्त विशाल नगर को घेर कर वहाँ का धन, धान्य, गो, लौहभाण्ड, वस्त्र तथा गृह की सब वस्तुएँ छीन ली जांय ।

९. दुर्गभंग—जब शत्रु के दुर्ग को सेना द्वारा चारों ओर से घेर कर, उसके चारों ओर अगाध कुएँ तथा खाई खुदवाकर तथा चारों ओर से आग जलवा कर उसे और अधिक प्रज्वलित करने के लिये उस पर प्रभूत मात्रा में तेल डलवा कर दुर्ग में स्थित शत्रु के व्यक्तियों को पीड़ित करे । इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने प्रत्येक प्रकार के दुर्ग के लिए विशेष प्रकार के दण्डों का प्रयोग बतलाया है, जैसे मरु दुर्ग में अपनी सेना को खूब जल से तृप्त रखे किन्तु शत्रु के सैनिकों को तृषार्त कर दे । इस प्रकार का दण्ड दुर्गभंग दण्ड कहलाता है ।

१०. स्थानदाह—जब शत्रु के देश में रह कर उसके तोरण, प्रकारादि से युक्त पुर, स्त्रियों के सुन्दर भवनों से पूर्ण अन्तःपुर, पुत्रों के घर, अमात्य के

१. मानसो० २।२०।१०३३ । २. मानसो० २।२०।१०३८.१०८२ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गृहों, सचिवों के निवास स्थान, अन्य मनुष्यों के घरों, मन्दुरा, गजशाला, अनेक बाज़ारों आदि को जला कर भस्म कर देता है, वह स्थानदाह दण्ड कहलाता है।

११. देशनिर्वासक—जब शत्रु देश को त्याग कर, उपभोगों से च्युत, गिरी कन्दराओं में निवास करने वाला, स्त्री, पुत्र, बन्धु तथा सचिवों से वियुक्त, क्षुधा-पिपासा से पीड़ित चिन्ता तथा शोक से युक्त, यान, आसन तथा गज, अश्व से हीन हो जाता है, तब वह देशनिर्वासक दण्ड होता है।

१२. युद्ध—जब राजा शत्रु से क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिये उद्यत होता है। सोमेश्वर ने "युद्धावहो महादण्डशत्रुसंहारकारकः"[१] कह कर युद्ध को महादण्ड माना है।

इन बारह प्रकार के दण्डों के अतिरिक्त सोमेश्वर ने अशक्त एवं बलहीन शत्रुओं के साथ विष, घात तथा वध इन तीन प्रकार के दण्डों का उल्लेख किया है—

बलशक्तिविहीनेन नृपेण रिपुघातिना।
प्रयोज्या स्युस्त्रयो दण्डा विषघाताभिचारजाः॥[२]

यद्यपि विष्णुधर्मोत्तर में भी इन्हीं वध तथा विषादि दण्डों का वर्णन प्राप्त होता है, किन्तु इन दण्डों को विदेशी राज्यों से सम्बन्धित तथा प्रकाश एवं अप्रकाश इन दो प्रकार के दण्डों के अन्तर्गत बतलाया गया है।[३]

इस प्रकरण में सोमेश्वर ने सर्वप्रथम विष दण्ड का वर्णन किया है, किन्तु विष दण्ड का वर्णन करने के पूर्व सोमेश्वर ने स्थावर, जंगम तथा कृत्रिम इन तीन प्रकार के विषों का वर्णन किया है—

विषं हालाहलं श्रृंगि कालकूटं भयावहम्।
वत्सनाभं चतुर्थंतु स्थावरं परिकीर्तितम्॥
सर्पदंष्ट्रादिसंजातं विषं तज्जंगमं विदुः।
विरुद्धद्रव्यमिलितं कृत्रिमं विषमुच्यते॥[४]

सोमेश्वर ने शत्रुओं में जो विरक्त श्रेष्ठ पुरुष हों उनको विषरूपी रस प्रदान करने का आदेश दिया है।[५] तालाब, कूप, वापी, छोटा तालाब, स्नान के जल, तैल, चरण दबाने में, खड़ाऊँ के सहित होने पर तथा क्रीड़ा के तालाब में विष का प्रयोग करना चाहिये।[६] इस प्रकार के विष प्रयोग द्वारा राजा अपने शत्रु के

१. मानसो० २।२०।१०३७।
२. मानसो० २।२०।१२२५।
३. विष्णुधर्मोत्तर २।१४६।
४. मानसो० २।२०।१२२६.२७।
५. वही २।२०।१२२८।
६. वही २।२०।१२२८.२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुमार, सचिव, अमात्य, मंत्री, सेनापति महागज तथा उत्तम अश्वों का क्षय कर शत्रु को निर्बल बना देता है।[१]

शत्रु का वध करना घातदण्ड कहलाता है। इसमें सर्वप्रथम सोमेश्वर ने शूरवीर, दृढ़ भक्त, प्राणों के भय से रहित, वीर, समयज्ञ, वध के उपायों को जानने में चतुर तथा जिसने अधिक वेतन ग्रहण किया हो, ऐसे व्यक्ति द्वारा शत्रु का वध करवाने का आदेश दिया है।[२] शत्रु का वध उस समय करवाना चाहिये जिस समय वह गीत वाद्य में आसक्त, द्यूत क्रीडा में रत, मृगया में आसक्त चित्तवाला, देवयात्रा में, श्रंक तथा मल्ल विनोद में, अन्तःपुर में, देव पूजा तथा अन्य कर्मों में, शूरवीरों की क्रीडा में तथा भोजन के स्थान में व्यस्त हो। इस प्रकार के शत्रु का पूर्वोक्त गुणों से युक्त पुरुष द्वारा वध करवाना घात दण्ड कहलाता है।[३] अनेक अभिचारक उपकरणों द्वारा शत्रु को मोहित कर, अपने स्थान से हटा कर, उसे अपने वश में करके उसका वध करा डालने को अभिचारज दण्ड कहते हैं।[४] इसके उपकरणों का मानसोल्लास में विस्तार-पूर्वक वर्णन हुआ है।[५]

यह तीनों ही दण्ड अत्यन्त कठोर प्रकृति के दण्ड हैं। सम्भवतः सोमेश्वर इन दण्डों को विदेशी शत्रुओं के लिए भी प्रयोग करते थे। सोमेश्वर द्वारा कथित प्रथम प्रकार के अन्तर्गत कहे गये बारह दण्ड सर्वांगीण हैं अर्थात् ये दण्ड अधिकांशतः अधिक व्यक्तियों, पुर, जन, राष्ट्र आदि से सम्बन्धित हैं, किन्तु विष, वध तथा अभिचारज दण्ड एकाकी हैं। यह एक ही व्यक्ति से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। प्रथम प्रकार के दण्ड द्वारा शत्रु को समूल नष्ट कर दिया जाता था, किन्तु दूसरे प्रकार के दण्डों द्वारा शत्रुविशेष को ही नष्ट किया जाता था।

इस प्रकार यह चारों ही उपाय राजा के लिये एवं राज्यवर्धन के लिये तथा राज्य में शान्ति स्थापित करने के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। इन्हीं चारों का आश्रय ग्रहण कर राजा देश में शान्ति स्थापित कर सकता है और प्रत्येक प्रकार के शत्रु तथा मित्र को वश में कर सकता है।

---

१. वही २।२०।१२३०.३१। २. मानसो० २।२०।१२३२.३३।
३. वही २।२०।१२३४.३६। ४. वही २।२०।१२४२।
५. वही २।२०।१२३८.४२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चतुर्थ अध्याय

सोमेश्वर तथा उपभोग

उपभोग, विनोद एवं क्रीडाएँ

सोमेश्वर के ग्रंथ की तीसरी, चौथी तथा पांचवी विंशतियां क्रमशः उपभोग, विनोद एवं क्रीडओं से सम्बन्धित हैं। और इन विषयों पर इतना विशाल एवं विस्तृत साहित्य किसी भी ग्रंथ में नहीं प्राप्त होता। सोमेश्वर ने बीस-बीस प्रकार के उपभोग, विनोद एवं क्रीडाओं का वर्णन किया है।

जैसा कि सभी को विदित है कि प्राचीन भारतीय समाज में राजा का थान अत्यन्त प्रभावशाली माना जाता था। वह ईश्वर द्वारा भेजा हुआ प्रतिनिधि माना जाता था जिसकी उत्पत्ति मनुष्यों पर शासन करने के लिए मानी जाती थी। इतने विशाल उत्तरदायित्व को अपने कन्धों पर वहन करते हुए भी राजा का जीवन अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण था। उसका दैनिक जीवन श्रृंगार तथा मन को हृद्य लगने वाले कृत्यों से पूर्ण रहता था।

सोमेश्वर ने जो सर्वप्रथम बीस प्रकार के उपभोगों का वर्णन किया है वह सभी राजा के श्रृंगार एवं व्यक्तिगत दैनिक जीवन से सम्बन्धित हैं। ये उपभोग राजा के श्रृंगार, ऐश्वर्य तथा आनन्द के प्रतीक हैं और उनसे स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। अतः ये सभी उपभोग चार विषयों से सम्बन्धित हैं :—

१—श्रृंगार २—भोजन

३—स्वास्थ्य ४—मनोरंजन

उपभोगों के पश्चात् सोमेश्वर ने बीस प्रकार के विनोदों का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में सोमेश्वर ने सम्भवतः निम्नलिखित आधारों को ग्रहण किया है—

१—आध्यात्मिक एवं ज्ञानवर्धक विनोद।

२—शारीरिक शक्तिवर्धन से सम्बन्धित विनोद।

३—न्यायसम्बन्धी विनोद।

४—मनोरंजन प्रदान करने वाले विनोद।

५—यशोत्पादक विनोद।

६—विलक्षण विनोद।

आध्यात्मिक एवं ज्ञानवर्धक विनोद के अन्तर्गत सोमेश्वर ने शास्त्र, गीत,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाद्य, नृत्य आदि विनोदों का, शारीरिक शक्तिवर्धन के अन्तर्गत शस्त्र, मल्ल, मृगया आदि विनोदों का, न्यायसम्बन्धी विनोदों के अन्तर्गत अंक तथा गजवाह्याली विनोदों का, मनोरंजन प्रदान करनेवाले विनोदों में कुक्कुट, महिष, मेष, लावक, सारमेय तथा पारावत आदि विनोदों का, यशोत्पादक विनोद के अन्तर्गत कथा तथा विलक्षण विनोद के अन्तर्गत चमत्कृत आदि विनोदों का वर्णन किया है। यद्यपि ये सभी प्रकार के विनोद प्रत्यक्षरूप से तो मनोरंजन के ही साधन थे, किन्तु अप्रत्यक्षरूप से यह विशेष प्रकार के ज्ञान, शक्ति, यश आदि की वृद्धि करते थे जैसा कि आगे के आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा।

ये विनोद निम्नलिखित दो श्रेणियों में भी विभक्त किये जा सकते हैं—

१—राजोचित विनोद।

२—समाज में प्रचलित विनोद।

कुछ विनोद ऐसे हैं जिनमें अन्य जनों के साथ-साथ राजा स्वयं अपनी प्रियाओं, परिवार के व्यक्तियों एवं अपने सचिव तथा आमात्यादिकों के साथ उपस्थित रहता था। ये विनोद बड़े उत्सव के साथ होते थे। इन विनोदों के अन्तर्गत शस्त्र, शास्त्र, मल्ल, अंक, गजवाह्याली, तुरंगवाह्याली, चमत्कृत तथा मृगया आदि विनोद हैं। मेष, कुक्कुट, लावक आदि के युद्ध से उत्पन्न विनोद द्वारा राजा के साथ ही साथ समाज के निम्न श्रेणी से लेकर उच्च श्रेणी तक के व्यक्ति मनोरंजन करते थे। ये विनोद समाज में भी प्रचलित थे। इस प्रकार विनोद राजा के व्यक्तिगत जीवन के साथ ही साथ लौकिक जीवन से भी सम्बन्धित थे क्योंकि इन विनोदों में कोई भी ऐसा विनोद नहीं जो केवल राजा के एकांगी जीवन से सम्बन्ध रखता हो।

विनोदों के पश्चात् बीस प्रकार की क्रीडायें राजा के ऐश्वर्य को प्रकट करती हैं। ये क्रीडायें भी सम्भवत: निम्नलिखत प्रकार की थीं—

१. वे क्रीड़ायें जिन्हें राजा केवल अपनी प्रेयसियों एवं अन्य स्त्रियों के साथ करता था।

२. वे क्रीड़ायें जिनमें प्रेयसियों के साथ ही साथ राजा के सचिव तथा अमात्यादि भी भाग लेते थे।

३. वे क्रीड़ायें जिन्हें राजा अन्य बाहर के व्यक्तियों के साथ भी खेलता था।

इन सभी क्रीडाओं में राजा स्वयं सक्रिय भाग लेता था। प्रथम प्रकार की क्रीडाओं के अन्तर्गत आन्दोलन, सलिल, सेंचन, ज्योत्स्ना, तिमिर, मधुपान, रति तथा प्रेम आदि क्रीडायें आ जाती है। दूसरे प्रकार की क्रीडाओं में भूधर,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वन, बालुका सस्य क्षेत्र आदि क्रीडायें तथा तृतीय प्रकार में पहेलिका, वराटिका तथा चतुरंग आदि क्रीडायें आती हैं।

विशेष प्रकार से इन सभी क्रीडाओं को राजा स्वयं ही करता था, किन्तु कुछ को तो पूर्णरूप से वही करता था और कुछ में अन्य व्यक्तियों का भी हाथ रहता था। इस प्रकार ये क्रीडायें दो प्रकार की थीं--

१. एकांगी क्रीडायें २. सामूहिक क्रीडायें

उपर्युक्त उपभोग, विनोद तथा क्रीडाओं के वर्णन में सोमेश्वर ने ऋतु, काल, अवसरादि का भी आश्रय लिया है जो इनकी प्रमुख विशेषता है। उदाहरणार्थ उपभोगों के प्रकरण में ऋतुओं के अनुसार वस्त्रों, विलेपनों, आभूषणों आदि का धारण करने का आदेश दिया है। वसन्त ऋतु में आन्दोलन तथा सलिल क्रीडा, विवाहादि के शुभावसरों पर सेचन क्रीडा एवं गीत, वाद्यादि विनोदों के द्वारा मनोरंजन करने का उल्लेख है।

आगे के पृष्ठों में उपर्युक्त आधारों को ही ग्रहण कर उपभोगादि का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

गृहोपभोग

राजा का प्रासाद नाना प्रकार की कलाओं तथा सौन्दर्य का प्रतीक होता था। सोमेश्वर ने गृहोपभोग के प्रकरण में विशेष रूप से राजा के प्रासाद एवं अनेक प्रकार के गृहों का वर्णन किया है। उस समय राजा अपने प्रासाद में अनेक लक्षणों से युक्त विभिन्न प्रकार के चित्रों की रचना करवाता था। प्रासाद के रुचिर तुंग सुवर्ण के कलशों से आच्छादित रहते थे। नाना वर्ण के विचित्र चित्रों एवं वस्त्रों से सुसज्जित वितान ऊपर रहता था, जिसके स्तम्भों में सुन्दर वस्त्र का आवरण ढँका रहता था। पञ्चवर्ण वाले वितान के मध्य में पद्म बना होता था तथा गुंजापुंज से आच्छादित मर्त्तिका की भित्ति पर गोमय का लेप होता था। इस प्रकार का वितान शाला के ईशान कोण भाग में रहता था और उसके दक्षिण भाग में देवता का चित्र रहता था।[1] उसी के समीप वेदी से युक्त स्नान गृह रहता था।[2] उसी के समीप अग्निकुण्ड से युक्त होमशाला का धुआँ बाहर निकलने के लिए गवाक्षों का सुचारुरूप से निर्माण कराया जाता था।[3] गवाक्षों का प्रसंग यह पूर्णरूप से स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर के समय में व्यक्तियों को प्रकाश एवं शुद्ध वायु के महत्व का पूर्ण ज्ञान था।

देवतागार के पश्चात् सोमेश्वर ऋतुओं के अनुसार बनने वाले अनेक

---

१. मानसो० ३।१।९०६-९११। २. वही ३।१।९१२।

३. धूमनिर्गमनोपायकृतजालपरिष्करा।
कृत्वैवं देवतागारं तत्र सम्पूजयेद्धरिम्॥ वही ३।१।९१३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रकार के गृहों एवं अनेक प्रकार की शालाओं का वर्णन करते हैं। ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न का समय व्यतीत करने के लिए सुन्दर मण्डप का निर्माण होता था जिसकी बालुका से पूर्ण भूमि अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थों से मिश्रित जल से सींची जाती थी। ऐसी शाला में राजा अपनी रानियों के साथ मध्याह्न का समय व्यतीत करता था—

हरिद्रादलसंछन्ने वालुमूलकनिर्त्तिके।
मरुकैर्दमनैर्बद्धे सिकतामयभूतले॥
सेचिते गन्धतोयैश्च मंडपे सुमनोहरे।
कान्ताभिर्वीज्यमानस्तु ग्रीष्मे मध्यं दिनं नयेत्॥[1]

प्रासाद के ऊपरी भाग में बड़ा-सा प्रांगण होता था जहाँ ग्रीष्मकाल में राजा रात्रि के समय सुखपूर्वक संलाप करने योग्य अपनी प्रेयसियों तथा गीत-वाद्य में निपुण, परिहास एवं व्यंग करने में निपुण, साहित्य के रस एवं भाव को जानने वाले, कथा कहने में योग्य अन्य व्यक्तियों के साथ अर्ध रात्रि तक चन्द्र-ज्योत्स्ना एवं चन्द्रवारि से युक्त प्रांगण में बैठकर आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करता था। वहाँ से उठकर वह सुखशाला में जाकर अपनी प्रिया के साथ सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करता था।[2] इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में अत्यन्त शीतल स्थान में वह अपना समय व्यतीत कर आनन्द का अनुभव करता था। वात्स्यायन ने भी हर्म्य तथा प्रासाद के बने हुए इसी प्रकार के स्थानों का वर्णन किया है जहाँ राजा अपनी प्रिया के साथ ज्योत्स्नापूर्ण रात्रि में बैठकर मनोरंजन करता था—

हर्म्यतलस्थितयोर्वा चंद्रिकासेवनार्थमासनम्॥[3]

सोमेश्वर ने जो सुखशाला का प्रसंग दिया है इससे विदित होता है कि यह संभवतः राजा की शयनशाला होगी जहाँ राजा रात्रि के समय सोता था। यह अत्यन्त सुन्दर एवं आनन्ददायिनी होगी इसी कारण इसका नाम सुखशाला[4] पड़ा। वसन्त ऋतु में भी उसी ऋतु के अनुकूल आनन्द देने वाले गृह का निर्माण कराया जाता था, जिसमें राजा वसन्तकाल में सुखपूर्वक निवास करता था।[5]

वर्षाकाल में ठण्डी शीकरों तथा रन्ध्रों से शून्य चतुष्क नामक गृह में अपनी

---

१. वही ३।१।९१४-९१५ ।
२. वही ३।१।९१६-९२० ।
३. कामसूत्र सू० ९ ।
४. मानसो० ३।१।९२० ।
५. वही ३।१।९२१ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रिया के साथ रात्रि व्यतीत करता था। इस गृह का निर्माण प्रासाद के हर्म्य के भीतर ही कराया जाता था —

नीरन्ध्रके निवाते च शीतसीकरवर्जिते।
हर्म्ये चतुष्किकायां वा वर्षासु निवसेन्नृपः॥[1]

वर्षाकाल के योग्य गृह के अतिरिक्त राजा के लिए हेमन्त एवं शिशिर-काल के योग्य गृहों का भी निर्माण कराया जाता था, जिसमें राजा इन ऋतुओं में निवास करता था। ये हर्म्य तथा दिव्य गृह सब ओर से गवाक्षों से पूर्ण होने के कारण प्रकाश से पूर्ण तथा अत्यन्त भव्य एवं रमणीय होते थे। ये गृह इस प्रकार के सुदृढ़ कपाट आदि लगाकर बनाये जाते थे जिससे उसमें शीत वायु का आगमन नहीं हो पाता था।[2] इस प्रकार के दिव्य गृह में राजा अपना हेमन्त तथा शिशिरकाल व्यतीत करता था।

सोमेश्वर का इस प्रकार का गृहोपभोग का वर्णन तत्कालीन व्यक्तियों एवं राजाओं के वैज्ञानिक एवं कलात्मक ज्ञान को प्रकट करता है।

राजा के प्रासाद के विषय में इसी प्रकार के वर्णन अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं। वात्स्यायन ने राजा के प्रासाद में अनेक प्रकार के बने हुए चित्रों तथा स्तम्भों का वर्णन किया है—

आदर्शे कुड्ये सलिले वा प्रयोज्यायाश्छायाचुम्बनमाकारप्रदर्शनार्थमेव कार्य्यम्॥[3]

इसके अतिरिक्त स्तम्भ का एक स्थल पर और सुन्दर प्रसंग प्राप्त होता है—

तदेव कुड्यसन्दंशेन स्तम्भसंदंशेन वा स्फुटकमवपीडयेदिति पीडितकम्॥[4]

बुद्धचरित में एक स्थल पर स्तम्भमायसम्[5] शब्द प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि लोहे के स्तम्भों का निर्माण भी राजा के प्रासाद में होता था। सुन्दरनन्दनकाव्य में सुवर्ण के बने हुए स्तम्भों का प्रसंग प्राप्त होता है।[6] एक स्थान पर सोने के सुन्दर उपस्तम्भ का वर्णन हुआ है।[7] सोमेश्वर ने भी इसी भांति स्तम्भों पर सोने के कलशों का निर्माण कराने का आदेश दिया है।

कामसूत्रों में ग्रीष्मकाल व्यतीत करने के लिए समुद्रगृहों एवं मंडपों का

१. मानसो० ३।१।९२२। २. मानसोल्लास ३।१।९२३.२५।
३. कामसूत्र सू० ३०। ४. वही १३।
५. बुद्धचरित १४।१२।
६. सुवर्णस्तम्भवर्ष्माणः॥ सुन्दरनन्दनकाव्य १।१९।
७. उपस्तम्भः पिपतिर्षोर्दुर्बलस्येव वेश्मनः॥ वही १४।१५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उल्लेख हुआ है, इसी में राजा अपना मध्याह्न का समय व्यतीत करता था। यह समुद्रगृह इतने ठंडे बनाये जाते थे जिससे राजा को ग्रीष्म के आतप का अनुभव नहीं होने पाता था—

बहिः प्रवालकुट्टिमं ते दर्शयिष्यामि मणिभूमिकां वृक्षवाटिकां
मृद्वीकामण्डपं समुद्रगृहप्रासादान् गूढ़भित्तिसंचारांश्चित्रकर्मणि ॥[1]

विष्णुस्मृति में समुद्रगृह भेदक को दंड देने का प्रसंग प्राप्त होता है।[2] कालिदास ने भी 'दीर्घिका गूढ़मोहनगृहाः'[3] कहकर इसी प्रकार के गूढ़मोहन गृहों का वर्णन किया है। इन गूढ़मोहन गृहों में सदैव शीतलता रहती थी।[4] भास ने अंतःपुर में निर्मित एक प्रकार की चतुश्शाला का उल्लेख किया है।[5] इसके अतिरिक्त अविमारक में भी चतुश्शाला का वर्णन हुआ है।[6] इसी चतुश्शाला का ही सोमेश्वर ने चतुष्कगृह नाम दिया है।

सोमेश्वर द्वारा कथित यह गृहोपभोग का प्रसंग इस बात को स्पष्ट करता है कि उनके समय में राजा का जीवन अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण था। सभी उसके आराम का विशेष ध्यान रखते थे। राजा के विश्राम करने के लिए प्रत्येक ऋतु के अनुकूल आनन्द प्रदान करने वाले विभिन्न प्रकार के गृहों का निर्माण होता था ये सभी गृह ऋतु के अनुकूल होते थे और उन्हीं स्थानों में राजा निवास कर अपना समय व्यतीत करता था। इसके अतिरिक्त नागरिकों का जीवन भी बड़ा सुखी था। लोगों को वास्तुशास्त्र का विकसित ज्ञान था, उसी के आधार पर वे अपने गृहों का भी निर्माण कराते थे। इस प्रकरण में सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के आनन्द प्रदान करने वाले गृहों का वर्णन किया है इसी कारण इस प्रकरण का गृहोपभोग नाम दिया गया है।

स्नानोपभोग

प्राचीनकाल से स्नान के महत्व पर अधिक बल दिया गया है। स्नान विशेषतः दो प्रकार का होता है—१. मुख्य, २. गौण, मुख्य स्नान जलद्वारा सम्पादित होता है किन्तु गौण स्नान बिना जल द्वारा किया जाता है। इन दोनों स्नानों के अनेक भेद हैं। मुख्य स्नान ६ प्रकार का होता है। (१) नित्य, (२) नैमित्तिक, (३) काम्य, (४) क्रियांग, (५) मलकर्षण,

---

१. कामसूत्र सू० १७, पृ० २८३.८४। २. विष्णुस्मृति ५।११७।
३. रघुवंश १९।९। ४. वही १९।९।
५. प्रविश्यतामभ्यन्तरचतुःशालम्।
चारुदत्त (भास) गणपति शास्त्री द्वारा संपादित अध्याय १।
६. अविमारक (भास) Trivandrum Sans. Series p. 23.42.86.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

(६) क्रिया स्नान ।[1] अग्निपुराण[2] में इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है।

नित्य स्नान शीतल जल द्वारा किया जाता है। साधारणतः इसमें उष्ण जल का प्रयोग नहीं होता है। शंख[3] के अनुसार यदि कोई व्यक्ति नित्य स्नान में उष्ण जल का प्रयोग करता है तो उसकी शारीरिक शुद्धि तो हो जाती है किन्तु उसका आध्यात्मिक फल उस व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता। जो स्नान किसी विशेष अवसर पर अथवा किसी कारणवश किया जाय।[4] यथा पुत्रजन्म के अवसर पर, यज्ञ के अन्त में तथा ग्रहण आदि के अवसर पर, ऐसे स्नान को नैमित्तिक स्नान कहते हैं। जो स्नान किसी इच्छित पदार्थ की प्राप्ति के लिए किया जाता है वह काम्य स्नान है, जैसे तीर्थ को जाते समय अथवा चन्द्रमा के पुष्य नक्षत्र में होने पर अथवा सुख की प्राप्ति के लिए माघ तथा फाल्गुन मास में प्रातःकाल स्नान किया जाता है।[5] जब कोई व्यक्ति धार्मिक कृत्य के अवसर पर स्नान करता है उसे क्रियांग स्नान कहते हैं। उदाहरणार्थ कूप, मंदिर आदि बनवाने के अवसर पर।[6] शरीर में तैलादि लगाकर केवल शरीर की शुद्धि के लिए स्नान किया जाता है उसे मलापकर्षक अथवा अभ्यंग स्नान कहते हैं।[7] तीर्थों में स्नान कर लेने मात्र को ही जो अपने पुण्य का अन्तिम कारण मानता है वह क्रिया स्नान कहलाता है।[8]

महाराज सोमेश्वर ने स्नानभोग प्रकरण में मलापकर्षक अथवा अभ्यंग स्नान का ही वर्णन किया है। वास्तव में तैलादि के प्रयोग द्वारा शारीरिक शुद्धि करके

---

१. स्नान तु द्विविधं प्रोक्तं गौणमुख्यप्रभेदतः।
तयोस्तु वारुणं मुख्यं तत्पुनः षड्विधं भवेत् ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियांगमलकर्षणम्।
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढास्नानं प्रकीर्तितः ॥
शंख quoted by अपरार्क पृ० १२७

२. अग्निपुराण १५५।३.४।

३. शंखस्मृति ८।९.१०।

४. पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चापत्यकर्मणि।
राहोश्च दर्शने दानं प्रशंस्तं नान्यदानिशि ॥ पाराशर १२।२६।

५. पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम्।
तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥ शंख ८।४।

६. इष्टापूर्तक्रियार्थयत्क्रियांगं स्नानमुच्यते स्मृत्यर्थसार, पृ० २७।

७. मलापकर्षणार्थं तु स्नानमभ्यंगपूर्वकम्।
मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥ शंख ८।६।

८. स्नानमेव फलं तीर्थे क्रियास्नानं तदुच्यते। स्मृत्यर्थसार, पृ० २७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्नान के आनन्द को प्राप्त करना ही स्नानोपभोग की कोटि में आ सकता है, क्योंकि अन्य प्रकार के स्नानों का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में धार्मिक कृत्यों से है। इस स्नान को मलव्यपोहन अथवा मलस्नान भी कहते हैं। इस प्रकार के स्नान के लिए शास्त्र के नियमों का पालन आवश्यक नहीं। यह पूर्ण रूप से मनुष्य की इच्छा के ऊपर निर्भर है।[१]

अभ्यंगस्नान के सम्बन्ध में महाराज सोमेश्वर ने कुछ तिथियां आदि अभ्यंग के लिये वर्जित बतलाई हैं। उनका कथन है कि द्वितीया सुख का नाश करने वाली, दशमी पुत्र का नाश करने वाली, एकादशी रूप को हरने वाली, त्रयोदशी धन का नाश करने वाली तथा चतुर्दशी रोग उत्पन्न करने वाली होती है। मन्वादि युगों तथा उभय पर्वों में भी अभ्यंग वर्जित है।[२]

इनमें से दशमी तथा त्रयोदशी तिथियों में महर्षि गर्ग ने भी मलस्नान का वर्जन किया है। उनका कथन है कि दशमी में स्नान पुत्रनाश के लिए तथा त्रयोदशी में स्वयं अपने नाश के लिए होता है।[3] महाराज सोमेश्वर की उक्ति इससे बहुत कुछ मिलती-जुलती है, यहां तक कि शब्द भी बिल्कुल मिलते हैं—

दशमी पुत्रनाशिनी	...	अभिलषितार्थचिन्तामणि
दशमी पुत्रनाशाय	...	गर्ग
वित्तनाशी त्रयोदशी	...	अभिलषितार्थचिन्तामणि
स्वनाशाय त्रयोदशी	...	गर्ग

सोमेश्वर ने त्रयोदशी को 'वित्तनाशी' बतलाया है और गर्ग ने 'स्वनाशाय' कहा है। वास्तव में धन का नाश होना भी स्वनाश ही है। गर्ग ने शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय के लिए ये तिथियां वर्जित बतलाई हैं।[४] सोमेश्वर ने क्षत्रिय होने के नाते इनका पालन किया है। पर्वकाल में स्नान का वर्जन व्यास ने भी बतलाया है।[५]

---

१. क्रियते वा न वा यत्तु शास्त्रयन्त्रणया विना।
मलव्यपोहनं मलस्नानं याट्टच्छिकं तु यत् ॥ गर्ग। अपरार्क १९६।

२. अभिलषितार्थचिन्तामणि ३।२।९७१.७३।

३. दशमी पुत्रनाशाय स्वनाशाय त्रयोदशी ॥ वही।

४. त्रयोदश्यां तृतीयायां दशम्यां चैव सर्वशः।
शूद्रविट्क्षत्रियाः स्नानं नाऽऽचरेयुः कदाचन ॥
गर्ग quoted by। अपरार्क पृ० १९६।

५. श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीताऽऽमलकैर्नरः।
सप्तमीं पंचमीं चैव पर्वकालं विवर्जयेत् ॥
व्यास quoted by। अपरार्क, पृ० १९५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने सोम, बुध तथा शनिवार में अभ्यंग का बड़ा महत्व बतलाया है। इन दिनों में अभ्यंग कराने से राजा की आयु बढ़ती है और उसको विपुल लक्ष्मी प्राप्त होती है।[१]

अभ्यंग के लिए एक विशेष प्रकार का तैल प्रयुक्त होता था। वह तिलों से यन्त्र द्वारा तैयार किया जाता था और वह केतकी, जाती, पुन्नाग, चम्पक की सुगन्धि से युक्त होता था। त्वचा के दोषों को दूर करने वाले तथा ओषधियों की गन्ध से सिद्ध तैलों द्वारा तरुणी जनों के कोमल हाथों से अभ्यंग कराकर मल्लों द्वारा देह को दबवाये और फिर कोमल हाथों से धीरे-धीरे मर्दन करवाए। इसके पश्चात् उबटन के लिए कोष्ठ, तक्कोलक, मुस्ता, ग्रन्थिपर्णी, दोनों निशाएं, पालक, तगर, मांसी, अजगन्धा तथा पुष्कर की जड़ों को ग्रहण करके छाया में सुखाएँ। इसके अतिरिक्त नीम, राजवृक्ष, तुला तथा आर्जक के पत्रों को लेकर उपर्युक्त द्रव्यों के साथ मिलाए, फिर इलायची, जाती, सरसों, तिल, कुस्तुम्बरु, वाकुची, चक्रमर्द के बीज लें। लौंग, पद्मक, लोध्र, श्रीखंड, सुरदारु, अगरु और सरल काष्ठ को मिलावे और नागकेसर, पुन्नाग, काकली और पिचु मन्दक के फूल उनमें मिलावे। साथ ही गुग्गुल, सैन्धव, चोल तथा सज्जरस द्रव्यों को पीस कर पय से अथवा कांजिक से उबटन करावे।[२]

देह में लगे हुए तैल को छुड़ाने के लिए एक विशेष प्रकार के पदार्थ का उल्लेख किया गया है! मदन के मूल को पीस कर आरनाल से संसिद्ध गेहूँ के चिकने चूर्ण में मिलाकर खली तैयार करे और उससे तैल को छुटाए।[3] शरीर में सुवासित तैल के मर्दन का उल्लेख कादम्बरी (कथामुख भाग) में भी मिलता है। परिचारक या परिचारिका रईस के शरीर में तेल मलती थी। नागरक की गर्दन या मन्या पर विशेषरूप से मर्दन होता था क्योंकि बुद्धिजीवी व्यक्ति की मन्या पर तेल मलने से मस्तिष्क के तन्तु जागृत हो जाते हैं।

वात्स्यायन के कामसूत्र में नागरक की दिनचर्या के प्रसंग में उसके स्नान का विवरण मिलता है। नागरक प्रातः के दैनिक कृत्यों से निबट कर स्नान करता था। वह स्नान नित्य करता था। हर दूसरे दिन अपने अंगों का उत्सादन कराता था और हर तीसरे दिन फेनक (एक प्रकार का साबुन) का प्रयोग करता था।

जैसा कि आयुर्वेद के प्रकरण से स्पष्ट है महाराज सोमेश्वर आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता थे। स्नान के समय उपर्युक्त औषधियों का प्रयोग उनके आयुर्वेद के विशेष ज्ञान का द्योतक है। इनका प्रयोग शरीर को निर्मल तथा स्वस्थ

१. अभिलषित० ३।२।९७३ ७४। २. मानसो० ३।२।९३१.४१।
३. वही ३।२।९४१.४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बनाना है। आयुर्वेद के साथ ही साथ ज्योतिष के अनुसार विशेष तिथियों तथा दिवसों पर तैलादि का प्रयोग अथवा वर्जन उनके ज्योतिष के ज्ञान को पुष्ट करता है।

अभ्यंग, मर्दन, उद्वटन आदि के पश्चात् राजा स्नान के लिए तैयार हो जाता था। राजा का स्नानगृह घर के अन्दर ईशान कोण में होता था। स्नानगृह में सोने के सुन्दर स्तम्भ होते थे और स्फटिक मणि की सुन्दर वेदी होती थी। काच की कुट्टिम शोभायमान होती थीं और अमूल्य पत्थरों से जड़ी हुई दीवारें होती थी। इसके अतिरिक्त उसमें विचित्र चीनपट्ट का वितान होता था।[1]

स्नानगृह के अन्दर नाना तीर्थों से आया हुआ विमल तथा मल को हरने वाला, सुगन्ध से युक्त जल कलशों में भरा रखा रहता है। रूप और लावण्य से युक्त श्रेष्ठ स्त्रियां इधर-उधर घूमती हुई तथा राजा के मुख से दृष्टि किए हुए उसको स्नान कराती थी। साथ हो साथ बालों में वे सुगन्धित तथा चिकने आमलको का लेप करती थीं। इस प्रकार स्नान भोग का आनन्द प्राप्त कर राजा अंगमार्जन कर गीले कपड़े उतार कर सफेद धौतवस्त्र धारण करता था।[2]

धौतवस्त्र के अर्थ के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है धुला हुआ वस्त्र। ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में केवल धोती नित्य धोई जाती थी और अन्य वस्त्र कई दिन तक बिना धुले ही पहने जाते थे। कुछ विद्वान् धौत शब्द का अर्थ अधोवस्त्र लेते हैं। प्राचीन-काल में उष्णीष, उत्तरीय तथा अधोवस्त्र यही मनुष्यों का पहनावा था। किन्तु इस शब्द का अर्थ धुला हुआ वस्त्र अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। महाराज सोमेश्वर ने तो 'सुधौतं वसनं' कह कर इस बात को और स्पष्ट कर दिया है अर्थात् अच्छी तरह धुला हुआ वस्त्र स्नान के बाद धारण किया जाता था।

कादम्बरी के कथामुख भाग में इसी प्रकार से स्नान किए जाने का वर्णन है। परिचारक अथवा परिचारिका द्वारा मालिश के बाद रईस स्नानगृह में रखी हुई एक जल की द्रोणी (टब) में बैठता था और तत्पश्चात् स्नान की चौकी पर बैठता था। तब उसके सिर पर सुगन्धित जल की धारा डाली जाती थी। अच्छी तरह से स्नान कर लेने के पश्चात् वह केंचुल के समान श्वेत तथा चमकीले धौत वस्त्र को धारण करता था।

अजन्ता की गुफा में गौतम के स्नान का इसी प्रकार का सुन्दर चित्र मिलता है। गौतम स्फटिक की चौकी पर विराजमान हैं। पीछे दो परिचारिक

१. मानसो० ३।२।९२७.९३०। २. वही ३।२।९४३.५३।
३. वही ३।२।९५३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

खड़े हैं जो सिर में सफेद वस्त्र लपेटे हुए गौतम के ऊपर जल डाल रहे हैं। एक परिचारिका थाली में कुछ सामग्री लिए हुए खड़ी है। एक परिचारिक सुगन्धित जल से पूर्ण कलश ला रहा है। कुछ परिचारिकाएँ और हैं जो प्रसाधन की सामग्रियां ली हुई हैं। इसी प्रकार १७वीं गुहा में भी एक चित्र मिलता है जिसमें स्नान के उपरान्त रानी के प्रसाधन का चित्रण है।

स्नान के समय सिर के बालों में आमलक के लेप का उल्लेख जो महाराज सोमेश्वर ने किया है वह कादम्बरी के कथामुख में स्नान के सम्बन्ध में मिलता है। स्मृतिचन्द्रिका[1] में मार्कण्डेय पुराण का एक उद्धरण मिलता है जिसमें यह कहा गया है कि ऐश्वर्य की इच्छा वाले व्यक्ति को स्नान के समय आमलक का प्रयोग अवश्य करना चाहिये किन्तु सप्तमी तथा नवमी तिथियां तथा पर्व के दिनों में ऐसा प्रयोग त्याग देना चाहिए—

श्रीकामस्तु सदा स्नानं कुर्वीतामलकैः नरः।
सप्तमीं नवमीं चैव पर्वकालं च वर्जयेत्॥

स्नान के विषय में कामसूत्र में भी सुन्दर प्रसंग प्राप्त होते हैं। उस समय नागरिक नित्य स्नान करता था, दूसरे दिन शरीर का उत्सादन करता था। स्नान के समय साबुन की भांति का एक श्वेत पदार्थ प्रयोग में लाया जाता था जिसे फेनक कहते थे। इसे व्यक्ति स्नान के समय तीसरे दिन लगा कर अपने शरीर को स्वच्छ करता था—

नित्यं स्नानं, द्वितीयकमुत्सादनं, तृतीयकः फेनकः, चतुर्थममायुष्यम् , पंचमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम् ।।[2]

इस प्रकार स्नान के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं, किन्तु सोमेश्वर ने स्नान के प्रकरण का स्नानोपभोग नाम देकर उसे भी उपभोग के अन्तर्गत माना है। यद्यपि यह नित्य की ही की जाने वाली क्रिया है, किन्तु इसे भी उनके समय में अत्यन्त आनन्द एवं उत्साह के साथ किया जाता था। इस प्रकार का स्नान स्वास्थ्य तथा आयु का वर्धक होता था।

पादुकोपभोग

स्नान भोग के पश्चात् सोमेश्वर महाराज ने पादुकाओं के उपभोग के विषय में लिखा है। इसके अन्तर्गत उन्होंने केवल राजा के पहनने योग्य पादुकाओं का ही वर्णन किया है। इस प्रकरण में विशेषरूप से दो प्रकार की पादुकाओं का विवरण प्राप्त होता है। १. लकड़ी की बनी हुई,[3] २. चमड़े की चप्पलें।[4]

१. स्मृतिचन्द्रिका १, पृ० १२३। २. कामसूत्र सू० १७।
३. मानसो० ३।३।९५४। ४. वही ३।३।९५६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्नान से निवृत्त होकर राजा श्रीपर्णी, देवदारु अथवा हरिचन्दन की लकड़ी की बनी हुई अथवा स्यन्दन आदि के वृक्ष की लकड़ी की बनी हुई पादुकाओं को पहनता था। ये पादुकायें चारों ओर से मयूरपिच्छ तथा गुंजा आदि से ढकी रहती थीं जो देखने में बहुत सुन्दर लगती थी।[१]

इनके अतिरिक्त राजा अनेक वर्णों में रंगी हुई चमड़े की पादुकाओं का भी प्रयोग करता था जिन पर हाथी दांत का तथा सुन्दर सोने का काम बना होता था। इनके विषय में सोमेश्वर ने लिखा है—

विचित्रे सुदृढ़े श्लक्ष्णे शिंजाने सुमनोहरे।
लघुछत्रकृताधारे सुस्पर्शे पादुके समे।[२]

इस वर्णन से ऐसा विदित होता है कि ये पादुकायें बड़ी ही विचित्र, सुदृढ़ तथा अत्यन्त सुन्दर होती थीं और ये केवल पैर के अगले भाग में पंजे तक ही ढँकी होती थीं। संभवतः ये पादुकायें चप्पल की भाँति होती होंगी और राजा अपनी सुविधा के लिए इन्हें धारण करता होगा।

इन पादुकाओं के प्रसंग अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं क्योंकि यह तो राजा के लिए अत्यन्त साधारण वस्तु है। लकड़ी की बनी हुई पादुकाओं का प्रसग श्रीमद्भागवतपुराण में भी प्राप्त होता है।[३] देवीपुराण में देवता की पादुका के निर्माण के विषय में निम्नलिखित प्रसंग प्राप्त होता है—

मणिरत्नमयीकार्य्या हेमरूप्यमयीपि वा।
चन्दनेनापि कर्तव्या पादुकाप्रतिमापि वा॥
श्रीपर्णाश्रीद्रुमाचापि देवदारुमयीपि वा।
षडंगुला च सा कार्य्या पादुके पूजयेत् सदा॥

ज्योतिस्तत्व में पादुका के धारण की विधि इस प्रकार बतलाई है—

वर्षातपादिके छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च।
शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कः सदा व्रजेत्॥

राजवल्लभ के अनुसार पादुका के धारण करने से बल तथा ओज की वृद्धि होती है। नेत्रों को लाभ होता है तथा पैरों के रोग दूर होते हैं—

पादप्रधारणं वृष्यमोजस्य चक्षुषोर्हितम्।
सुखप्रचारमायुष्यं बल्यं पादरुजापहम्॥

---

१. मानसो० ३।३।९५४.५५। २. वही ३।३।९५७।
३. पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः।
श्रीमद्भागवत पु० ९।१०।४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके विपरीत, पादुका न धारण करने से स्वास्थ्य, आयु, इन्द्रिय तथा नेत्रों की ज्योति क्षीण होती है—

पादाभ्यामनुपानद्भ्यां नृणां चंक्रमणं सदा।
अनारोग्यमनायुष्यमिन्द्रियघ्नमदृष्टिकृत् ॥

सोमेश्वर महाराज ने इन पादुकाओं का इस प्रकार से वर्णन किया है जो वास्तव में उपभोग के अन्तर्गत आ गई हैं। लकड़ी की बनी हुई पादुकाओं को राजा सम्भवतः स्नान के पश्चात् तथा भोजनादि के समय धारण करता होगा और चर्म निर्मित पादुकाएँ वह शेष समय में धारण करता होगा ऐसा इस प्रसंग को पढ़कर विदित होता है।

ताम्बूलोपभोग

भारत में २००० वर्ष पूर्व इस नागवल्ली का सेवन जावा, सुमात्रा आदि दक्षिणी सामुद्रिक टापुओं से प्रारम्भ हुआ था। कुछ ही समय पश्चात् शनैः-शनैः सम्पूर्ण भारत की सभी जातियों में विशेष रूप से प्रचलित हो गया। इस ताम्बूल के उपभोग को सभी उपभोगों के मध्य अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था।

श्री एल० वी० रामस्वामी अय्यर[१] ने कुछ द्राविड़ी शब्दों को लेकर ताम्बूल शब्द को द्राविड़ी उत्पत्ति का बताने का प्रयत्न किया है, किन्तु इस तुलना द्वारा वे किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुंचते हैं और अन्त में आग्नेय शब्दों (austric) से सम्बन्ध की सम्भावना करते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी[२] के मतानुसार आर्य लोग भारतवर्ष में आने के पूर्व ताम्बूल लता से परिचित न थे और न उसके उपभोग को ही जानते थे। आर्यों ने ताम्बूल पत्र का प्रयोग नाग जातियों से सीखा। इसी के आधार पर वे नागवल्ली (संस्कृत) शब्द की उत्पत्ति मानते हैं। राजशेखर विरचित प्रबन्धकोष में भी इस ताम्बूल को नागों की ही देन माना गया है, क्योंकि उसमें लिखित एक कहानी में इस प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है कि पाताललोक के नागों के राजा वासुकि ने अपनी कन्या भूलोक के राजा उदयन को ब्याहते समय दहेज में उसे सवत्सा कामधेनु, विशिष्ट नागवल्ली (ताम्बूल), सोपधान सतूलिका शय्या तथा रत्नोद्योत प्रदीप नामक चार बहुमूल्य एवं अद्भुत रत्न दिए थे। उसी समय से इस ताम्बूल पत्र का उपभोग भारतीय नृपों के अन्तःपुर में प्रचलित होने के साथ ही साथ बाहर निकल कर सभागृहों एवं राजदरबारों तक में अधिकांशरूप से प्रचलित होने लगा। राजा तथा प्रजा सभी इस नागपत्र

१. Journal of Oriental Research, Madras, Vol. V, p. p. 1–10.

२. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० २३. २४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का उपभोग करने लगे। प्रो० प्रह्लाद प्रधान ने बरई जाति में प्रचलित प्रवादों एवं प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर यह बतलाया है कि पान नाग जाति की देन है।[1]

इसी प्रकार यू० वेकंट कृष्णराव[2] भी ताम्बूल को दक्षिण भारत की ही अमूल्य निधि मानते हैं और इसका सम्बन्ध द्राविड़ी भाषा के शब्दों से (मलयालम : वेट्टिल, तामिल : वेट्टिलाई, कन्नड़ : वीळ्यदेल) बतलाते हैं। उनका यह भी कथन है कि ताम्बूल का प्रयोग मलाबार से पुर्तगाल होता हुआ अन्य योरोपीय देशों में फैला। पुर्तगाली व्यापारी व्यापार करने के साथ ही अपने साथ ताम्बूलपत्र भी ले गए जिससे वहाँ के लोगों को भी इसका ज्ञान हो गया। डॉ० पी० सी० बागची[3] ने कतिपय पाश्चात्य विद्वानों के अनुवाद में ताम्बूल शब्द का सम्बन्ध निम्नलिखित आग्नेयदेशी भाषाओं के शब्दों से बतलाया है—

अलक	बलु
ख्मेर	म्लुव
बहनार	बो॑ लो॑ उ
रोंगाव	बो॑ लो उ
सुए	मलुअ
लवें॑	मे॑ लु
स्तींग	म्लु
खा	ब्लु
पलौंग	प्लू

ये सब रूप एक मूल रूप में घटाये जा सकते हैं जिसके आदि अक्षर में बहुधा भाव उलट-फेर करके हो जाता है।

इन रूपों के अतिरिक्त निम्नलिखित रूप हैं जो अधिक जटिल हैं—

हलँग	लमलु
मोन	जॅबलु
मलय प्रायद्वीप	चॅम्बइ
	अमइ
	जॅम्बइ
	जॅम्बि

१. विश्वभारती खंड ४ पृ० १६४.१६५।

२. Piper Betle or Betel Leaves......
Journal of Oriental Research, Madras, Vol. 17. p. 158.

३. Pre-Aryan and Pre-Dravidian in India.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूर्व के दो नामों में म्लु । ब्लु अंश एक उपसर्ग के साथ पुनः प्रकट होता है । ल–म्लु, ज–ब्लु । मलय प्रायद्वीप के रूपों में च, चॅम् अथवा जॅम् उपसर्ग हैं और प्राचीन धातु जिसमें ल का इ हो जाता है घट कर मइ, बइ, बि रह जाती है।

उसमें भारतीय आर्य परिवार के निम्नलिखित रूपों को समझा जा सकता है—

संस्कृत	ताम्बूलम्
पाली	तम्बूली, तम्बूलं
प्राकृत	तम्बोलं, तम्बोलि

यहां पर मूल शब्द बूल, बोल है जिसमें तम् अथवा ताम् उपसर्ग है। भारतीय आर्य के अंश बूल तथा आग्नेयदेशी बलू में केवल स्वर के हेर-फेर का ही अन्तर है। इसके अतिरिक्त मोन-ख्मेर भाषाओं में क, त उपसर्ग, जो पशुओं तथा पौधों के नामों को बनाने में प्रयुक्त होते हैं, बहुधा मध्य में अनुनासिक द्वारा धातु से सम्बद्ध रहते हैं—जैसे तन्, तम् आदि। ये वही उपसर्ग हैं जो तोम् दोम् रूपों में साधारणतया स्तींग, बहनार तथा कम्बोडी भाषाओं के वृक्षों के नामों के पूर्व में मिलते हैं।

अतः भारतीय आर्य समुदाय के ताम्बूल, तम्बूल, ताम्बूली, तम्बूली, ताम्बूलम्, तम्बूलम् शब्द जो योरोपीय परिवार के नहीं ज्ञात होते हैं, स्वयं (पान की) लता की भांति आग्नेयदेशी हैं।

जार्जस लिब्रन (Georges Lebrun) नामक विद्वान[१] ने पान की उत्पत्ति जावा, सुमात्रा आदि टापुओं में बतलाई है जहां से दक्षिण भारत ने उसे सर्वप्रथम ग्रहण किया। दक्षिण से उसका प्रयोग उत्तर में तथा अन्य देशों में व्याप्त हो गया।

ताम्बूल शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में बहुत मिलता है। राजशेखर सूरि के प्रबन्ध कोष में दहेज दिए जानेवाले रत्नों में इसका उल्लेख है। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में इसे श्रृंगार का साधन बतलाया है। कामसूत्र[२] में नागरक की शय्या के पास पान थूकने के लिए पीकदान अथवा पतद्ग्रह की व्यवस्था की है। दशकुमारचरित में पान की पीक थूककर उसके द्वारा चक्रवाक के जोड़े के चित्र बनने का उल्लेख किया है। शुक्रनीतिसार में पान तैयार करने

१. Monthly French Journal 'France–Asie' from Saigon–March–April 1949 (see English Translation–Journal of Oriental Research, Madras, Vo1.17)

२. कामसूत्र १४।८.६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की विधि (ताम्बूलरक्षादिकृति विज्ञानम्) को कला की कोटि में गिना है।

बौद्ध साहित्य में भी ताम्बूल के प्रयोग के बहुत से प्रसंग मिलते हैं। शान्तिदेव के शिक्षासमुच्चय (पृ० ८.६) में भद्रकल्पिकसूत्र का एक उद्धरण है जिसमें ताम्बूलपत्र का प्रसंग मिलता है।[1] बुद्धघोष के विसुद्धिमग्ग[2] में इस प्रकार ताम्बूल का उल्लेख मिलता है—

मालागन्धविलेपनतम्बूलानि पि देन्ती।

इसके अतिरिक्त पाली टेक्सट् सोसाइटी द्वारा प्रकाशित पाली शब्दकोष द्वारा ताम्बूल के प्रयोग के प्रसंग धम्मपद[3] तथा जातक[4] में भी मिलते हैं। उक्त बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर श्री पी० वी० बापट[5] ने भारत में ताम्बूल का प्रयोग तीसरी शतक के पूर्व बतलाया है।

केवल संस्कृत और बौद्ध साहित्य में ही नहीं वरन् भारतीय शिलालेखों में भी ताम्बूल के प्रसंग प्राप्त होते हैं। श्री पी० के० गोद[6] ने सन् ४७३ ई० से १८०० ई० के बीच के कतिपय शिलालेखों में इसके प्रसंग प्राप्त किये हैं। सर्वप्रथम उन्होंने ४७३ ई० के एक शिलालेख[7] का उद्धरण दिया है जिसमें एक युवती का ताम्बूलादि से भूषित होने का वर्णन है—

तारुण्यकान्त्युपचितोऽपि सुवर्ण-हार-
ताम्बूल-पुष्पविधिना समलंकृतोऽपि।
नारीजनः प्रियम् (श्रियम्) उपैतिन तावदग्र्याम् (अग्र्याम्)।
यावन्न पट्टमय-वस्त्र-युगानि धत्ते॥

४७३ ई० के गुप्तकालीन शिलालेख के ताम्बूल के प्रसंग से कुछ विद्वानों की

१. यथोक्तम् भद्रकल्पिकसूत्रे घोषदत्तो नाम
तथागतो यत्र नक्षत्रराजेन तथागतेन प्रथमं बोधिचित्तम्
उत्पादितं ताम्बूलपत्रं दत्वा गोपालकभूतेन, एवम्...

२. कोशाम्बी संस्करण ९.७९, P. T. S. ed. ३१४।

३. अट्ट क० ३।२०८।

४. जातक, १।२६६, २९१, २।३२०, ६.३६७।

५. Tāmbula—Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute Vol. XXXI, p. 304.

६. References to Tāmbūla in Indian Inscriptions between A. D. 473 and 1800.

७ Mandasor Silk Weavers' inscription (Fleet's Gupta Inscription No. 18)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह धारणा है कि ताम्बूल का सर्वप्रथम प्रयोग भारत में सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों से गुप्तकाल के आरम्भ में ग्रहण किया गया। इसका कारण विद्वान लोग यह बतलाते हैं कि गुप्तकाल में समुद्र द्वारा भारत का सम्पर्क इन द्वीपों से था।

इसी प्रकार विक्रम सम्वत् ७४१ (सन् ६८५ ई०) के धनिक के नागर शिलालेख[१] में इस प्रकार ताम्बूल का उल्लेख मिलता है—

व्यालोललोचनजलप्लुतिलांछितानि लम्बालकानि ललितस्मितवर्जितानि।
त (ता) म्बूलरागरहिताधरभांजि यस्य कोपश्चकार वदनान्यरिसुन्दरीणाम्॥

यहां पर राजा के शत्रु की स्त्रियों के आंसुओं द्वारा ताम्बूल के रंग मिटने का उल्लेख है। सन् ९६२ ई० के मद्रास प्रान्त के बेलारी जिले के कन्नड़ शिलालेख में 'तम्बूलम्' शब्द का प्रसंग आता है।

प्रो० पी० के० गोद ने अपने एक लेख में[२] सन् ६३० से सन् १९०९ ई० के बीच भारतवर्ष के बाहर ताम्बूल के प्रयोग के उदाहरण दिए हैं। उन्होंने कई साधनों से ताम्बूल के प्रसंग लेकर उसका प्रयोग भारतवर्ष के बाहर दिखलाया है।

ताम्बूल के गुणों का उल्लेख संस्कृत साहित्य में बहुत मिलता है। सुभाषितरत्नाकर[3] के एक सुभाषित में ताम्बूल के हजारों गुणों का उल्लेख है—

तांबूलस्य गुणाः संति सखे शतसहस्रशः।
एकोऽपि च महान्दोषो यस्य दानाद्विसर्जनम्॥

अर्थात् ताम्बूल के सहस्रों गुण हैं। दोष केवल यही है कि इसके देने के बाद अतिथि का गमन होता है। इस श्लोक के लेखक आदि का पता सुभाषित-रत्नाकर में नहीं दिया हुआ है। सूची में विविध श्लोकों के अन्तर्गत इसका प्रसंग दिया है।

योगरत्नाकर[४] नाम के एक आयुर्वेद के ग्रन्थ में ताम्बूल के १३ गुणों का उल्लेख है—

---

१. Edited by S. S. Guleri in the • Bhārata-Kaumadi (Dr. R. K. Mookerji, Commemoration Volume) Allahabad, Part I—1945.

२. Journal of the Travancore University Oriental MSS Library Vol. VI—Studies in the History of Tāmbula—use of Tāmbula outside India between A. D. 630 and 1909.

३. Ed. by Krishna Shastri, P. 242.

४. आनन्दाश्रम, पूना से १९०० में मुद्रित।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ताम्बूलं कटुतिक्तमुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितं।
वातघ्नं कृमिनाशनं कफहरं दुर्गंधिनिर्णाशनम्॥
वक्त्रस्याभरणं विशुद्धिकरणं कामाग्निसंदीपनम्।
तांबूलस्य सखे त्रयोदशगुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः॥

यह श्लोक अन्य कई ग्रन्थों में थोड़े से हेर-फेर के साथ मिलता है। भांडारकर इन्स्टीट्यूट पूना के दो हस्तलिखित ग्रन्थों में इसी प्रकार का श्लोक मिलता है। प्रथम ग्रन्थ प्रस्तावरत्नाकर[1] है जिसके रचयिता पुरुषोत्तम के पुत्र हरिदास हैं। रचनाकाल सन् १५५७ ई० है। दूसरा धन्वन्तरि निघंटु की एक हस्तलिपि है[2] जिसमें २८ वें फोलिओ पर 'ताम्बूलवल्लोगुणाः' शीर्षक के अन्तर्गत उपर्युक्त १३ गुणों का उल्लेख है।

नरहरि के राजनिघंटु[3] (१४५० ई०) में भी यह श्लोक आया है। शिवराज अथवा शिवदास द्वारा रचित ज्योतिर्निबन्ध[4] नामक धर्मशास्त्र के ग्रन्थ में ताम्बूल पर २४ श्लोक मिलते हैं जिनमें उपर्युक्त श्लोक भी मिलता है। जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में भोजन शीर्षक के अन्तर्गत ताम्बूल पर भी कुछ श्लोक मिलते हैं। उनमें से दो तो वराहमिहिर (ए० डी० ५००) से उद्धृत हैं तथा तीन श्लोक और हैं जिनके रचयिता का पता नहीं है। इन्हीं तीन श्लोकों में १३ गुणों वाला उपर्युक्त श्लोक भी सम्मिलित है। जल्हण की सूक्तिमुक्तावली का रचनाकाल १२५८ ई० माना गया है।

अतः उपर्युक्त उद्धरणों से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि ताम्बूल के १३ गुणों का विचार भारतवर्ष में १२ वीं शताब्दी में प्रचलित था।

सुभाषितरत्न भांडागारम्[5] में उपर्युक्त १३ गुणों वाले श्लोक से मिलता-जुलता एक श्लोक ताम्बूल की प्रशंसा में मिलता है—

ताम्बूलं मुखरोगनाशि निपुणं संवर्धनं तेजसो
नित्यं जाठरवह्निवृद्धिजननं दुर्गन्धदोषापहम्।
वक्त्रालंकरणं प्रहर्षजननं विद्वन्नृपाग्रेरणे
कामस्यायतनं समुद्भवकरं लक्ष्म्याः सुखस्यास्पदम्॥

---

१. No. 320 of 1884–86.
२. No. 923 of 1884–87.
३. आनन्दाश्रम पूना १८९६।
४. वही १९१९।
५. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९५२, पृ० १४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चारुचर्या नाम के एक हस्तलिखित ग्रन्थ में जिसके रचयिता भोजराज कहे गये हैं[1] ताम्बूल की प्रशंसा इस प्रकार मिलती है—

मनसो हर्षणं श्रेष्ठं रतिदं मदकारणम् ।
मुखरोगहरं हृद्यं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥
मुखशुद्धि कृमिहरं ताम्बूलं श्रीकरं परम् ।

ताम्बूल के गुणों के सम्बन्ध में अत्यधिक प्राचीन प्रसंग वराहमिहिर की बृहत्संहिता का निम्नलिखित श्लोक है—

कामं प्रदीपयति रूपमभिव्यनक्ति
सौभाग्यमावहति वक्त्रसुगंधिता च ।
ऊर्जं करोति कफजांश्च निहन्ति रोगान्
ताम्बूलमेवमपरांश्च गुणान् करोति ॥

इस प्रकार ताम्बूल की महत्ता का बहुत बड़ा इतिहास है। महाराज सोमेश्वर इस लता के महत्त्व से भली भाँति परिचित थे, यहाँ तक कि उन्होंने अपने उपभोगों की सूची में ताम्बूल के सेवन को भी उपभोग माना है और इस उपभोग को एक साधारण उपभोग नहीं वरन् उत्तम उपभोग माना है—

इदानीमुत्तमो भोगस्ताम्बूलस्य निगद्यते ।[2]

ताम्बूल का इतना महत्त्व था कि एक अधिकारी राजमहल में ताम्बूल के लिए रखा जाता था और राजा स्नानगृह से निकल कर सुखमन्दिर में प्रवेश कर ताम्बूलाधिकारी को बुलाता और ताम्बूल का सेवन करता था ।[3]

लघुहारीत[4], लघुआश्वलायन[5] तथा औशनस[6] में भोजन के पश्चात् ताम्बूल के उपयोग का उल्लेख है। कामसूत्र[7] के अनुसार मनुष्य को प्रातः उठकर

---

१. The Triennial Report (for 1893–94) by Sheshgiri Shastri, Ms. No. 51.

२. मानसो० ३।४०।९५९ ।

३. स्नानगेहादथागम्य प्रविश्य सुखमन्दिरम् ।।
ताम्बूलभोगमन्विच्छंस्ताम्बूलस्याधिकारिणम् ।
समाहूय महीपालस्ताम्बूलास्वादनं चरेत् ।।
मानसो० ३।४।९५९.६० ।

४. लघुहारीत (आनन्दाश्रम, ३९) ।

५. लघुआश्व० (आनन्दाश्रम) १।१६०.६१, २३।१०५ ।

६. औश० (जीवानन्द) भाग १, पृ० ५०९ ।

७. का० सू० १।४।१६ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शौचादि से निवृत्त हो, दर्पण में मुख देखकर, ताम्बूल का सेवन कर अपने कार्य में लग जाना चाहिए—

स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्या गृहीतदन्तधावनः···
दृष्ट्वादर्शे मुखं गृहीतमुखवासताम्बूलः कार्याण्यनुतिष्ठेत् ॥

ताम्बूल के लिए अधिकारी की नियुक्ति सोमेश्वरदेव के समय की विशेष प्रथा थी। सम्भवतः ताम्बूल का सेवन उस समय इतना होता था कि उसके लिए एक स्वतन्त्र अधिकारी की नियुक्ति की आवश्यकता थी। साधारणतया ताम्बूल का सेवन भोजनोपरान्त किया जाता है किन्तु सोमेश्वरदेव ने स्नान के पश्चात् ताम्बूल सेवन करने को लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि दिन में कई बार ताम्बूल का सेवन किया जाता था क्योंकि दोनों समय भोजन के पश्चात् ताम्बूल का सेवन अवश्य होता होगा। इसके अतिरिक्त दरबार में जाने के पूर्व भी ताम्बूल का प्रयोग राजा करता होगा और देर तक दरबार में बैठने पर बीच में भी पान का सेवन करता होगा क्योंकि आस्थान भोग के अन्तर्गत ताम्बूलधारी लोगों का राजा के समीप होना आवश्यक बतलाया गया है।[1] ये ताम्बूलधारी व्यक्ति बहुत ही विश्वस्त होते थे। अतः उचित समय पर ताम्बूल की व्यवस्था करने तथा उपयुक्त स्थान से सुपाड़ी तथा ताम्बूल में प्रयुक्त अन्य सुगन्धित पदार्थ जुटाने आदि के लिए अवश्य ही एक ताम्बूलाधिकारी की आवश्यकता रहती होगी। १९४७ ई० के कोल्हापुर के एक शिलालेख में ऐसा प्रसंग मिलता है कि बम्मनय्या नामक मुख्यमन्त्री ताम्बूल विभाग का अध्यक्ष था।[2] यत्र-तत्र कथा, आख्यायिका, काव्य, नाटक साहित्य में ताम्बूलकरंकवाहिनी स्त्रियों का उल्लेख अवश्य मिलता है। कादम्बरी में चन्द्रापीड राजा की करंकवाहिनी पत्र-लेखा का वर्णन बाणभट्ट ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है।

ताम्बूल के साथ प्रयुक्त सर्वप्रथम पदार्थ सुपाड़ी है। सुपाड़ी के लिए संस्कृत में तीन शब्द मिलते हैं, क्रमुक, पूग तथा घोंटा। घोंटा शब्द अधिक प्रचलित नहीं है। साधारणतया क्रमुक और पूग शब्दों का ही प्रयोग होता है। सोमेश्वर-देव ने मानसोल्लास में क्रमुक शब्द का प्रयोग किया है। ये तीनों शब्द आर्येतर भाषाओं से गृहीत मालूम पड़ते हैं। तामिल में सुपाड़ी के लिए 'अडैक्काई' तथा 'पाक्कु' शब्द मिलते हैं। आन्ध्र लोग 'वक्कलु' शब्द को भी प्रयोग में लाते हैं। मलयालम में 'पाक' तथा 'अडैइक' शब्द मिलते है। क्रमुक और

---

१. ताम्बूलधारिणो भक्ता विश्वस्ताः खड्गधारिणः।
राज्ञः समीपे तिष्ठेयुः सावधाना जितेन्द्रियाः ॥ २ १२२।

२. Ins. No. 8 Kolhapur Inscriptions by K. G. Kundangar 1939–lines 34–34, p. 82

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूग शब्द सम्भवतः इन्हीं शब्दों से सम्बन्धित हैं। मराठी आदि भाषाओं में 'वीडचे पान' (हिन्दी-बीड़ा का पान) शब्द भी प्रयुक्त करते हैं। इनमें से वीडचे अथवा बीड़ा द्राविड़ी 'बेट्टिल' आदि शब्दों से उद्धृत हैं।

सुपाड़ी का आर्थिक महत्त्व बहुत है।[1] भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लगभग १ करोड़ डालर की सुपाड़ी का प्रयोग होता है। ५६००० टन से अधिक सुपाड़ी प्रतिवर्ष भारतवर्ष में बाहर से मंगाई जाती है। सीलोन, इन्डोनीशिया आदि देशों की उनके व्यय से बची हुई सारी उपज भारतवर्ष में खप जाती है। भारतवर्ष में इसकी उपज इस प्रकार है—

बम्बई राज्य	...	२२७०० एकड़
मद्रास	...	१०८६०० एकड़
मैसूर	...	३४५०० एकड़

बंगाल और आसाम में सभी राज्यों से अधिक सुपाड़ी पैदा की जाती है।

दसवीं, ग्यारहवीं सदी के लगभग कर्णाटक तथा दक्षिणी भारत के ज़िलों को मिलाकर बम्बई राज्य में सुपाड़ी की खेती बड़े लम्बे पैमाने पर होती थी। इसका प्रमाण तत्कालीन शिलालेखों से प्राप्त होता है। धारवार ज़िले के गदग ताल्लुका में होसूर नामक स्थान पर १०२८ ई० का जगदेकमल्लदेव प्रथम के राज्य का एक पाषाण शिलालेख[2] प्राप्त हुआ है जिसमें सुपाड़ी के एक बगीचे के दान का उल्लेख है। इसी प्रकार धारवार ज़िले के १०६१ ई० के एक अन्य शिलालेख[3] में ब्रह्मपुरी के ४०० महाजनों को प्रत्येक सुपाड़ी के बाग पर एक पण और १०० सुपाड़ी के देने का उल्लेख है। १०५० ई० के एक शिलालेख[4] में ईश्वर की सेवा के निमित्त विद्यानिधि नामक पंडित को कुछ भूमि तथा अन्य वस्तुओं के साथ सुपाड़ी के पेड़ों की कुछ कतारों को दिए जाने का उल्लेख है। ११४२ ई० के एक शिलालेख[5] में वीरपांडवदेव नाम के एक अधिकारी तथा

१. The story of Pān-chewing in India by M. Gowda-Botanical Museum Leaflets, Harvard University Vol. 14. No. 8, p.p. 181-214

२. Inscription No. 65 on page 55 of Bombay Karnatak Inscriptions Vol. I Part I, Madras 1940, South Indian Inscriptions, Vol. XI, Part I

३. Ibid, Ins. no. 96

४. Ins. No. 107 (p. 82 of South Indian Inscriptions, Vol. IX, Part I Madras 1939)

५ Ins. No. 238 Ibid.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा तीन लाख सुपाड़ियों की चुंगी का दान भगवान् गौरेश्वरदेव के निमित्त दिए जाने का उल्लेख है।

इन प्रसंगों से विदित होता है कि चालुक्यनरेश महाराज सोमेश्वर (११२६-११३८ ईस्वी सन्) के समय में उनके राज्य में सुपाड़ी की खेती बहुतायत से होती थी। यह बात मानसोल्लास में सुपाड़ी के विस्तृत वर्णन से पुष्ट हो जाती है। उसके राज्य में दो प्रकार की सुपाड़ियों की उपज होती थी। प्रथम प्रकार की सुपाड़ी की उपज नैलवर्तिपुर, ईश्वरपुर तथा कांडिकापुर में होती थी।[1] ये सुपाड़ियां पेड़ में अच्छी तरह पक जाने पर तोड़ी जाती थीं। टूटने पर पाटल वर्ण की होती थीं। स्वाद में कुछ कसैली और मधुर होती थीं। सम्भवतः ये आजकल की चिकनी सुपाड़ी की भांति होती थीं। ये सुपाड़ियां तोड़कर फैला दी जाती थीं और गर्म पानी से धोकर सुखाई जाती थीं और फिर आपस में रगड़ कर कस्तूरी के कल्क से युक्त छाया में सुखाई हुई प्रयोग के उपयुक्त होती थीं। दूसरे प्रकार की सुपाड़ियां वनवास नामक स्थान में पैदा होती थीं। ये सुपाड़ियां पकने के पूर्व ही तोड़ ली जाती थीं और उन्हें विशेष विधि से पकाया जाता था।[2] ब्रिटिश एनसाइक्लोपीडिया में कच्ची सुपाड़ियों को पकाने की विधि दी है[3]।

कच्ची सुपाड़ियों को पहले पानी में उबाला जाया है, फिर उसके टुकड़े करके धूप में सुखाया जाता है जिससे वे टुकड़े गहरे भूरे अथवा काले रंग के हो जाते हैं। किन्तु इस क्रिया से सुपाड़ियां बहुत सख्त हो जाती हैं।

इस सम्बन्ध में मानसोल्लासकार ने जो विधि बतलाई है उससे सुपाड़ियां मुलायम और खाने में स्वादपूर्ण रहती होगीं। सोमेश्वरदेव का कथन है कि कच्ची सुपाड़ियों को छिलके सहित पहले बड़े यत्न से पानी में उबालना चाहिए। तत्पश्चात छिलका अलग करके छाया में सुखाना चाहिए। उसके बाद चार टुकड़े कर ताम्बूल के योग्य बनाना चाहिए।[4] इस क्रिया में उपर्युक्त क्रिया की अपेक्षा छिलके सहित उबालने और छाया में सुखाने का उल्लेख है

१. नैलवर्तिपुरोद्भूतांस्तथेश्वरपुरोद्भवान् ।
कांडिकापुरजान्वापि क्रमुकौधानसुपाकिनः ॥

मानसो० ३।४।९६१।

२. मानसो० ३।४।९६४।

३. They are prepared by boiling in water, cutting up into slices, drying in the sun, by which treatment the slices assume a dark brown or black colour.

४. मानसो० ३।४।९६३-६५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और सुखाने के बाद उसके टुकड़े करने। इससे उनमें कुछ कोमलता अवश्य रहती होगी।

सुपाड़ी के अतिरिक्त ताम्बूल के साथ अन्य सुगन्धित वस्तुएं भी मिलाई जाती थीं, जैसे मोती की सीपी का चूर्ण, ईशावास कपूर, कस्तूरी का चिकना चूर्ण, जावित्री आदि। ताम्बूल के साथ कपूर का प्रयोग मृच्छकटिक में भी मिलता है, जिस समय शूद्रक वसन्तसेना के महल का वर्णन करता है—

दीयते गणिककाकामुकयोः सकर्पूरं ताम्बूलम्।[1]

निवेदन मन्त्र में भी इस प्रकार का उल्लेख मिलता है—

पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम्।
कर्पूरचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥

जावित्री का प्रयोग अब भी बहुत से लोग पान के साथ करते हैं कस्तूरी का प्रयोग मुख को सुगन्धित करने के लिए किया जाता होगा। किंतु इस प्रकार ताम्बूल के साथ नाना प्रकार की अमूल्य सुगन्धित वस्तुएं राजा एवं धनिक ही कर सकते थे। साधारण जनता के लिए इस प्रकार नित्य ताम्बूल सेवन करना कठिन था।

अब प्रश्न उठता है कि ताम्बूल का सेवन किस प्रकार किया जाय। आजकल उत्तरी भारत के जिलों में पान में चूना तथा कत्था लेप दिया जाता है और सभी मसाले डाल कर उसका बीड़ा बनाकर खाया जाता है। दक्षिण के कुछ स्थानों पर यह रिवाज है कि पहले पान की पत्ती खा ली जाती है, उसके पश्चात् सुपाड़ी आदि। तामिल तथा कन्नड़ परिवारों में विवाह के समय एक उत्सव (तामिल नलंगु, कन्नड़ नागोल) मनाया जाता है। सुमंगलियां अथवा वयोवृद्ध स्त्रियां वर-वधू के चारों ओर एकत्र होती हैं और उन्हें ताम्बूल के प्रयोग की कला का ज्ञान कराती हैं। वे वधू से कहती हैं कि वह हल्का चूना लगा हुआ पान वर को दे और उसके बाद केवल सुपाड़ी। विवाह के पूर्व वर-वधू ने ताम्बूल का सेवन नहीं किया होगा। विवाह के पूर्व ताम्बूल के निषेध का कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि प्रथमतः यह जीभ को खुरदरी बना देता है, दूसरे इसके प्रयोग से एक प्रकार का नशा आता है तथा यह कुछ अंश तक काम उत्पन्न करने में सहायक है। अतएव ब्रह्मचर्य जीवन में इसका निषेध किया गया है और विवाह के अवसर पर इसका प्रयोग बतलाया जाता है।

हिन्दू-धर्मशास्त्रों के अनुसार भी ताम्बूल का प्रयोग केवल गृहस्थों के लिए

१. मृच्छकटिक, चतुर्थ अंक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था। ब्रह्मचारी तथा यति के लिए इसका पूर्णरूप से निषेध था। जगन्नाथ पण्डितराज ने रसगंगाधर में साहित्य में अनौचित्य का उल्लेख करते हुए अनौचित्य के उदाहरण दिए हैं। उनमें ब्रह्मचारी और यति के द्वारा ताम्बूल-चर्वण में अनौचित्य दिखलाया है—

शूद्रस्य निगमाध्ययनम्। ब्रह्मचारिणो यतेश्च
ताम्बूलचर्वणम्...... .... ।

शिवपुराण के ब्रह्मचर्य प्रकरण[१] में एक ब्रह्मचारी के लिए सुख-शय्या तथा आसन, वस्त्र, ताम्बूल, स्नान के बाद सजना, दन्तकाष्ठ तथा सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग दोष का साधन बतलाया है—

सुखशय्यासनं वस्त्रं तांबूलं स्नानमंडनम्।
दन्तकाष्ठं सुगन्धं च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम्॥

ब्रह्मचारी के लिए संयम का जीवन अपेक्षित था। उसके लिए उपभोग के सभी साधन वर्जित थे। सादा जीवन और उच्च विचार ही (Plain living and high thinking) उसका उद्देश्य था।

अग्निपुराण[२] में उपवास करने वाले व्यक्ति के लिए ताम्बूल का प्रयोग वर्जित है। बार-बार जल न पीना चाहिए, दिन में सोना नहीं चाहिए और मैथुन से अलग रहना चाहिए: —

असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात्।
उपवासः प्रदुष्येत दिवास्वप्नाच्च मैथुनात्॥

आजकल भी उपवास करने वाले व्यक्ति सुपाड़ी का प्रयोग नहीं करते हैं।

हरिभास्कर अग्निहोत्र ने स्मृतिप्रकाश[४] नाम के धर्मशास्त्र के ग्रन्थ में ताम्बूल के प्रयोग के विषय में अपने विचार प्रकट किए हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने मार्कण्डेयपुराण, ज्योतिर्निबन्ध तथा स्मृतिकार वसिष्ठ और आश्वलायन के मतों का उल्लेख किया है। आश्वलायन के अनुसार अध्ययन की इच्छा वाले व्यक्ति को रात्रि में अधिक पान नहीं खाना चाहिए क्योंकि ताम्बूल के

---

१. Vide Prasastisamgraha by K. Bhujabali Shastri (Jain Antiquary, Vol. VI, No. 2 June 1940)

२. Chapter 175, folio 123, Venkatesvar press Edition, Bombay.

३. MS. No. 161 of Vis' (1) in the Govt. MSS Library at the B. O. R. Institute, Poona

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अधिक प्रयोग से शरीर पीला पड़ जाता है, दांत कमजोर हो जाते हैं, आंख और मुंह में रोग उत्पन्न हो जाते हैं और शक्ति का क्षय होता है—

विद्याकामो निशं रात्रौ तांबूलं न तु भक्षयेत्।
तथा
पांडुत्वं दंतदौर्बल्यमक्षिरोगं बलक्षयम्।
करोति मुखरोगांश्च तांबूलमतिसेवनात्॥

वसिष्ठ ने ताम्बूल के किसी पदार्थ का प्रयोग, यति, ब्रह्मचारी, विधवा तथा रजस्वला के लिए वर्जित बतलाया है। इसका प्रयोग मांस और मदिरा के प्रयोग के समान है—

यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च रजस्वला।
प्रत्येकं मांसतुल्यं स्यान्मेलनं सुरया समम्॥ इति।

हरिभास्कर ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

क्रमुकादेः प्रत्येकं भक्षणं मासमुदितं सुरयासमानम् इत्यर्थः।

इतिहासोपनिषद्[१] के अनुसार श्राद्ध करने वाले व्यक्ति को दन्तकाष्ठ तथा ताम्बूल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उसे बाल नहीं बनाना चाहिए, अपने घर अथवा दूसरे के घर भोजन नहीं करना चाहिए और कामवर्धक औषधियों को त्याग देना चाहिए—

दन्तधावनताम्बूलक्षौराभ्यंजनभोजनम्।
इत्यौषधं परान्नं च श्राद्धकर्ता विवर्जयेत्॥[२]

विलेपनोपभोग

सोमेश्वर के समय में राजा अपने शरीर पर अनेक लेप करता था इसी कारण सोमेश्वर ने ताम्बूलोपभोग के पश्चात् विलेपनोपभोग का वर्णन किया है। इस प्रकरण में अनेक प्रकार के सुगन्धित तैल तथा विलेपनों का वर्णन हुआ है। इस सभी लेपों को सोमेश्वर ने शरीर के लिए अत्यन्त सुख देने वाला एवं लाभप्रद बतलाया है—

विलेपनोपभोगोऽयं कथ्यते भोगिनां प्रियः।
अच्छं विलेपनं रम्यमंगसौख्यप्रदायकम्॥[3]

इन विलेपनों को सोमेश्वर ने भोगियों की प्रिय वस्तु बतलाई है। इससे विदित होता है कि यह लेप की क्रिया न केवल राजा के ही जीवन से संबंधित थी

---

१. Vide Sadhale's upanisadvākyakosa, Vol. I, 1940, p. 290।

२. इतिहा० ४०।

३. मानसो० ३।५।९८०।

· CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वरन् अन्य नागरिक जन भी इसका प्रयोग रुचि एवं उत्साह से करते थे। सोमेश्वर ने ऋतुओं के अनुकूल विभिन्न प्रकार के लेपों का वर्णन किया है। सर्वप्रथम वे वसन्त ऋतु में प्रयोग में लाए जाने वाले यक्षकर्दम नाम के लेप का वर्णन करते हैं। इस विषय में उनका कथन है कि चंदन, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी, कुंकुम, सुरभी, केसर, ग्रन्थिपर्ण के चूर्ण से युक्त, जातीपूत के फल से युक्त तथा अच्छी प्रकार से धूप दिया हुआ लेप वसन्त काल में कक्ष भाग, कर्णसंधियों, नाभि तथा वक्षण आदि भागों में करना चाहिए। यह वसन्त ऋतु का अति उत्तम लेप माना गया है—

वसन्ते लेपनं कुर्याद्यक्षकर्दममुत्तमम्।
कक्षाभागे कर्णसन्धौ नाभौ वंक्षणयोरपि॥[१]

वसन्त के पश्चात ग्रीष्म-काल में सान्ध्य नामक लेप का प्रयोग होता था। इस विषय में सोमेश्वर का कथन है कि यह लेप स्वेद की गन्ध को दूर करने के लिए लगाना चाहिए—

स्वेदगन्धविनाशार्थं सान्ध्याख्यं लेपमाचरेत्॥[२]

इस सान्ध्य लेप के निर्माण की विधि का भी मानसोल्लास में वर्णन हुआ है। चंदन के वृक्ष की जड़, अत्यन्त तीव्र गंध वाला ग्रंथिकोटर, जो स्पर्श करने में शीतल, काटने पर लाल वर्ण वाला, घिसने पर पीतवर्ण का, सूखने पर शुभ्र तथा स्वाद में तिक्त हो, पुन्नागकेसर, चंदन तथा कर्पूर से युक्त, केतकी, मल्लिका तथा पाटल पुष्प की सुगन्ध से सुवासित, चंद्रमा की किरणों में रखा हुआ तथा हिम डिंडीर से पांडुर कर यह लेप तैयार किया जाता था।[३] यह अत्यन्त सुगंधित तथा शीतल होता था, इसी कारण सोमेश्वर ने इसे ग्रीष्म काल में राजा को लगाने का आदेश दिया है।[४] यह चंदन की ही भांति भव्य होता है।

वर्षाऋतु में काश्मीर देश में उत्पन्न लाल हरिचंदन तथा केसर को भली प्रकार पीस कर लाक्षाराग के सदृश आभा वाले कटु तैल में मिलाकर जो कुंकुम के लेप का निर्माण हो उसमें थोड़ी मात्रा में कर्पूर मिलाकर लेप तैयार किया जाता था। इसे वर्षा ऋतु में राजा अपने सम्पूर्ण शरीर पर लेप करता था।

---

१. वही ३।५।९८३। २. वही ३।५।९८४।
३. मानसो० ३।५।९८४-८७।
४. निदाघे शीतलं लेपं नृपः कुर्यात्समुज्ज्वलम्।
श्रीखंडं तादृशं भव्यं निघृष्टं पेषितं पुनः॥
वही ३।५।९८८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हेमन्त तथा शीतकाल में लगाए जाने वाले पुल्लिंग नाम लेप के निर्माण का भी सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यह लेप तरुण एवं मदोन्मत्त मृग की नाभि से निकली हुई, गीले कुंकुम के पिंजर में रखकर चिकनी की हुई, जलाने पर भस्म की अवस्था को न प्राप्त करती हुई, स्वाद में तिक्त, अत्यन्त हलकी तथा राजाओं के ही प्रयोग में लाई जाने वाली कस्तूरी से तैयार किया जाता था।[१] इस कस्तूरी को जल में पीसकर तब उसका लेप शरीर पर किया जाता था। गंधिमार्जार के बीजों को उसमें डालकर गरम तेलसे निकाल कर कडुये तेल के साथ लेप करना चाहिए अथवा उसमें निशाचूर्ण डाल कर उसे छाया में सुखावे तथा बेल, आम्र, जामुन तथा तुलसी के बीज से पूर्ण क्वाथ तैयार करे। उन पत्तों के क्वाथ से बीज निकालकर उन्हें खूब धोकर, उसके टुकड़े कर, जल में बीज, फल तथा उसकी छाल को डालकर क्वाथ बनाकर उसमें तेल डाले। उस जल में पड़े तेल को कांचन तथा शुक्ति से तपाकर, उन्हें पीसकर उस तेल को सित तथा कर्पूर से धुपावे। इस प्रकार के तैयार किए हुए दिव्य गंध वाले लेप को राजा को शिशिर तथा हेमन्त ऋतु में लगाना चाहिए।[२]

अत्यन्त सुगंधित चंदन को पद्मकेसर के साथ मिलाकर उत्पल से आभासित लेप राजा शरद्काल में लगावे तथा नवकेसर से उत्पन्न कुंकुम को सुगन्धित तेल में डालकर उसका लेप तैयार करा कर उसका राजा शीतकाल में अनुलेपन करे।[3] इसके अतिरिक्त वस्त्र एवं भूषा के अनुसार ही अपने शरीर पर अंगराग का लेप करे—

वस्त्रभूषणानुसारेण श्रृङ्गारांगविलेपनम् ॥[४]

इन अनेक प्रकार के सुगन्धित एवं अनेक सुन्दर वर्णोंवाले लेपों को राजा अपने मस्तक, बाहुशिखर, वक्षःस्थल तथा उदर पर प्रत्येक ऋतु के अनुसार लगाता था। इससे उसके शरीर की शोभा एवं कान्ति की वृद्धि होती थी।[५] इन सभी विलेपनों को सोमेश्वर ने सुन्दर स्त्रियों के हाथ से ही शरीर पर लगवाने का आदेश दिया है—

---

१. वही ३।५।९९३-९९५। २. वही ३।५।९९६-१००४।

३. उत्पलभासितं लेपः शरत्काले प्रशस्यते।
... ...
सुगंधितैरसंयुक्तं शीतकालेऽनुलेपनम्।
... ... ॥
मानसो० ३।५।१००५-१००६

४. वही ३।५।१००६। ५. वही ३।५।१००७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततः समाचरेद्भूपः कान्ताकरमनोहरम् ॥[1]

ऋतुओं के अनुसार इस प्रकार के विभिन्न विलेपनों का वर्णन सोमेश्वर के वैज्ञानिक स्वास्थ्य विषयक ज्ञान को प्रकट करता है।

विलेपन की यह क्रिया भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित है। विलेपन के अनेक प्रसंग पुराणों में प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में कुब्जा के शृंगार के वर्णन के प्रसंग में एक स्थल पर ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

देह्यावयोरंगविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते नचिराद् भविष्यति ॥[2]

पुराणकाल में शरीर पर कुंकुम, अङ्गराग तथा चन्दन आदि का लेप करने की प्रथा अधिक प्रचलित थी—

... ... ।

आसिंचती कुकुमरूषितौ स्तनौ तस्थावघोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥[3]

बुद्धकालीन समाज में गंध तथा विलेपनादि का अधिक प्रयोग होता था, किन्तु गौतम ने बौद्ध भिक्षु के लिए इन वस्तुओं के प्रयोग करने का निषेध किया है—

······गंध-विलेपन-धारण-मंडन-विभूसनट्ठाना पटिविरतो समणो गोतमो ॥[4]

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर भी विलेपन के निषेध का प्रसंग प्राप्त होता है—

सेय्यथीदं···अंजनं···गन्ध-विलेपनं-मुक्खचुण्णकं मुखलेपनं······दीघ-दासानि इति वा, इति······समणो गोतमो ॥[5]

यह प्रसंग इस बात को पूर्णरूप से स्पष्ट करते हैं कि उस समय में समाज में श्रृङ्गार तथा विलेपनादि अधिक मात्रा में प्रचलित था, इसी कारण गौतम ने विशेषरूप से श्रमण के लिए इन वस्तुओं को त्यागने का आदेश दिया है। बुद्ध के समय में लेप करने में कस्तूरी, चन्दन, अगरु तथा केसर का ही प्रयोग विशेषरूप से होता था। बौद्ध-साहित्य में पिप्पली ग्राम में रहनेवाले एक निर्धन ब्राह्मण के विषय में जौ के चूर्ण का शरीर पर लेप करने का प्रसंग प्राप्त होता है।[6]

वात्स्यायन ने भी कामसूत्र में विलेपन करने का सर्वप्रथम पदार्थ अनुलेपन बताया है, जो सुगन्धित तेल में मिलाकर तैयार किया जाता था—

---

१. वही ३।५।९८१। २. श्रीमद्भागवत पु० १०।४२।२।
३. श्रीमद्भागवत पु० १०।६०।२३।
४. दीघनिकाय, ब्रह्मजालसुत्त १० पृ० ६।
५ वही १६ दृ० ८।
६. थेरगाथा, संयुक्त निकाय तथा अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा में।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अच्छीकृतं चन्दनमन्यद्वानुलेपनं...॥[1]

कामसूत्र में नागरिक के लिए प्रतिदिन लेप करने का विधान दिया है।[2] जयमंगला टीका में भी अनुलेपन के विषय में इस प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है—

मात्रयेति, प्रभूतानुलेपनादिग्रहणाद्नागरकः स्यात् , कार्यानुष्ठाने प्रस्तुत्वात् ॥ किन्तु वात्स्यायन के समय में अन्य वस्तुओं के साथ-साथ चन्दन के लेप का प्रयोग अधिक होता था तथा स्त्री तथा पुरुष दोनों ही विलेपन करते थे।

संस्कृत-साहित्य में स्त्री तथा पुरुष दोनों के शरीर पर किए जानेवाले लेपों का वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है। आजकल भी यह प्रथा लुप्त नहीं हुई है। वर्तमान काल में भी स्त्री तथा पुरुष अनेक प्रकार के तेल तथा सुगन्धित पदार्थों से बने हुए लेपों का प्रयोग करते हैं।

अतः प्रारम्भ काल से ही भारत में यह साधारण-सी प्रथा रही है, किन्तु सोमेश्वर ने जो विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न प्रकार के किए जाने वाले लेपों के नामों का उल्लेख किया है उनमें से सम्भवतः उनके समय में ग्रीष्मकाल में सन्ध्या तथा हेमन्त एवं शिशिरकाल में पुंल्लिग नाम के विलेपन का प्रयोग विशेष रूप से होता होगा। यह प्रसंग सोमेश्वर के समय की विशेषता को प्रकट करता है। राजा तथा प्रजा दोनों ही सुख एवं शान्तिपूर्वक अपना समय व्यतीत करते थे और इसी कारण वे सभी अपने शरीर को विशेषरूप से सुन्दर एवं आकर्षक बनाने के लिए अनेक प्रकार के विलेपनों का प्रयोग करते थे।

वस्त्रोपभोग

उचित प्रकार से विलेपन कर चुकने के पश्चात् सोमेश्वर महाराज ने राजा के लिए सुन्दर वस्त्र धारण करने का आदेश दिया है। उसी का विस्तृत वर्णन वस्त्रोपभोग के अन्तर्गत हुआ है। इस प्रकरण में सर्वप्रथम सोमेश्वर ने नवीन वस्त्र धारण करने के लिए अनेक तिथियों एवं वारों के उल्लेख के साथ ही साथ उनके फल को भी बतलाया है। अश्विनी नक्षत्र में धारण किया हुआ वस्त्र अन्न-वस्त्रों का देने वाला, रोहिणी नक्षत्र का वस्त्र धन की वृद्धि करने वाला, पुनर्वसु का वस्त्र धन प्राप्ति, पुष्य का वस्त्र सुख प्रदान करने वाला, उत्तरा का वस्त्र यशोलाभ, हस्ती का वस्त्र कार्य में सिद्धि प्रदान करने वाला, चित्रा का वस्त्र शुभसम्प्राप्ति कराने वाला, स्वाती का सौभाग्यसम्पदा का देने वाला, विशाखा का वस्त्र प्रीति को उत्पन्न करने वाला, मित्र नक्षत्र का वस्त्र मित्र का समागम कराने वाला, उत्तराषाढ़ा का वस्त्र सन्तोष प्रदान करने वाला,

---

१. कामसूत्र सू० १४। २. कामसूत्र सू० १६, पृ० ४५.४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धनिष्ठा का वस्त्र धान्यपूर्ण करने वाला, उत्तरा का वस्त्र शुभप्राप्ति कराने वाला तथा रेवती नक्षत्र में धारण किया हुआ नवीन वस्त्र रत्न की वृद्धि करने वाला होता है।[१]

नक्षत्रों के पश्चात् नवीन वस्त्र धारण करने के लिए वारों एवं उनके फलों का उल्लेख हुआ है। इसमें नवीन वस्त्र धारण करने के लिए विशेषतः बुध, गुरु तथा शुक्र इन तीन वारों का उल्लेख हुआ है। बुधवार को नवीन वस्त्र धारण करने से भूरि धन की प्राप्ति होती है। गुरुवार को धारण किया हुआ वस्त्र प्रजा की वृद्धि का कारण होता है तथा शुक्रवार का वस्त्र आयु की वृद्धि करता है—

... ...
बुधे धनागमं विद्यात्प्रजावृद्धिर्भवेद्गुरौ।
आयुः प्रवर्धते शुक्रे नूतने वस्त्रधारणे।
... ... ॥[२]

उपर्युक्त नक्षत्रों तथा वारों के अतिरिक्त सोमेश्वर ने ऐसे भी अवसरों का वर्णन किया है जिन अवसरों पर किसी भी नक्षत्र एवं वार में नवीन वस्त्र धारण किया जा सकता है—

गृहोत्सवे विवाहे च परभूपालसंगमे
उत्सवेषु च सर्वेषु गीतनृत्यविनोदने।
दानकर्मणि यज्ञे च तथा युद्धमहोत्सवे
जये नवाम्बरं धार्यं न दुष्यति कदाचन॥[३]

अर्थात् गृहोत्सव, विवाह, अन्य राजा से मिलना, सभी प्रकार के उत्सवों, गीत, नृत्य, विनोद, दानकर्म, यज्ञ, युद्ध महोत्सव तथा विजय आदि ऐसे अवसर हैं जिन अवसरों पर नक्षत्रादि का ध्यान न कर नवीन वस्त्र धारण करना दोषपूर्ण नहीं माना जाता।

वस्त्रों के धारण करने का विधान सोमेश्वर ने विलेपन के पश्चात् दिया है।

१. अश्विनी वस्त्रदा प्रोक्ता रोहिणी धनवर्धिनी।
... ...
उत्तरायां शुभप्राप्तिः रेवती रत्नवृद्धिकृत्॥
मानसो० ३।६।१००९–१०१२।
२. मानसो० ३।६।१०१३–१४।
३. वही ३।५।१०१४–१०१६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसी कारण शरीर पर विलेपन कर लेने के पश्चात् राजा वस्त्रभाण्डाधिकारी को बुलाकर उससे अनेक वस्त्र लाने की आज्ञा देता था।[1]

यह श्लोक इस बात को प्रकट करता है कि राजा के नित्य पहनने वाले कपड़ों को तैयार रखने तथा उसे पहनाने के लिए भी एक अधिकारी नियुक्त था जो वस्त्रभाण्डाधिकारी के नाम से प्रसिद्ध था।

इसके पश्चात् राजा के पहनने योग्य वस्त्रों का वर्णन हुआ है जिसके अन्तर्गत नाना देशों के बने हुए उत्तम एवं बहुमूल्य वस्त्रों का उल्लेख हुआ है।[2] श्वेत रेखाओं से युक्त, नाना वर्ण की रेखाओं वाले, पञ्चवर्ण वाले, सुरम्य चक्र रेखा से युक्त, तीन रेखाओं से संयुक्त, ऊर्ध्व भाग में दूर-दूर रेखा वाले किन्तु मध्य में सूक्ष्म रेखा वाले, अंगुल भर दूर रेखा वाले, मध्य में सूक्ष्म रेखा से युक्त या दो अंगुल दूर रेखा वाले तथा कहीं-कहीं वृत्त रेखा वाले, चतुष्कोण की रेखा वाले, बिन्दु से युक्त, मजबूत, मनोरम, पतले, घने तथा बिरले, हल्के, बहुमूल्य, भारी, मोटे, प्रक्षालित किए हुए यन्त्र द्वारा रञ्जित, रक्त तन्तुओं से युक्त, अनेक वर्ण द्वारा बनाये गए, मंजीठ के रस से लाल किए हुए, लाक्षाद्रव से युक्त, कुसुम्भ के रस से लिप्त, सिन्दुर से अरुण किए हुए, अभय रस से काले किए हुए, नीले, शुक के पिच्छ के सदृश वर्ण वाले, कोयल के कण्ठ की छवि को धारण करने वाले तथा अनेक प्रकार के तथा विविध आकार वाले विचित्र वस्त्रों का प्रसंग प्राप्त होता है।[3]

इन अनेक प्रकार के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने उन्हें राजा को ऋतुओं के अनुसार पहनने का आदेश दिया है। वसन्त में राजा रेशम तथा कर्पास के सूक्ष्म वस्त्र धारण करे। ग्रीष्म ऋतु में सूक्ष्म तथा विविध सूत्रों से निर्मित श्वेत वस्त्रों को धारण करे।[4] वर्षाकाल में मजीठ से लाल किए गए तथा पाटल, धूम्र आदि वर्ण के वस्त्र धारण करे—

> माञ्जिष्ठानि च रक्तानि प्रावृट्काले विधारयेत्।
> पाटलान्यभिरामाणि धूम्राणि मधुराणि च॥[5]

शरत्काल में राजा भव्य घने तथा अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्रों को धारण करे तथा अगिंका तथा पटीजात शीतकाल में धारण करे[6]।

---

१. कृतानुलेपो राजेन्द्रो वस्त्रभाण्डाविकारिणम् ॥
मानसो० ४।६।१०१६।

२. मानसो० ३।६।१०१७–१०२०।

३. मानसो० ३।६।१०२१–१०३३।

४. वही ३।६।१०३४–३५।

५. वही ३।६।१०३६।

६. वही ३।६।१०३७–३८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार ऋतुओं के अनुसार शीत वायु के चलने पर, प्रयाण के समय, जलक्रीड़ा के समय, नाना देशों से आये हुए अत्यन्त बहुमूल्य श्रेष्ठ एवं अनेक वर्णवाले वस्त्रों को शृंगारपूर्वक धारण करना ही वस्त्रोपभोग है।[१]

इस वस्त्रोपभोग के प्रसंग को पढ़कर ऐसा विदित होता है कि राजा बहुत ही सुन्दर वस्त्रों को धारण करता था जिनमें विशेषरूप से रंगे हुए वस्त्र होते थे। उस समय में रंगाई का काम बहुत होता था और अनेक प्रकार के रंग एवं छापों का प्रयोग होता था जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं—

रंगे हुए वस्त्र

रंगे हुए वस्त्रों को सोमेश्वर ने नाना प्रकार के वर्णों की रेखाओं से युक्त बतलाया है। इससे विदित होता है कि सम्भवतः इन वस्त्रों को बांध कर रँगा जाता होगा। अंग्रेज़ी में यह रंगाई टाई एंड डाई (Tie and dye) के नाम से प्रसिद्ध है और संस्कृत में उसके लिए भक्ति शब्द था। गुजरात में इसका रूप भात (भक्ति-भत्ति-भात) है। पाटन में जो पटोलों में रंगीन सूत की बिनाई द्वारा अनेक प्रकार की आकृतियां चित्रित की जाती हैं उनके लिए भी भात शब्द का ही प्रयोग होता है उदाहरणार्थ नारीकुंजर भात, पानभात, रतनचौक भात, फुलवाड़ी भात, चौकड़ी भात, छाबड़ी भात, रास भात बांघकुंवर भात[२]। इस रंगाई के वस्त्र गुजरात, राजस्थान तथा पंजाब आदि में प्रसिद्ध हैं। यह वस्त्र सम्भवतः डोरे बांध बांध कर रंगे जाते होंगे और सूखने पर डोरा खोल दिया जाता होगा।

इसी प्रकार पांच रंगों से रंगे हुए पंचरंगे वस्त्र भी राजा पहनता था।

छपाई के वस्त्र

छपाई के वस्त्रों में अनेक प्रकार के छापों को प्रयोग होता था ऐसा प्राप्त प्रसंग से विदित होता है –

१—वृत्ताकार छपाई २—चतुष्कोण छपाई
३—चक्र की छपाई ४—बिन्दुयुक्त छपाई

---

५. शीतवाते प्रयाणे च वापद्धौं वारिखेलने।
सूक्ष्माणि बहुमूल्यानि वर्णाढ्यानि वराणि च॥
नानाद्वीपसमुत्थानि शृंगारे धारयेन्नृपः।
एवं यद्विभूयाद्वस्त्रं वस्त्रभोगः प्रकीर्तितः॥
मानसो० ३।६।१०३९-४०।

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—हर्षचरित—
एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ७४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ये सभी वस्त्र अनेक प्रकार के वर्णों के होते थे। इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने कई प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है—क्षौम, कार्पासक, रोमज, अंशुक। अमरकोष में 'क्षौमं दुकूलं स्यात्'[1] द्वारा दुकूल को क्षौम का ही पर्यायवाची शब्द माना है। क्षौम वस्त्र का प्राचीनकाल से ही भारतीय प्रयोग करते रहे हैं और और यह सम्भवतः क्षुमा अथवा अलसी नामक पौधे के रेशों से बनता था। इसके अतिरिक्त भांग, सन, पाट अथवा पटसन के रेशों से भी वस्त्रों का निर्माण होता था किन्तु वे अधिक मुलायम न होते थे। चीनी भाषा में एक प्रकार की घास के रेशे से तैयार किये जाने वाले वस्त्र के लिए छुम शब्द का प्रयोग होता था—

.........Thus the words Chi'u or Chiuma are used for the cloth made from the Chinese Boehmeria Niea...[2]

इसी प्रकार की चीनी घास भारतवर्ष में आसाम तथा बंगाल में उत्पन्न होती थी और इसे कांखुर कहा जाता था। सोमेश्वर ने भी वंगदेश में बने वस्त्रों का उल्लेख किया है।[3]

सभी देश के वस्त्रों के साथ 'महाचीनभवानि च'[4] का प्रयोग भी सोमेश्वर ने किया है। इससे विदित होता है कि चीनांशुक को भी राजा धारण करता था। प्राचीनकाल से ही भारत में दो प्रकार का अंशुक प्रयोग में लाया गया है १—भारतीयांशुक, २—चीनांशुक। कालिदास ने भी चीनांशुक का प्रसंग दिया है।[5] वह अंशुक अत्यन्त मुलायम सुन्दर रेशमी वस्त्र था। जैन आगम[6] में पट्ट, मलय, अंसुग, चीनांसुय तथा किमिराग इन पांच प्रकार के कीटज वस्त्रों में भी चीनांशुक नाम रेशमी वस्त्रों में लिया गया है। रोमज वस्त्र सम्भवतः पशुओं के रोम से बने हुए ऊनी वस्त्र होते थे।

माल्योपभोग

वस्त्रों को सुचारु रूप से धारण कर लेने के पश्चात् सोमेश्वर ने माला को धारण करने का आदेश दिया है। इसी के सम्बन्ध में उन्होंने माल्योपभोग

---

१. अमरकोश २।६।११३।

२. Vivi Sylwan, Investigations of Silk from Edsen-col and Lop-nor, Stolkholm, 1949.

३. वंगदेशभवानि च। मानसो० ३।६।१०२०।

४. मानसो० ३।६।१०२०।

५. चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य—अभिज्ञानशाकुन्तल।

६. जैन आगम अनुयोगद्वारसूत्र ३७, श्री जगदीश चन्द्र जैन कृत "लाइफ इन ऐंशियेंट इंडिया ऐज़ डिपिक्टेड इन जैन कैनन" पृ० १२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का वर्णन किया है। माला को गूंथने में चम्पक, मल्लिका, उत्पल, सुरभी, बकुल, मालती आदि पुष्पों का प्रयोग होता था। इन्हीं पुष्पों द्वारा अनेक प्रकार की मालाओं का निर्माण होता था। चम्पक तथा मल्लिका के पुष्पों को नील कमल के पुष्पों में मिलाकर माला बनावे अथवा सुगन्धित तथा रक्त वर्ण के चम्पक पुष्प को रक्त एवं सुगन्धित मल्लिका के पुष्प के साथ मिला कर माला बनावे, ऐसा सोमेश्वर ने आदेश दिया है। इसके अतिरिक्त मल्लिका तथा बकुल के पुष्प को मिलाकर, मल्लिका और उत्पल को मिलाकर, मालती तथा मल्लिका पुष्प को मिलाकर, मालती तथा पाटल पुष्प को मिलाकर, मालती और बकुल पुष्प को मिलाकर अथवा मालती तथा सुरभी पुष्प को मिलाकर शतपत्र तैयार करने का प्रसंग मानसोल्लास में प्राप्त होता है।[१] यह शतपत्र अमरुक, पाटल, मल्लिका अथवा मल्लिका की गुच्छियों से पूर्ण होना चाहिए।[२] इस प्रकार के माल्य को राजा अपने सिर पर अथवा कंठ में धारण करता था।[३] किन्तु विशेषरूप से यह माला सिर पर ही धारण की जाती थी—

... ...

विभर्ति माल्यं शिरसा नृपतिः स्वानुसारतः ॥[४]

इतने प्रकार की बनाई जाने वाली मालाओं का यह प्रसंग इस बात को पूर्णरूप से प्रकट करता है कि सोमेश्वर के समय में प्रजा का साधारण से साधारण व्यक्ति भी पुष्प मालाओं से प्रेम करता था और विशेषरूप से माला शरीर को सुन्दर बनाने का साधन थी।

पुष्प तथा पुष्प से निर्मित मालाओं द्वारा अपने शरीर को सुसज्जित करने की प्रथा भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित है। माला धारण करने का प्रसंग वात्स्यायन के कामसूत्र में प्राप्त होता है। वात्स्यायन के समय में प्रातःकाल उठकर दन्तधावनादि की क्रिया से निवृत्त होकर तथा शरीर पर लेपादि कर नागरिक माला धारण कर तब कोई कार्य करने के लिए निकलता था—

स प्रातरुत्थाय कृतनित्यकृत्यः गृहीतदन्तधावनः मात्रयाऽनुलेपनं धूपं स्रजमिति गृहीत्वा दत्वा सिक्थकमलक्तमं च......कार्यान्यनुतिष्ठेत् ॥[५]

इसके अतिरिक्त सिर पर भी माला धारण की जाती थी—

पुष्पास्तरणम्, माल्यग्रथनविकल्पाः, शेखरकापीडयोजनम्। कर्णपत्रभंगाः ... ...॥[६]

---

१. मानसो० ३।७।१०४२.४५।
२. वही ३।७।१०४६।
३. वही ३।७।१०४७ ४८।
४. वही ३।७।१०४७।
५. कामसूत्र सू० १६।
६. कामसूत्र, पृ० ३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गौतम बुद्ध के समय में भी नागरिक जन पुष्पमालाओं से अधिक रुचि रखते थे। इसी प्रकार गौतम बुद्ध ने श्रमण के लिए माल्य-धारण का निषेध किया है![1] रत्नावली में अंतःपुर की वाटिकाओं में लगी हुई चम्पक, बकुल, मालती तथा पाटलादि पुष्पों की वीथियों का वर्णन हुआ है। इन सभी पुष्पों की वीथियां इतने सुचारु रूप से लगाई गई थीं कि अंधकार में भी पुष्प पहचानने में किसी को भ्रम न होता था—

पालीयं चम्पकानां नियतमयसौ सुन्दरः सिंधुवारः।
सान्द्रा वीथी तथेयं वकुलविटपिनां पाटला पंक्तिरेषा॥
आघ्रायाघ्राय गन्धं विविधमधिगतैः पादपैरेवमस्मिन्।
व्यक्तिं पंथाः प्रयाति द्विगुणगुणतरतमोनिह्नुतोऽप्येष चिह्नैः[2]॥

नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत चार प्रकार की मालाओं का उल्लेख हुआ है :—

१. आवेध्य
२. निबन्धनीय
३. प्रक्षेप
४. आरोप्य

यह चारों प्रकार की मालायें गुथी तथा न गुथी होने से दो दो प्रकार होती हैं। इस प्रकार मालायें कुल आठ प्रकार की होती हैं[3]—

१. वेष्टित...जो माला संपूर्ण शरीर को ढक ले।

२. वितत...जो शरीर के एक भाग में ही विस्तृत रहे।

३. संघात्य...जो माला अनेक पुष्प समूहों से गुथी हुई हो।

४. ग्रंथिमत्...जिस माला के बीच बीच में विषम गांठे हों।

५. अवलम्बित...जो माला स्पष्ट हो अर्थात् पूर्ण रूप से दीखती हो।

६. मुक्तक...जो माला केवल एक ही प्रकार के पुष्पों से गुंथी हुई हो।

७. मंजरी...जब अनेक पुष्पमयी लताओं को माला रूप में धारण किया जाय। संभवतः इसी प्रकार की माला वनमाला के नाम से प्रसिद्ध है।

८. स्तवक...जब पुष्प गुच्छों की माला के रूप में धारण किया जाय।

सोमेश्वर ने इनमें से संभवतः संघात्य, वेष्टित तथा मुक्तक मालाओं का ही वर्णन किया है। संघात्य माला के अन्तर्गत उन्होंने मालती, मल्लिका आदि अनेक पुष्प-पुंजों से माला बनाने का आदेश दिया है। जो माला सिर पर तथा कंठ में धारण की जाती थी वह संपूर्ण सिर तथा पूरे वक्षःस्थल को ढक लेती थी, इसी कारण वह माला वेष्टित हो सकती है। केवल एक ही प्रकार

---

१. माला गन्ध......पटिविरतो समणो गौतमो॥
दीघनीकाय ब्रह्मजालसुत्त सू० १०, पृ० ६

२. रत्नावली ३।५३।
३. नाटयशास्त्र अध्याय २३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के पुष्पों द्वारा बनाने वाली जिस माला का सोमेश्वर ने वर्णन किया है वह संभवतः मुक्तक माला हो सकती है। किन्तु सोमेश्वर ने मानसोल्लास में इन मालाओं के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है।

माला साधारणतः उस समय में राजाओं के लिए अपने शरीर को सुसज्जित करने एवं सुगंधित बनाने का पूर्ण साधन थी। उस समय के राजाओं का पुष्पों से अधिक प्रेम था। नाट्यशास्त्र के अनुसार यौवन की प्रारम्भिक वयः-संधि की अवस्था में स्त्रियों में धम्मिल (जूड़क रचना), केश विन्यास, वस्त्र निबन्धन, दन्त-परिकर्म, परिष्करण, दर्पणेक्षण, पुष्प-चयन, माल्यधारण, जल क्रीड़ा तथा लज्जा आदि चेष्टायें उत्पन्न होती हैं।[1] वराहमिहिर इस मत का अनुमोदन नहीं करते। उनका कथन है—

रत्नानि विभूषयन्ति योषा भूष्यते वनिता न रत्नकान्त्या।
चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनांगनांगसंगात्॥[2]

माला धारण करने की प्रथा पुराण-काल में भी अधिकांशतः प्रचलित थी, क्योंकि माला धारण करने के अनेक प्रसंग पुराणों में प्राप्त होते हैं।[3]

सोमेश्वर ने जो 'बिभर्ति माल्यं शिरसा नृपतिः स्वानुसारतः,[4] का प्रयोग किया है, इससे विदित होता है कि दक्षिण में उस समय भी यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। महर्षि वाल्मीकि ने श्रीरामचन्द्रजी के चित्रकूट पर्वत पर निवास करने के प्रसंग में सिर पर पुष्प माला धारण करने का उल्लेख किया है—

कुर्वन्ति कुसुमापीडाः शिरस्सु सुरभीनमी।
मेघप्रकाशैः फलकैर्दाक्षिणात्या नरा यथा॥[5]

इस प्रसंग से भी विदित होता है कि रामायण काल में दक्षिण में सिर पर माला धारण की जाती थी। अतः यह सिर पर माला धारण करने की प्रथा सोमेश्वर की स्थानीय विशेषता को प्रकट करती है। आजकल भी दक्षिण प्रदेश में सिर पर जूड़ा बनाकर उस पर पुष्पमाला धारण करने की प्रथा है। मद्रास में शिखा में पुष्प माला धारण की जाती है।

सोमेश्वर ने माल्योपभोग प्रकरण के अन्तर्गत सिर एवं कंठ के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों में धारण की जाने वाली मालाओं का वर्णन नहीं किया

---

१. वही अध्याय २३। २. बृहत्संहिता ७४।२।

३. श्रीमद्भागवत पु० १०।६४।२९, १०।४१।४४, १०।२२।३, १०।६६।१३ तथा ९।१०।४२।

४. मानसोल्लास ३।७।१०४७। ५. वाल्मीकि० रा० २।९३।१३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। यद्यपि माला धारण करना एक साधारण कृत्य है, किन्तु इसे भी सोमेश्वर ने उपभोग के अन्तर्गत लिया है।

भूषोपभोग

आभूषण भी प्राचीन काल में राजा की विलासता, ऐश्वर्य एवं वैभव के प्रतीक थे। इसी कारण सोमेश्वर ने माल्योपभोग के पश्चात् राजा के धारण करने योग्य आभूषणों का वर्णन किया है जिनके बनाने में विशेष रूप से सोना, चांदी, हीरा, पन्ना, मौक्तिक, मणि तथा अनेक प्रकार के बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग होता था। इस प्रकरण के प्रारम्भ में सोमेश्वर ने अनेक प्रकार की मुक्ताओं, रत्नों, मणियां एवं वस्त्रों के लक्षण तथा जातियों का वर्णन किया है[1]।

इन लक्षणादि के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने इस प्रकरण में तीन प्रकार के आभूषणों का वर्णन किया है[1]—

१—स्त्री पुरुषों के समान आभूषण।

२—स्त्रियों के आभूषण।

३—पुरुषों के आभूषण।

स्त्री-पुरुषों के समान आभूषण—

स्त्री-पुरुषों के समान आभूषण निम्नलिखित हैं—

१. एकावली—विशाल मुक्ताओं द्वारा बनी हुई एक लड़ की माला एकावली कहलाती थी। इसे सोमेश्वर ने अत्यन्त श्रेष्ठ माना है—

स्थूलमुक्ताफलैः कार्या कण्ठे त्वेकावली वरा॥[2]

२. हार—गले का दूसरा आभूषण हार है जिसे स्त्रीपुरुष दोनों ही पहनते थे। बीच में मुक्ताओं को करके तीन, पांच तथा सप्त सरों को बनाकर उपान्त में सुमनोहर नीलमणि से मिलाए। इन सब को सुवर्ण की मृणाली नाल द्वारा बनाकर पंक्ति रूप में स्थापित करे। इस प्रकार से सुवर्ण मृणाली द्वारा क्रमशः गुथी हुई समान लड़ों वाली माला हार कहलाती थी।

३. वर्णसर—नील माणिक्य में मिलाकर पूर्व क्रम से बनावे। यह वर्णसर देखने में अत्यन्त मनोहर होता था।

४. ब्रह्मसूत्र—सर। लड़। हीन सुवर्ण मृणाल से सुसंहत अनाभिलम्बित आभूषण ब्रह्मसूत्र कहलाता था।

एत एव सरो हीना मृणालीभिः सुसंहताः।
अनाभिलम्बिता भूषा ब्रह्मसूत्रमितीरिता॥[3]

---

१. मानसो० ३।८।१०४८–००६५। २. वही ३।८।१०६६।
३. वही ३।८।१०७२-७३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

५. पदक—सुवर्ण-निर्मित रत्नजटित हरिन्माणिक्य (पन्ना) तथा नील माणिक्य एवं मणियों द्वारा नायक के मध्य प्रदेश को आवेष्टित करने वाला वक्षःस्थल का आभूषण पदक कहलाता था।

६. केयूरक—सिंह रत्न के समान आकार वाला नाना रत्नों से चित्रित सूसक के आलम्बन से युक्त केयूर नामक आभूषण बाहुदण्ड पर धारण किया जाता था—

सूसकैर्लम्बनैर्युक्तं केयूरं बाहुभूषणम्।[1]

७. कटक—सुवर्ण तथा मणि से पूर्ण, मुक्ता जाल से पूर्ण, पेचक पिच्छ से संयुक्त बाहुसन्धि का आभूषण जो सुवर्ण का बना होता था तथा चारों ओर से रत्नों से सुशोभित होता था।

गले, वक्षःस्थल तथा हस्ताभूषणों के वर्णन के पश्चात् अंगुलियों में पहनने योग्य अंगुलीयक का वर्णन किया है। उस समय अनेक प्रकार की सुन्दर अंगूठियों का प्रयोग होता था।

८. द्विहीरक (अंगुलीयक)—इसमें दो वज्रों के मध्य में हरिन्माणिक्य तथा नीलमणि होती थी।

९. वज्र—अरकोण से निवेशित, वज्र से सुशोभित मध्य में रत्न से जटित वज्र कहलाती थी।

१०. रविमण्डल—गोलाकार वज्रों से वेष्टित, मध्य में मणियों से युक्त रवि मण्डल कहलाती थी।

११. नन्द्यावर्त—आकार में चौकोर क्रमशः उन्नत होती हुई वज्र के मध्य मणियों से सुशोभित अंगूठी नन्द्यावर्त कहलाती थी।

१२. नवग्रह—माणिक्य की सुरंग, मुक्ता, प्रवाल, मरकत, पुष्पराग, वज्र, नील, गोमेद तथा वैडूर्य इन नौ प्रकार के रत्नों द्वारा निर्मित अंगूठी नवग्रह कहलाती थी।

१३. वेष्टक—वज्र से वेष्टित वज्रवेष्टक तथा अन्य रत्नों से पूर्ण अंगूठी वेष्टक कहलाती थी।

१४. त्रिहीरक—दो हीरों के मध्य जब अत्यन्त उत्तम एवं बहुमूल्य हीरा जड़ा जाय ऐसी अंगूठी त्रिहीरक कहलाती थी।

१५. शक्तिमुद्रिका—यह अंगुली के वलय में वज्र से आवेष्टित होती थी। इन अंगूठियों के अतिरिक्त अन्य रत्नों द्वारा जटित अनेक वर्ण एवं आकार

---

१. वही ३।८।१०७७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाली शुभ मुद्रिकायें बनती थीं।[1] कर्णों के आभूषणों में निम्नलिखित आभूषण थे[2]—

१६. मुक्ताताडक—जो केवल सुन्दर मुक्ताओं द्वारा बनता था। सुवर्ण के वलय में केवल मुक्ता जड़कर यह बनता था।

१७. द्विराजिक—दो वलयों के मध्य जिसमें मुक्ताफल विराजित हों और मध्य में नीलमणि जटित हो। इसी प्रकार त्रिराजिक भी बनती थी।

१८. पूर्णमध्य—जिसके मध्य का पूर्ण भाग मुक्ताओं द्वारा जड़ा हुआ हो।

१९. वज्रगर्भ—जिसमें बाहर मौक्तिकों की पंक्ति हो तथा वज्र भी बीच में जड़ा हो।

२०. मण्डन—जो बाहर से मुक्ता पंक्ति से सुशोभित मध्य में मणियों से संयुक्त वज्र से जटित होती थी। इसी प्रकार जो जो मणि मध्य में रहता था उसी की संज्ञा देकर उसका नाम पड़ता था।

२१. कुण्डल—जिसमें वज्र पंक्ति सोपान की भांति जटित हो।

इतने आभूषणों के वर्णन के पश्चात सोमेश्वर स्त्री-पुरुषों के अलग-अलग आभूषणों का वर्णन करते हैं।[3]

स्त्रियों के आभूषण[4]

१. हंसतिलक—यह अश्वत्थ पत्र की शंका को उत्पन्न करने वाले सुवर्ण-मिश्रित माणिक्य वज्रादि से खचित, मुक्ताओं से युक्त होता था। मुक्ताओं के पार्श्व में सूसक विराजमान रहता था। और उसके वाह्य भाग में अनेक प्रकार के रत्न जड़े होते थे। इस आभूषण के उपर अनेक प्रकार के वज्र, मुक्ता तथा माणिक्यों के बन्धन बने होते थे। इस प्रकार का बना हुआ आभूषण हंसतिलक कहलाता था। इसे स्त्रियां अपने सीमन्त (बालों पर) में धारण करती थीं।[5]

२. दण्डक—यह कञ्चन पट्टों से बंधा हुआ वलय की आकृति का होता था। इसके अर्ध्व भाव में मुक्ताजाल बना होता था।

३. चूडामण्डन—दण्डक से कुछ बड़ा बनाया गया आभूषण चूडामण्डन कहलाता था। यह अत्यन्त उत्तम सिर का आभूषण माना गया है। यह आभूषण केतकी पुष्प की शंका को उत्पन्न करने वाला स्वर्ण का बना होता था और दण्डक आभूषण के ऊपर पहना जाता था—

---

१. वही ३।८।१०८९-९० । २. वही ३।८।१०९१-९७ ।
३. वही ३।८।१९८ । ४. वही ३।८।११०२-२६
५. वही ३।८।११०२ "तदिदं हंसतिलकं योषित्सीमन्तभूषणम्"

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्रमशो वर्धमानं तच्चूडामण्डनमुत्तमम् ॥
केतकीदलसंकाशं कनत्काञ्चनकल्पितम् ।
दण्डकस्योर्ध्वभागस्य भूषणं तदुदाहृतम् ॥[1]

४. पद्म—सुवर्ण का बना हुआ पद्म की आकृति वाला अनेक रत्नों से जटित आभूषण पद्म कहलाता था।

चूडिभूषण—सुवर्ण निर्मित सुन्दर पुष्पों से युक्त तथा बड़े माणिक्य, नीलमणि एवं मुक्ता की लड़ियों से सुशोभित आभूषण चूडि कहलाता था।

६. मुकुल—मुक्ता, नील मणि द्वारा बना हुआ पिचुमन्द के आकार वाला माणिक्य, गारुड़ हीरक आदि मणियों से जटित आभूषण मुकुल कहलाता था। यह स्त्रियों के कर्ण का प्रिय भूषण था।[2]

७. सारिका—जिसके बाह्य भाग में नील निर्मित लटकने वाली लड़ी लगी होती थी और नौ तथा दस स्थूल मुक्ताओं को डालकर गले के बराबर के आकार का बनता था। इसे सारिका कहते थे। इसे स्त्रियां अपने गले-प्रदेश में धारण करती थीं।

८. बाहुबलय—यह स्वर्ण से निर्मित रत्न, मुक्ता, नील माणिक्य से जटित सिंह के मुख के आकार का बना होता था। इसे स्त्रियां हाथों में धारण करती थीं।

९. चूडक—सूक्ष्म काञ्चन की शलाका से पूर्ण अनेक प्रकार के बहुमूल्य वज्र, मुक्ता आदि से जटित आभूषण चूडक कहलाता था। यह स्त्रियों की शोभा की वृद्धि करने वाला प्रकोष्ठ भाग में पहना जाने वाला आभूषण था—

अनेनैव प्रकारेण वज्रमाणिक्यमौक्तिकैः ।
चूडकं मण्डनं स्त्रीणां प्रकोष्ठस्य विभूषणम् ॥[3]

१०. अर्धचूडक—इसी प्रकार से अर्ध बलय से पूर्ण बनाया हुआ आभूषण अर्धचूडक कहलाता था—

अनेनैव प्रकारेण तदर्धेन विनिर्मितम् ।
अर्धचूडकमितिख्यातं स्त्रीणां प्रियतमं सदा ॥[4]

११. काञ्चीदाम—यह सुवर्ण से बना हुआ, रत्न जटित, लटकते हुए सूत्रों से आबद्ध, सुवर्ण की बनी हुई घर्घरिकाओं के शब्द से युक्त चार अंगुल के विस्तार के बराबर प्रमाण वाला आभूषण काञ्चीदाम कहलाता था। इसे स्त्रियां अपने कटि-प्रदेश में धारण करती थीं।

---

१. वही ३।८।११०३-४।
२. वही ३।८।११०७।
३. वही ३।८।१११४।
४. वही ३।८।१११५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१२. पादचूडक—हस्तचूडकवज्र का जंघा काण्ड के प्रमाण का बना हुआ नाना रत्नों से खचित आभूषण पादचूडक कहलाता था। इसे स्त्रियां पैरों में धारण करती थीं।

१३. कटक—सुवर्ण का बना हुआ तीन भागों में खण्डन किया हुआ, सन्धिप्रदेश में कील से जटित, सुवर्ण बिन्दु से पूर्ण चार, छः अथवा आठ पंक्तियों से युक्त शब्द करने वाला, कान्ति-युक्त अनेक रत्नों से जटित आभूषण कटक कहलाता था। इसे रानियां अपने पैरों में धारण करती थीं।

१४. पादघर्घरिका—तीन अथवा पांच अथवा अनेक रत्नों में जटित शृङ्खलाओं से युक्त, सन्धिप्रदेश में कील से जटित, नाद करने वाला अत्यन्त शोभायुक्त, आभूषण पादघर्घरिका कहलाता था।

१५. राढाका—पादघर्घरिका के रूप से कुछ समानता रखनेवाला ध्वनि-हीन पैरों का आभूषण राढाका कहलाता था—

ईदृग्रूपसमाकारा नानारत्नैर्विनिर्मिताः।
ध्वनिहीनाः सुशोभाढ्याः राढाकाः परिकीर्तिताः॥[1]

१६. अन्दुका—वक्र आकार वाला कटक के आकार का निर्मित आभूषण अन्दुका कहलाता था—

आयताश्च सुवक्राश्च कटकाकारनिर्मिताः।
अन्दुका इति विख्याता योषितां पादभूषणम्॥[2]

१७. यमला—काञ्चन से निर्मित स्थूल तथा ध्वनियुक्त आभूषण यमला कहलाता था। इसे स्त्रियां अपने पैरों की तर्जनी में धारण करती थी।

इस प्रकार के स्त्रियों द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों में धारण किए जाने वाले आभूषणों के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर पुरुषों के आभूषणों का वर्णन करते हैं[3]।

पुरुषों के आभूषण—

१. शेखर—यह आभूषण राजा के शिखर भाग को सुशोभित करता था।

२. मुकुल—मुकुल को आभा वाला शिर पर धारण किये जानेवाला आभूषण।

३. शिरोवेष्टन—केवल लड़ियों युक्त शिर के सम्पूर्ण भाग को सुशोभित करने वाला आभूषण शिरोवेष्टन कहलाता था।

इस प्रकार से यह तीन राजा के शिर पर धारण किए जाने वाले आभूषण

---

१. मानसो० ३।८।११२२। २. वही ३।८।११२५।

३. वही ३।८।११२७–२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

थे। इनके निर्माण में अनेक प्रकार के रत्नों, मणियों वज्रों एवं बहुमूल्य माणिक्यों का प्रयोग होता था।

४. दलक—सुवर्ण निर्मित, व्याघ्र पुच्छ से विनिर्मित, मुक्ता-माणिक्य से जटित आभूषण दलक था—

दलकं हेमरचितं व्याघ्रपुच्छविनिर्मितम्।
मुक्तामाणिक्यखचितं पुरुषाणां विभूषम् ॥[१]

इन सब प्रकार के दिव्य रत्नों को पवित्रतापूर्वक धारण करने से रत्नों के अधिदेवता संतुष्ट होते हैं और राजा को महती श्री की प्राप्ति होती है—

शुचिना भूषणं धार्यं दिव्यरत्नविनिर्मितम्।
रत्नाधिदेवतास्तुष्टा यच्छन्ति महतीं श्रियम् ॥[२]

इस प्रकार से प्रेयसी के चित्त के अनुकूल रुचि तथा शोभा से पूर्ण आभूषणों को राजा धारण करता था।

आभूषण धारण करना भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हो गया था और स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आभूषणों को धारण करते थे। पुराणों में स्त्री तथा पुरुषों के नूपुर, कुण्डल, कटिसूत्र, कटक, किरीट, केयूर, माला, हार आदि आभूषणों का उल्लेख हुआ है[३]।

वात्स्यायन के समय में भी स्त्रियों के साथ ही साथ समाज के सभी नागरिक आभूषणों को धारण करते थे[४]। आभूषण के बनने में सोना, चांदी, रजत, रत्न, मणि आदि अनेक बहुमूल्य वस्तुओं का प्रयोग होता था। बृहत्संहिता में सभी प्रकार के अलंकारों के लक्षण दिये हुए हैं[५]। बृहत्संहिता में नौ प्रकार के सोने का वर्णन हुआ है—

१—जांबूनद। २—शातकौम्भ। ३—हाटक। ४—वेणव। ५—शृंगी। ६—शुक्तिज। ७—जातरूप। ८—रसविद्ध। ९—आकर (खानों से उत्पन्न)। ये सभी प्रकार के सोने का प्रयोग आभूषण बनाने के समय होता था।

---

१. वही ३।८।११२९। २. वही ३।८।११३०।

३. श्रीमद्० पु० १०।११।३९। १०।४०।४८–५३, १०।३३।६–११ तथा १०।७०।११।

४. सार्वांगि कोऽलंकारयोगो—सू० का सूत्र २६ तथा सहिरण्यभागमलंकरणम्—सू० २७ तथा भूषणयोजनम्—ए० वेंकटसूबिया—दिकसमाज सूची ३।

५. बृहत्संहिता अध्याय ८०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राचीन काल के सभी आभूषणों को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है[1]—

१. आबेध्य—ताड़ी, कुण्डल, कान में पहने जाने वाले अलंकार जो अंग को छेदकर पहने जाते थे।

२. निबन्धनीय—बांध कर पहने जाने वाले आभूषण जैसे श्रोणीसूत्र (करधनी) मेखला, चूडामणि, शिर का आभूषण।

३. प्रक्षेप्य—उर्मिका, कटक, मंजीर आदि आभूषण जो अंग में प्रक्षेप पूर्वक पहने जाते थे।

४. आरोप्य—जो अंग पर अलग से आरोपित किये जांय जैसे हार, माला नक्षत्र-मालिका आदि।

सोमेश्वर ने इन चारों ही प्रकार के आभूषणों का वर्णन किया है जैसे कुण्डल[2] आदि आबेध्य, कांचीदामादि[3] निबन्धनीय, कटक[4] आदि प्रक्षेप्य तथा हारादि[5] आरोप्य अलंकारों के अन्तर्गत आ जाते हैं।

बुद्ध काल में भी आभूषणों का प्रयोग अधिक मात्रा में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही करते थे किन्तु विभूषणों का प्रयोग बौद्ध भिक्षु के लिए वर्जित था।[6] समवाय सुत्त में विभूषण को बनाने तथा पहनने की अनेक प्रकार की विधियों 'आभरणविहिम' का उल्लेख हुआ है।[7]

मेघदूत की टीका में मल्लिनाथ ने आभूषणों के वर्गीकरण पर प्रकाश डाला है।[8] रसाकर नामक ग्रन्थ में चार प्रकार[9] के आभूषणों का प्रसंग प्राप्त होता है—

१. कचधार्य—केश में पहने जाने योग्य आभूषण।

२. देहधार्य—देह में धारण करने योग्य।

३. परिधेय—पहिनने के वस्त्रादि।

---

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद पृ० ७६।

२. मानसो० ३।८।१०९७। ३. वही ३।८।१११७।

४. वही ३।८।१०७९। ५. वही ३।८।१०६९।

६. दीघ निकाय ब्र० सु० १०।

———विभूसनट्ठाना पटिविरतो समणो गोतमो।

७. ए० वेकटसूबिया—दिकलाज—सूची १।

८. मेघदूत २-११।

९. कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनं।

चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणामन्यर्थदेशिकम्॥ रसाकर।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

४. विलेपन—चंदनादि का शरीर पर लेप।
इसके अनुसार पहनने योग्य वस्त्रों तथा विलेपनादि को भी आभूषण माना गया है क्योंकि इनसे भी शरीर की शोभा की वृद्धि होती है।

सोमेश्वर ने विलेपनादि को आभूषण के अन्तर्गत नहीं लिया है। सोमेश्वर ने इस प्रकरण में जिन आभूषणों का उल्लेख किया है वे सभी चंद्र, सूर्य, मूद, रारवड़ी, केतकी, कमरपट्टा आदि नामों से महाराष्ट्र में कुछ दिन पूर्व तक प्रयोग में लाए जाते थे। सारीक नामक आभूषण अब भी महाराष्ट्र में पहना जाता है और सारी के नाम से प्रसिद्ध है।

सोमेश्वर ने इतने प्रकार के सब अंगों में पहने जाने वाले आभूषणों का वर्णन किया किन्तु नाक में पहने जाने वाले किसी प्रकार के भी आभूषण का प्रसंग मानसोल्लास में नहीं प्राप्त होता। इससे विदित होता है कि उनके समय में स्त्रियां नाक में आभूषण नहीं धारण करती थीं। संस्कृत-साहित्य में भी नाक में पहनने वाले आभूषणों के प्रसंग नहीं प्राप्त होते। इसका सम्भवतः यही कारण हो सकता है कि नाक में आभूषण पहनने की प्रथा मुग़ल काल से ही प्रारम्भ हुई है। मुग़लों के समय में मुग़ल इतने निर्दयी थे कि वे स्त्रियों को बेंचकर उससे व्यापार करते थे और बेचते समय उनकी नाक में नाथ सी डाली जाती थी। उसी समय से नाक मे आभूषण पहनना प्रारम्भ हुआ होगा। विवाह के समय कन्या की नाक में नथ पहनाई जाती है और वह शुभ मानी जाती है, किन्तु उसका अभिप्राय यही हो सकता है कि विवाह के दिन से कन्या बिके हुए धन के समान हो जाती है। माता-पिता का उस पर से अधिकार हट जाता है और श्वसुर के गृह से सम्बन्धित अनेक बन्धन एवं उत्तरदायित्व उसके ऊपर आ जाते हैं इसी कारण उसी प्रतीक के रूप में कन्या विवाह में नथ को अपनी नाक में धारण करती है।

आसनोपभोग

राजा के लिए प्रयोग में लाये जाने वाला आसनों का सोमेश्वर देव ने विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। इसके प्रकरण के अन्तर्गत उन्होंने नौ प्रकार के आसनों का उल्लेख किया है जो चम्पक, आम्र, मधूक, पनस तथा उदुम्बर के वृक्ष की लकड़ी के बनते थे—

१. मंगलासन—यह अत्यन्त विशाल होता था और इसमें चार पाये होते थे। यह आसन चारों ओर से चौकोर, काञ्चन की शोभा वाला तथा अत्यन्त मनोहर होता था[१]।

---

१. मानसो० ३।९।११३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

२. पवित्रासन—श्रीपर्णी की लकड़ी का हस्त मात्र के आकार का, बिना रत्नों वाला अत्यन्त विस्तृतत पीठ पवित्रासन कहलाता था[१]।

३. मज्जनासन—शाक, दारू आदि की लकड़ी का सुदृढ़, चार पायों से युक्त पीठ मज्जनासन कहलाता था इसका प्रयोग स्नान के समय ही होता था[२]।

४. सुखासन—यह ईंटों से बना हुआ होता था। इसके पृष्ठ भाग पर धारियां बनी होती थीं। यह अत्यन्त स्वच्छ एवं चिकनी जड़ाऊ भूमि की शोभा को धारण करने वाला पीठ होता था जो कपास से भरे हुए तथा छागीपट्ट से आच्छादित एवं हंसपिच्छों की निर्मित गद्दी से युक्त होता था[३]।

५. पट्टगद्दिका—मूर्णा गर्भित रक्त छाग चर्म से तथा नाना प्रकार के विचित्र रंगों से युक्त अत्यन्त विस्तृत आसन पट्टगद्दिका कहलाता था[४]।

६. भूशय्यासन—पट्टगद्दिका आसन पर ही यदि हंस पिच्छ फैलाकर श्वेत पट्टों से बांध दिया जाय तो वही श्वेत शोभा से युक्त आसन भूशय्यासन कहलाता है। यह संगीत के प्रसंग में, गज, वाजि विनोद के समय तथा सुख संवाद के समय प्रयोग में लाया जाने वाला उत्तम आसन था[५]।

७. लौहासन—जिसमें पांच, सात अथवा नौ लौह निर्मित पाये हों, जिसका आधार भी लोहे का हो तथा ऊपर भी लोहे का जाल हो तथा छुदिका के कपड़े में कपास भरा आसन हो वह लौहासन कहलाता था[६]।

८. धारासन—शाक, दारु की लकड़ी से बना हुआ हाथी दांत से चित्रित तथा अनेक वर्णों एवं आकृतियों से पूर्ण पृष्ठभाग में एक ही फल वाला आसन धारासन कहलाता था। यह थोड़ा सा ऊँचा बनाया जाता था[७]।

९. सिंहासन—अत्यन्त सुन्दर सोने का बना हुआ आसन सिंहासन कहलाता था। इसके ऊर्ध्व भाग में आठ गरजते हुए सिंहों की मूर्तियां तथा नीचे के भाग में तीन रत्न जडित वेदियां बनीं होती थीं सिंहों की आकृतियों से पूर्ण होने के कारण यह सिंहासन कहलाता था। इसका प्रयोग राजा अपने दरबार में बैठने के समय करता था। यह राजा के लिए अत्यन्त प्रिय एवं उत्तम आसन है[८]।

इन सभी आसनों में सोमेश्वर ने पूतासन को देव कार्य के लिए, सुख पूर्वक बैठने के लिए मंमलासन तथा राजदरबार के लिए सिंहासन को उपयुक्त बतलाया है—

---

१. वही ३।९।११३५। २. वही ३।९।११३६।
३. वही ३।९।११३७–३८। ४. वही ३।९।११३९।
५. वही ३।९।११४०–४१। ६. वही ३।९।११४२–४३।
७. वही ३।९।११४४–४५। ८. वही ३।९।११४६–४७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूतासनं देवकार्यं सुखायां (ग) मंगलासनम् ।
स्वैरमन्यानि पीठानि सैंहमास्थानमण्डपे ॥[1]

इस आसन के प्रकरण में संभवतः पीठ (पाटा, चौकी) तथा आसन (सुखपूर्वक बैठने की छोटी शय्या की भांति) इन दो प्रकार के बैठने योग्य आसनों का वर्णन किया गया है। यह सभी आसन किसी न किसी कार्य को करने में राजा द्वारा प्रयोग में लाये जाते थे। इनके वर्णन को पढ़कर राजा की दिन-चर्या के बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। इन सभी आसनों को प्रयोग में लाने वाला राजा प्रतिभावान् कहलाता था[2]।

इन सभी आसनों को राजा अपने दैनिक जीवन में ही प्रयोग करता था। अतः यह आसन मुख्य रूप से पांच प्रकार के थे—

१. आराम पूर्वक बैठने वाले।
२. स्नान के समय प्रयोग में लाये जाने वाले।
३. भोजनादि के समय काम में लाये जाने वाले।
४. क्रीड़ा सम्बन्धी।
५. पूजा संबन्धी।

कालिका पुराण[3] में देवी देवताओं के लिए पौष्प, दारुज, वास्त्र, चार्म्मण तथा कौश आसनों के प्रयोग का आदेश दिया है। सोमेश्वर ने देव कार्य के लिए पूतासन अथवा पवित्रासन के प्रयोग का उल्लेख किया है[4] जो श्रीपर्णी की लकड़ी का बना होता था। सम्भवतः पूतासन से उसका तात्पर्य कालिका पुराण में कथित दारुजासन से है।

उपर्युक्त आसनों के अतिरिक्त कालिका-पुराण में पांच अन्य आसनों का उल्लेख हुआ है जिसके नाम ये हैं—पद्मासन, स्वस्त्यासन, भद्रासन वज्रासन तथा वीरासन[5]। सम्भवतः सोमेश्वर द्वारा कथित मंगलासन तथा सिंहासन कालिका पुराण के स्वस्त्यासन तथा वीरासन से समता रखते हैं। कालिका पुराण में आसनासीन होने की जो विधियां बतलाई गई है उनसे इस बात की पुष्टि

---

१. वही ३।१।११४८।
२. एतानि पीठान्यध्यास्ते राजा विभवभूषितः ३।९।११४९।
३. आसनं प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारुजमेव वा।
वास्त्रं वा चार्म्मणं कौशं मण्डलस्योत्तरे सृजेत् ॥
कालिका पु० अ० ६७।
४. मानसो० ३।९।११४८। ५. कालिका पु० अ० ६७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हो जाती है। स्वस्त्यासन पर आसीन होने के लिए उक्त पुराण में इस प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है—

जानूर्व्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायो विशेन्मन्त्री स्वस्तिकं तत् प्रचक्ष्यते ॥[१]

यहां पर मन्त्री शब्द का अर्थ मन्त्रणा करने वाले अर्थात् राजा से प्रतीत होता है। वीरासन के लिए भी इसी प्रकार की उक्ति है—

एकपादमधः कृत्वा विन्यस्योरौ तथेतरम्।
ऋजुकायो विशेन्मन्त्री वीरासनमितीरितम् ॥[२]

यहां पर दरबार में राजा के बैठने की विधि का ही चित्रण है।

चामरोपभोग

आसनोपभोग के पश्चात् राजा पर डुलाये जाने वाले चमर के उपभोग का वर्णन सोमेश्वरदेव ने किया है! इस प्रकरण में राजा पर चमर डुलाये जाने के सोमेश्वर ने तीन कारण माने हैं—शोभा, वैभव तथा स्वेदापनयन—

वीजनैश्चतुरस्त्रैश्च वीजयन्ति सुमध्यमा।
शोभार्थं विभवार्थं च स्वेदापनयनाय च ॥[३]

इन्हीं तीन उद्देश्यों से जो चामर राजा के ऊपर डुलाया जाता है उसी को सोमेश्वर ने चामरोपभोग माना है।

सर्वप्रथम वे राजा के ऊपर चमर डुलाने के एवं स्थान का वर्णन करते हैं कि जिस समय राजा, अत्यन्त रमणीय सुखशील, विशाल, रत्नों की शोभा से देदीप्यमान, सुवर्ण स्तम्भों से विभूषित; मनोहर चित्रों से चित्रित भित्तियों वाले, अनेक वर्ण वाले वितान से आच्छादित आस्थानमण्डल में अत्यन्त स्वच्छ कुट्टिम पर रखे हुए दिव्य सिंहासन पर विराजमान हो उस समय शरत्कालीन चन्द्रमा के भ्रम को उत्पन्न करने वाले, यश के पुञ्ज से श्वेत, सुवर्ण दण्ड से आच्छादित विचित्र रत्नकान्ति से आभासित मयूरपिच्छ से निर्मित अथवा चमरी पुच्छ से निर्मित, सहस्राक्षों वाले मयूर पिच्छ के चामर को वराङ्गनायें अपने हाथों द्वारा डुलाती हैं।[४] इसी प्रसंग में अनेक प्रकार के चामरों का प्रसंग देते हुए सोमेश्वर ने उन्हें विभिन्न देशों तथा विभिन्न जातियों की स्त्रियों द्वारा डुलाने का आदेश दिया है। कुन्तलदेश की श्यामल वर्ण की सुन्दर स्त्रियां कूर्चक के द्वारा बने हुए अत्यन्त रमणीय, सुमनोहर वाल व्यञ्जन द्वारा राजा पर हवा करती हैं। अत्यन्त सुन्दर कामिनियां अनेक पट्टों निर्मित चन्द्रमण्डल

---

१. वही ६७।
२. वही अ० ६७।
३. मानसो० ३।११।११५९।
४. वही ३।११।११५१–११५५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की शंका को उत्पन्न कर देने वाले सुन्दर व्यञ्जन को डुलाती है तथा मृग के समान लोचनों वाली स्त्रियां अत्यन्त शुभ तथा रत्नों से अलंकृत ताम्रपत्र से निर्मित व्यजन के द्वारा हवा करती हैं। इस प्रकार सुन्दर कटि से सुशोभित (सुमध्यमा) स्त्रियां राजा पर उसकी शोभा एवं वैभव की वृद्धि तथा शीतलता प्रदान करने के हेतु उसपर व्यजन डुलाती है।[1]

इस प्रकरण के अन्तर्गत चार प्रकार के चमरों एवं व्यजनों का वर्णन किया गया है—१—मोर पिच्छ अथवा चमरी पुच्छ का चमर २—कूर्चों से बना हुआ वालव्यजन। ३—अनेक पट्टों से बना गोलाकार व्यजन। ४—ताम्रपत्र का बना हुआ व्यजन। इज चारों प्रकार के चामरों द्वारा राजा के स्वेद का निवारण किया जाता था। इन चामरों के वर्णन में जो दो प्रकार के व्यजनों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है सम्भवतः उनका प्रयोग ग्रीष्मकाल में अधिक हवा करने के लिए तथा राजा का स्वेद निवारण कर उसे शीतलता प्रदान करने के हेतु किया जाता होगा और मयूर-पिच्छ तथा कूर्चादि के बने हुए चामरों का विशेष रूप से शिशिर, हेमन्त एवं शरद् आदि ऋतुओं में होता होगा क्योंकि इनसे वायु का प्रवाह बहुत कम मात्रा में होता है और यह राजा के वैभव के प्रतीक हैं।

भारतवर्ष के प्राचीनकाल से ही चामर-बीजन ऐश्वर्य का प्रतीक माना गया है। पुराणों में भी रत्न-जटित दण्ड से युक्त वालव्यजन डुलाये जाने के प्रसंग प्राप्त होता है—

वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखी करात्।
तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम्॥[2]

शारंगधर पद्धति में भी चामर को श्री की वृद्धि करने वाला तथा राजा की शोभा को बढ़ाने वाला माना गया है—

चामरं श्रीकरं दिव्यं राज्य शोभाकरं परम्।[3]

इसके अतिरिक्त चामर सदा से ही राजाओं के लिए साधारण सी वस्तु रही है। किन्तु सोमेश्वर के विषय में अनेक देश की सुन्दर स्त्रियां राजा पर शनैः शनैः चामर डुलाती थीं जिससे राजा को विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता था। इसी कारण सोमेश्वर ने इसे उपभोग के अन्तर्गत ही माना है।

पञ्चतन्त्र[4] में भी चामर को राजा के वैभव तथा भोग का प्रतीक माना है—

---

१. वही ३।१०।११५१–११६०। २. श्रीमद्० १०।६०।७।
३. शा० प० १४१३। ४. पञ्चतन्त्र।३।२६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुणेषु रागो व्यसनेष्वनादरो
रतिः सुभृत्येषु च यस्य भूपतेः।
चिरं स भुङ्क्ते चलचामरांशुकां
सितातपत्राभरणां नृपश्रियम् ॥

यहां पर 'भुङ्क्ते' शब्द से चामर के भोग से सम्बन्ध प्रतीत होता है। भोजराज के युक्ति कल्पतरु में चामर के उद्देश्य तथा उपकरणों का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।

आस्थान भोग

आस्थान भोग के अन्तर्गत सोमेश्वर ने राजा के सजे हुए दरबार का वर्णन किया है जिसमें सभी दरबारियों का अपने अपने योग्य उचित आसन पर बैठने का वर्णन किया गया है। इस प्रकरण के प्रारम्भ में चामर व्यञ्जन आदि से युक्त अत्यन्त श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान राजा का वर्णन किया गया है। सर्व प्रथम राजा सबको आह्वान का समाचार प्रतीहारी द्वारा सबके पास देता था। दौवारिक आये हुए व्यक्तियों को अन्दर प्रवेश कराता था।

राजा के दरबार में निम्नलिखित व्यक्ति प्रवेश करते थे—

१. राजा के अन्तःपुर की स्त्रियां
२. अन्य आमन्त्रित स्त्रियां
३. राजकुमार
४. पुरोहित
५. अमात्य, मंत्री तथा सचिव
६. मण्डलाधीश्वर
७. राज्य के प्रमुख अधिकारी (अफसर)
८. भट्ट, चारण, वन्दी, वैतालिक, अंक आदि
९. सहायता प्राप्त करने के इच्छुक राजा।

सर्वप्रथम दौवारिक राजा के प्रासाद में जाता था और पट्टों से ढकी हुई पालकियों में बैठी हुई, विचित्र छत्र की छाया से आवेष्टित हिलते हुए चामरों से युक्त, सुन्दर स्त्रियों को राजदरबार की ओर लाता था। उन पालकियों के साथ अन्य राजदरबार के भृत्य रहते थे, सौविदल्ल हाथ में बेत लिए हुए अपनी तर्जनी से 'अपसर्प', 'गच्छ गच्छ'[1] कहता हुआ व्यक्तियों की भीड़ को सामने से हटाता था और जनवर्जित मार्ग से पालकियों को नृप स्थान में लाता था। इसी प्रसंग में सोमेश्वर ने उक्त स्त्रियो के शृंगार वेशभूषा तथा वस्त्रों का वर्णन किया है[2]। ये स्त्रियां नृपस्थान में प्रवेश कर अपना अपना आसन ग्रहण

१. मानमो० ३।११।११।११६५। २. वही ३।११।११६६–११७३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करती थीं। इनके आसन राजा के चारों ओर रहते थे सामने नहीं।[1]

यह प्रसंग तत्कालीन समाज पर भी बहुत कुछ प्रकाश डालता है। यद्यपि राजप्रासाद की स्त्रियां परदा करती थी किन्तु राजदरबार में आने का उन्हें पूर्ण अधिकार था। राजा के द्वारा दिए गए निर्णय में उनका भी हाथ रहता था और वे राजस्थान की शोभा का एक महान् अंग मानी जाती थीं। वे राजमहिषियां सभी प्रकार के आभूषणों वस्त्रों एवं विलेपनों से सुशोभित होकर राजदरबार में आती थीं।

इन स्त्रियों के साथ ही साथ दरबार में कुछ अन्य देशों की भी आमन्त्रित की गई स्त्रियां आती थीं जिनका वर्णन सोमेश्वर ने आगे किया है। वे अनेक प्रकार के वाहनों पर चढ़कर राजदरबार में आती थीं।[2] कोई घोड़े पर कोई घोड़ी पर चढ़कर तथा कोई पैदल ही चलकर राजा का मन मोहित एवं प्रसन्न करने के लिए आती थीं।[3]

इन सभी देश की स्त्रियों के वर्णन में सोमेश्वर ने अपने देश की स्त्रियों का कोई विशेष वर्णन नहीं किया है। यद्यपि वह कन्नाड़ी राजा था, कन्नडी भाषा समझता था तथा कन्नड़ी मातृभाषा वाले राष्ट्र पर राज्य करता था फिर भी उसने अपने देश का वर्णन न किया। सम्भवतः सोमेश्वर ने कर्णाटक देश को ही कुन्तलदेश माना है। पश्चिम प्रदेश के चालुक्य नरेश कुन्तलप्रभु कहलाते थे और कल्याण नगरी उनकी राजधानी थी। सोमेश्वर भी पश्चिम के चालुक्यों के वंश का था और कल्याण ही उसकी राजधानी थी।

ये सभी स्त्रियां स्वयं राजदरबार की आभूषण थी—

आस्थानभूषणाः सर्वाः समागत्य नृपालयम्।
प्रवेश्योभयपार्श्वे च पृष्ठभागे च संस्थिताः॥[4]

ये स्त्रियाँ कभी कभी अपने तीक्ष्ण कटाक्षों द्वारा राजा को देखकर धीरे-धीरे हंस देती थीं। राजा भी उनका बड़ा सम्मान करता था और उनके हंसने पर स्वयं भी सिञ्चित लता की भांति हर्षित हो उठता था।

स्त्रियों के पश्चात् राजदरबार में गुण तथा आकार में राजा के ही समान, अलंकारों से अलंकृत राजकुमार आकर अपने पिता को प्रणाम करते थे, और राजा के द्वारा संकेत किए हुए आसन पर बैठते थे। उनका आसन राजा के ही समीप होता था[5]। उसी के सामने पुरोहित का आसन रहता था और उस

१. वही ३।११।११७४–७६। २. वही ३।११।११७७–७८।
३. वही ३।११।११७८–७९। ४. वही ३।११।११८५–८७।
५. वही ३।११।१२०२–३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर रत्न-जटित कुण्डलों से युक्त श्वेत वस्त्रों को धारण कर पुरोहित युवराज के समीप ही आकर बैठ जाता था।[1]

पुरोहित के पश्चात् राजा के अमात्य, मन्त्री तथा सचिव आकर राजा द्वारा निर्दिष्ट आसनों पर बैठ जाते थे। ये राज्य के अत्यन्त आवश्यक अंग हैं और स्वामी अथवा राजा के बाद द्वितीय महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते हैं।[2]

इनके पश्चात् विभिन्न मण्डलों के अधिकारी राजदरबार में प्रवेश करते थे। इन अधिकारियों के पश्चात् भट्ट, सूत-मागध, नर्तक, चारण, वैतालिक आदि राजदरबार में प्रवेश करते थे। ये सब और राजा के यश का तथा उसकी विजय का गान करते थे—

शौर्योदार्यैस्तथा युक्ता नृपचित्तानुरञ्जकाः ।
वारं वारं समन्तात्ते जयजीवेति वादिनः ॥
उपासीरन्नृपश्रेष्ठं सेवाधर्मविशारदाः ।
तच्चित्तवेदिनः सर्वे विनयानतमस्तकाः ॥[3]

ये उपर्युक्त सभी व्यक्ति राजा की सेवा में उपस्थित रहते थे। राजा दरबार में सर्वश्रेष्ठ स्थान ग्रहण करता था। सब लोगों के यथास्थान बैठ जाने पर तथा वन्दीगणों द्वारा जय गान हो जाने पर राजा प्रतीहारी को उन अन्य राजाओं को दरबार में बुलाने का आदेश देता था जो अपनी रक्षार्थ उसके समीप आते थे। वे प्रतीहारी के साथ दरबार में आकर भूमि पर झुककर राजा को प्रणाम करते थे। राजा उन्हें उठने का आदेश देता था और सम्मान पूर्वक राजाओं के योग्य आसन पर उनको बैठाकर संतोषपूर्वक महाप्रीति को उत्पन्न करने वाले वचनों द्वारा उनका भ्रम दूर करता था। इसके अतिरिक्त राजा उन्हें दिव्य वस्त्र, विचित्र पट्ट, स्वर्णाभूषण, रत्नजटित आभूषण, सुन्दर हाथी, घोड़े, ग्राम, पुर तथा देश आदि देकर उन्हें सन्तुष्ट करता था।[4]

इस प्रकार उनको सन्तुष्ट कर सम्मानपूर्वक राजा विदा करता था। इसके अतिरिक्त किसी को राजा प्रसन्न दृष्टि द्वारा, किसी को मधुर शब्दों द्वारा, किसी को प्रभूत दान द्वारा किसी को सम्मान द्वारा प्रसन्न करता था—

कांश्चित्प्रसन्नया दृष्ट्या कांश्चिन्मधुरभाषितैः ।
कांश्चित्प्रभूतदानेन कांश्चिन्मानेन हर्षयेत् ॥[5]

यहाँ पर सोमेश्वर ने यह पूर्णरूप से स्पष्ट कर दिया है कि जो कोई भी अन्य

---

१. वही ३।११।१२०३–४।
२. वही ३।११:१२०५।
३. वही ३।११।१२३१–३२।
४. मानसो० ३।११।१२३७–३८।
५. वही ३।११।१२४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राजा उसके दरबार में आवे तो उसको तुष्ट करना तथा सम्मानित करना राजा का परम कर्तव्य है।

अन्य देश के राजाओं को सम्मानित करने के साथ ही साथ राजा कुमार, मन्त्रि, अमात्य, सचिव, मण्डलाधीश्वरों, सुभट, सेवक तथा दक्ष पुरुषों को भी यथायोग्य सम्मान, हास्य, मधुरभाषणादि द्वारा प्रसन्न करता था। तत्पश्चात् राजा सभा को विसर्जित कर अपनी महिषियों के साथ केलि-गृह में जाता था और उनके साथ क्रीड़ा करता हुआ उन्हें सन्तुष्ट करता था।[१] इस प्रकार से सभा में सन्तुष्ट करता हुआ राजा उन्नति, यश एवं वैभव को प्राप्त करता है—

करोत्यास्थानमित्थं यः पार्थिवः प्रथितोन्नतिः।[२]

यह प्रकरण सोमेश्वर के राजदरबार का पूर्ण एवं स्वाभाविक चित्र उपस्थित करता है। दरबार में बहुत से व्यक्ति होते थे इससे विदित होता है कि दरबार बहुत बड़े हाल में लगता होगा। स्त्रियों को भी उनके दरबार में सम्मान प्राप्त था। राजा प्रत्येक देश की स्त्री का बड़ा ही आदर करता था। अन्य राजा भी रक्षार्थ उसके समीप आते थे। राजा के दरबार में प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान प्राप्त था। पुरोहित का उपस्थित रहना भी दरबार में आवश्यक था। सम्भवतः पुरोहित राजा को प्रत्येक कार्य को धर्म द्वारा सम्पादित करने का आदेश देता होगा। राजा प्रत्येक विषय में अमात्य, सचिव, मन्त्रिगणों से सलाह लेता था। इसी कारण इन सबकी उपस्थिति आवश्यक थी। स्त्रियों की तथा कुमारों की उपस्थिति भी दरबार में आवश्यक थी। राजा के बाद होने वाले युवराज का आसन राजा के बिल्कुल समीप होता था। उसी के समीप पुरोहित बैठता था। इससे वह युवराज प्रारम्भ ही से धर्मानुकूल अर्थ के सेवन को समझ लेता था और प्रत्येक के साथ सुचारु रूप से आदर करने तथा जनप्रिय बनने के साधनों का उसे ज्ञान हो जाता था। स्त्रियां कभी-कभी अपने तीक्ष्ण कटाक्ष राजा पर डालती थीं। राजा भी उनकी दृष्टि द्वारा मनोरञ्जन करता था।

इस प्रकार महाराज सोमेश्वर का दरबार धर्म, अर्थ तथा काम के सेवन का आश्रय था। वन्दीगण जयघोष करते थे जिसे राजा तथा प्रजा दोनों ही सुनकर प्रसन्न होते थे। इसी कारण सोमेश्वर ने आस्थानमण्डप के लिए 'जनवल्लभ' शब्द का प्रयोग किया है—

अधुनाऽऽस्थानभोगोऽयं कथ्यते जनवल्लभः।[3]

---

१. मानसो० ३।११।१२४३। २. वही ३।११।१२४४।
३. वही ३।११।११६१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह 'जनवल्लभः' शब्द राजा की जनप्रियता के साथ ही साथ उसकी शासन की योग्यता, वैभव एवं ऐश्वर्य को भी प्रकट करता है।

दरबार में स्त्रियों का प्रवेश भारत में सोमेश्वर के पूर्व भी होता था। बाण ने हर्षचरित में हर्ष के दरबार की वारविलासिनियों का बहुत सुन्दर चित्र खींचा है किन्तु वे वारविलासिनियां दरबार में नर्तकियों के रूप में आती थीं।[1] सोमेश्वर के दरबार में रानियां-राजप्रासाद की अन्य स्त्रियां तथा विभिन्न देशों की स्त्रियां आती थीं।

पुत्रभोग

सोमेश्वर ने पुत्रोपभोग प्रकरण के अन्तर्गत पुत्र से सम्बन्धित सभी बातों का उल्लेख किया है। उनके कथन के अनुसार बालक के उदर में आने के पूर्व से लेकर विवाह तक के उसके सब संस्कार उचित रीति एवं कथित विधान द्वारा करे। इन सभी संस्कारों का विस्तृत उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। पुत्र का विवाह हो जाने पर अपनी प्रिया के साथ उसे रमण करने दे तथा उनके श्रेष्ठ रूपवान् तथा शीलवान् पुत्र-पुत्रियों को अपनी गोद में खिलाकर लालन-पालन करे। इस प्रकार से सब कुछ करता हुआ राजा जिस सुख का अनुभव करता है वही पुत्रोपभोग है। पुत्रोपभोग के अन्तर्गत शिशु को शिक्षा दिलाकर उसका विवाह कर उसके पुत्र-पुत्रियों का लालन-पालन करना आ जाता है—

> निर्भरानन्दसंदोहः पुत्रभोगमवाप्नुयात् ।
> एवं शिशूंल्लालयित्वा शिक्षयित्वा विवाह्य च ॥
> तत्प्रजाः पालयेद्यत्तु पुत्रभोगः प्रकीर्तितः ।
> कथितः पुत्रभोगोऽयं सोमेश्वर महीभुजा ॥[2]

इसी पुत्रभोग के प्रकरण में बालक की क्रीड़ाओं का भी वर्णन सोमेश्वर ने किया है। जब बालक थोड़ा बड़ा हो जाता है तो माता-पिता उसके अस्फुट एवं अर्धभाषित शब्द तथा उसके गालिदान को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और उसके घुटनों से चलने तथा उसके चलने के प्रयत्न करते समय गिरने को देख कर अत्यन्त आनन्द का अनुभव करते हैं—

> अर्धार्धभाषितं तेषां गालिदानं मनोहरम् ।
> जानुचंक्रमणं पश्येत्स्खलितं च पदक्रमम् ॥[3]

माता के हाथ का अवलम्ब लेकर बालक जब शनैः शनैः चलने का प्रयास करता

---

१. वासुदेवशरण अग्रवाल–हर्षचरित–एक सांस्कृतिक अध्ययन पृ० ४७।
२. मानसो० ३।१२।१३४०-४१। ३. वही ३।१२।१२६८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है और अन्त में माता की गोद में बैठ जाता है। उस समय फलादि के प्रदर्शन द्वारा पिता उसे माता की गोद से लेने का प्रयास करता है[१]। पिता पुत्र के वात्सल्य से वशीभूत होकर कभी उसे अंक में लेता है कभी हृदय पर रखता है कभी स्कन्ध प्रदेश पर उसका सिर रखकर लेता है कभी हाथों पर लेता है।

इसी के आगे सोमेश्वर छोटे शिशु को पहनाये जाने वाले सूत्रों एवं आभरणों का वर्णन करते हैं। लाख से आच्छादित रक्षामन्त्र के पत्र से आवेष्ठित, मूंगा तथा व्याघ्र नख से सुशोभित, चित्र से युक्त कपर्दक तथा छोटे शंख से युक्त कण्ठसूत्र, पञ्चलोहे के कंकण से विभूषित[२] तथा कटिप्रदेश तथा पैरों मे स्वर्ण घर्घरिका से युक्त, कर्ण प्रान्त में कर्णपाली तथा स्वर्ण कुण्डल से युक्त तथा अश्वत्थ पत्र की शंका को उत्पन्न करने वाले शिर के भूषण से सुशोभित अलकों वाला बालक भी अपने माता पिता को देखकर इधर-उधर दौड़ता है। पिता ऐसे सुकुमार बालक के अंगों का आलिंगन कर उसके वदन का चुम्बन कर सुख का अनुभव करता है[३]।

सोमेश्वर ने बालक को योगीन्द्र विष्णु (कृष्ण) तथा गंगाधारी शिव का रूप माना है और उसे नरक से त्राण करने वाला बतलाया है।[४] सदैव प्रसन्न तथा नग्न रहने और मिट्टी से धूल-धूसरित होने के कारण वह दिगम्बर तथा जटिल विभूति को धारण करने वाले गंगाधारी शिव के समान होता है। उस व्यक्ति को सोमेश्वर ने बड़ा पुण्यवान् बतलाया है जो पुत्र के शरीर के स्पर्श के सुख को प्राप्त करता है।[५]

इसी प्रकार का प्रसंग अभिज्ञानशाकुंतलम् में भी प्राप्त होता है। पुत्र के शरीर की धूल से धूसरित हुई देह वाली शकुन्तला को धन्य माना गया है—

---

१. मातृहस्तावलम्बेन ललित गमनं शनैः।
फलप्रदर्शनाद्बालमानीतं मातुरङ्कतः ॥ मानसो० ३।१२।१२६९।

२. रक्षामंत्राक्षरैः पत्रैर्लाक्षया परिवेष्टितः
... ...
पञ्चलौहसुक्लृप्तैश्च वलयैर्भूषिताङ्घ्रिकम् ॥
मानसो० ३।१२।१२७०–७२।

३. वही ३।१२।१२७३–७६।

४. जटिलं भूतिभूषाढ्यं गंगाधरमिवात्मजम्।
विष्णुरुद्रसमाभासं नरकत्राणकारकम् ॥ मानसो० ३।१२।१२७७।

५ वही ३।१२।१२७८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

धन्यास्तदंगरजसा मलिनी भवन्ति ।[1]

अन्नोपभोग

पुत्रभोग के पश्चात् महाराज सोमेश्वर अन्नभोग का विस्तृत उल्लेख करते हैं। इस प्रकरण से पता चलता है कि वे नाना प्रकार के व्यञ्जनों के प्रेमी थे। वे उन व्यञ्जनों के पकाने की विधियों से परिचित थे। नित्य नये-नये सुस्वादु व्यञ्जनों का उपभोग करते हुए वे सुखपूर्वक जीवन बिताते थे।

सोमेश्वर ने निरामिष तथा सामिष दोनों प्रकार के व्यञ्जनों का उल्लेख किया है, विशेषतः सामिष भोजन पर अधिक प्रकाश डाला है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे मांस के अधिक प्रेमी थे।

सोमेश्वर का कथन है कि बान्धव मण्डलाधीश, सामन्त, भट्ट आश्रित, सुहृद, भृत्य, नृत्तवाद्यविशारद सबको बुलाकर उचित स्थान देकर पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्रों के साथ राजा को भोजन करना चाहिए।[2] राजा को सुन्दर तथा उचित मात्रा के अनुसार भोज्य, भक्ष्य, पेय, लेह्य तथा चोष्य इन पांचों प्रकार का भोजन करना चाहिए।[3]

निरामिष भोजन

निरामिष भोजन के अन्तर्गत सोमेश्वर ने चावल, दाल, रोटी, पूड़ी आदि अनेक प्रकार की वस्तुओं को बनाने की विधि का वर्णन किया है। सोमेश्वर चावल के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने रक्तशालि, महाशालि, गन्धशालि, कलिंगक, मुण्डशालि, स्थूलशालि, सूक्ष्मशालि तथा सषष्ठिक—इन आठ प्रकार के चावलों के लक्षणों का वर्णन किया है।[4] रक्त वर्ण वाला शालि रक्त, बड़ी आकृतिवाला महाशालि, सुगन्धियुक्त गन्ध, कलिंगदेश में उत्पन्न कलिंगक, शूकरहित मुण्ड, मोटा स्थूल, सूक्ष्म चावल सूक्ष्म तथा साठ दिन में पकने वाला सषष्ठिक शालि होता है।[5] यह सषष्ठिक धान अब भी उत्तरी भारत के गावों में साठिया धान के नाम से प्रसिद्ध है। सोमेश्वर ने इन सभी प्रकार के चावलों को विधिपूर्वक पकाने का सुन्दर तथा अच्छी प्रकार पके हुए भात को ही राजा को खाने के योग्य बतलाया है।[6] महाराज नल ने भी प्रारम्भ में किंचिद् गर्म जल से धोने का आदेश दिया है—

क्षालयेत्तान् बुधः सम्यगीषदुष्णेन वारिणा।[7]

१. अभि:० शा० ७।१७।
२. वही ३।१३।१३४२–४४।
३. वही ३।१३।१३४४–४५।
४. वही ३।१३।१३४५–४६।
५. वही ३।१३।१३४६–४८।
६. एवं भक्तं सुपक्वं यद्राजयोग्यं तदुत्तमम्। मानसो० ३।१३।१३५७।
७. नल-पाकदर्पण पृ० ६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके अतिरिक्त चावल में पकते समय दूध तथा मट्ठा डालने का भी विधान बतलाया है।[1] इस प्रकार का चावल आयु तथा आरोग्य को बढ़ाने वाला होता है—

इदं तण्डुलसंभृतमायुरारोग्यवर्धनम् ॥[2]

चावल के पश्चात् राजमुद्ग, निष्पाव, चना, काली अरहर, उरद, मसूर तथा राजमाष—इन सात प्रकार की दालों का उल्लेख किया है।[3] सम्भवतः ये सभी प्रकार की दालें उनके राज्य क्षेत्र में उत्पन्न होती होगी। ये दालें अपनी रुचि के अनुसार सम्पूर्ण तथा खण्डित दोनों ही प्रकार से बनाकर खाई जाती थीं। उत्तरी भारत में किन्हीं किन्हीं क्षेत्रों में माष आदि दालों को पूरी-पूरी बनाना अपशकुन माना जाता है और उन्हें किसी खराब दिनों में ही बनाया जाता है।

सोमेश्वर ने चना, राजमाष, मसूर तथा राजमुद्ग आदि दालों को चक्की द्वारा दलकर उनके खण्ड कर उन्हें पकाने का आदेश दिया है। इसी प्रकार अरहर की दाल भी यन्त्र द्वारा दलकर सूप में पछोर कर पकाने योग्य होती थी। इससे विदित होता है कि चक्की तथा सूर्पादि यन्त्रों का प्रचलन उस समय भी होता था।

सोमेश्वर ने सभी दालों को धीमी आग में पकाने का आदेश दिया है। दाल के बन जाने पर उसमें हिंगु जल डाला जाता था। यह हिंगु का प्रयोग सोमेश्वर के स्थान की अथवा समय की विशेषता को प्रकट करता है। उत्तरी प्रदेशों की ओर हिंगु चूर्ण अथवा जमी हुई हिंगु का प्रयोग बिल्कुल थोड़ी मात्रा में होता है। किन्तु उनके समय में हिंगु को जल में भिगोकर हिंगु जल ही दाल में अधिक मात्रा में डाला जाता था।[4]

भोजन संबंधी पदार्थों में सोमेश्वर ने दोसा तथा इदली आदि नामों का उल्लेख किया है जो आज भी तामिल तथा कनाड़ी भाषा में प्राप्त होते हैं। मण्ड, पोलिका, वटिका, कटकर्ण आदि अब भी मराठियों के प्रिय भोजन हैं।[5] दालों के अतिरिक्त रोटी का भी प्रयोग वे करते थे। रोटी का प्रयोग भारतवर्ष में वैदिक काल से ही होना प्रारम्भ हो गया था। इसके लिए पक्ति (पकाई जाने के कारण) शब्द का प्रयोग होता था। सोमेश्वर ने दो प्रकार की पोलिकाओं

---

१. तत्रैव तु सदा सिंचेत् तक्रं क्षीरं पयोऽथवा—नल—पाकदर्पण पृ० ६।
२. नल—पाकदर्पण पृ० ६। ३. मानसो० ३।१३५७–५८।
४. मानसो० ३।१३।१३६८।
५. मराठी–मांडे पोळी, वडे, कडकणें आदि।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का वर्णन किया है १, अंगारों पर पकाई जाने वाली अंगार पोलिका[1]। २. पोलिका की ही भांति भरी तेल या घी की कड़ाही में पकाई जाने वाली पौलिका सोहल[2] कहलाती थी। उत्तरी क्षेत्रों में ग्रामों में सम्भवतः आज भी इसी सोहल (पूड़ी) को सोहारी के नाम से पुकारते हैं। इसी प्रकार अन्य अन्नों के तथा पिष्ट द्वारा वाहलिका,[3] पत्रका,[4] उदुम्बर,[5] परिका,[6] दोषा,[7] वटिका,[8] कञ्जिका,[9] (कांजी के बड़े), घारिका,[10] आदि अनेक प्रकार के भोजन बनते थे।

सामिष भोजन

मांस भोजन के अन्तर्गत सोमेश्वर ने विशेष रूप से सुअर तथा मत्स्य के मांस द्वारा बनी हुई वस्तुओं का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त सारंग, हरिण, शश, आजिक आदि पशुओं का मांस भी भोजन में प्रयोग किया जाता था।[11] सुअर के शरीर पर के रोमों को अलग कर के उसे पकाने का आदेश सोमेश्वर ने दिया है। उसके बालों को दूर करने के लिए दो प्रकार की विधियों का वर्णन हुआ है।

१. सुअर को श्वेत वस्त्र से ढक कर खूब बड़े मिट्टी के वर्तन से खौलता हुआ जल दण्ड लगे हुए गण्डक से लेकर सुअर के शरीर पर तब तक खूब डाला जाता था जब तक उसके रोम जड़ से उखड़ न जाते थे तब उसे साफ कर उसे पकाया जाता था।[12]

२. इसके अतिरिक्त सुअर के रोमों को मिट्टी से लेपकर उसके सूखने पर घास की अग्नि उसपर जलाकर उसके रोमों को साफ कर दिया जाता था।[13]

सुअर के साफ हो जाने पर उसके मांस के खण्ड बनाकर उसमें अनेक प्रकार के मसाले, केसर हिंगु, कर्पूर, हरिद्रा आदि मिला कर उसे बनाया जाता था।[14]

मत्स्यों में भी बडिश, पाठीन आदि मछलियाँ विशेष रूप से खाई जाती थीं[15]। मछलियों के शिर को छेदकर पूछ तथा पक्षों को अलग कर उनके

---

१. मानसो० ३।१३।१३८२। २. वही ३।१३।१३८४।
३. अभिलषितार्थ चिंतामणि। ३।१३।१५६६।
४. वही ३।१३।१५६७। ५. वही ३।१३।१५६९।
६. वही ३।१३।१५७१। ७. वही ३।१३।१५७४।
८. वही ३।१३।१५८५। ९. वही ३।१३।१५८५।
१०. वही ३।१३।१५८५। ११. वही ३।१३।१५९८–१६०२।
१२. वही ३।१३।१६०८–९। १३. मानसो० ३।१३।१४२९–१४३०।
१४. वही ३।१३।१४३१–१४६८। १५. वही ३।१३।१५२४–१५२६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पेट को यन्त्र द्वारा चीर कर तेल तथा नमक द्वारा उनका तब तक घर्षण किया जाता था जबतक उनकी गन्ध नष्ट न हो जाय। तब उन्हें पानी से धोकर हल्दी का चूर्ण उसमें मिलाकर टुकड़े करके बनाया जाता था। इसमें लवण, मिर्च, शुण्ठी, जीरक, पलाण्डु आदि मिलाया जाता था।[१] मांस के भोजन में मासवटका[२] कोशाल[३] पूरभण्टाक,[४] वट्टिमक[५] आदि भोजन विशेष प्रकार से बनाये जाते थे।

शाकाहार

सोमेश्वर के समय में अनेक प्रकार के शाकों का प्रयोग होता था—

फलशाकं पत्रशाकं कन्दशाकं च मूलकम्।
पुष्पशाकं शिम्बिशाकं पक्वापक्वविभेदतः॥[६]

इन शाकों को भी मांस की हीं भांति बनाया जाता था।[७] इन शाकों में आम्र, जम्बू, बीजपुर, मल्लातक, श्रीफल, पनस, कदली आदि का निर्माण विशेष रूप से किया जाता था।[८]

दधि-दुग्ध-मिश्रित आहार

भोजन के साथ दुग्ध तथा दधि की बनी हुई अनेक वस्तुएं खाई जाती थीं। गाय अथवा भैंस के दुग्ध को धीमी अग्नि में पकाया जाता था। जब वह आधा अथवा तीन भाग रह जाता था तो उसे उतार कर उसमें शर्करादि मिलाकर लेह्य पदार्थ बनाया जाता था।[९] इसी प्रकार दुग्ध के आधे रह जाने पर उसमें तक्र डाल दिया जाता था। जब वह जम जाता था तो उसे मथकर उसमें हींग जीरा आदि की धूप दी जाती थी तब उसे भोजन के बीच में पीया जाता था।[१०] यह सम्भवतः उस समय में किसी वस्तु को बघारने की प्रथा थी। इसी प्रकार से मथे हुए दधि में इलायची तथा शक्कर डाल कर तथा पकते हुए चावल का पानी निकाल कर उसमें मट्ठों शक्कर मिला कर पीने की भी प्रथा थी[११]।

इसके अतिरिक्त अनेक पके हुए फलों के रस में भी शक्कर डाल कर खाने के साथ पिया जाता था[१२]।

---

१. वही ३।१३।१५२५–१५४७। २. वही १।१३।१४८१।
३. वही ३।१३।१४८२। ४. वही ३।१३।१४८४।
५. वही ३।१३।१४८७। ६. वही ३।१३।१५४८।
७. वही ३।१३।१५४९। ८. वही ३।१३।१५५०–१५६४।
९. वहीं ३।१३।१५६५–६७। १०. वही ३।१३।१५६८–७०।
११. वही ३।१३।१५७३। १२. वही ३।१३।१५७८–८४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राजा सभी अपने परिवार के व्यक्तियों तथा मण्डलाधीशों के साथ भोजन करता था। उसके लिए खाने के लिए विशेष रूप से सुवर्ण पात्रों का प्रयोग किया जाता था। वह पूर्व दिशा की ओर गद्दे पर भोजन करने बैठता था और घृतयुक्त मुद्‌ग से भोजन प्रारम्भ करता था। इसी भोजन के मध्य में वह खीर मधुर फल के रस तथा मिष्ठानादि को भी खाता था और दूध आदि का पान करता था।[१]

विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न प्रकार के स्वादपूर्ण भोजन का सोमेश्वर के समय निर्माण होता था। वसन्त ऋतु में कटु, ग्रीष्म में मधुर तथा शीतल, हेमन्त में स्निग्ध तथा उष्ण, शिशिर ऋतु में उष्ण तथा अम्ल रस से पूर्ण भोजन करने का आदेश सोमेश्वर ने दिया है[२]।

सोमेश्वर का यह अन्नोपभोग का प्रकरण उनके पाकशास्त्र के ज्ञान को प्रकट करता है। सोमेश्वर ने विशेष रूप से नल के पाकदर्पण का ही आधार लिया है। किन्तु मांस से बने हुए भोजन में उनकी अपनी मांस विषयक रुचि झलकती है।

वात्स्यायन ने भी मांस को भून कर उसके उपदंशों को बनाकर खाने का उल्लेख किया है—

…भृष्टमांसोपदंशानि पानकानि……

…यथादेशसात्म्यं च।[3]

बौद्ध साहित्य में अनेक प्रकार के सुन्दर व्यंजनों को तैयार करने के प्रसंग का उल्लेख हुआ है। समवायसुत्त में 'अण्णविहितम्' (अन्नविहितम्) शब्द अनेक प्रकार के सुन्दर भोजनों के बनाने की विधि से ही सम्बन्धित है[४]। दीघ-निकाय में भी 'अन्नसन्निधि' का प्रसंग प्राप्त होता है[५]। आर्य वाङ्मय के अन्तर्गत भोजन-सम्बन्धी विधि को भी एक अलग शास्त्र माना गया है जो सूपशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है। इसका उल्लेख मत्स्य पुराण में हुआ है।[६] इस पाकशास्त्र में नल तथा भीम बड़े प्रवीण थे। सुश्रुत संहिता में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

---

१. वही ३।१३।१५८४–१५९७।

२. वही ३।१३।१५९८–१६००।

३. वात्स्यायन कामसूत्र सूत्र १५।१७।

४. ए० वेंकटसूबिया—दिकलाज—सूची १।

५. दीर्घ निकाय ब्रह्मजाल, सुत्त सू० १२।

६. मत्स्यपुराण २१५।२२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विशेषतः सूदेभ्यो ज्ञेयाः । सट्टकस्तु–
लवगंव्योषखण्डैस्तु दधि निर्मथ्य गालितम् ।
दाडिमीबीजसंयुक्तं चन्द्रचूर्णावचूर्णितम् ॥
सट्टकं तु प्रमोदाख्यं नलादिभिरुदाहृतम् ॥[1]

इस उपर्युक्त प्रसंग से यह स्पष्ट है कि नल ने पाक सम्बन्धी कोई ग्रन्थ अवश्य लिखा, किन्तु उस ग्रन्थ के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। सम्भवतः वह ग्रन्थ यही पाक दर्पण है, जिसका आधार सोमेश्वर ने अधिकांशतः ग्रहण किया है।

पानीय भोग

अन्नभोग के पश्चात् जल पीने के विधान का भी सुचारु रूप से वर्णन मानसोल्लास में हुआ है। सर्वप्रथम इस प्रकरण में भोजन के साथ जल पीने के नियम का उल्लेख हुआ है—

मध्ये मध्ये पिबेद्वारि स्तोकं स्तोकं सुशीतलम् ।
भोजनस्य च रुच्यर्थं पाकार्थमशनस्य च ॥[2]

अर्थात् भोजन स्वादपूर्ण लगने के लिए तथा उसके पचनार्थ भोजन करते समय बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा शीतल जल ग्रहण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिस समय भी पिपासा जाग्रत हो उसी समय जल को इच्छानुसार पिए क्योंकि इसमें समय का निर्देश नहीं है—

पिपासायां च जातायां स्वेच्छया पीयते जलम् ।
नियमो नात्र कालस्य तृषावेगो न धार्यते ॥[3]

इन नियमों के पश्चात् प्राणियों के लिए जल के महत्त्व का प्रदर्शन सोमेश्वर ने किया है कि प्राणियों के प्राण जल पर ही आधारित रहते हैं क्योंकि चेतनाहीन व्यक्ति में भी जल सिंचन द्वारा चेतना का सञ्चार हो उठता है।[4]

नौ प्रकार के जलों का उल्लेख मानसोल्लास में हुआ है[5]—

---

१. सुश्रुत संहिता—सूत्रस्थान ४६।४४८–५६।

२. मानसो० ३।१४।१६०२। ३. वही ३।१४।१६०३।

४. असवः प्राणिनामापो जीवितं यत्तदाश्रितम् ।
मूर्च्छिता अपि जीवन्ति यतस्तोयेन सिञ्चिताः ॥
मानसो० ३।१४।१६०४।

५. दिव्य (व्या) न्तरिक्षं नादेयं नैर्झरं साःरसं जलम् ।
भौमं चौण्डं च ताडाकमौद्भिदं नवमं स्मृतम् ॥

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१. दिव्य—स्वाती नक्षत्र में बादलों से घिरा हुआ सूर्य-रश्मियों से मिश्रित तथा सब दोषों को नाश करनेवाला स्वादपूर्ण जल।

२. आन्तरिक्ष—वर्षाकालीन मेघों से बरसा हुआ, स्फटिक के समान निर्मल जल।

३. नादेय—पर्वत से निकली हुई नदी में तथा प्रशस्त भूमि में स्थित रहनेवाला इन्द्रनीलमणि की प्रभा से युक्त जल।

४. नैर्झर—पर्वत शिखर को भेद कर निकला हुआ निर्मल, हल्का, शीतल तथा स्वादयुक्त जल।

५. सारस--बालू के मध्य बनाये हुए गड्ढे में एकत्र जल अथवा नदी एवं पर्वत से एकत्र किया हुआ कुमुद एवं अम्भोज से युक्त जल।

६. भौम—वापी तथा कूप से निकला हुआ नीलोत्पल की प्रभा को धारण करनेवाला निर्मल, मधुर एवं सुस्वादु जल।

७. चौण्ड—स्वच्छ दीर्घ शिलाओं के मध्य अतसी पुष्प के सदृश निर्मल तथा मधुर जल।

८. ताडाक—पालिबन्धन द्वारा कुल्या में भर जानेवाला जल जिसमें प्रति वर्ष नवीन जल मिश्रित होता रहे।

९. औद्भिद।

सोमेश्वरदेव ने उद्भिद जल के लक्षण का उल्लेख नहीं किया है। केवल आठ प्रकार के जलों के ही लक्षण मानसोल्लास में प्राप्त होते हैं।[1] औद्भिद जल का लक्षण भावप्रकाश में इस प्रकार से प्राप्त होता है—

जो जल भूमि के निम्न भाग को विदीर्ण कर महती धारा में बहता है उसे औद्भिद जल कहते हैं।[2]

इन नौ प्रकार के जलों के अतिरिक्त नारियल से निकले हुए स्वादुपूर्ण एवं मनोहर वार्क्ष नामक जल का वर्णन किया है और इसे जीवन के लिए अत्यन्त उत्तम बतलाया है।[3] नारियल से उत्पन्न होने के कारण सम्भवतः इसका नाम वार्क्ष पड़ा है।

ऊपर जो दस प्रकार के जलों का वर्णन हुआ है ये स्वाभाविक जल हैं।

---

१. मानसो ३।१४।१६०६-१६१४।

२. विदार्य भूमिं निम्नां यन्महत्या धारया स्रवेत्।
तत्तोयमौद्भिदं नाम वदन्तीति महर्षयः ॥—भावप्रकाश।

३. दशमं केचिदिच्छन्ति वार्क्षं जीवनमुत्तमम्।
नारिकेलसमुद्भूतं स्वादु वृष्यं (क्षं) मनोहरम् ॥
मानसो० ३।१४।१६१५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इनके अतिरिक्त सोमेश्वर ने जो पिण्डवास[1] तथा पुष्पवास[2] नामक अन्य दो जलों का वर्णन किया है ये सुगन्धियों से सुवासित किए हुए रहते हैं और पीनेमें अधिक स्वादपूर्ण लगते हैं।

दिन में सूर्य की रश्मियों से संतप्त, रात्रि में चन्द्र-किरणों से शीतल, कर्दम तथा शैवाल से युक्त, नीलोत्पलदल की भांति श्यामल, कषाय तथा मधुर जल में कणा, मुस्तक, इलायची तथा चन्दन आदि मर्दित कर खादिर (लकड़ी) के अंगारों पर पका कर मिट्टी के बर्तन में रखकर उसे सब दोषों को हरनेवाले निर्मल जल में डाल दे ऐसा जल पिण्डवास कहलाता है और यह बड़ा ही स्वादपूर्ण होता है ऐसा विचक्षणों का मत है--

कणामुस्तकसंयुक्तमेलोशीरकचन्दनैः ।
मर्दितं मृत्तिकापिण्डं खदिरांगारपाचितम् ॥
निक्षिपेन्निर्मले तोये सर्वदोषहरे शुभे ।
कथितः पिण्डवासोऽयं सलिलेषु विचक्षणैः ॥[3]

इसके अतिरिक्त जो जल सहकार के रस, पाटल तथा चम्पक आदि पुष्पों से एक निश्चित काल तक सुवासित किया हो उस जल को पुष्पवास कहते हैं।[4]

सोमेश्वर ने भोजन के बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा जल पीने का निर्देश किया है और उसे पाचन का कारण माना है उसका प्रसंग प्रबन्धचिन्तामणि में भी इस प्रकार होता है कि थोड़ा थोड़ा बार-बार पानी पीने से उदर में अग्नि की वृद्धि होती है और वही पाचन में सहायक होती है[5]।

अन्त में सोमेश्वर पूर्वोक्त नौ प्रकार के जलों को ऋतु के अनुसार राजा को पीने का उपदेश देते हैं।

दिव्यं शरदि पानीयं हेमन्ते सरिदुद्भवम् ।
शिशिरे वारि ताडागं वसन्ते सारसं पयः ॥
निदाघे नैर्झरं तोयं भौमं प्रावृषि पायते ।
हंसोदकं सदा पथ्यं वार्क्षं पेयं यथारुचि ॥[6]

अर्थात् हंसोदक तो सदैव और वार्क्ष[7] जल अपनी इच्छा अनुसार पीना

---

१. वही ३।१४।१६२० । २. वही ३।१४।१६२१ ।
३. वही ३।१४।१६१९–१६२० । ४. वही ३।१४।१६२१ ।
५. अत्यम्बु पानान्न विपच्यतेऽन्नमनम्बुपानाच्च स एव दोषः ।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद् भूरि ॥
प्रबन्धचिन्तामणि ।
६. मानसो० ३।१४।१६२७–१६२९ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चाहिए किन्तु शरद ऋतु में दिव्य जल, हेमन्त में नादेय, शिशिर में ताडाग, वसन्त में सारस, ग्रीष्म में नैर्झर तथा वर्षा में भौम जल पिए। यह पानीय भोग सोमेश्वर के चिकित्सा-विषयक ज्ञान को प्रकट करता है।

साथ ही सोमेश्वर ने यह भी कहा है कि प्यास लगने पर इच्छानुसार जल पीना चाहिए। इस सम्बन्ध में काल का कोई नियम नहीं है क्योंकि प्यास का आवेग रोका नहीं जा सकता[1]। जल पीने के सम्बन्ध में अनेक प्रसंग आयुर्वेद तथा अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं[2]। किन्तु उनमें से बहुत से नियम सोमेश्वर को मान्य नहीं। सोमेश्वर द्वारा कथित जल का पान अपनी विलक्षणता को प्रकट करता है।

पादाभ्यंगोपपभोग

पानीय भोग के पश्चात् सोमेश्वर ने पादाभ्यंग के उपभोग का वर्णन किया है। यह पादाभ्यंग राजा का नित्य का कर्म था जो सुन्दर दासियों द्वारा किया जाता है। पादाभ्यंग के विषय में सोमेश्वर ने राजा को इस प्रकार का आदेश दिया है—

वामपार्श्वे शयानः सन्पादावभ्यञ्जयेत्सुखी।[3]

अर्थात् वाम पार्श्व की ओर लेटकर राजा पादाभ्यंग करावे। पादाभ्यंग के लिए सोमेश्वर ने घृत, शतधौत नवनीत, दही, तेल, दुग्ध, तक्र, चन्दन के क्षोद का जल आदि पदार्थ बताए हैं।[4] इन सभी वस्तुओं का अभ्यङ्ग अशोक के पल्लव के सदृश कोमल हस्तोंवाली सुन्दर कामिनियों द्वारा करवाये। उपर्युक्त वस्तुओं के अनुसार करवाना चाहिए। इसका वर्णन सोमेश्वर ने सुचारु रूप से किया है—

वसन्ते सर्पिषा दध्ना शीतेन पयसाऽपि वा।
निदाघे नवनीतेन काञ्जिकेन सफेनकैः॥
वर्षासु वसयाभ्यड्यो पादौ तक्रेण वा पुनः।
शतधौतेन शरदि सर्पिषा चन्दनोदकैः॥
हेमन्ते शिशिरे चैव तैलनाभ्यञ्जयेत्पदे।
पश्चात्प्रक्षालयेत्पादौ सुखस्पर्शेन पायसा॥[5]

---

१. पिपासायां च जातायां स्वेच्छया पीयते जलम्।
नियमो नात्र कालस्य तृषावेगो न धार्यते॥
मानसो० ३।१४।१६०३।

२. पिवेद् घटसहस्रं तु यावन्नाभ्युदितो रविः।
उदिते तो सहस्रांशौ बिन्दुरेको थटायते॥ प्रबन्धचिन्तामणि।

३. मानसो० ३।१५।१६३१। ४. वही ३।१५।१६३१–३२।

५. वही ३।१५।१६३४–३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अर्थात् वसन्त ऋतु में घृत तथा दधि से, शीतकाल में दुग्ध से, ग्रीष्मकाल में नवनीत तथा फेन युक्त काञ्जी से, वर्षाकाल में तक्र तथा वसा (चरबी) से, पादाभ्यंग करवाना चाहिए तत्पश्चात् ऋतुओं के ही अनुसार स्पर्श करने में सुख प्रदान करनेवाले जल से पादप्रक्षालन करवाना चाहिए। यह अभ्यंग का वर्गीकरण सोमेश्वर के स्वास्थ्य विषयक वैज्ञानिक अनुभव को प्रकट करता है।

इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने पादाभ्यंग के लिए एक प्रकार के चूर्ण का भी प्रयोग करने का आदेश दिया है जो मसूर तथा जौ के आटे में हल्दी का चूर्ण मिलाकर उबटन किया जाता था। इसके लगवाने के पश्चात् राजा को सुखस्पर्श जल द्वारा चरण धुलवा डालना चाहिए[१]। सोमेश्वर ने अभ्यंग का वास्तविक अर्थ सम्भवतः मलने तथा दाबने से लिया है और यह सभी प्रकार के अभ्यंग भोजन के उपरान्त नित्य होना चाहिए यही पादाभ्यंग का उपभोग है—

एवं यः कारयेद्राजा भोजनादूर्ध्वमन्वहम् ।[२]

सोमेश्वर ने अभ्यंग का अर्थ मर्दन एवं मालिश से लिया है और विशेष रूप से उन्होंने चरण-मर्दन का ही वर्णन किया है, किन्तु यह मर्दन एवं संवाहन की क्रिया भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही प्रचलित है और यह क्रिया भी चौंसठ कलाओं के मध्य गिनी गई है। वात्स्यायन के समय में नागरक संवाहन अथवा अभ्यंग करवाने के विशेष प्रेमी थे।[३] कादम्बरी के अनुसार स्नान, पूजा तथा भोजनादि को समाप्त कर नागरक विश्राम करता था और एक प्रकार की धूम्रवर्ति (चुरुट) का पान करता था। तत्पश्चात् ताम्बूल खाकर लेटता था और तब कोई संवाहक धीरे धीरे उसके चरण दबाता था।[४] दीघनिकाय में भी संवाहन क्रिया का उल्लेख हुआ है और इसे एक आनन्दप्रद क्रिया मानी है।[५] मृच्छकटिक में भी ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि चारुदत्त का एक उत्तम संवाहक था, जो संवाहन कला में अत्यन्त निपुण था और दरिद्र होने के कारण बाद में जुआ का व्यसनी हो गया था। जब चारुदत्त की प्रेमिका वसन्तसेना ने उसे देखा तो उसके संवाहन की प्रशंसा की थी। इस प्रकार से अधिकांशतः संवाहन का कार्य पुरुष ही करते थे।

---

१. मसूरयवपिष्टैश्च हरिद्राचूर्णमिश्रितैः ।
उद्धृत्य च पुनः पादौ क्षालयेत्सुखवारिणा ॥
मानसो० ३।१५।१६३७ ।

२. वही ३।१५।१६३८ ।

३. उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्, कामसूत्र २–४५ ।

४. काम्बरी कथामुख भाग ।

५. दीघनिकाय १।७ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किन्तु सोमेश्वर ने संवाहन-क्रिया को अभ्यंग नाम दिया है और उसके समय में यह कार्य विशेष रूप से स्त्रियां करती थीं। पादाभ्यंग करवाते समय सोमेश्वर ने बाईं ओर लेटने का आदेश दिया है। मराठी में इसे वामकुक्षी कहते हैं। कुछ आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रंथों में ऐसा भी आदेश दिया गया है कि भोजन करने के पश्चात् सर्वप्रथम सौ पद चले, तब सीधे लेटकर आठ श्वासें, सोलह श्वासें दाहिनी ओर तथा बत्तीस श्वासें बाईं ओर लेट कर ले। सम्भवतः यह क्रिया भोजन के पाचन में सहायक सिद्ध होती है।

यानोपभोग

यानोपभोग के अन्तर्गत सोमेश्वर ने नौ प्रकार[१] के यानों का वर्णन किया है—

१. दोला—स्वर्ण श्रृंखला की भांति पट्टों से सुशोभित, शय्या की भांति तकिया से युक्त दिव्य पट्ट की प्रभा को धारण करने वाला, दो व्यक्ति के चढ़ने योग्य एक दण्डिक वाला यान दोला यान कहलाता है।

२. सुखासन—हाथी दांत से बना हुआ, सुवर्ण तथा रत्नादि से विभूषित, शार्दूलचर्म से आच्छादित दो दण्डिकाओं से युक्त, हंसशय्या से समन्वित चार व्यक्तियों के चढ़ने योग्य आसन सुखासन कहलाता है।

३. हस्तियान—सामने से जो विपुल स्कन्ध वाला, मृदु संचार करने वाला, चलाने पर तेज चलने वाला यान नाग कहलाता है ऐसा विद्वानों का मत है।

४. करिणी – सुवर्ण स्तम्भ से युक्त, मुक्ता की लड़ियों से युक्त, ऊर्ध्व प्रदेश में काञ्चन-कलशों से सुशोभित, मयूरपिच्छ अथवा पुच्छों से आच्छादित, सुन्दर चामीकर से छिपी हुई, पुष्पों से सुशोभित करिणी का यान करणी यान कहलाता है।

५. अश्वतरी—उपवेश में स्थिर तथा धीर चित्त वाली, चलने में थोड़ा अधिक जोर से चलने वाली, दौड़ने में अत्यन्त मनोहर तथा सभी प्रकार से निर्भय, चारु चामीकर से आसन्न तथा पुष्पक से सुशोभित, अस्खलित पदन्यास वाली घोड़ी का यान अश्वतरी यान कहलाता था। इस यान को सोमेश्वर ने अत्यन्त श्रेष्ठ यान बतलाया है।[२]

---

१. मानसो० ३।१६।१६३९–४०।
दोला सुखासनं हस्ती करिण्यश्वतरी हयः।
रथो नौ प्लवकश्चेति नवधा यानमुच्यते ॥
... ...

२. चारुचामीकरच्छन्नपुष्पकेणोपशोभिता।
अस्खलन्ती पदन्यासे यानेष्वश्वतरी वरा ॥ मानसो० ३।१६।१६४९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

६. हययान—मयूर तित्तिर मराल तथा चतुष्क इन चार गतियों से सुशोभित जो अश्व का यान है वह हययान कहलाता है। यह चारों प्रकार की गतियाँ चतुष्क गति के नाम से प्रसिद्ध है—

मयूरगतिको वाह्यस्तित्तिरीगतिसन्निभः।
मरालगमनो वाऽपि चतुष्कगतिशोभितः॥[1]

इन गतियों के विषय में ऐसा वर्णन हुआ है कि शीघ्र चलते समय जब घोड़े की पुच्छ तथा ग्रीवा विशेष रूप से प्रकम्पित हो उसे मायूरी गति कहते हैं—

गच्छतः कम्पनेऽश्वस्य पुच्छग्रीवं विशेषतः।
त्वरिता गतिरित्यर्थं मायूरीति निगद्यते॥[2]

जहाँ शीघ्र पैर रखने पर भी घोड़े की पूछ नहीं हिलती उसे तैत्तिरी तथा जहाँ पार्श्वों की ओर डोलने पर घोड़ा हंसवत् चलता तथा शिर हिलाता है उसे मराली गति कहते हैं।[3]

जहाँ पर घोड़ा चारों पैरों द्वारा समान गति से ललित चाल चलता है वह चतुष्क गति कहलाती है यह उत्तम तथा अत्यन्त सुखदायिनी गति है—

चतुष्कागतिराख्यातान्नुत्तमा सुखदायिनी[4]

हययान में प्रयुक्त अश्व में इन चारों प्रकार की गतियों का होना आवश्यक था।

७. रथ—दो चक्रों (पहियों) से युक्त, चार अथवा दो घोड़ों से युक्त, उन्मत्त हाथियों के भव्य चित्रों से सुशोभित, सुदृढ़ तथा नाना वर्ण की पताकाओं से सुशोभित उत्तम रथ का आरोहण रथयान कहलाता है। यह यान राजाओं के ही योग्य बतलाया गया है।[5]

---

१. मानसो० ३।१६।१६५०। २. वही ३।१६।१६४१।

३. शीघ्रं पदानि कुरुते यत्र पुच्छं न कम्पते।
सागतिस्तैत्तिरी ज्ञेया हयवाहनकोविदैः॥
पार्श्वाभ्यां दोलना यत्र हंसवद्गच्छतो हरे।
शिरोऽपि म (विधु) नुते तद्वन्मराली गतिरीदृशी॥
मानसो० ३।१६।१६५२–५३।

४. वही ३।१६।१६५४।

इस श्लोक में अनुत्तमा शब्द त्रुटिपूर्ण विदित होता है उत्तमासुखदायिनी शब्द ही उपयुक्त होगा।

५. उत्तमः स्यन्दनो याने नृपाणामेव निर्मितः॥
मानसो० ३।१६।१६५६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

८. नौयान—शाक की लकड़ी के बने हुए फलकों से आच्छन्न, वल्कल से आवेष्टित गम्भीर जल में चलने वाला नौयान होता है।[1]

९. प्लवक—यह वेणु तथा अन्य वृक्षों की पत्तियों से बनता था। आकार में गोल होता था तथा चारों ओर से चमड़े से ढका होता था। यह यान जल में चलने वाली आनन्ददायिनी नाव की भांति होता था।[2]

इतने प्रकार के यानों का राजा यथायोग्य प्रयोग करता था।

उपर्युक्त यानों में करिणी तथा अश्वतरी यान में 'चारुचामीकरच्छन्न पुष्पेणोपशोभिता' पाद का समानरूप से प्रयोग हुआ है इससे विदित होता है कि करिणी तथा अश्वतरी (घोड़ी) दोनों पर ही पुष्पक रखा जाता होगा। मराठी में इसी पुष्पक को 'अम्बरी' कहते हैं।

भोजराज ने युक्तिकल्पतरु में दो प्रकार के यानों का उल्लेख किया है—चतुष्पदयान यथा द्विपदयान। इन दोनों के गुणों तथा दोषों का भी भोजराज ने विस्तृत उल्लेख किया है। चतुष्पदयान के सम्बन्ध में उनका कथन है कि वह गुणों से युक्त होना चाहिए। शुभकामनाओं वाला व्यक्ति कभी दोषयुक्त चतुष्पदयान को न छूता है न उसकी ओर देखता है।[3]

द्विपदयान के महाराज भोज ने अनेक भेद बतलाये हैं किन्तु उनमें दो मुख्य हैं—सामान्य तथा विशेष।[4]

छत्रोपभोग

यानोपभोग के पश्चात् सोमेश्वर ने छत्रोपभोग का वर्णन किया है। यह उपभोग राजा के लिए अत्यन्त प्रिय उपभोग माना है क्योंकि राजवल्लभः[5]

---

१. शाकजैः फलकैश्छन्ना या च वल्कलवेष्टिता।
आयता सुदृढा नीरे सा नौयाने प्रशस्यते॥
मानसो० ३।१६।१६५७।

२. वेणुकस्राभिरन्योयं गुम्फितो वर्तुलाकृतिः।
पिनद्धचर्मणो बाह्ये प्लवकोऽयं जलेचरः॥ वही ३।१६।१६५८।

३. वरमयानमपोषणमेव वा वरमिवान्यशरीरमपोषणम्।
न खलु दोषयुतं च चतुष्पदं स्पृशति पश्यति शोभनचेतनः॥
भोजराज—युक्तिकल्पतरु।

४ मानुषैः पक्षिभिर्वापि तथान्यैर्द्विपदैरपि।
यानं स्याद् द्विपदं नाम तस्य भेदो ह्यनेकधा॥
सामान्यं च विशेषं च तस्य भेदो द्विधा भवेत्॥
भोजराज-युक्तिकल्पतरु।

५. मानसो० ३।१७।१६६०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शब्द का प्रयोग हुआ है। इस प्रकरण में चार प्रकार के छत्रों का वर्णन किया है[१]—

१. पुण्डरीकसितच्छत्र—नाना वर्ण के सूत्रों द्वारा बने हुए पञ्जर पर आच्छादित मुक्ता लड़ियों से पूर्ण, नीलवर्ण के विद्रुम एवं मुक्ताओं से सुशोभित काञ्चन जाति के कलश से पूर्ण छत्र जो सुवर्णपट्ट से निबद्ध दण्ड द्वारा धारण किया जाता था।

२. मेघडम्बर—जो वर्ण के पट्ट द्वारा आच्छादित अनेक वर्ण की विचित्र झल्लरियों से युक्त रजतदण्ड द्वारा धारण किया जाता था।

३. चामर—जो श्वेत छत्र द्वारा ढका हुआ अनेक मणियों से जटित, सुवर्ण कलाप एवं चंद्रिका से पूर्ण, सुवर्ण तथा हाथी दांत के बने हुए दण्ड द्वारा धारण किया जाता था।

४. पिच्छ छत्र—जो मयूरपिच्छों द्वारा बनाया जाता था। यह देखने में अत्यन्त सुन्दर होता था।

ये सभी छत्र तथा चामर राजप्रासादों में ही प्रयोग में लाये जाते थे और राजा के आतप को दूर कर उसे शीतलता प्रदान करते थे।

भोजराज के युक्तिकल्पतरु में दो प्रकार के छत्रों का उल्लेख मिलता है—विशेष तथा सामान्य[२]। राजा का छत्र विशेष छत्र के अन्तर्गत आता है। महाराज सोमेश्वर ने राजा द्वारा प्रयुक्त विशेष छत्रों का ही उल्लेख किया है क्योंकि जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सुवर्ण तथा रजत के दण्ड से युक्त तथा रत्नादि से जटित छत्र राजा ही धारण कर सकता है। शब्दरत्नावली में छत्र को नृप का चिह्न माना है[३]। जटाधर ने भी छत्रको नृपलक्षण मान कर उसके भेदों का उल्लेख किया है।[४]

बृहत्संहिता में अनेक प्रकार के छत्रों के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है।[५] समवाय सुत्त[६] में एक स्थल पर 'छत्तलक्खणम्' (छत्रलक्षणम्) का प्रयोग हुआ

---

१. वही ३।१७।१६६३–६७।

२. विशेषश्चाथ सामान्यं छत्रस्य द्विविधा भिदा।
राज्ञश्छत्रं विशेषाख्यं सामान्यश्चान्यदुच्यते ॥
भोजराज—युक्तिकल्पतरु।

३. छत्रे कनकदण्डे तु रागश्रृंगमुदाहृतम्।
नृपलक्ष्म भवेत्तत्तु यच्छत्रं पृथिवीभुजाम् ॥ शब्दरत्नावली।

४. आतपत्रं च राज्ञस्तु नृपलक्ष्म सितन्तु तत्।
पुण्डरीकमथो भद्रासनं राजासनं तु यत् ॥ जटाधर।

५. बृ० सं० अध्याय ७३। ६. समवायसुत्त २–२–२६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है जिससे विदित होता है कि बुद्धकाल में भी छत्र का प्रयोग होता था।

इस प्रकार से छत्र विषयक तो अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं क्योंकि सभी राजा छत्र को अवश्य ही धारण करते थे, किन्तु यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो यह छत्र राजा की शोभा को बढ़ाने के साथ ही साथ राजा की रक्षा का भी प्रतीक है। यह छत्र इस बात की ओर संकेत करता है कि यद्यपि राजा इतने ऐश्वर्यशाली पद पर आरूढ़ होने के कारण सुख के साथ-साथ अनेक आपत्तियों से घिरा है, किन्तु फिर भी जनता छत्र के रूप में सदैव राजा की रक्षा करने के लिए तत्पर है।

शय्योपभोग

छत्रभोग के पश्चात् शय्या के उपभोग का मानसोल्लास में विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। इस प्रकरण में सोमेश्वर ने सात प्रकार की शय्या एवं आठ प्रकार के मञ्चों का वर्णन किया है। शय्या के सात प्रकार निम्नलिखित हैं[1]—

१. हंसपिच्छमयी—जो चर्म की शय्या हंस के पिच्छों को बिठा कर बनाई जाती थी।

२. तूलजा—जो शाल्मलीवृक्ष से निकली हुई तूल द्वारा भरकर बनाई जाती थी।

३. कर्पासजा—रुई भरकर जो शय्या बनती थी। यह कपास को धनुष द्वारा धुनकवा कर मजबूत वस्त्र के अन्दर भरकर के बनाई जाती थी।

४. केसरजा—जो केसर, नागपुष्प, सुरभि, कुंकुम आदि पुष्पों की पत्तियां डाल-डाल कर बनाई जाती थी। इस पर कमल बिखरे होते थे।

५. पल्लवजा—कमल, कल्हार आदि पुष्पों के पत्रों को बिछाकर जो कोमल शय्या तैयार की जाती थी।

६. कुसुमजा—इस शय्या के निर्माण में मल्लिका, चम्पक तथा अन्य सुगन्धित पुष्पों का प्रयोग किया जाता था। यह शय्या काम-केलि के समय प्रयोग में लाई जाती थी।

७. तोयजा—चमड़े के बने हुए बड़े तथा लम्बे थैले में शीतल जल भर कर यह तैयार की जाती थी।

---

१. हंसपिच्छमयी काचिच्छाल्मली तूलजा परा।
कर्पासरचिता चान्या केसरैरितरा कृता।
पल्लवः कल्पिता काचित् काचित्कुसुमनिर्मिता॥
पानीयपूरिता काचिच्छय्येय सप्तधा स्मृता।
मानसो० ३।१८।१६७०–७२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन सभी शय्याओं का सोमेश्वर ने राजा के लिए समय तथा ऋतु के अनुसार प्रयोग करने का आदेश दिया है। वसन्त-ऋतु में राजा हंसपिच्छों से निर्मित तथा पुष्पपत्रों से निर्मित शय्या का प्रयोग क्रीडा के समय करता था—

वसन्ते हंसजा शय्या क्रीडायां पुष्पपत्रजा ॥[१]

ग्रीष्म-ऋतु में राजा शयन के लिए तूलजा शय्या का प्रयोग करता था किन्तु मध्याह्न के समय जलपूर्ण (तोयजा) शय्या का प्रयोग करता था। हेमन्त, शिशिर तथा वर्षा-ऋतु में शीत के निवारणार्थ कर्पास की बनी हुई शय्या का प्रयोग करता था।

भावप्रकाश में शय्या के गुणों पर सुचारुरूप से प्रकाश डाला गया है। उसके अनुसार शय्या आनन्ददायिनी, पुष्टि, निद्रा तथा धृति को प्रदान करने वाली और श्रमानिल को हरण करनेवाली होती है।[२]

याज्ञवल्क्य ने शय्या के दान को अत्यन्त सुखप्रदान करने वाला बतलाया है—

गृहधान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुलेपनम्।
यानं वृक्षं प्रियं शय्यां दत्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥[३]

विष्णुपुराण में शय्या के प्रयोग के सम्बन्ध में लिखा है कि गृहस्थ को चाहिए पैर धोकर तथा शुद्ध होकर सायंकाल भोजन करने के उपरान्त दारूमयी शय्या का सेवन करे। प्रयोग में लाई जानी वाली शय्या न बहुत बड़ी हो न टूटी हो, न मलिन हो, न जन्तुमयी हो—

कृतपादावशौचश्च भुक्त्वा सायं ततो गृही।
गच्छेत् शय्यामस्फुटितामेव दारुमयीं नृप ॥
नाविशालां न वै भग्नां नासमां मलिनां न च।
न च जन्तुमयीं शय्यामधिगच्छेदनास्तृताम् ॥[४]

शय्या के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने निम्नलिखित आठ प्रकार के मञ्चों का वर्णन किया है[५]—

---

१. मानसो० ३।१८।१६९२।

२. सुखशयासनं हृद्यं पुष्टिनिद्राधृतिप्रदम्।
श्रमानिलहरं वृष्यं विपरीतमतोऽन्यथा ॥ भावप्रकाश।

३. याज्ञवल्क्य १।२११। ४. विष्णु पु० अंश ३ अध्याय ११।

५. दन्तांघ्रिः लौहचरणः साष्टापदपदस्तथा।
वरश्च बलनं चैव वेत्रितः पट्टिकामयः
दोलाक्षश्चेति कथिता मञ्चा विद्वद्भिरष्टधा ॥
मानसो० ३।१८।१६७२–७३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१—दन्तांघ्रिमञ्च—गजदन्त से ही बनता था और उसमें चार पाये भी हाथीदांत के ही होते थे।

२—लौहमञ्च—लौह से निर्मित और उसी से निर्मित पायों वाला मञ्च लौहचरण मञ्च कहलाता था।

३—चतुष्पद—चामीकर से बना हुआ अनेक प्रकार की रचना से युक्त आठ पायों वाला मञ्च चतुष्पद कहलाता था।

४—वरमञ्च—यन्त्रिपत्र द्वारा किये जाने पर जो अत्यन्त सरस एवं सुन्दर नाद को विस्तारित करता है वह वरमञ्च होता है। यह कामुकों द्वारा काम-केलि के समय प्रयोग में लाया जाता था।

५—बलमञ्च—जो प्रवेश करने मात्र से ही ऊपर नीचे होता था और देखने में अत्यन्त सुन्दर लगता था वह बलमञ्च कहलाता था। इसका दूसरा नाम लवमञ्च भी था—

दृढाङ्घ्रि चारुरूपश्च लवमञ्चः प्रकीर्तितः ॥[१]

६—वेत्रमञ्च—जो बाहर से अलग-अलग तथा भीतर से घने वेंत से बिना होता था और कुटिल चरणों से युक्त होता था वह बेत्रमञ्च कहलाता था।[२]

७—पट्टिकामञ्च—रुई से बना जो अनेक प्रकार की दीर्घ तथा विचित्र वर्णवाली पट्टिकाओं से युक्त हो ऐसा मञ्च पट्टिकामंच कहलाता था।

८—दोलामञ्च—यह चन्दन तथा देवदारु की लकड़ी से बनता था और सुवर्ण की आभा को विस्तारित करनेवाला अनेक दिव्यरत्नों से जटित तथा उन्मत्त गजों से सुशोभित सुवर्ण की श्रृङ्खलाओं द्वारा बांध कर लटकाया जावा था। यह किञ्जिल्क की शय्या से युक्त होता था और झूले की भांति इधर-उधर हिलता था। यह मञ्च अत्यन्त सुख-प्रदान करनेवाला होता था। इस मञ्च का प्रयोग शरत्काल में राजा क्रीड़ार्थ करता था।

श्रीमद्भागवत पुराण में मल्ललीला के प्रसंग में विविध मंचों का उल्लेख हुआ है।[३] कथासरित्सागर में भी मंचक का उल्लेख हुआ है।[४]

इतने प्रकार की शय्या तथा मञ्चों का प्रयोग राजा शयन, विश्राम एवं क्रीडा के हेतु करता था। इसीको सोमेश्वर ने शय्याभोग कहा है—

---

१. मानसो० ३।१८।१६७३। २. वही ३।१८।१६८८-८९।

३. मंचाः क्रियन्तां विविधा मल्लरंगपरिश्रिता। श्रीमद्० १०।३६।२४।

४. वारिधानी तु कुम्भश्च मार्ज्जनी मंचकस्तथा।
अहं च मत्पतिश्चेति युग्मत्रितयमेव नौ॥
कथासरित्सागर २७।९१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवं विधेषु मञ्चेषु शय्यास्वेवंविधासु च।
शेते विशाम्पतिर्यत्तु शय्याभोगः प्रकीर्तितः ॥[१]

धूपभोग

शय्याभोग के पश्चात् उत्कट सुगन्धि वाले धूपों का वर्णन सोमेश्वर महाराज ने किया है। इसके अन्तर्गत सोमेश्वर ने तीन प्रकार के मुख्य धूपों का वर्णन किया है—

१—चूर्णधूप—लाख, गुग्गुल, राल, कुष्टुरु, सिल्हक, चन्दन, दारु, सरल, लघुकोष्ठ को जब बालक मांसी, कुंकुम, पथ्या, कस्तूरी तथा पूतिका बीज, शंख नाभि, नख चूर्ण के साथ लेकर द्रव वस्तु को त्याग कर श्वेत घृत, मधु तथा गुड़ को मिलाकर कर्पूर द्वारा जब धूप दी जाती है उसे चूर्णधूप कहते हैं। यह अत्यन्त उत्तम धूप मानी गई है।

द्विगुणं लघुकर्पूरं चूर्णधूपोऽयमुत्तमः ।[२]

इन्हीं पदार्थों से युक्त धूप का उल्लेख अग्निपुराण में भी प्राप्त होता है—

पुष्पाणि च सुगन्धीनि धूपञ्च घृतसंयुतम् ।
गुग्गुलं कुंकुमं चैव देवदारु तुरुष्ककम् ॥
सिल्हकं चन्दनं काष्ठं श्रीवासं चागुरुं तथा ।
सर्ज्जरसं नखं चैव दैवे पैत्रे च कर्मणि ॥

इन पदार्थों से युक्त धूप को दैव तथा पैत्रकर्म के योग्य बतलाया गया है। अतः यह अवश्य ही उत्तम प्रकार की धूप होगी।[३]

२—पिण्डधूप—इन्हीं सब वस्तुओं में सिल्हक मिलाकर उसमें मधु, घृत तथा गुड़ मिलाकर उसका पिण्ड बनाकर जो धूप दी जाती है वह पिण्डधूप है।[४]

३—वर्तिधूप—इन्हीं सब वस्तुओं को दुग्ध में पीसकर घृत, मधु में मिलाकर शुष्क वर्त्तिका द्वारा जो धूप दी जाती है उसे वर्त्तिकाधूप कहते हैं।[५]

कालिकापुराण में चूर्ण यथा वृत्तधूप का उल्लेख मिलता है—

क्षोदे वृत्ते च गदिता धूपा एते उदाहृताः[६] ।

वृत्तधूप का अर्थ सम्भवतः वर्तिकाधूप से है। साथ ही पिण्डधूप का भी प्रसंग प्राप्त होता है—

१. मानसो० ३।१८।१६९५–९६ ।
२. मानसो० ३।१९।१७०० ।
३. अग्नि पु० भोजनविधाननामाध्यायः ।
४. मानसो० ३।१९।१७०१ । ५. वही ३।१९।१७०१–२ ।
६. कालिका पु० अ० ६८ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पत्रिवाहः पिण्डधूपः सुगोलः कण्ठ एव च।[1]

इन सभी धूपों का वर्णन कर उन्हें देने के विविध उपायों का उल्लेख किया है। सुवर्ण का खग-मृग अथवा किसी अन्य पशु की आकृति का छिद्रयुक्त सम्पुट बनवाकर उसमें अंगार रखकर पिण्डधूप दिया जाता है और उस पशु के मुख, नासिका आदि के छिद्रों द्वारा धूप-धूम बाहर आता है।

अंगार से गर्भित तथा चक्रदण्ड से संयुक्त पात्र में धूप के चूर्ण (चूर्णधूप) को वारम्बार बिखेरे। हस्तिदन्त के बने हुए अनेक दण्ड वाले सूचि से संयुक्त पात्र के सूचिकाग्र में वर्ति डालकर अग्नि से जलावे और जब पात्र के रन्ध्रों से धूप-धूम निकलना बन्द हो जाय तो करण्ड-दण्ड से युक्त हाथों से उसे घुमावे। यह धूप से समन्वित करण्ड-दण्ड या तो राजा अपने मुख के सम्मुख या अपनी प्रिया के मुख के सम्मुख रखे। इस धूप को खोम्पर पर फेंके। इस प्रकार वस्त्र से आच्छादित अपनी शय्या को धुपाये। वर्त्तिधूप विशेषतः धौतवस्त्रों (सारियों) एवं केशों के धुपाने में प्रयोग में लाई जाती थी इन तीनों के प्रयोग के विषय में सोमेश्वर ने लिखा है—

पञ्चपैर्धौतवासांसि पिण्डकैश्चूर्णकैरपि।
गृहं च पिहितद्वारं निरोधितगवाक्षकम्॥

इस प्रकार विलासी, चतुर तथा विनोदी राजाओं के लिए धूम्र से पूर्ण पिण्डधूप का प्रयोग करे।

कालिकापुराण में धूप की बड़ी प्रशंसा मिलती है। उसके अनुसार धूप नासिका तथा अक्षिरन्ध्रों को सुख पहुँचाने वाला होता है। और इसकी सुगन्ध अत्यन्त मनोहर होती है[2]। निस्ताप धूम्र से युक्त होने के कारण ही यह धूप कहलाता है और देवताओं को प्रसन्न करनेवाला है।[3]

श्रीमद्भागवतपुराण में भी धूप विषयक अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं।[4] इस समय में अन्य वस्तुओं के साथ ही साथ धूप देने के लिए अगरु का विशेष-रूप से प्रयोग होता था—

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना।
धूपैरगुरुजै राजन् जालरंध्रविनिर्गतै॥[5]

---

१. वही।
२. नासाक्षिरन्ध्रसुखदः सुगन्धोऽति मनोहरः। कालिका पु० अ० ६८।
३. ....धूमो निस्तापो यस्य जायते।
स धूप इति विज्ञेयो देवानां तुष्टिदायकः॥ कालिका पु० अ० ६८।
४. श्रीमद्० पु० १०।६०।२५। ५. श्री० पु० १०।६०।५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बृहत्संहिता में अनेक प्रकार की सुगन्धित वस्तुओं को मिलाकर धूप बनाने का उल्लेख हुआ है और इसका प्रयोग उत्सवों एवं धार्मिक-कृत्यों के समय होता था[१]। वात्स्यायन ने धूप बनाने को 'गंधयुक्ति' कला मानी है[२]। ललित-विस्तर में भी 'गंधयुक्ति' शब्द का प्रयोग हुआ है जो उस समय में बनने वाले सुगन्धित धूप की ओर संकेत करता है[३]। दीर्घनिकाय में धूप बनाने के लिए 'गन्धसन्निधि' शब्द प्राप्त होता है[४]। इस प्रकार धूप का प्रयोग सदा से ही भारत में प्रचलित रहा है। वर्तमान काल में भी धूप का प्रयोग चूर्ण तथा वर्तिका के रूप में होता है।

योषिद् भोग

स्नान, विलेपन, माला-धारण किए हुए, सुन्दर वस्त्र तथा बहुमूल्य आभूषण धारण किए हुए, धूप से सुवासित राजा के योग्य सोमेश्वर ने योषिद्भोग का वर्णन किया है। सोमेश्वर सर्वप्रथम इस प्रकरण में स्त्रियों के श्रेष्ठगुणों के विषय में वर्णन करते हैं। अचापल्य, भय, लज्जा, दाक्षिण्य, अनुकूलता, मधुरस्वरता, दक्षता, पटुता, प्रियवादिता, शुचिता, गुरुशुश्रूषा में रति, धर्मज्ञ, सत्यवादिता, सभी कर्मों में कुशलता, हृष्टता, स्मितहासिता, पति के दोष को छिपाना आदि स्त्रियों के प्रधान गुण सोमेश्वर ने अपने मानसोल्लास में बतलाया है।[५]

गुणों के पश्चात् गुणों के अनुसार स्त्रियों की श्रेष्ठता का विचार किया गया है। सभी स्त्रियों में रूपवती स्त्री श्रेष्ठ है, रूपवती में यौवनपूर्ण, यौवनवती में गीतज्ञा, गीतज्ञा स्त्रियों में नर्तकी श्रेष्ठ है—

स्त्रीणां रूपवती श्रेष्ठा सुरूपासु सयौवना।
सयौवनासु गीतज्ञा गीतज्ञास्वपि नर्तकी
उत्तरोत्तरमेतासु श्रेष्ठम् पूर्वगुणैः सह॥[६]

---

१. बृहत्संहिता अध्याय ७७।
२. ए० वेंकटसूब्रिया दिकलाज सूची ३ कामसूत्र पृ० ३२–३३।
३. ललितविस्तर पृ० ८६।
४. दीर्घनिकाय ब्रह्मजाल सुत्त ६।
५. अचापल्यं भयं लज्जा दाक्षिण्यमनुकूलता।
मधुरस्वरता दाक्ष्यं पटुत्वं प्रियवादिता॥
मानः शुचित्वं दाक्षिण्य गुरुशुश्रूषणे रतिः॥
धर्मज्ञतार्जवं सत्यं कौशलं सर्वकर्मसु।
हृष्टता स्मितहासित्वं पतिदोषनिगूहनम्॥
कथिता मुनिभिरेते योषितां प्रवरा गुणाः।
मानसो० ३।२०।१७१३–१६।
६. वही ३।२०।१७१६–१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन स्त्रियों में उत्तरोत्तर गुणों वाली स्त्रियां पूर्व के गुणों से श्रेष्ठ हैं। इन सभी गुणों से युक्त स्त्री इस पृथ्वी पर मिलना दुर्लभ है[1]।

इन्हीं गुणों के ही आधार पर छः प्रकार की स्त्रियों का उल्लेख सोमेश्वर ने किया है—मृगी, पद्मिनी, चित्रिणी, वड़वा, शंखिनी तथा हस्तिनी। इनमें से मृगी तथा पद्मिनी उत्तमजाति वाली, चित्रिणी तथा वडवा मध्यमजाति वाली तथा शंखिनी और हस्तिनी अधमजाति की स्त्रियां कही गई हैं—

मृगी च पद्मिनी चैव चित्रिणी वडवा तथा।
हस्तिनो शंखिनी चेति षड्विधा जातिरिष्यते॥
आद्ये द्वे उत्तमे तत्र मध्यमे मध्यसंस्थिते।[2]
अन्त्यस्थिते कनिष्ठे च त्रिधा जात्या प्रकीर्तिताः॥

इस प्रकार उत्तम, मध्यम तथा अधम ये तीन प्रकार की जाति वाली स्त्रियां होती हैं। इनमें से उत्तम तथा मध्यमजाति वाली स्त्रियों को सोमेश्वर ने भोग योग्य बतलाया है[3] और अधमजाति की स्त्रियों से सदैव बचने का आदेश दिया है—

हस्तिनी शंखिनी चेमे भोगाय परिवर्जयेत्।[4]

इन जातियों का वर्णन करने के पश्चात् सभी प्रकार की स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक किया है।

मृगी जाति को स्त्रियों के गुण—

पैरों में कोकनद की छाया से युक्त गूढ़ गुल्फ से सुशोभित, गोल जघन-प्रदेश वाली, सुन्दर उरू वाली, पीवर जघन-स्थल वाली, अश्वत्थदल की शोभा के सदृश गुह्यांग वाली, उन्नतस्तन वाली, कोमल बाहुयुगल, ताम्र की कांति से युक्त नखवाली, प्रवालमणि के सदृश दन्तपंक्ति वाली, दाड़िम की 'शंका को उत्पन्न कर देने वाली रसना से युक्त, समान कपोल वाली, शुक्ति के सदृश कर्ण वाली, सुन्दर नासिका वाली, दीर्घ तथा भयभीत मृगी की दृष्टि से युक्त नेत्रों वाली, वक्र तथा दीर्घ भ्रूलता से युक्त, अष्टमीचन्द्र के सदृश भाल वाली, गज, तथा मृग के समान गति वाली, क्षण में रुष्ट तथा तुष्ट होने वाली, रति कर्म में लालसा रखने वाली, चञ्चल तथा दृढ़ चित्त वाली तथा सदैव प्रिय वचन बोलने वाली स्त्री मृगी जाति की होती है[5]—

एतैर्गुणैः समायुक्ता मृगी जात्योपलक्षिता[6]।

१. एतैः सर्वगुणैर्युक्ता दुर्लभा रमणी भुवि। वही ३।२०।१७१८।
२. मा॰नसो॰ ३।२०।१७१८–१७२०।
३. वही ३।२०।१७२० मध्यमोत्तमजातीया भोगयोग्या वरस्त्रियः।
४. वही ३।२०।१७२१।
५. वही ३।२०।१७२१–१७३०।
६. वही ३।२०।१७३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पद्मिनी जाति वाली स्त्रियों के लक्षण—

मधुवर्ण वाली, सुन्दर नखपंक्ति से युक्त चरण वाली, संहत अंगुलियों तथा लाल-कमल की शंका को उत्पन्न कर देने वाले समान चरणयुगल वाली, सुवृत्त गूढ़ गुल्फ वाली, चरण के अनुरूप जंघा वाली, रम्भास्तम्भ के समान ऊरु वाली, त्रिवली से युक्त हस्त वाली, श्रीफल के समान स्तन वाली, वर्तुलाकार बाहु शिखर वाली, पल्लव के सदृश कोमल तलों से युक्त सुकुमार हस्तवाली, त्रिरेखा से युक्त ग्रीवा वाली, बिम्बफल के सदृश अधरों वाली, पके हुए अनार के समान जिह्वा वाली, कान्तियुक्त दातों वाली, तिलपुष्प के सदृश सुन्दर नासिका वाली, नीले कमल की नाल के सदृश श्रवण वाली, शोभायुक्त तथा उज्ज्वलकांति से युक्त गण्डस्थल वाली, कुन्दपत्र के सदृश उदर वाली, रक्तवर्ण के नेत्र वाली, श्यामल पक्ष्म वाली, चञ्चल दृष्टि वाली, कामदेव के (चलाते हुए) धनुष के सदृश वक्र भ्रूलता वाली, अष्टमी के चन्द्र की भांति ललाट से युक्त, घने, लम्बे सूक्ष्म केशों वाली, नये बांस के सदृश सुन्दर कान्तिमय वर्ण वाली, उन्मत्त हाथी के सदृश गति वाली, शिरीष पुष्प के सदृश मृदुल शरीर वाली, पद्म-पुष्प की गन्ध के सदृश सुगन्धि से युक्त शरीर वाली, कमल पुष्प के अन्दर की गन्ध से स्पर्धा करने वाली, बिनोद की सिंधु, कोकिल के आलाप के सदृश सुख-दायिनी, सुन्दर ध्वनि वाली, पवित्र, थोड़ा भोजन करने वाली, भूषणों से थोड़ी प्रीति रखने वाली, श्वेतपुष्प में रति करने वाली, मानिनी, अधिक लज्जापूर्ण, गुरुदेव की अर्चना में आसक्ति रखने वाली, सम्भोग के समय लज्जा करने वाली, चतुर, दानवती, बन्धु से प्रीति करने वाली, सत्यवादिनी, दृढ़ प्रीति करने वाली स्त्री[1] पद्मिनी जाति की होती है। ऐसा विद्वानों का मत है—

एतैर्गुणैः समायुक्ता पद्मिनी कीर्तिता बुधैः ॥[2]

चित्रिणी के लक्षण—

लघु तथा रम्य पादतल वाली, क्षीण जंघा से सुशोभित, किञ्चित वक्र उरुओं वाली, पृथुल जघन-स्थल वाली, सुन्दर मध्यप्रदेश से युक्त, पीन, वृत्त तथा रम्य पयोधर वाली, विशाल वक्षःस्थल वाली, कोमल करतल तथा सरल अंगुलियों वाली, सुन्दर कण्ठ वाली, किंचित उन्नत अधरवाली, सुन्दर दांतों वाली, समान (न बड़ी न छोटी) तथा सुन्दर नासिका वाली, सुन्दर कर्ण वाली, अर्ध निम्ब-पत्र के समान दीर्घ तथा तीक्ष्ण नेत्रवाली, सुन्दर तथा रमणीय भ्रू एवं भाल वाली, वक्र तथा कृष्ण केशों वाली, गीत, नृत्य, वाद्य से प्रेम करने वाली, ललित गति वाली, सूक्ष्म स्वर बोलने वाली, कला-कौशल से प्रीति रखने वाली, सुन्दर-श्यामल वर्ण वाली, गौर-श्यामल वर्ण के आभूषण तथा वस्त्रों की इच्छा करने

---

१. वही ३।२०।१७३१–४९। २. वही ३।२०।१७४९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाली, रति से विचित्र प्रेम करनेवाली स्त्री चित्रिणी जाति की होती है।[1]

विचित्रे च रते प्रीतिश्चित्रिण्या लक्षणान्वितम्।[2]

वडवा स्त्री के लक्षण—

आलक्तक के सदृश सुशोभित पादतल वाली, वृत्त, दीर्घ तथा मांसयुक्त जंघाओं वाली, किञ्चित वक्र उरु वाली, गम्भीर नाभिमण्डल वाली, क्षीण उदर वाली, वृत्तस्तन तथा आयत चूचुकों वाली, विशाल हृदयवाली, वृत्त, दीर्घ तथा मांसल भुजा वाली, लाल-कमल के सदृश करपल्लव वाली, कोमल, दीर्घ तथा स्थूल अंगुलियों वाली, मोटे तथा रमणीय दांतों वाली, स्थूल तथा लम्बे कानों वाली, नीलोत्पल की प्रभा के समान श्याम नेत्रोंवाली, वक्र तथा स्थूल भ्रुवों से युक्त, उन्नत निम्न भाल-प्रदेश वाली, मोटे, दीर्घ, घने केशों वाली, मृदु गति वाली, गम्भीर तथा मधुर वाणी बोलनेवाली, चञ्चल चित्त वाली, कोमल शरीर वाली, सदैव बुभुक्षा तथा निद्रा से पीड़ित, स्निग्ध कामुक की कामना करनेवाली स्त्री वडवा जाति की होती है।[3]

इन चार प्रकार की उत्तम तथा मध्यम स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन करने के पश्चात् सोमेश्वर ने शंखिनी तथा हस्तिनी स्त्रियों को अत्यन्त अधम जाति की स्त्रियां बतलाया है और उनके लक्षण इस प्रकार दिए हैं—

दुर्गन्धा दुःस्वभावा च तस्माद्भोगे विवर्जिते।[4]

शंखिनी तथा हस्तिनी स्त्रियों के शरीर से सदैव दुर्गन्ध आती है और वे दुःस्वभाव वाली होती हैं इसी कारण सोमेश्वर ने उनके साथ भोग करने का निषेध किया है।

स्त्रियों के विभाजन के विषय में कामशास्त्र के रचयिताओं ने ३ मुख्य आधार माने हैं—

१—सेक्स का मनोविज्ञान।

२—शरीर-विज्ञान।

३—स्वाभाविक गुण।

शरीर-विज्ञान के आधार पर शारीरिक लक्षणों को देखते हुए कामशास्त्र के रचयिताओं ने १—पद्मिनी, २—चित्रिणी, ३—शंखिनी, ४—हस्तिनी—ये चार प्रकार की स्त्रियाँ बतलाई हैं। सोमेश्वर ने भी सम्भवतः इन्हीं उपर्युक्त आधारों पर ही स्त्रियों का विभाजन किया है। वे भी शरीर-विज्ञान के आधार पर स्त्रियों के शारीरिक लक्षणों के अनुसार उन्हें चार प्रकार का बतलाते हैं पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी। इनमें से पद्मिनी, तथा चित्रिणी,

१. मानसो० ३।२०।१७४९–१७५७।
२. वही ३।२०।१७५८।
३. वही ३।२०।१७५८–६६।
४. वही ३।२०।१७६७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का विस्तृत वर्णन मानसोल्लास में हुआ है। इसके अतिरिक्त मृगी तथा वडवा इन दो प्रकार की स्त्रियों का विस्तारपूर्वक वर्णन और हुआ है।

सम्भवतः सेक्स-मनोविज्ञान के आधार पर भी सोमेश्वर तीन प्रकार की स्त्रियाँ मानते हैं—१—मृगी, २—वडवा, ३—हस्तिनी। स्त्रियों की हस्तिनी जाति दोनों ही विभाजनों में समान है। इसी कारण सोमेश्वर ने उन दोनों को एक ही प्रकार मान लिया। इस प्रकार से सोमेश्वर ने मृगी, पद्मिनी, चित्रिणी, वडवा, शंखिनी तथा हस्तिनी इन छः प्रकार की स्त्रियों का उल्लेख किया है।

इन दो विभाजनों के अतिरिक्त सोमेश्वर ने आन्तरिक स्वभाव एवं स्वाभाविक गुण के आधार पर स्त्रियों की उत्पत्ति अनेक अंशों द्वारा बतलाई है। जिस अंश से जिसकी उत्पत्ति होगी उसी के अनुरूप उसका स्वभाव भी होगा। इसके अन्तर्गत ग्यारह प्रकार की स्त्रियों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है जो क्रमशः निम्न प्रकार से हैं—

१. देवांशकोद्भवा—अस्वेद वाली, सुगन्धियुक्त, चिरकाल तक पलक न मारने वाली, स्थिर स्तन वाली, मिताहारी, वली आदि से वर्जित, श्वेत भूषाम्बर से प्रीति करनेवाली, गौर अथवा श्यामवर्ण वाली, प्रसन्न, त्यागशीला, शौचाचार से समन्वित स्त्री देवांशकोद्भवा होती हैं।[1]

२. सिद्धांशकसमुद्भवा—सुसंस्थान वाली, सुन्दर तथा कृश-गात्र वाली, खिले कमल के सदृश सुन्दर मुखवाली, तरंगित केशराशि वाली, सुन्दर पलकों वाली, दृढ़स्तन वाली, पतले मध्यप्रदेश से युक्त, सुन्दर नितम्बों से युक्त, कोमल करों वाली, प्रियभाषिणी, कला को जाननेवाली, सदैव साहस से प्रेम करनेवाली, स्त्री सिद्धांशकसमुद्भवा होती है।[2]

३. गन्धर्वांशकसम्भवा—अत्यन्त रमणीय निम्नप्रदेश से युक्त शफरी के सदृश चञ्चल नेत्रवाली, सुन्दर मध्य-प्रदेश से युक्त, पुष्प के सदृश कान्तिमयी नखपंक्ति वाली, न बहुत मोटी न पतली, गीत, वाद्य से सदैव प्रेम करनेवाली, पुष्प की सुगन्धि में आसक्त, संगीत में निपुण, अत्यन्त सुन्दर, स्वच्छन्द, हँसने में चतुर इन लक्षणों से युक्त स्त्री गन्धर्वांशकसम्भवा कहलाती है।[3]

४—अप्सरोंशकसम्भवा—पूर्णचन्द्र के सदृश सुन्दर मुख वाली, कृशोदरी, उन्नतभाल वाली, वक्र भ्रू तथा चञ्चल नेत्र वाली, तन्वी, श्यामल तथा हरित

---

१. अस्वेदा च सुगन्धिश्च चिरकालनिमेषिणी।

... ...

... ...

ईदृग्लक्षणसम्पन्ना योषिद्देवांशकोद्भवा। मानसो० ३।२०।१७६८–७०।

२. मानसो० ३।२०।१७७०–१७७३।

३. मानसो० ३।२०।१७७३–७६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वर्ण वाली, घने वृत्त तथा लघुस्तन वाली, जघन-स्थल से सुशोभित, सुन्दर उरु तथा वृत्त जंघा वाली, निर्लोमा, स्वेद से हीन, कृश अंगुलियों से युक्त, छोटे नखों वाली, सुगन्धित स्वेद से पूर्ण, गीत, नृत्यादि कलाओं में दक्ष, सम्भोग के समय चित्त का हरण करने वाली, मुग्धता तथा विदग्धता से संयुक्त अनुराग करने वाली, विलास-विभ्रमों से पूर्ण, विचित्र वस्त्रों से प्रेम करने वाली, नर्म हास करने में चतुर आदि लक्षणों से युक्त अप्सरोंशकसम्भवा स्त्री है[1]।

५—विद्याधरांशकसम्भवा—सहकार के फल के सदृश मुख वाली, सुन्दर भौंहों वाली, देखने में तीक्ष्ण अपांगों वाली, स्वच्छ गण्डस्थल वाली, वृत्त एवं पीन पयोधरों वाली, कान्तिपूर्ण दांतों वाली, सुन्दर रेखा से युक्त कन्धर वाली, पतले मध्य-प्रदेश वाली, माल्यग्रथन में कुशल, चपला, पति को उद्वेजित करने वाली, अधिक धन की इच्छा वाली स्त्री विद्याधरांशकसमुद्भवा होती है।[2]

६—गुह्यकांशसमुद्भवा—दीर्घ मुखवाली, निम्न-नासिका वाली, लघु लोचन वाली, त्रिकोण भाल-प्रदेश से युक्त, घने नील केशराशि से युक्त, कृश तथा खण्डित कटि-प्रदेश वाली, विशाल जघनस्थल से युक्त, छोटे नखों वाली, छिपी वस्तु को छिपाने वाली स्त्री गुह्यकांशसमुद्भवा होती है।[3]

७—किन्नरांशकसमुद्भवा—दीर्घ नेत्रवाली, पृथुल हस्त वाली, विशाल वक्षःस्थल से युक्त, समान नासिका वाली, बड़े दांतों वाली, सुन्दर ग्रीवा वाली, भूषण से सदैव प्रीति करनेवाली, मृदुल भुजाओं से युक्त, श्लक्ष्ण कक्ष वाली, कठिन हाथों वाली, विशाल जघनस्थल वाली, शोभित शरीर वाली, किञ्चित वक्र जंघा वाली, चंचल चित्त वाली, पुष्प की माला बनाने तथा विलेपन में चतुर, अपने प्रिय को ताम्बूल प्रदान करने वाली, सुन्दर, श्यामवर्ण वाली, मन को रमाने वाली—इन गुणों से युक्त स्त्री किन्नरांशकसम्भवा होती है।[4]

८—यक्षांशकसमुद्भवा—कृशांगी, गौरवर्ण वाली, लघुकुचों वाली, विशाल नेत्र वाली, कृशोदरी, लघु श्रोणी, सदा भीरु तथा दृढ़ता धारण करने वाली, सुगन्धित पुष्प तथा माला आदि में आसक्ति रखने वाली, शुद्धासन से प्रेम करने वाली, ज्योत्स्ना में विहार करने वाली, जलक्रीडा में अत्यधिक आसक्ति रखने वाली, कुटिल, रहस्य की खोज में तत्पर, इन लक्षणों से युक्त स्त्री यक्षांशकसमुद्भवा होती है[5]।

९—नागांशकसमुद्भवा—कृशांगी, कान्ति से पूर्ण, किञ्चित रक्त तथा पीत वर्ण के नेत्र वाली, सुन्दर गण्डस्थल वाली, स्निग्ध तथा घने केशराशि से युक्त, किञ्चित् विकृत जंघा वाली, लीला कुटिलगामिनी, नित्य ही गृह में रहने वाली,

१. वही ३।२०।७६–८१।
२. वही ३।२०।१७८५–१७९८।
३. वही ३।२०।१७८५–१७८८।
४. वही ३।२०।१७८८–९३।
५. वही ३।२०।१७९३–१७९६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दुग्ध, शक्कर तथा मदिरा से प्रेम करने वाली, सखियों को शीघ्र ही मिला लेने वाली, गौर-श्यामवर्ण वाली स्त्री नागांशकसमुद्भवा होती है[१]।

१०—पित्र्यंशकसमुद्भवा—वक्र केशों वाली, दीर्घ भ्रू तथा दीर्घ नेत्र वाली, वृत्त स्तन वाली, छोटे शरीर वाली, श्यामा, समान उदरवाली, उत्तुङ्ग जघनस्थल वाली, श्लक्ष्ण जंघा से युक्त, कोमल अङ्घ्रितल वाली, ताम्रवर्ण के नखों वाली, कातर, गूढ़ रहस्यपूर्ण कार्य करने वाली, दूसरे के घर का भोजन पसन्द करने वाली—इन लक्षणों से युक्त स्त्री किन्नरांशकसमुद्भवा होती है[२]।

१२—ऋष्यंशकसमुद्भवा—स्मितमुखवाली, विशालाक्षी, मृदुल भुजा वाली, कृश कटि-प्रदेश से युक्त, सुन्दर नितम्बों वाली, रमणीय जंघा वाली, कोमल पादतल वाली, दृढ़चित्त वाली, देवता में भक्ति रखने वाली, पतिव्रता, ऋजु स्वभाव वाली, शीघ्र ही क्रुद्ध तथा प्रसन्न होने वाली, थोड़ा भोजन करने वाली, धर्मज्ञा स्त्री ऋष्यंशकसमुद्भवा होती है।[3]

इस प्रकार सोमेश्वर ने अंशकों से उद्भूत ग्यारह प्रकार की स्त्रियां बतलाई हैं। यह विभाजन शारीरिक लक्षणों के साथ ही साथ विशेषतः आंतरिक एवं स्वाभाविक गुणों एवं अवगुणों पर ही आधारित है। प्रत्येक भाग के अन्तर्गत स्त्री के स्वाभाविक गुणों का विशेष ध्यान देकर वर्णन किया गया है। सोमेश्वर ने इस प्रकरण के पूर्व ही कहा है कि सभी गुणों से युक्त स्त्री संसार में मिलना दुर्लभ है। अतः उपर्युक्त सभी प्रकार की स्त्रियों में शुभ लक्षणों एवं गुणों के साथ अवगुणों का भी कथन हुआ है। इन सबमें देवांशकसमुद्भवा प्रकार की स्त्री सर्वगुणसम्पन्न है और इसमें सम्भवतः कोई अवगुण भी नहीं है। वह सभी देवियों के समान गुणों को धारण करती है और वह सभी स्त्रियों में अलौकिक एवं श्रेष्ठ है। सोमेश्वर ने इसी कारण देवांशकसमुद्भवा स्त्री को ही अपनी भार्या बनाने का राजा को आदेश दिया है—

देवाद्यंशकसम्भूता राज्ञी कार्या महीभुजा।[४]

इन अंशकों के अतिरिक्त ऋक्ष, वानर, मार्जार, दैत्य, दानव, राक्षस, पिशाच, खर, शार्दूल, मत्स्य, सौरिभ, सारमेय, नकुल, रुरु, काक, गौ, वृश्चिक, हंस, नक्र, कुक्कुट आदि पशुओं के नामों का उल्लेख किया है जिनके आधार पर भी स्त्रियों के विभाजन हो सकते हैं।[५] इस प्रकार से तो स्त्रियां अनेक प्रकार की हो जाती हैं किन्तु विशेष रूप से यह उक्त ग्यारह ही प्रसिद्ध हैं। अतः सोमेश्वर स्त्रियों का विभाजन निम्न प्रकार से करते हैं—

---

१. वही ३।२०।१७९६–९९।
२. वही ३।२०।१७९९–१८०२।
३. वही ३।२०।१८०२–१८०५।
४. मानसो० ३।१०।१८१०।
५. वही ३।२०।१८०५–१८०७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्त्रियों के विभाजन के आधार

- सेक्स का मनोविज्ञान
  - १–मृगी
  - २–वड़वा
  - हस्तिनी (ब)
- शारीरिक लक्षण अथवा शरीर-विज्ञान
  - ३–पद्‌मनो
  - ४–चित्रिणी
  - ५–शंखिनी
  - ६–हस्तिनी (ब)
- आन्तरिक एवं स्वाभाविक गुण अथवा अंशक के आधार पर
  - देवांशक
  - सिद्धांशक
  - गन्धर्वांशक
  - अप्सरों-शक
  - विद्याधरांशक
  - गुह्यांशक
  - किन्नरांशक
  - यक्षांशक
  - नागांशक
  - पित्र्यंशक
  - ऋष्यंशक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राजा अपने राज्य का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति होता है इसी कारण उसकी महिषी क्षत्रियवर्ण की तथा सर्वश्रेष्ठ गुणों तथा लक्षणों से युक्त होनी चाहिए। किन्तु यदि राजा चाहे तो रूप-यौवन से युक्त, गीत-नृत्य कला आदि में दक्ष, चित्त को जानने वाली, प्रेम पर निर्भर रहने वाली, सम्भोग सुख के साम्राज्य का संवर्धन करने में चतुर, वैश्य अथवा शूद्रकुल में उत्पन्न हुई स्त्री के साथ भी केवल भोग कर सकता है किन्तु वह उसकी महाराज्ञी नहीं बन सकती[१]। इन सभी गुणों का वर्णन पूर्व में ही सोमेश्वर श्रेष्ठ स्त्री के लक्षणों के अन्तर्गत कर चुके हैं।

रूप-लावण्य से युक्त, यौवन सम्पदा से सम्पन्न, विलासपूर्ण स्त्रियों को दिव्य-रत्न के आभूषण, वस्त्र, माला तथा विलेपन, यान, आसन तथा सम्मान, हास्य तथा स्पर्श के द्वारा, क्रीड़ा, प्रियसंलाप, सम्भोग द्वारा उनको प्रसन्न करे। इसके अतिरिक्त वस्त्राभूषण के दान, ताम्बूलचर्वण, प्रेम पर निर्भर संवाद तथा वनक्रीड़ाओं द्वारा भी उन स्त्रियों को राजा प्रसन्न करे। इसके अतिरिक्त भोजन, स्नान, पादाभ्यंग, अङ्गमर्दन, केशसंवाहन, दिव्यगन्धविलेपन, गीत-वाद्य सुनने, नृत्य देखने, जलक्रीड़ा आदि के समय उन सुन्दर, शुभ लक्षणों वाली स्त्रियों को लगावे[२]। यही योषिद्भोग है।

स्त्रियों के लक्षणों पर भारतीय साहित्य में विशाल साहित्य का सृजन हुआ है। वात्स्यायन का कामशास्त्र तो स्त्रियों से सम्बन्धित ग्रंथ ही है, किन्तु बौद्ध-साहित्य में भी स्त्रियों के लक्षणों पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश डाला गया है। समवाय सुत्त में इत्थी लक्खणम्[३] (स्त्रीलक्षणम्) का प्रयोग हुआ है। दीर्घ-निकाय[४] में भी स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन हुआ है जिनका ज्ञान बौद्ध भिक्षु के लिए वर्जित था। ललितविस्तर में कुमारी गोपा के प्रसंग में शुभ स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन हुआ है[५]। बृहत्संहिता में भी वराहमिहिर ने स्त्रियों के लक्षणों का उल्लेख किया है।[६]

---

१. अवरोधवधूः कान्ता कुर्याद् भोगाय भूपतिः—मानसो० ३।२०।१८१२।
२. मानसो० ३।२०।१८१३।
३. ए० वेंकटसूबिया—दिकलाज सूची १ समवायसुत्त २–२–२६।
४. दीर्घनिकाय–ब्रह्मजाल सुत्त सू० २२ पृ० ११।
५. ललितविस्तर १।२७। ६. बृहत्संहिता अध्याय ७०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पंचम अध्याय

सोमेश्वर तथा विनोद

शस्त्र-विनोद

उपभोगों के पश्चात् सोमेश्वर ने २० प्रकार के विनोदों का वर्णन किया है—

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यन्ते विनोदा हर्षहेतवः ।
विंशतिः संख्यया ते स्युर्लक्ष्यलक्षणसंयुताः ॥[1]

सर्वप्रथम सोमेश्वर ने शस्त्र-विनोद का वर्णन किया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने अनेक प्रकार के शस्त्र, उसके प्रकार, उनके स्थान, चलाने की विधि तथा लक्ष्यों का वर्णन किया है। इस शस्त्र विद्या में राजा को चतुर तथा जितश्रम होना चाहिये —

छुरिकाखड्गकोदण्डचक्रकुन्तगदादिषु ।
शस्त्रेषु विविधैर्न्यासैः शिक्षितश्च जितश्रमः ॥[2]

इस प्रकरण में सोमेश्वर ने क्षुरिका, खड्ग, धनुष, चक्र, भाला तथा गदा इन शस्त्रों के द्वारा हस्त-लाघव एवं चातुर्य दिखाने का वर्णन किया है।

यह शस्त्रविनोद एक प्रकार के निश्चित स्थान पर होता था जिसे खुरली कहते थे। वहां पर राजा शस्त्र-विद्या के ज्ञाताओं, सेवक, सचिवों, कुमारों, पण्डितों, कवियों, देश देश की भाषा के ज्ञाताओं, पाठकों, गायकों, सूतों, मागधों, बन्दीगणों, अन्तःपुर की स्त्रियों, अपनी महाराज्ञी, विलासिनी स्त्रियों तथा वेश्याओं को बुलाता था।[3] वे सभी लोग खुरली में आकर उचित स्थानों पर बैठ जाते थे।[4] राजा का आसन सबके बीच में होता था। राजा चिकने श्वेत वस्त्रों को, घुटनों तक लम्बे वीर कच्छ (कमर की पेटी) पांच वर्ण के चित्रित सुन्दर वस्त्र धारण करता था। वीर कच्छ में भव्य क्षुरिका लगी रहती थी। वह पूर्ण चन्द्र के आकार के सदृश चन्दन के चिह्न बाहुदण्ड के ऊर्ध्व भाग में लगाता था।[5] मस्तक पर काजल की एक रेखा तथा उसके दोनों ओर श्वेत रेखाएँ बनाता था—

---

१. मानसो० ४।१।१ । २. वही ४।१।२ ।

३. तत्तद्विद्यान् समाहूय सेवकान्सचिवादिकान् ।
विलासिनीर्मनःकान्ताः प्रसिद्धाः पण्ययोषितः ॥ वही ४।१।३.५ ।

४. वही ४।१।६ । ५. वही ४।१।७,१० ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ललाटे तिलकं कुर्यान्मध्ये कज्जलरेखया।
तस्याः पार्श्वे च रेखाभ्यां सिताभ्यां परिभूषयेत्॥[१]

इस प्रकार का त्रिपुण्ड का तिलक वह मस्तक पर धारण करता था। इससे विदित होता है कि सोमेश्वर वैष्णव सम्प्रदाय का मानने वाला था। मध्वाचार्य के चलाये हुए वैष्णव सम्प्रदाय के व्यक्ति आज भी अपने मस्तक पर त्रिपुण्ड धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त राजा शेष के फण के सदृश चिह्नों से अपने वक्षःस्थल को विभूषित करता था। व्याघ्र तथा मृग की पुच्छ वह अपने शिर पर धारण करता था—

शेषभोगोपमां चर्चां चन्दने नीरसि न्यसेत्।
द्वीपिपुच्छाजिनेनाथ कुर्याच्छिरसि शेखरम्॥[२]

सम्भवतः सिर पर धारण किया हुआ व्याघ्र पिच्छ राजा की वीरता का द्योतक होता था। राजा कण्ठ में स्वर्ण-मेखला, हाथों में कंकण तथा कानों में स्वर्णपत्र धारण करता था। इस प्रकार से सुन्दर वीर मूर्ति वाला राजा खुरली में आकर प्रेक्षकों के मध्य में बने अपने आसन पर बैठता था।

एवं रचितश्रृङ्गारो वीरमूर्तिर्मनोहरः।
प्रविशेत्खुरलीं रम्यां प्रेक्षकैः परिशोभिताम्॥[४]

तत्पश्चात् राजा स्वयं उठकर अपने समान प्रतिरोधी को बुलाकर शस्त्रों को चला कर शस्त्र-विनोद द्वारा अपना मनोरञ्जन करता था। उसके प्रतिरोधी भी उचित रूप से श्रृंगार किए रहते थे।[५]

शस्त्री

सर्वप्रथम राजा शस्त्री द्वारा विनोद करता था। राजा अपनी इच्छा से अंगुष्ठ के पर्वों से नापी हुई शस्त्री लेता था। उसकी नाप करने में शस्त्री के मुष्टि भाग की गणना नहीं होती थी—

अंगुष्ठपर्वमानेन माननीयासिधेनुका।
मुष्टिभागं परित्यज्य गणयेद्दंशपृष्ठतः॥[६]

---

१. मानसो० ४।१।११। २. वही ४।१।१२।
३. वही ४।१।१३। ४. वही ४।१।१४।
५. विहितोचितश्रृंगारो शस्त्रविद्याविशारदम्।
प्रतियोगिनमास्थाय शस्त्रविद्यां विनोदयेत्॥४।१।१५।
ततः स्वयं समुत्थाय प्रमोदनमथाचरेत्" ॥४।१।१६।
६. मानसो० ४।१।१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर ने अंगुष्ठ के पर्वों द्वारा ही शस्त्री की माप करने का आदेश दिया है क्योंकि उन्होंने अंगुष्ठ के प्रथम पर्व को आयु बढ़ाने वाला, द्वितीय पर्व को लक्ष्मी प्रदान करने वाला तथा तृतीय पर्व को मृत्यु का कारण माना है। अतः इस प्रकार से शस्त्री को नापने के पश्चात् यदि वह अंगुष्ठ के तीसरे पर्व पर समाप्त हो तो राजा को चाहिये कि उस शस्त्री को तुरन्त अपने से अलग कर दे—

आयुर्लक्ष्मीर्मृतिश्चेति समुच्चार्य पुनः पुनः।
आयुर्लक्ष्मीपदे शस्त्री वर्ज्या मृत्युपदे स्थिता ॥[1]

मृत्यु पद के अतिरिक्त अन्य दोनों पर्व पर समाप्त होने वाली शस्त्री राजा के लिये उत्तम है। संभवतः इस प्रकार की प्रथा अन्य वस्तुओं को नापने के लिये भी उस समय दक्षिण में प्रचलित होगी। आजकल भी उत्तरी भारत के अधिकांशतः ग्रामों में इस प्रकार की प्रथा प्रचलित है। ग्राम की स्त्रियां जब सूप आदि खरीदती हैं तो वे सूप के अग्र भाग में बने हुए काले बन्धनों को क्रमशः दूध, पूत, धन, दरिद्र इस प्रकार कहकर गिनती हैं। यदि वह काले बन्धन दूध, पूत, अथवा धन पर समाप्त होते हैं तो वे उसे ले लेती हैं, दरिद्र पर समाप्त होने वाले सूप को वे नहीं ग्रहण करतीं। संभवतः यह प्रथा भी अंगुष्ठ के पर्वों की गणना का ही प्रतिरूप है। शस्त्री ग्रहण करते समय उसकी धार का भी राजा को ध्यान रखना चाहिये। तीक्ष्ण धार वाली दृढ शस्त्री उत्तम है—

तीक्ष्णधारा दृढा लघ्वी तिर्यग्रेखाविवर्जिता।
अभिन्नधारा नात्युच्चैर्नीचैस्तिष्ठेत्ससौष्ठवम् ॥[2]

उत्तम शस्त्री के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने ऐसे ग्यारह स्थानों का वर्णन किया है जिनके आधार पर शस्त्री चलाई जाती थी—

१. भैरव स्थान—वाम पैर को आगे कर दाहिने हाथ में शस्त्री ग्रहण कर सिर के बराबर उठाकर चलावे,

२. पल्लीवाल—छुरी लिये हुए दाहिने हाथ को पीछे कर बायें हाथ को आगे फैलाकर शस्त्री को धारण करे।

३. शुनक—क्षुरिका इसके अग्रभाग में हाथ को समान रूप से फैलाकर आगे की ओर झुके,

४. नूक—दाहिने हाथ को फैलाकर शस्त्री को नीचे की ओर कर दण्ड को हृदय पर रखे।

---

१. मानसो० ४।१।१८। २. वही ४।१।१९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

५. विनूक—क्षुरिका के अग्रभाग को ऊंचा कर दण्ड को छिपा कर विनूक स्थान ग्रहण करे।

६. लुलित—वाम भाग की ओर शस्त्री से पूर्ण हाथ कँपाता हुआ ले जाये।

७. नद्य—क्षुरिका को आगे फैला कर दण्ड को वक्षः स्थल पर संकुचित कर ले।

८. नट्टेक—असिधेनु को वक्षः स्थल पर रखकर हाथ को आगे फैलावे।

९. रोपितक—बायें हाथ को फैलाकर घुटनों के मध्य भाग से होकर छुरी के अग्रभाग द्वारा भूमि को छुवे।

१०. पोत्तार्गुल—छुरी पकड़े हुए हाथ को सिर पर रखकर बायें हाथ को आगे की ओर फैलावे।

११. व्याघ्र नख—असिधेनु ग्रहण किए हुए दाहिने हाथ को व्याघ्र की भांति झटके के साथ फेंक दण्ड को नीचे करे।

छुरी चलाने में इन सभी स्थानों का आश्रय राजा ग्रहण करता था।[1]

इन स्थानकों के पश्चात् आठ प्रकार की गतियों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है। असिधेनु चलाते समय इन्हीं गतियों के अनुसार चलना पड़ता था—

१. पदग्राह गति–बायें पैर को आगे करके पीछे से दाहिने पैर से उसे छूकर पुनः और आगे बायां पैर करके पीछे से फिर दक्षिण पैर द्वारा उसे छुए।

२. पदप्राप्ति—आगे स्थित हुए पैर के पीछे से दूसरे पैर द्वारा आघात करे। इसी प्रकार बार-बार करे।

३. अनुक्षेप गति—पैरों को फेंक कर धीरे-धीरे उन्हें पीछे करे, इस प्रकार सर्पण-विसर्पण करे।

४. सर्पिका–चलते समय पैरों को धीरे से झटके के साथ सर्प की भाँति चलावे।

५. मत्तेभ–पैरों को थोड़ा सा आकुंचन कर लीला पूर्वक घूमकर गज की भांति उन्मत्त गति करे।

६. वायसी—जिघृक्षा के द्वारा गति को कर पीछे हटे।

७. बाकोटी—पैरों की अंगुलियों से पृथ्वी को छुये।

८. पञ्चानन—शरीर को संकुचित करके सिंह के सदृश लांघे। क्षुरिका को चलाने में राजा इन अनेक प्रकार की गतियों द्वारा संचरण करता था।[2]

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने क्षुरिका के चालन की प्रकार बतलाया है। शस्त्री को थोड़ा सा आकुंचित कर भुजा को थोड़ा हिलाकर चारों ओर घुमाकर

१. मानसो० ४।१।२३।३१। २. वही ४।१।३६.४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चलावे। कभी उसे ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, कक्षाओं तथा कण्ठ प्रदेश को ओर पैरों द्वारा गति करते करते ले जाय।[१] इस प्रकार से धारण तथा मारण के समय अमोघ आशा का दिग्दर्शन राजा करता था—

विद्युत्पञ्जरमध्यस्थमिवात्मानं प्रदर्शयेत्।
चारणो धारणो चैव धारणो मारणो तथा॥
अमोघां दर्शयेदाशां दुर्निवारो भयंकरः।
शस्त्रीं प्रदर्शयेदेवं दुष्टाशयविभीषणीम्॥[२]

वह शस्त्री का अनेक प्रकार से चालन कर अमोघ वारों को प्रदर्शित करता था।

इस साधारण शस्त्री के पश्चात् वह चार वितस्त[3] की शस्त्री को ग्रहण कर दक्षिण पैर को आगे कर दण्ड को हृदय पर रख कर पूर्व की ही भांति कर ताल से समन्वित होकर संचार कर अपना पाद-लाघव प्रदर्शित करता था। उसे धाराघात विधि[४] कहते थे। इसी को कुछ विद्वान खोञ्चन विधि भी कहते हैं। यह दोनों ही नाम उपयुक्त हैं—

खोञ्चनं च तथा चान्ये प्रवदन्ति मनीषिणः।
मतद्वयानुसारेण धाराघातैश्च खोञ्चनैः॥[४]

इसी प्रकार राजा शस्त्री तथा असिधेनुका द्वारा अनेक प्रकार की गतियों एवं आघातों को प्रदर्शित कर सब का मनोरञ्जन करता था।[६]

खड्ग-विनोद

क्षुरिका के प्रचालन के पश्चात् राजा खड्ग द्वारा प्रेक्षकों का विनोद करता था। जिस खड्ग को राजा चलाता था वह भी शस्त्री की भांति ही अंगुष्ठ पर्व से नापी हुई होती थी—

छुरिकोक्तप्रमाणेन गणयेत् खड्गमुत्तमम्॥[७]

पांच अंगुल के खड्ग को सोमेश्वर ने उत्तम, २५ अंगुल के खड्ग को कनिष्ठ तथा इनके बीच के प्रमाण के खड्ग को मध्यम माना है।

---

१. मानसो० ४।१।४२.४३। २. वही ४।१।४४.४५।
३. "चतुर्वितस्तिकां शस्त्रीमादाय नृपतिस्ततः।" वही ४।१।४६।
४. "सम्भारैः कथितैः पूर्वं दर्शयेत्पादलाघवम्।
धाराघातो विधिस्तस्याः कथितः पूर्वसूरिभिः॥" वही ४।१।४८।
५. वही ४।१।४९। ६. वही ४।१।५०.५३।
७. वही ४।१।५४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पंचाशताङ्गुलैः श्रेष्ठः पञ्चविंशतिको वरः।
अनयोर्मध्यमानेन मध्यमः परिकीर्त्यते ॥[1]

अतः राजा को जहाँ तक हो सके उत्तम तथा मध्यम प्रकार के खड्ग को ही लेना चाहिये।

सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के खड्गों का वर्णन किया है और इनके विभाजन के दो आधार माने हैं—१. वर्ण के अनुसार, २. पोगर के अनुसार।

वर्ण के अनुसार असि, कृपाण आदि भेद हैं।[2] पोगर के अनुसार रोहिणी वाह, गोजिह्वापल्लव, निर्वह, भद्रांग आदि १४ प्रकार के खड्गों का उल्लेख किया है।[3]

अनेक प्रकार के खड्गों के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने पांच प्रकार के खड्ग के स्थानों का वर्णन किया है। खड्ग विषयक लाघव दिखाते समय राजा उसी प्रकार कोश से खड्ग शीघ्रता से निकालता था जैसे बिल से सर्प शीघ्र ही फुफकार मारता हुआ निकल पड़ता है।[4] वह दाहिने हाथ में खड्ग पकड़ता था और बायें हाथ में ढाल लेकर पूर्वोक्त रीति से संचार करता था।

चर्म वा फलकं वापि गृह्णीयाद्वामपाणिना।
पाणिना भ्रामयेत्खड्गं चर्म वामेन चालयेत् ॥[5]

खड्ग को सिर पर तथा ढाल को वक्षस्थल पर रखकर दाहिना पैर आगे कर शिखरक स्थान, ढाल से पूर्ण बायाँ हाथ आगे फैलाकर तब उसे कर्ण के समीप खींचकर कापोलक, वक्षस्थल पर से ढाल को हटाकर खड्ग को वहीं पर ले जाकर श्रीवत्स, खड्ग को पृथ्वी की ओर करके भूमण्डल स्थान, कुक्षि स्थान में खण्ड को रख उसकी नोक तिरछी कर वक्षःस्थल की ओर कर ढाल को आगे फैलाकर तीक्ष्णाग्र स्थान प्रदर्शित करता था।[6]

इस प्रकार के स्थानों को प्रदर्शित कर राजा खड्ग के आघातों को प्रदर्शित करता था। सोमेश्वर ने पांच प्रकार के आघातों का उल्लेख किया है। चरण पर किया जाने वाला आघात कडग, दक्षिण अंग पर किया जाने वाला आघात दोलग, वामभाग में किया जाने वाला आघात पोगर, मस्तक पर किया जाने वाला आघात कालवल्क, नाभि से लेकर कण्ठ पर्यन्त प्रदेश में किया जाने

१. मानसो० ४।१।५५। २. वही ४।१।५८.५९।
३. वही ४।१।६०.७२। ४. वही ४।१।७३।
५. वही ४।१।७४। ६. वही ४।१।७५. ८०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाला वार मुनय कहलाता था।[1] इसी प्रकार के अनेक आघातों का प्रदर्शन कर राजा अपना हस्तलाघव प्रेक्षकों को दिखलाता था। इन सभी प्रकार से आघातों के प्रयोग के साथ ही साथ उनसे बचने के उपायों का भी राजा प्रदर्शन करता था।

सञ्चरेत्परघातार्थं शून्यं पश्येत्पराङ्कम्।
पञ्चघातप्रयोगं च पञ्चव'तनिवारणम्॥
पादलाघवसंस्थानं चालनं खड्गचर्मणा।
प्रदर्श्य रक्षयेद्राजा सर्वांश्च खुरलीगतान्॥[2]

कार्मुक-विनोद

खड्ग के बाद राजा धनुष विषयक हस्तलाघव को प्रदर्शित करता था। धनुष ग्रहण करते समय राजा के हाथ की अंगुलियां एक प्रकार के चमड़े से रक्षार्थ ढकी रहती थीं।[3] पके बांस का बना, भव्य, गोल तथा सिन्दूर से रञ्जित, लाक्षारस में आलिप्त, कान्तिपूर्ण, स्नायु से बद्ध, स्वर्ण पद से आच्छादित, नाना प्रकार के रत्नों से जटित, तीन पांच अथवा सात पर्वों से युक्त, अर्क वृक्ष के वल्कल से निकली अथवा मौर्वी की बनी हुई चिकनी तथा दृढ ज्या से युक्त धनुष को राजा विनोद के लिये धारण करता था।[4] दो सहस्र दूरी तक जाने वाला उत्तम, डेढ सहस्र दूरी का मध्यम तथा एक सहस्र कोस की दूरी पर जाने वाला धनुष मृदु अर्थात् कनिष्ठ होता था—

सहस्रं सार्धसाहस्रं द्विसहस्रमिति क्रमात्।
बलानां संख्यया युक्तं मृदु मध्यं तथोत्तमम्॥[5]

राजा दोनों कन्धों को ऊंचा कर, वक्षःस्थल को फैलाकर प्रकम्पित मुष्टि द्वारा पकड़ कर उसे बाहर की ओर खींचता था और डोरी को खींच कर हनु से

---

१. कडगं चरणे विन्द्याद्दोलगं दक्षिणाङ्गजे।
पोगरं वामभागे स्यात्कालवल्कं तु मस्तके॥
आनाभिकण्ठपर्यन्तं खड्गाग्रेण तु भेदनम्॥
मुनयन्नाम तत्प्रोक्तं कौक्षेयकविचक्षणैः।
वारणं हननं तेषु पञ्चघातेषु पाटवम्॥
मानसो० ४।१।८०-८२।

२. वही ४।१।८४.८५।
३. वही० ४।१।८६ बद्धगोधाङ्गुलीत्राणस्ततो गृह्णीत कार्मुकम्।
४. वही ४।१।८६.८९। ५. वही ४।१।९०.९१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चार अंगुल दूर रखकर लक्ष्य को सामने रखकर उसे चलाता था।[१]

राजा धनुष को चलाते समय तीन प्रकार के पादों का प्रदर्शन करता था जो क्रमशः आलीढक[२] (पैर को चापस्थान तक ले जाकर उसको तिरछा फैलाकर पीछे दूसरा पैर लाकर पांच बितस्त की दूरी पर रखना), अत्यालीढक[३] (पैरों को फैलाकर) तथा समपाद (तीन बितस्त तथा एक बितस्त की दूरी पर रखकर) हैं। पादों के साथ ही साथ सोमेश्वर ने मण्डल, जात तथा अभिजात नाम के स्थानों का उल्लेख किया है।[५]

इन स्थानों के अतिरिक्त सोमेश्वर ने कुछ आसनों का भी उल्लेख किया है। वह इन्हीं का आश्रय लेकर धनुष चलाता था—

१. दार्दुर—पीछे की ओर पैरों को फेंक कर हंसपाद प्रदर्शित कर दोनों पैरों के घुटनों से पृथ्वी को छुए।

२. पद्मासन—पादतलों को नीचे करे।

३. गरुड—बायें घुटने को पृथ्वी पर रखकर दक्षिण पैर को आगे चलावे।

४. स्वस्तिकदर्दुर–दक्षिण पैर को स्वस्तिक के आकार का बना कर बायां दर्दुर की भांति रखे।

५. जानुपीडन—घुटनों द्वारा धरती पर जोर लगावे।

६. शयनासन—उत्तान अथवा अनुत्तान होवे,[६] इनमें दार्दुर को अत्यन्त प्रौढ़[७] तथा स्वस्तिक दर्दुर आसन को मृगया के योग्य बतलाया गया है—

> दक्षिणं स्वस्तिकाकारं वामं दर्दुरवत्पदम्।
> आसनं मृगयायोग्यं कुर्यात्स्वस्तिकदर्दुरम्॥[८]

उपर्युक्त आसनों, पादों आदि का आश्रय लेने के पश्चात् राजा कुछ मुष्टियों का प्रदर्शन करता था। सोमेश्वर ने मानसोल्लास में दो प्रकार की मुष्टियों का वर्णन किया है—

१. प्रयोग मुष्टि—जो ६ प्रकार की हैं।[९]

२. बध मुष्टि—जो सात प्रकार की है।[१०]

---

१. मानसो० ४।१।९२.९७। २. वही ४।१।९७.९९।
३. वही ४।१।९९। ४. वही ४।१।१००.१०१।
५. वही ४।१।१०१.१०३। ६. वही ४।१।१०४.१०८।
७. आसनं दार्दुरं कृत्वा प्रौढि प्रकटयेन्नृपः। वही २।१।१०५।
८. वही ४।१।१०७। ९. वही ४।१।१०९.११५।
१०. वही ४।१।११५.२३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुष्टियों तथा लक्ष्य के अनुसार धनुष चलाने के नियमों का भी सोमेश्वर ने वर्णन किया है। जब मुष्टि तथा बाण को कर्ण से ऊपर कर नीचे की ओर बाण मारा जाय तो कैशिक, कर्णाग्र से मुष्टि को छूती हुई रखकर नीचे की ओर बाण चलाने पर सात्वत विधि होती है। समान (सामने) लक्ष्य होने पर वार्षगण्य विधि द्वारा बाण मारा जाता है। मुष्टि को कर्णरन्ध्र से नीचे कर लक्ष्य पर बाण मारने पर भरत तथा बाहु शिखर पर मुष्टि करके उच्च तथा दूर लक्ष्य पर बाण मारने से स्कन्धन्यास विधि होती है।

लक्ष्य तीन प्रकार के होते हैं— मनुष्य की ऊँचाई के मान से हृदय के सामने का लक्ष्य सम, इससे ऊँचा उच्च तथा उससे नीचे नीच लक्ष्य होता है।[२]

राजा विनोद के समय कठिन से कठिन लक्ष्य बनवा कर उस पर निशाना मारता था। इस लक्ष्य के लिये हाथी के चर्म की मोटाई को ही प्रमाण माना गया है। इसी कारण सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के उपकरणों द्वारा हाथी के चर्म के समान मोटाईवाला लक्ष्य बनाने का वर्णन किया है। सौ गौ का सूखा हुआ चर्म दिन रात जल में रखे। इस प्रकार १६ अंगुल का वह दृढ़ चर्म रज्जु द्वारा बांध दे तत्पश्चात् वेधने पर वह हाथी की खाल के समान ही हो जायगा।[3] इसी प्रकार २० घोड़ों की खाल, सात वर्ष के भैंसे के सींग का मध्य भाग, एक हाथ विस्तृत गोल कछुये का पृष्ठ कपाल, १६ अंगुल विस्तृत दारुसार, कुम्हार के चक्र से निकली हुई मिट्टी, नौ अंगुल का सूखा पिण्ड, छः अंगुल का मोटा रुई का पुञ्ज आदि वस्तुयें हाथी के चर्म के ही समान मोटी होती हैं।[४] अतः इन्हीं को विनोद के समय हाथी की खाल का प्रमाण मान कर इस प्रकार राजा बेधता था कि पृथ्वी पर बाण न लगने पाता था—

भित्वा तानि विनिर्गत्य निर्भिद्याग्रेण भूतलम्।
यथावत्तिष्ठते बाणस्तथा विध्येत्क्रियायुतः॥[५]

लक्ष्यों की ही भांति तीन प्रकार के सम, ऊर्ध्व तथा नीच सन्धान भी होते हैं।[६] ऊर्ध्व तथा दूर पर स्थित लक्ष्य के लिये नीच सन्धान, नीच लक्ष्य में उच्च सन्धान तथा सम लक्ष्य में समसन्धान प्रयोग में लाने का आदेश

---

१. मानसो० ४.१।१२४.२८।
२. उरः समं सगं लक्ष्यं मनुष्योत्सेधमानतः।
तदूर्ध्वमुच्चं लक्ष्यं स्यात्तदधो नीचमुच्यते॥ वही ४।१।१२९
३. वही ४।१।१३०.३१। ४. वही ४।१।१३३.३६।
५. वही ४।१।१४६। ६. वही ४।१।१४७.४८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर ने दिया है।[1] सोलह अंगुल का चौड़ा लक्ष्य स्थूल तथा दो अंगुल चौड़ा लक्ष्य सूक्ष्म होता है, शब्द से अनुमित लक्ष्य परापर होता है—

षोडशाङ्गुलवृत्तं तु स्थूलं लक्ष्यमुदाहृतम् ।
अंगुलद्वितयं सूक्ष्मं पञ्चगुञ्जाशिरोरुहम् ॥[2]

२००, १५० तथा १०० धनु की दूरी पर रहने वाले लक्ष्य को क्रमशः सोमेश्वर ने उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकार का लक्ष्य माना है।[3] इसके अतिरिक्त तिर्यक्, धावन्, गच्छन्, भ्रामन् तथा उत्पतन् पांच चल लक्ष्यों को भी राजा आकाश, पृथ्वी तथा जल इन सभी वस्तुओं में वेधता था—

तिर्यग्धावंस्तथा गच्छन्भ्राम्यंश्चैव तथोत्पतन् ।
आकाशे भूतले तोये तेषां स्थानमुदाहृतम् ॥[4]

राजा इन सभी प्रकार के लक्ष्यों को बनाकर एक बाण, दो बाण तथा अनेक बाण एक साथ छोड़कर अपना हस्त लाघव प्रदर्शित करता था।[5]

सभी वस्तुओं के वेधने के साथ ही साथ राजा राधावेध, खर्जूरीवेध, यमलार्जुन वेध, विकटार्जुन वेध, अर्धचन्द्राह्वय तथा माला विद्याधर आदि कुछ ऐसे कुतूहल प्रधान वेधों का प्रदर्शन करता था जिनके द्वारा प्रेक्षक विस्मय में पड़ जाते थे।

राधावेध

एक स्तम्भ के ऊपर चक्रयन्त्र में मछली कील द्वारा जड़ दी जाती थी जो वायु से प्रेरित होने पर घूमती रहती थी। राजा नीचे पात्र में रखे जल में उसकी छाया देखकर उसकी आँख को वेधता था।[6] यह विधि सम्भवतः मत्स्य-वेध का ही दूसरा रूप है। द्रोपदी के स्वयंवर के समय अर्जुन ने मत्स्य वेध

---

१. ऊर्ध्वदूरस्थिते लक्ष्ये नीचसन्धानसंगतिः ।
नीचलक्ष्ये तथा चोर्ध्वं समलक्ष्ये समंभवेत् ॥
मानसो० ४।१।१४९ ।

२. वही ४।१।१५० । ३. वही ४।१।१५३ ।

४. वही ४।१।५२ ५. वही ४।१।१५५ ।

६. स्तम्भस्योपरिविन्यस्तचक्रयन्त्रे सुकीलितम् ।
वायुप्रेरितपत्रैस्तु भ्राम्यमाणं द्रुतं झषम् ॥
पात्रमध्ये स्थिते तोये वीक्ष्य विद्याद्विलोचने ।
प्रत्यालीढस्थितो राजः राधावेधं प्रदर्शयेत् ॥
वही ४।१।१५८ १५९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कर ही द्रौपदी को ग्रहण किया था। राजा द्रुपद की भी ऊपर घूमती हुई मछली की आँख को नीचे जल में देखकर वेध देने की शर्त थी—

इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः शृण्वन्तु ये भूपतयः समेताः।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वम् शरैः शतैर्व्योमचरैर्दशार्द्धैः॥[1]

खर्जूरीवेध

खजूर के वृक्ष के समान दारु का वृक्ष बनाकर उसमें राजा बाणों द्वारा ही कंटक तथा पत्र बनाकर अपनी प्रेयसियों का चित्त प्रसन्न करता था।[2]

पत्रच्छेद

एक शूद्र को आगे खड़ा करके उसके वक्षः स्थल पर एक पत्र रखकर दूर खड़ा होकर राजा उस पत्र को लक्ष्य बनाकर इस प्रकार वेधता था कि उस शूद्र के शरीर पर बाण न लगने पाता था। यह अत्यन्त विस्मयपूर्ण वेध है—

पत्रच्छेदमिदं चित्रं चित्तभ्रान्तिकरं नृणाम्।
रसं विस्मयमातन्वन्दर्शयेद्वेधमुत्तमम्॥[3]

यमलार्जुन वेध

एक ही सन्धान में लगे हुये दो बाणों द्वारा दो भिन्न लक्ष्यों को वेधता था।[4]

विकटार्जुन

ऊँचे पर स्थित लक्ष्य को एक ही बाण द्वारा वेध कर राजा विकटार्जुन वेध सब प्रेक्षकों को दिखाता था।[5]

अर्धचंद्राह्वय

तर्जनी तथा अंगुष्ठ को अर्ध चन्द्राकृति का बना कर उसके आगे चार अंगुल दूर पर तृणकाण्ड रखकर राजा उसे वेधता था। यह अर्धचंद्राह्वय कहलाता था।[6]

मालाविद्याधर

दूर पर स्थित लक्ष्य पर दो बाण इस प्रकार राजा मारता था कि वे आगे पीछे जाते थे। यह मालाविद्याधर वेध था—

---

१. महाभारत १.६१।

२. खर्जूरीसदृशाकारं कृत्वा दारुमयं तरुम्।
नाराचैः शतशो विध्येत्स्थाने कण्ठपत्रयोः॥
पत्राणि कंटकाश्चैव सामकैरेव कल्पयेत्।
खर्जूरीवेधनं चित्रं प्रेयसीनाम् प्रदर्शयेत्॥

३. मानसो० ४।१।१६३। ४. वही ४।१।१६४।

५. वही ४।१।१६५। ६. वही ४।१।१६६.१६७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूर्वापरस्थितं लक्ष्यं प्रविध्यन्नवनीपतिः ।
मालाविद्याधरं चित्रं दर्शयेच्चित्रवेष्टितम् ॥[1]

इसी तरह ८४ प्रकार के धनुष सम्बन्धी आसनों को राजा प्रदर्शित करता था जिसमें पचास अत्यन्त कठिन हैं—

चतुर्भिरधिकाशीतिश्चित्राणामवनीभुजा ।
इत्थं प्रदर्शनीया स्यात् द्वापञ्चाशच्च दुष्कराः ॥[2]

संस्कृत-साहित्य में इसी प्रकार चौरासी योनियों, चौरासी हठयोग के आसन तथा कामशास्त्र में चौरासी आसनों का वर्णन हुआ है। इससे विदित होता है कि चौरासी संख्या भारतीयों को प्राचीन काल से ही अत्यन्त प्रिय रही है। इस प्रकार से राजा अनेक प्रकार के चित्र वेध द्वारा धनुर्विद्या सम्बन्धी लाघव को प्रदर्शित करता था।[3]

चक्र विनोद

धनुष के लाघव के पश्चात् राजा आठ अथवा छः आरों का चक्र लेकर सिंहकर्णा मुष्टि बनाकर चक्र द्वारा लक्ष्य को वेधता था। थोड़ा सा तर्जनी क संकुचित कर वाम तथा दक्षिण में घुमाकर जोर से चक्र फेंकता था।[4]

कुन्त विनोद

चक्र के लाघव के पश्चात् राजा कुन्तों को धारण कर उनके उत्कर्ष का प्रदर्शन करता था। कुन्तों के विषय में महाराज सोमेश्वर ने पैदल, घोड़ा तथा हाथी के सवारों के लिये विभिन्न प्रकार के कुन्तों का वर्णन किया है। भूमि से सात अरत्नि का कुन्त पैदलों के लिये, छः अरत्नि का घोड़ों के लिये तथा नौ अरत्नि का हाथी पर चढ़े व्यक्तियों के लिये लेने का आदेश दिया है। इस प्रकार से तीन प्रकार के कुन्तों का वर्णन मानसोल्लास में हुआ है—

सप्तारत्निर्भवेद्भूमौ षड्रत्निस्तु वाजिनि ।
वारणो च नवारत्निः कुन्तदण्डास्त्रयः स्मृताः ॥[5]

इसके साथ सोमेश्वर ने जर्जर, जीर्ण, स्थूल ग्रन्थि तथा कृशग्रन्थि दण्ड से युक्त कुन्त को वर्जित बतलाया है क्योंकि इस प्रकार के दण्ड से पूर्ण कुन्त विघ्न उत्पन्न कर सकता है—

त्रिशूली जर्जरो जीर्णो व्रणकोशसमन्वितः ।
स्थूलग्रन्थिः कृशग्रन्थिर्दूरपर्वभिरायतः ॥

---

१. मानसो० ४।१।१६९ । २. वही ४।१।१७० ।
३. वही ४।१।१७१ । ४. वही ४।१।१७२-१७३ ।
५. वही ४।१।१७५ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवंविधेन दण्डेन युक्तं कुन्तं विवर्जयेत्।
सदोषं विघ्नकारित्वात्कुन्तकर्मणि निन्दितम् ॥[1]

कुन्त में लगे हुए दण्ड के विषय में सोमेश्वर ने इस प्रकार लिखा है—

निष्कोशः सरणः शुद्धः पक्ववेणुः सुभूमिजः।
कुन्ते प्रशस्यते दण्डः सर्वकार्यस्य साधकः ॥[2]

इस प्रकार का शुद्ध पके बांस का बना हुआ दण्ड सिद्धिकारक होता है। कुन्त के फल का अग्रभाग २० अंगुल का होना चाहिये तथा वह कर्तरी युक्त होना चाहिये—

फलमग्रे भवेदेकविंशत्यंगुलमानतः।
अंकुशेन फलस्याधो युक्तः पृष्ठे च कर्तरी ॥[3]

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के सवारों के लिये विभिन्न फलों का वर्णन किया गया है जिसमें पदाति का कुन्त विशेष रूप से बड़ा होता है।

भूमि से कुन्त को उठा कर दायें हाथ में लेकर अशनि के अग्रभाग से उत्तान मुष्टि द्वारा तथा वाम हाथ में कुन्त लेकर उत्तान मुष्टि द्वारा अनेक प्रकार के स्थानों को राजा प्रदर्शित करता था। कुन्त सम्बन्धी तीन प्रकार के आवर्तों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है। मणिबन्ध द्वारा घुमा कर कुन्त चला कर कंकणावर्त, स्कन्ध के ऊपर से घुमा कर कुन्त चला कर कण्ठावर्त तथा पृष्ठ भाग की ओर से घुमाकर पृष्ठावर्त का प्रदर्शन राजा करता था।[4] जिस-जिस अंग की ओर से घुमाकर कुन्त चलाया जाता था उसी उसी नाम से वह आवर्त सिद्ध होता था—

कक्षायां च तथावर्तं तर्जन्यां तु तदान्वयम्।
यत्र यत्र प्रदेशे तु भ्रामयेत्कुन्तमुत्तमम्।
तत्तन्नाम्ना तथावर्तं दर्शयेत्कुन्तकोविदः ॥[5]

इसके अतिरिक्त कुन्त के फल को चलाकर उसके द्वारा दिशाओं को प्रदर्शित

१. मानसो० ४।१।१७६–७७। २. वही ४।१।१७८।
३. वही ४।१।१७९।
४. चालयन्मणिबन्धेन कंकणावर्तमाचरेत्।
स्कन्धे चावर्तयन् कुन्तं कण्ठावर्तं प्रदर्शयेत ॥
पृष्ठे च भ्रामयेत् कुन्तं पृष्ठावर्तं निदर्शयेत्।"
वही ४।१।१८४.१८५।
५. वही ४।१।१८५.१८६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करता हुआ राजा दूसरे को मारने का संकेत करता था तथा अंकुश को खींचकर उसके द्वारा कर्तरी को प्रदर्शित करता था।[१] इस प्रकार अनेक प्रकार के हाव भाव द्वारा राजा अपने प्रेक्षकों का मनोरञ्जन करता था।

गदा विनोद

कुन्त के चालन के पश्चात् राजा गदा द्वारा प्रेक्षकों का विनोद करता था। राजा की गदा विशेष रूप की बनी होती थी। वह गदा लौह, दारु-सार आदि की बनी होती थी और रत्न तथा सुवर्ण आदि से भूषित होती थी।[२] यह गदा स्थूलोदरी, स्थूलाग्रभाग से युक्त, समदन्त से सुशोभित तथा दृढ़ मूलदेश से युक्त होती थी—

"स्थूलोदरी च स्थूलाग्रां समदन्तां परां शुभाम्।
प्रगृह्य मूलदेशे तु खड्गवद्दृढमुष्टिना ॥[3]

इस प्रकार की गदा को राजा दोनों हाथों द्वारा आगे पीछे, दाये, बायें करके घुमाता था। इसके साथ ही साथ वह गदा को चला कर दूसरे के घात, प्रहार, उपन्यस्त, अपन्यस्त, आवर्तन तथा परिवर्तन को प्रदर्शित करता था। इस प्रकार गदा विद्या को राजा विनोद के लिये खुरली में बैठे हुए व्यक्तियों को प्रदर्शित करता था।[४]

इन अनेक प्रकार के अस्त्र का घात प्रतिघात दिखला कर राजा इस विनोद को समाप्त करता था। तब उसकी महाराज्ञी उसके नजर न लगने के लिये उसके ऊपर आरती उतारती थी, वन्दीगण स्तुति करते थे, कविगण तथा गायक उसके गुणों का गान करते थे तथा पुरोहित एवं प्रमुख विप्रगण "प्रसन्न रहो, बढ़ो, करो" ऐसा आशीर्वाद देते थे—

नीराज्यमानो राज्ञीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः।
कविभिर्वर्ण्यमानश्च गीयमानश्च गायकैः॥

---

१. मानसो० ४।१।१८७।

२. गदां लोहमयीं कुर्याद्दारुसारमयीं तथा।
घनेन निर्मितां वापि रत्नकाञ्चनभूषिताम् ॥" वही ४।१।१८९।

३. वही ४।१।१९०।

४. भ्रामयेत्करयुग्मेन करेणैकेन वा पुनः।
विचरेन्मण्डलैश्चित्रैः सव्यैश्चैवापसव्यकैः॥
गतागतैश्च गोमूत्रैरुप्लवन्नुत्प्लुतैरपि।
पातयन्परघातांश्च प्रहाराशाश्च दर्शयेत्।
दर्शयेत्तु गदाविद्यां विनोदाय महीपतिः ॥ वही ४।१।१९१.१९३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आशीर्भिर्वर्धमानश्च जयजीवेति वादिभिः।
पुरोधःप्रमुखैर्विप्रैर्नन्दवर्धस्वभाषितैः ॥[१]

राजा उन सबको अञ्जलिबद्ध हाथों से प्रणाम करता था और अपने राजमंदिर को चला जाता था।

सोमेश्वर ने इस प्रकरण में शस्त्रों एवं अस्त्रों के चलाने, उनसे लक्ष्य बेधने तथा उनके हाव-भावों को प्रदर्शित करने का वर्णन किया है। शस्त्रों का आलोचनात्मक अध्ययन राजनीति के प्रकरण में हो चुका है।

प्राचीन काल से ही भारतीय राजा अस्त्र शस्त्रों के चलाने के बड़े प्रेमी रहे हैं। समवायसुत्त में धनुर्वेद (धनुवेदम्) का सुन्दर वर्णन हुआ है और वह भी एक कला मानी गई है। उस समय के व्यक्ति धनुष पर सुन्दर ढंग से बाण चढ़ा कर अपने लक्ष्य को बेधते थे।[२] चर्म (ढाल) के लक्षणों का तथा उसके प्रयोग का उन्हें पूर्ण ज्ञान था।[४]

ललित विस्तर में भी धनुष के प्रयोग का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। व्यक्ति धनुष चलाने में अत्यन्त निपुण थे और मर्मवेधी, शब्दवेधी तथा दृढ प्रहार करने वाले बाणों को चला लेते थे।[५] इसमें क्रमशः मर्म को समझ कर शब्द का अनुमान लगाकर तथा दृढ़, स्थित एवं अचूक बाण मारा जाता था। सोमेश्वर ने धनुष बाण से लक्ष्य बेधने में खर्जूरी,[६] राधावेध[७] आदि बेधों का वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि धनुष का प्रयोग उनके समय में विशेष रूप से होता था। ललितविस्तर में एक स्थान पर 'अक्षुण्णवेधित्वम्' का प्रसंग प्राप्त होता है। यह कुन्त से सम्बन्धित कला थी। लक्ष्य को देखकर उसे बेधने के लिये सुन्दरता से भाला फेंका जाता था।[८]

कादम्बरी में चाप, चक्र, चर्म, कृपाण, शक्ति, तोमर, परशु, गदा आदि आयुधों का उल्लेख हुआ है।[९] उस समय के नागरिक इन सभी आयुधों को चलाने की कला से परिचित थे।

---

१. मानसो० ४।१९४,१९५।

२. ए० वेंकटसूबिया...'दि कलाज' सूची १। ३. वही।

४. ''चम्मखेड्डम्...चम्मलक्खणं समवायसुत्त २।२।२६।

५. ए० वेंकटसूबिया 'दि कलाज' सूची २।

६. वही ४।१।१६०,१६१। ७. वही ४।१।१५८,१५९।

८. ए० वेंकटसूबिया...'दि कलाज' सूची २।
ललित विस्तर पृ० १७८।

९. चापचक्रचर्मकृपाणशक्तितोमरपरशुगदा प्रभृतयः आयुधविशेषाः।
कादम्बरी पैरा ७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शुक्रनीतिसार में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि उस समय में व्यक्ति बाण तथा भालों द्वारा हुये घावों को ठीक करने की कला को जानते थे।[1]

इन सब प्रसंगों से विदित होता है कि आयुधों को चलाने की कला से भारतीय प्राचीन काल से ही परिचित रहे हैं, किन्तु सोमेश्वर का प्रसंग इस बात को स्पष्ट करता है कि सम्भवत: उनके समय में शस्त्र विनोद करने के लिये एक उत्सव होता होगा जिसमें राजा आयुधों को चलाकर निर्जीव लक्ष्यों को वेधता था जिससे अन्य व्यक्तियों का भी विनोद होता था और उसका भी आयुधों को चलाने का अभ्यास हो जाता था।

शास्त्र विनोद

शास्त्रों पर किया जाने वाला तर्क भी अधिकांश रूप में राजा का हार्दिक मनोरञ्जन करता था। इस शास्त्र विनोद के अन्तर्गत सोमेश्वर ने राजा के विद्वानों के साथ होने वाले पारस्परिक तर्क का वर्णन किया है। सोमेश्वर को साहित्य, काव्य, नाटक, गद्य, चम्पू, अलंकार, छन्द आदि सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान था। इसी कारण वह कभी-कभी विद्वान व्यक्तियों को बुलाकर उनसे तर्क करता था।

देवताओं का पूजन कर ब्राह्मणों को दान देकर राज्य के कार्यों से निवृत्त होकर, उचित भोजन ग्रहण करके राजा अपना श्रृंगार कर सभा मण्डप के मध्य में स्थित शुभ आसन पर आकर बैठता था और विनोद करने के लिये वह सभी प्रसिद्ध कवियों, गायकों, वादियों, वाग्मियों, पण्डितों, सब शास्त्रों के विद्वानों को अपने सभा-मण्डप में बुलवाता था।[2] वे सभी व्यक्ति आकर राजा का अभिनन्दन कर राजा के चारों ओर यथायोग्य आसनों पर बैठ जाते थे। वहां पर सभा में शब्द की कला में दक्ष, प्रतिभावान् तीनों रत्नों का अभ्यास करने वाले, सभी व्यापारों के ज्ञाता, भाव, छन्द को समझने वाले ज्ञाता कवियों को राजा सुन्दर काव्य पढ़ने का आदेश देता था—

> आज्ञापयेत्कवीन्राजा काव्यं पठत सुन्दरम्।
> पठ्यमाने ततः काव्ये गुणान् दोषान् विचारयेत्॥[3]

कवियों के गुणों के विषय में सब गुणों के साथ "रत्नत्रयकृताभ्यासान्"[4] तीनों रत्नों का अभ्यास करने वाले का वर्णन किया है। यह शब्द अनेक अर्थों

---

१. ए० वेंकटसूबिया...दि कलाज सूची ८।
शुक्र नीति सार।

२. मानसो० ४।२।१९८.२०३। ३. वही ४।२।२०४।

४. वही ४।२।२०२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की ओर संकेत करता है। यह पद तीन गुणों—सत्त्व, रजस् तथा तमस् का द्योतक हो सकता है। इसके अतिरिक्त रत्नत्रय 'वेदत्रयी' ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का भी सूचक हो सकता है, अर्थात् जिन विद्वानों ने तीनों वेदों का अध्ययन पूर्ण रूप से कर लिया है। काव्य के ओज, माधुर्य तथा प्रसाद इन तीन गुणों के अर्थ को भी प्रकट करने वाला 'रत्नत्रय' शब्द हो सकता है, अर्थात् जो सुन्दर काव्य कर सकते हैं। इस प्रकार रत्नत्रय के अनेक अर्थ हो सकते हैं किन्तु यह पद बौद्ध धर्म के लिए अधिक उपयुक्त हो सकता है क्योंकि अभ्यास शब्द नित्य पालन करने वाले कृत्यों की ओर संकेत करता है। बौद्ध धर्म के अनुयायी बुद्ध, धम्म तथा संघ के उपदेशकों का प्रतिक्षण अभ्यास करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त वेदत्रय के पक्ष में भी उपयुक्त जान पड़ता है क्योंकि यह शास्त्र विद्या-विनोद के प्रकरण में प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ यही उपयुक्त हो सकता है कि जिन्होंने तीनों वेदों का अभ्यास कर लिया है।

राजा इन उपर्युक्त सभी गुणों से युक्त व्यक्तियों से अपना-अपना काव्य पढ़ने की आज्ञा देकर उनके गुण-दोषों पर विचार करते हुये उनसे तर्क करता था।[1]

काव्य के गुण दोषों को समझने के लिए सोमेश्वर ने काव्य के गुणों, रीति, छन्द, अलंकार, गुण, द्रव्य, क्रिया आदि का पूर्ण ज्ञान आवश्यक बतलाया है। इसी कारण उन्होंने इन सभी विषयों के लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

सोमेश्वर ध्वनि को काव्य की आत्मा (काव्यस्यात्मा ध्वनिः) नहीं मानते हैं। वे अर्थ को काव्य में विशिष्ट स्थान देते हैं और अर्थ को ही काव्य की आत्मा मानते हैं—

शब्दः शरीरं काव्यस्य प्राणोऽर्थः परिकीर्तितः।
अलंकारास्तदाऽकारः रसाभावाश्च चेष्टितम्॥[2]

इस प्रकार सोमेश्वर ने आनन्दवर्धन के ध्वनि-सिद्धान्त को नहीं माना है। सम्भवतः यह सिद्धान्त उस समय तक उन तक नहीं पहुँचा था क्योंकि आनन्दवर्धन ने इसकी रचना काश्मीर में की थी। अथवा यदि वह जानते भी होंगे तो वे स्वीकार नहीं करते। इससे विदित होता है कि अर्थ के आधार पर ही काव्य की आलोचना होती थी।

इसके बाद गुणों के आधार पर राजा काव्य की आलोचना करता था। इसके लिये उसने ओज, माधुर्य, प्रसाद, समता, कान्ति, समाधि, औदार्य, अर्थ,

१. मानसो० ४।२।२०४। २. वही ४।२।२०५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यक्ति, सौकुमार्य आदि दस गुणों का वर्णन किया है।[१] इसी के अन्तर्गत इन्होंने औदार्य (शस्त्र विशेषणों से युक्त) ओज (विकट अक्षरों की सन्धि तथा समासों से युक्त) कान्ति (लोक के अनुसार संभाव्य कथन) समाधि (दूसरे धर्म का अन्यत्र प्रतिपादन) माधुर्य (कर्ण को सुख देने वाले शब्दार्थों से युक्त) आदि सभी गुणों की परिभाषा दी है। औदार्य, ओज, कान्ति तथा समाधि की सोमेश्वर द्वारा कथित परिभाषा काव्यादर्श में दी हुई दण्डी की परिभाषा से मिलती जुलती है। दण्डी ने भी काव्य के अन्तर्गत दस गुणों को माना है।[२]

इसके बाद सोमेश्वर ने वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली वृत्ति का वर्णन किया है साथ ही साथ सम, अर्धसम तथा विषम छन्दों का[३] वर्णन है। इसके बाद अलंकारों के लक्षणों तथा उदाहरणों का वर्णन किया है।[४] अलंकारों के पश्चात् महाकाव्य के लक्षणों[५] तथा दस प्रकार के नाटकों का उल्लेख है।[६] विधियों का वर्णन भरतमुनि के अनुसार किया है। तत्पश्चात् रस पर विस्तारपूर्वक विचार किया है।[७] इन सभी आधारों पर राजा काव्य के गुण-दोषों पर विचार करता था।

काव्य सम्बन्धी तर्क के पश्चात् राजा न्याय सम्बन्धी विषयों पर तर्क करवाता था[८] जिसका विषय गति, वाद्य तथा नृत्य से सम्बन्धित होता था—

कुलेन विद्यया ख्यात्या समयोर्वाद इष्यते।
वादस्य विषयो गीतं नृत्तं वा वाद्यमेव वा॥[९]

इस तर्क के लिये राजा दो समान विद्वान् व्यक्तियों को चुनता था और गीत, वाद्य, नृत्त से सम्बन्धित विषयों पर वाद-विवाद करवाता था। उस वाद का आधार प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, निगम तथा उपनय होते थे।

स्वपक्षे साधनं यत्र परपक्षे च दूषणम्।
सिद्धान्तेनाविरोधश्च सम्बन्धश्च प्रतिज्ञया॥
हेतुदृष्टान्तयोर्योगो निगमोपनयौ तथा।
पक्षस्य प्रतिपक्षस्य ग्रहो वादः स उच्यते॥[१०]

इन्हीं आधारों पर पक्ष तथा विपक्षी दोनों ही वाद-विवाद करते थे।

---

१. मानसो० ४।२।२०७-२११। २. दण्डिन्...काव्यादर्श।
३. मानसो० ३।२।२१५-२४। ४. वही, द्वितीय खण्ड, पृ० १७४.१८२
५. वही ४।२।१२०-२८ पृ० १८२,१८३।
६. वही ४।२।१२९। ७. वही ४।२।१४०।
८. वही ४।२।१७३। ९. वही ४।२।१७४।
१०. वही ४।२।१७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार से राजा शास्त्र-विनोद कर अपना समय प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करता था। विनोद के समाप्त हो जाने पर वह कवियों तथा तार्किकों को अत्यधिक मात्रा में दान देता था—

इति शास्त्रविनोदेन दिनशेषं नयेन्नृपः।
कवीनां तार्किकाणांश्च प्रसादं भूरि दापयेत्॥[1]

सोमेश्वर का यह शास्त्र-विनोद का प्रकरण इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है कि उन्हें साहित्य एवं न्याय के सभी विषयों का पूर्णरूपेण ज्ञान था। इसके अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में सबसे अधिक वह काव्य तथा न्यायशास्त्र को ही प्रधानता देता था और उनमें विशेष रुचि रखता था। राजा सभी कवियों एवं तार्किकों का विशेष रूप से आदर करता था। काव्य शास्त्र के अन्तर्गत वह सभी आधारों द्वारा काव्य के गुण दोषों पर विचार करता था। न्याय शास्त्र के अन्तर्गत जो वाद-विवाद वह करवाता था वे नीरस न होकर सरस होते थे। यह प्रकरण सोमेश्वर की ज्ञानी एवं विद्वान् प्रजा की ओर भी संकेत करता है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही राजा लोग काव्य तथा शास्त्र विनोद के प्रेमी रहे हैं। यह उक्ति तो प्रसिद्ध ही है "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्"। इसी कारण राजा के दरबार में सात अंगों का होना आवश्यक माना जाता था :

विद्वांसः कवयो भट्टा गायकाः परिहासकाः।
इतिहासपुराणज्ञाः सभा सप्तांगसंयुता॥

इनमें विद्वान् तथा कवियों का राजा नाना भाव से सम्मान करता था। वासुदेव, शातवाहन, शूद्रक, साहसांक आदि राजाओं ने इस विनोद को अत्यधिक मात्रा में प्रोत्साहन दिया और ये लोग शास्त्रों से बड़ा ही प्रेम रखते थे।

शास्त्र द्वारा विनोद करने के भारतवासी सदा से प्रेमी रहे हैं। वात्स्यायन के समय में काव्य तथा कला आदि से सम्बन्धित कुछ गोष्ठियां होती थीं जहां पर नागरक आकर शास्त्र सम्बन्धी अनेक विषयों पर वाद-विवाद करता था—

मानसी काव्यक्रिया, काव्यसमस्यापूरणम्,
पुस्तकवाचनम्, संपाठ्यम्, दुर्वाचकयोगाः,
म्लेच्छितविकल्पाः, देशभाषाविज्ञानम्, अभिधान-
कोषः, छन्दोज्ञानम्, नाटकाख्यायिकादर्शनम्,
... • ... ... ॥[2]

---

१. वही ४।२।२०३,४।

२. कामसूत्र पृ० ३२, ३३ तथा ए वेंकटसूबिया...दि कलाज सूची ३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके अतिरिक्त वेश्या के भवन में भी कला तथा काव्य से सम्बन्धित आलाप एवं वाद-विवाद होते थे—

> वेश्याभवने सभायामन्यतमस्योदवसिते वा समानविद्या-
> बुद्धिवित्तवयसां सह वेश्याभिरनुरूपैरालापैरासनबन्धो
> गोष्ठी। तत्र चैषां काव्यसमस्या कलासमस्या च ॥[1]

इसी प्रकार से शिष्ट शास्त्र सम्बन्धी हास्य करने की गोष्ठियां भी होती थी।[2]

इन गोष्ठियों से विद्वानों का मनोरञ्जन भी हो जाता था और सिद्धि एवं ज्ञान की भी प्राप्ति करते थे—

> या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी।
> परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद्बुधः॥
> लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैककार्यया।
> गोष्ठ्या सह चरन् विद्वांल्लोके सिद्धिं नियच्छति॥[3]

बुद्ध के समय में भी वेद, पुराण, इतिहास, व्याकरण, शिक्षा, छन्द, ज्योतिष, अर्थविद्या तथा हेतु विद्या आदि से सम्बन्धित वाद-विवाद समाज में प्रचलित थे।[4]

कादम्बरी में भी बाण ने राजा शूद्रक के दरबार में होने वाले शास्त्र-विनोद का बड़ा ही सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। इसमें कवियों को अनेक प्रकार की समस्यायें दी जाती थीं, जिनकी वे पूर्ति करते थे। इसके अतिरिक्त शास्त्र, नाटक, काव्य, पुराण, शिल्प, छन्द, सर्वदेशभाषा आदि पर भी मनन एवं वाद विवाद होता था।[5] सोमेश्वर एक श्रेष्ठ कवि एवं नैयायिक था इसी कारण उसके दरबार में होने वाले वाद विवाद शास्त्र, काव्य तथा न्याय पर ही आधारित थे।

गजवाह्यालीविनोद

गज भी राजा के मनोविनोद के साधन थे। गजों का विनोद एक प्रकार की वाह्याली में होता था। राजा वहीं पर आकर गजों की क्रीड़ा देखता था। इस प्रकार में सर्वप्रथम सोमेश्वर ने गजों के भोजन उनके भेद, चिकित्सा तथा उनके द्वारा किए जाने वाले युद्ध का वर्णन किया है। यवनों से युद्ध करने के

---

१. कामसूत्र सू० ३४. ३५ ।
२. गोष्ठीषु हास्य : ट्रिवेन्ड्रम सिरीज पृ० ६९ ।
३. कामसूत्र··· सू० ५१, ५२ । ४. ललितविस्तर पृ० १७८ ।
५. ······पुस्तकव्यापार···काव्यानि नाटकानि······ ॥
कादम्बरी कथामुख भाग, पैरा ७५ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लिए सोमेश्वर ने गजों को लड़ने के योग्य बनाने का आदेश दिया है और इस कार्य के लिए मद ही उनका गुण बतलाया है इसी कारण मद की वृद्धि का यत्न राजा को करवाना चाहिए—

मद एव गुणस्तस्मात्तदर्थं यत्नमाचरेत् ।
बृंहणैः कवलैर्वृष्यैस्तदासञ्जनकारणैः ॥[1]

मद से हीन गज न दौड़ सकता है और न युद्ध ही उचित रीति से कर सकता है । इसी कारण उसकी मद-वृद्धि कर उसे यवनों से युद्ध करने के योग्य बनाना चाहिए[2] । सोमेश्वर ने जो यवनों से गजों का युद्ध करने का वर्णन किया है इससे विदित होता है कि सोमेश्वर के समय ही महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण किया था । उसी की ओर यह यवन शब्द संकेत करता है ।

गज की मदवृद्धि, मुख वर्धन, कर वृद्धि, कर शुद्धि तथा गन्ध एवं वर्ण की शुद्धि के लिए औषधि देनी चाहिए[3] ।

हाथी के मद की वृद्धि के लिए सोमेश्वर ने विशेष रूप से बृंहण नामक औषधि को देने का आदेश दिया है । इस औषधि को देने से गजों में मद की वृद्धि होती है और हाथी सात प्रकार की शोभाओं को धारण करता है—

१. संजातरुधिरा—हाथी के शरीर में रक्त की वृद्धि होती है उसके शरीर की छाया सुन्दर बन जाती है ।

२. प्रतिच्छन्ना—कण्ठ, मणिबन्ध, वक्षःस्थल, कक्षाओं में मांस की वृद्धि हो जाती है ।

३. पक्षलेपिनी—सभी सन्धियों, वदन, गात्र तथा दोनों पक्षों में पीनता आ जाती है ।

४. वरिष्ठाद्युति—कक्षाओं, कन्दराओं तथा दन्तों के दोनों पर्श्वों में धातु-साम्य तथा सकामता के कारण शून्यता हो जाय ।

५. समकल्प—गज के दोनों वंश एवं कक्ष समता को प्राप्त हो जाते हैं, वह निद्रालु, मन्दगामी, दीर्घश्वास लेने वाला हो जाता है ।

६. व्यतिकीर्णिका—चलने में मांस हिलता है ।

---

१. मानसो० ४।३।२०७ ।

२. संग्रामार्थं श्रमस्तेषां कार्यो यवनयोधने ।
मदहीना न धावन्ति न युध्यन्ते मतंगजाः ॥ वही ४।३।२०६ ।

३. व्यस्तारकारकैश्चान्यैर्मुखवर्धनकैरपि ।
करवृद्धिकरैर्योगैः करशुद्धिकरैरपि ॥ वही ४।३।२०८ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

७. प्रोगिका—पृष्ठवंश के निमग्न हो जाने पर कदली के उत्तानपत्र की भांति शोभा हो जाय।[1]

समकल्प शोभा को हाथी के लिए अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है क्योंकि समकक्षों वाला हाथी युद्ध, आरोहण तथा विनोद में उत्तम माना जाता है—

युद्धेऽध्वनि विनोदे च समकला प्रशस्यते ॥[2]

मद की वृद्धि के साथ ही साथ कोप की वृद्धि का भी उपाय गज के लिए करना चाहिए। बृहती फल की मूल, शुण्ठी तथा सैन्धव से युक्त लेप, तैल मिश्रित दारुरजनी तथा तगर का लेप, पिप्पली, मरिच, शुण्ठी तथा मर्कटी फल का तैलयुक्त कट नामक लेप कोप को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त राजिका, पीलुमूत, नागर, पिप्पली आदि का बना पिण्ड गज के कोप को बढ़ाता है।[3] ये कटकादि लेप हैं—

कोपदीपनयोगास्तु कथिता ये कटादिषु।
पूर्वेद्युस्ते विधातव्या धावेच्चाहवकर्मणि ॥[4]

इसी प्रकार मुखवर्धन, कटशोधन, मदभेदन, मदवृद्धिकर, मदगन्धप्रवर्तन आदि अनेक औषधियों का प्रयोग गज को कराने का आदेश सोमेश्वर ने किया है।

सोमेश्वर ने मृग, मन्द्र, भद्र इन तीन प्रकार के मुख्य गजों का उल्लेख मानसोल्लास में किया है। इन सभी के लक्षणों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन मानसोल्लास में हुआ है।[5] मृग, मन्द तथा भद्र जातियों के अतिरिक्त कुछ मिश्रित जाति के गजों का भी उल्लेख मानसोल्लास में हुआ है। दो जातियों के संयोग से मिश्र तथा तीन जाति के मिश्रण से गज संकीर्ण जाति का होता है—

मिश्रस्तूभयसंयोगे संकीर्णस्त्रिगुणो मतः।[6]

मिश्र जाति के गज छः प्रकार के हैं—

भद्रमन्दो भद्रमृगो मन्दभद्रस्तथापरः।
मन्दमृगो मृगभद्रो मृगमन्दश्च मिश्रकः ॥[7]

---

१. मानसो० ४।३।४७३-४८०। २. वही ४।३।४७७।
३. वहीं ४।३।४६५-४६९। ४. वही ४।३।४७०।
५. वही ४।३।२११-२३०। ६. वही ४।३।३३०।
७. वही ४।३।३३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसी प्रकार संकीर्ण गज भी चार प्रकार के होते हैं—

भद्रमन्दमृगश्चैको भद्रो वा मृग मन्दयोः।
मन्दभद्रमृगश्चान्यो मन्दो वा मृगभद्रयोः॥
गुणाधिक्येन नामैषां वर्णाद्वा मुख लक्षणात्।
मिश्रसंकीर्णजातीनां नाम लक्षणमीदृशम्॥
मिश्राणां मिश्रचारस्तु संकीर्णानां तथःह्वयः।
शुद्धसंकीर्णमिश्राणां जातिभेद इतीरितः॥[1]

इन सभी प्रकार के गजों में भद्र जाति का उत्तम, मन्द जातिं का मध्यम तथा मृग जाति का कनिष्ठ गज होता है। इन्हीं के मिश्रण से मिश्र तथा संकीर्ण गज भी उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ प्रकार के होते हैं :—

एतेषां उत्तमो भद्रो मन्दो मध्यमलक्षणः।
मृगः कनिष्ठो मिश्राणां संकीर्णानामयं क्रमः॥[2]

गज की इन जातियों में शारीरिक लक्षण एवं रूप का ध्यान रखा गया है किन्तु श्लेष्म, पित्त तथा वायु के अनुसार भी गज शुद्ध, मिश्र तथा संकीर्ण जाति के होते हैं। श्लेष्म एवं कफ प्रधान गज सात्विकी एवं उत्तम प्रकार का, पित्त प्रधान गज राजसी एवं मध्यम प्रकार का तथा वायुप्रधान गज तामसी एवं अधम प्रकार का होता है। ये सभी गज शुद्ध, मिश्र तथा संकीर्ण जाति के होते हैं।[3]

सत्व के आधार पर भी सात्विकी, राजसी तथा तामसी, इन तीन प्रकार के गजों का उल्लेख मानसोल्लास में हुआ है। मेघावी, स्निग्ध वर्ण वाला कामुक, दीर्घायु, अन्वर्थवेदी गज सात्विकी, वेगवान्, शूर प्रज्ञावान्, उत्तान वेदी तथा दुष्ट गज राजसी तथा क्लेश से कर्म को करने वाला, शीघ्र भूलने वाला, प्रत्यर्थ वेदी गज तामसी बतलाया गया है।[4]

१. मानसो० ४।३।२३२-२३४। २. वही ४।३।२३५।

३. श्लेष्मपित्तानिलाख्याता धातूनामपि जातिवत्।
शुद्धा मिश्राश्च संकीर्णा भेदा ज्ञेया विचक्षणैः॥
सात्त्विकी कफतः पित्ताद्राजसी तामसी चलात्।
प्रकृतिर्मिश्रसंकीर्णा विज्ञेया पूर्ववद् बुधैः॥
मानसो० ४।३।२३६-३७।

४. मेधावी स्निग्धवर्णश्च दीप्ताग्निर्मितभोजनः।
अन्वर्थवेदी दीर्घायुः कामुकः सात्त्विको गजः॥
वेगवान् बहुभुक् शूरः प्रज्ञावांश्चलमानसः।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर ने गज की १२ प्रकार की मदावस्थाओं का वर्णन किया है। गज की पांच प्रकार की अन्तर्वर्ती तथा सात प्रकार की वाह्य मदावस्थायें होती हैं :—

ततः संजातशोभस्य मदावस्थास्तु दन्तिनः।
अन्तः पञ्च मदे सप्त द्वादशेति समीरिताः॥[1]

सात प्रकार की वाह्य अवस्थाओं में पांच अवस्थायें गज के लिए हितकारी हैं। मद की प्रथम अवस्था प्राप्त होने पर पृष्ठ तथा मेढ्र भाग समान हो जाता है, आंखें किंचित् रक्त वर्ण की हो जाती हैं, गज बीथी में पैर रखने पर हाथियों से क्रुद्ध हो जाता है, दाँतों से पृथ्वी को खींचता है, धूल में खेलने का प्रेमी तथा पंक को लपेटने में तत्पर हो जाता है। यह मद की प्रथम अवस्था सञ्चित कहलाती है।[2] जब गज स्वल्पनिद्री, बहुक्रोधी, रक्त नेत्र वाला हो जाता है तब वह कोपावस्था नामक दूसरी मदावस्था को प्राप्त करता है—

स्वल्पनिद्रो रुषा युक्तो जृम्भते यस्तु सन्ततम्।
बहुक्रुद्धो रक्तनेत्रो कोपावस्था द्वितीयकी॥[3]

अनुबन्धिनी नामक तृतीय मदावस्था को प्राप्त करने पर गज आलान पर नहीं बँधता, वृक्ष शाखा का आश्रय ग्रहण कर अपनी कन्धराओं को फैलाता है, गमन करने में चतुर, शोभा से युक्त मुख वाला, कर का चुम्बन करने वाला, तिरछी दृष्टि से देखने वाला तथा हृष्टपुष्ट होता है। इस अवस्था में गज के अर्ध कपोल से चलते समय मदस्राव होता है।[4] और नेत्र दान-वारि से भरे रहते हैं तथा वह मेघ के सदृश गर्जन करता है :—

पुष्करे सीकरस्रावी निर्भयोऽर्धकपोलिके।
गच्छन्नीषन्मदस्रावी दानतः प्रतिभूयसा॥
दानप्रवाहौ मिलितौ नेत्रयोर्दूषितामयाः।
मेघवद्गर्जितं यस्य पूर्वलक्षणलक्षितः॥[5]

जब गज विनोद तथा युद्ध कर्म में निपुण, सर्वसत्त्वों से पूर्ण तथा राजा

उत्तानवेदी दुष्टश्च राजसोऽयमनेकपः॥
क्लेशेन कर्म गृह्णाति गृहीतं विस्मरत्यपि।
प्रत्यर्थवेदी निद्रालुस्तामसो द्विरदः स्मृतः॥ वही ४।३।२३८-२४०

१. मानसो० ४।३।४८१। २. वही ४।३।४८२–४८४।
३. वही ४।३।४८५। ४. ४।३।४८६–४९४।
५. मानसो० ४।३।४९२–४९३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के वहन करने योग्य हो जाता है तब वह गन्धचारिणी अवस्था को प्राप्त करता है।[1] इसके अतिरिक्त जब उसके आठ स्थानों से सदैव मदस्राव होता रहता है तब गज क्रोधिनी अवस्था को प्राप्त होता है—

कर्णयोस्स्तनयोरक्ष्णोः . कट्योस्तालुपुष्करे ।
रोमहर्षेषु कोशेषु - स्रवत्स्वासु सर्वदा ॥
आरोहत्यवशी यस्यामवस्था क्रोधिनी तु सा ॥[2]

यह पांच प्रकार की अवस्थायें गज के लिए अच्छी होती हैं।

इसके पश्चात् गज विनोद का सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। राजा सर्वप्रथम गजाध्यक्ष को बुलाकर गजों को तैयार कर लाने का आदेश देता था। नगर भर में वीरसूड, मृदंग, ढक्का, जयघंटा आदि का नाद कराया जाता था। रात्रि के प्रथम प्रहर में वीरसूड का नाद होने पर गजों के परिचारक गजों को चारों ओर से घेर कर उनको युद्ध के लिए तैयार करने के लिये घोर सिंहनाद कर क्रोध उत्पन्न करते थे। उनके रव को सुनकर राजा उन लोगों को श्रृंगार के लिये पट्ट, पट्टिका, श्वेत दुकूल आदि पृथक् पृथक् देता था तथा गजों के श्रृंगार तथा मर्दन के लिए तेल, सिन्दूर आदि दिलवाता था।[3]

गज-विनोद के एक दिन पूर्व गज के कोपोद्दीपन के लिए उन्हें पिण्ड दिये जाते थे।[4] विनोद के दिन हाथी को भोजन तथा पानी कुछ नहीं दिया जाता था। उनके जघनस्थलों में तैल मर्दन किया जाता था तथा मस्तक पर सिन्दूर का तिलक लगाया जाता था, उनको श्रृङ्गारादि से विभूषित कर उनके महामात्र उनको भिन्न-भिन्न आलानों में दूर-दूर बांध देते थे।[5]

इन गजों का विनोद वाह्याली में होता था। यह वाह्याली १०० धनुष के बराबर लम्बी तथा ६० धनुष के बराबर चौड़ी होती थी। उस वाह्याली की

---

१. बहुगन्धिमदस्रावी समकक्षो घनश्रिया ।
हर्षकोऽप्यधिको यत्र विनोदायोधने क्षमः ॥
सर्वसत्वजिघांसुः स्यादारूढस्य वशानुगः ।
राजवाह्यो गजो यत्र सा भवेद् गन्धचारिणी ॥
मानसो० ४।३।४९४–९६ ।

२. मानसो० ४।३।४९७–४९८ ।

३. श्रृंगारार्थं नृपो दद्यात्तेषां तेषां पृथक् पृथक् ।
मण्डनार्थं मदेभानां तैलं सिन्दूरमेव च ॥ मानसो० ४।३।५०८ ।

४. वही ४।३।५१० । ५. वही ४।३।५१३ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मिट्टी पत्थर तथा कण्टकादि से शून्य, अपांसुल, समतल एवं चिकनी होती थी तथा वह पूर्व की दिशा की ओर ऊँची होती थी। उसमें दो विशाल द्वार होते थे। उनके आगे दो अत्यन्त विशाल तोरण पूर्व दिशा की ओर मुख करके बनाये जाते थे।[१] बाह्याली के दक्षिण की ओर मध्य भाग में ऊँचा सुन्दर आलोक मन्दिर बनता था। यह अत्यन्त ऊँचा होता था और इसके चारों ओर गहरी खाईं होती थी। यह अनेक प्रकार के रत्नों, सुवर्ण आदि से जटित, सुधा के सदृश धवल तथा रत्नजटित भूमि होती थी। उस परिखा पर फलक द्वारा सीढ़ियों से पूर्ण मार्ग बनाया जाता था। इस प्रकार का गृह बनवाने से गज उस मन्दिर तक न पहुँच सकते थे।[२] इसी प्रकार से दक्षिण भाग के समीप ही कुछ पीछे परिखा से पूर्ण, ऊँचा, चित्रों से पूर्ण भित्ति वाला, सुरम्य, विशाल, आठ स्तम्भों से पूर्ण, स्थूल, हाथियों के वक्षःस्थल की ऊँचाई के बराबर पूर्व के द्वार के समीप उत्तर दिशा की ओर एक अन्य मण्डप बनाया जाता था।[3] इस प्रकार के लक्षणों से पूर्ण वाह्याली का निर्माण गज विनोद को देखने के लिए होता था।

इस वाह्याली का निर्माण हो जाने पर जब राजा अपनी अर्चना समाप्त कर चुकता था तब महत्तर राजा को इसके बन जाने की सूचना देता था। राजा नगर में डोंडी पिटवाता था जिसमें तोंदवाले मोटे व्यक्तियों, गर्भिणी स्त्रियों, बालवृन्दों तथा पादांग से हीन व्यक्तियों को उस वाह्याली में आने का आदेश नहीं दिया जाता था—

आघोष्य डिण्डिमं राजा पुरवीथ्यां चतुष्पथे।
तुन्दिलैर्गर्भिणीवृन्दैर्बालैः पादांगकुण्ठितैः॥
न यातव्यं न यातव्यं कौतुकाद्दर्शनोत्सुकैः।
विषमा मत्तमातंगा मारयन्ति कृतान्तवत्॥[४]

यह प्रसंग इस बात की ओर संकेत करता है कि राजा अपनी प्रजा का पूर्णरूपेण ध्यान रखता था।

इस घोषणा के अतिरिक्त राजा गजों के आगे दौड़ने के लिए एक ऐसे परिचारक के लिए घोषणा कराता था कि कोई है ऐसा वेगवान दौड़ने वाला व्यक्ति जो गज के आगे दौड़ सके—

---

१. वही ४।३।५१५–१७। २. वही ४।३।५१८–२१।
३. वही ४।३।५२३। ४. वही ४।३।५२८–२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्यां च घोषणां कुर्याद्यः कश्चित्पादवेगवान्।
धनलुब्धो द्विपस्याग्रे स धावतु स धावतु ॥[1]

राजा अपनी रानियों तथा कुमारों के लिए वस्त्र तथा आभूषण भेजता था। सबके तैयार हो जाने पर उन अलंकृत महाराज्ञियों तथा अन्य स्त्रियां को बजते हुए घण्टों से पूर्ण, सिन्दूर से सुशोभित मस्तक वाले हाथियों पर चढ़ाकर तब राजा स्वयं चढ़कर सूर्यास्त के आतप के कुछ शान्त हो जाने पर सामन्त, अमात्य तथा मन्त्रियों के सहित वाह्याली में आता था। सर्वप्रथम महाराज्ञियाँ तथा कुमार उतर कर, मण्डलाधीशों, सामन्त, अमात्यों के साथ प्रकाश के आश्रय से आलोक मन्दिर में प्रवेश करते थे।[2] तब राजा स्वयं हथिनियों पर से उतर कर परिखा पर सेतुमार्ग से सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ आलोक-मन्दिर में आता था।[3]

वाह्याली में सबके प्रवेश करने पर वीरस्रुड की ध्वनि की जाती थी। उसको सुनकर उत्साह से प्रफुल्लित हो राजा गजाध्यक्ष को बुलाकर परिचारकों को लाने का आदेश देता था। उनके आने पर राजा उनसे हाथियों के आगे दौड़ने का कारण पूछता था। तब वे लोग कहते थे—महाराज हम लोग मत्सरपूर्ण हैं, हम स्वर्ण के इच्छुक हैं—

आवां मत्सरिणौ देव वयं कनककांक्षिणः।
मया द्विपासनं रुद्धमहं परिस्रवान्वितः॥[4]

यह परिकारक गति के अनुसार उत्तम, मध्यम तथा तीन हीन प्रकार के होते थे—

उत्तमो मध्यमो हीनस्त्रिविधः परिकारकः।
एतेषां लक्षणं वक्ष्ये जवोत्कर्षात्पृथक् पृथक्।[5]

वाह्याली की भूमि तीन भागों में अलग-अलग विभक्त रहती थी—

---

१. मानसो० ४।३।५३०।
२. ततः सम्प्राप्य वाह्यालीमुपवेश्य करेणुकाः।
उत्तारयेत्ततः कान्ताः पुरस्ताच्च प्रवेशयेत्॥
कुमारमण्डलाधीशसामन्तामात्यमान्यकान्।
सेवकान्विविधानन्यानालोकेन प्रवेशयेत्॥ मानसो० ४।३।५३७-५३८।
३. मानसो० ४।३।५३९-५४०। ४. वही ४।३।५४४।
५. वही ४।३।५४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१—द्विपभूमि
२—नृपभूमि
३—परिकरभूमि[1]

इनमें जो परिकर तीसरी भूमि को छोड़कर अन्य दो भूमियों में गज के आगे दौड़ता है वह उत्तम, मध्यम जाति के नाग के समक्ष जो इसी प्रकार दौड़ता था वह मध्यम तथा कनिष्ठ नाग के समक्ष जो इसी पूर्वोक्त प्रकार से दौड़ता था वह कनिष्ठ होता था।[2] परिचारकों की ही भांति हाथी भी तीन प्रकार के होते थे। अग्रिम पदांक के पीछे होकर जो आगे हो जाता था वह उत्तम जव वाला, परिकार की गति से दस धनुष आगे होने वाला भी उत्तम जव वाला होता है। इसी प्रकार मध्यम तथा कनिष्ठ हाथियों के लक्षणों का भी वर्णन हुआ है।[3]

जो परिकारक गज के साथ दौड़ने में पीछे रह जाता था वह हीन तथा समान रहने पर समान समझा जाता था। जो तीसरी भूमि को छोड़कर दो भूमि तक गज के आगे दौड़ जाता था वह परिचारक जयी हो जाता था।[4] किन्तु जो परिकारक निश्चित मार्ग से हटकर अलग दौड़ता था वह पराजित हो जाता था। ये परिकारक अन्य व्यक्तियों के प्रमोदार्थ दौड़ते थे और यदि विजयी होते थे तो धन प्राप्त करते थे। पराजित हो जाने पर धन भी नहीं प्राप्त होता था और यदि हाथी के द्वारा पकड़ लिया जाता था तो अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता था—

तुम्बिकां वा परित्यज्य वीथिं हित्वाऽन्यतो व्रजेत्।
सर्पवद्वापि यः सर्पेद्धृतो वा सम्पराजितः॥
परार्थं धावमानस्तु जयी चेद्धनमाप्नुयात्।
पराजये धनं नास्ति कुञ्जरेण हतो हतः॥[5]

गजों के पीछे दौड़ने में परिकर के मध्य कुछ प्रतिज्ञायें होती थीं। दन्ती के जघनस्थल में चूर्ण के द्वारा चिह्न बना दिये जाते थे और दूसरा उसे पोंछ लेता था यही प्रतिज्ञा होती थी। इस प्रतिज्ञा को पूरा कर देने पर वह जयी

१. प्रथमा द्विपभूमिः स्यात्मध्यमा नृपतेर्मही।
तृतीया परिकारस्य भूमिरेवं त्रिधा मता॥ मानसो० ४।३।५४७।
२. मानसो० ४।३।५४८–५५०।
३. मानसो० ४।३।५५१-५५५। ४. वही ४।३।५५९-५६१।
५. वही ४।३।५६२, ५६३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समझा जाता था किन्तु प्रतिज्ञा पूर्ण न कर पाने पर या तो मारा जाता था अथवा हाथी जयी होता था—

जघने दंतयोर्वापि कुर्याच्चूर्णेन लाञ्छनम्।
मार्ष्टि वा तत्कृते चान्यः प्रतिज्ञा धावनन्त्विदम् ॥
प्रतिज्ञापारगो यः स्याज्जयस्तस्य प्रकीर्तितः।
प्रतिज्ञापगमे वापि मारणे वा गजो जयी ॥[1]

इसी प्रकार जय-विजय के सम्बन्ध में अन्य प्रतिज्ञायें भी रहती थीं।[2] गज विनोद से सम्बन्धित यह प्रथा इस बात की ओर संकेत करती है कि सोमेश्वर की प्रजा के लोग राजा के विनोद तथा धन के लोभ के समक्ष अपने जीवन की भी चिन्ता न करते थे।

इस विनोद के साथ ही साथ गज विनोद के लिए राजा चोर को भी हाथ बंधवा कर हाथी के समक्ष दौड़ाता था। यदि वह जीवित रह कर विजयी होता था तो पाप से मुक्त कर दिया जाता था अन्यथा हाथी के चरणतलों का शिकार हो जाता था—

बद्धहस्तो यदा चोरः पुरो धावति हस्तिनः।
गतापराधो जीवेच्चेद्धतः पापात्प्रमुच्यते ॥[3]

यह दृष्टान्त इस बात को स्पष्ट करता है कि राजा के राज्य में चोर को इसी प्रकार का दण्ड दिया जाता था। राजा का दण्ड बड़ा ही न्यायसंगत था।

इस प्रकार के विनोद के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने गजारोहण के लक्षणों का भी वर्णन किया है। गजारोहण के दस प्रकार थे।[4]

इसके साथ ही साथ तीन प्रकार के गजों के आसनों का भी उल्लेख हुआ है—

प्रविश्यासनमुत्कृष्टं मध्यं मध्यसमासनम्।
पादाग्रेणावकृष्टं स्यादासनं त्रिविधं स्मृतम् ॥[5]

---

१. वही ४।३।५६४,५६५। २. वही ४।३।५६६–५७१।
३. वही ४।३।५७२।
४. गात्राभ्यामपराभ्यां च पार्श्वाभ्यामपि रज्जुभिः।
कर्णौ धृत्वा मुखे प्रोक्तं वृक्षादेरधिरोहणम् ॥
एतान्येवावरोहे स्युरेपातः कर्णतो रणे।
एवं दशविधं प्रोक्तमवरोहणलक्षणम् ॥ वही ४।३।५७७–५७८।
५. मानसो० ४।३।५७९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भद्रादि जातियों के लिए युद्ध के समय उत्कृष्ट आसन, दौड़ने के समय मध्यासन तथा मृग जाति के गजों के लिए अवकृष्ट आसन उपयुक्त है।[१] इसी प्रकार जानु सन्धि के अनुसार भी सम, दृढ़ तथा संलग्न तीन प्रकार के आसन उपयुक्त हैं—

समं दृढं च संलग्नं जानुसन्धिसमाहितम् ।
आसनत्रितयेऽप्येवं सौष्ठवं परिकल्पयेत् ॥[२]

आसनों के अतिरिक्त गजों के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली अनेक प्रकार की प्रणिधियों का वर्णन किया है। यह पार्श्वावनत,[3] पृष्ठावनत,[४] उपलापन,[५] प्रज्ञापन,[६] तर्जन,[७] प्रतिक्षित,[८] प्रहत,[९] अदीर्ण[१०] ईषत्स्पृष्ट[११] प्रणिधि हैं। प्रणिधि की परिभाषा सोमेश्वर ने निम्न प्रकार से दी है—

गजस्य प्रेरणार्थं यत् पुरस्ताद्रासनं वपुः ।
करोतु यन्ता प्रणिधिर्नाम्नासावनतो मतः ॥[१२]

अंकुश के द्वारा हाथी पर होने वाले घात भी अनेक प्रकार के होते हैं—

अर्धाङ्गुलं निमग्नश्चेदंकुशः करिमस्तके ।
प्रणिधानाभिधो घातो विधेयानां विधीयते ॥
द्विश्यंगुलप्रमाणस्तु घातः पोडिको मतः ।
द्वाभ्यां कराभ्यामुल्लिप्य स घातः क्षिप्तकः स्मृतः ॥
सृणिपार्श्वेन घातोऽयं अवेत्तारितकाभिधः ।
आराघातस्ततः प्रोक्तस्तोद इत्यभिधानतः ॥[13]

गज के मुख को एक वस्त्र द्वारा ढक दिया जाता था। उसके चारो ओर हथसवार तथा घुड़सवार लोग रहते थे और सब वाह्याली में आते थे—

तस्मात्तादृग्विधं नागं मुखपट्टावृतेक्षणम् ।
वस्त्रोदरसमाकीर्णाकर्णद्वितयरन्ध्रकम् ॥

---

१. मानसो० ४।३।५८०–५८१। २. वही ४।३।५८२।
३. वही ४।३।५८४। ४. वही ४।३।५८५।
५. वही ४।३।५८६। ६. वही ४।३।५८७।
७. वही ४।३।५८८। ८. वही ४।३।५८९।
९. वही ४।३।५९०। १०. वही ४।३।५९१।
११. वही ४।३।५९२। १२. वही ४।३।५९३।
१३. वही ४।३।५९३–५९५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आरोहैस्तैर्हयारूढैः सादिभिः परिवेष्टितम् ।
कृतान्तमिव दुर्धर्षं वाह्यालीभूमिमानयेत् ॥[1]

इसी समय हाथी से कुछ दूर पर वीरसूड का वाहन होता था और परिकर हाथी के समक्ष लाया जाता था। उस समय हाथी के मुख पर का आवरण हटा दिया जाता था जिससे हाथी परिकर को देख ले।[2] परिकर को देखते ही हाथी क्रुद्ध होकर उसके पीछे दौड़ता था। उसी समय घोड़े आदि भी दौड़ते थे और हाथी परिकर को छोड़कर अश्वों के पीछे दौड़ने लगता था।[3] इस दौड़ में वह अनेक प्रकार से शुण्ड द्वारा सबको मारता था।[4] हाथी के इस क्रोध को देखकर उसके समक्ष हथिनियों का यूथ आता था और वे हथिनियां उसे अपने वश में कर लेती थीं—

एकतः करिणीयूथमन्यतो हयवृन्दकम् ।
नराणां युगलं तस्मिन् संगतं नैव दृश्यते ॥
निर्जन्तुकं तदा जातं वाह्यालीभूमिमण्डलम् ।
कथञ्चिन्नीयते कृच्छ्रात्सादिभिस्तोत्रपाणिभिः ॥[5]

आजकल भी बड़ौदा में हाथियों का इसी प्रकार का विनोद होता है। इसे डागदारी कहते है।

गज सम्बन्धी अनेक प्रसंग भारतीय साहित्य में प्राप्त होते हैं। बृहत्संहिता[6] तथा बौद्ध साहित्य[7] में गज के लक्षणों पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश डाला गया है। ललितविस्तर में हाथी के सिर का आश्रय ग्रहण कर चढ़ने का प्रसंग प्राप्त होता है।[8] वात्स्यायन ने गज की पीठ पर उचित रूप से बैठने की भी एक प्रकार की कला मानी है।[9] शुक्र के समय में हाथियों की पारस्परिक दौड़ द्वारा

---

१. मानसो० ४।३।६३०–३१।

२. वीरसूडरवं भूरि कारयेत्तस्य दूरतः ।
द्वारप्रवेशनात् पूर्वमादिशेत् परिकारकम् ॥
अपसार्य हयारोहानुत्सृजेत्कर्णकन्दुकौ ।
मुखपट्टं समुत्क्षिप्य परिकारं प्रदर्शयेत् ॥ मानसो० ४।३।६३२-६३३।

३. मानसो० ४।३।६३६।   ४. वही ४।३।६३७–६४०।

५. वही ४।३।६४१–४२।   ६. बृहत्संहिता अध्याय ६७।

७. समवाय सुत्त २।२।२६ तथा दी०नि० १।२२।

८. ए० वेंकटसूबिया—दिकलाज सूची २।

९ वही सूची ३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यक्तियों का मनोरंजन होता था।[1] सोमेश्वर ने भी हाथी की दौड़ द्वारा मनोरंजन करने का प्रसंग दिया है, किन्तु उस दौड़ते हुए हाथी के समक्ष पुरुष का दौड़ना उनके समय की अपनी विशेषता थी। इसके अतिरिक्त चोर को हाथी के समक्ष हाथ बांधकर दौड़ाया जाता था यह प्रसंग सोमेश्वर के निष्पक्ष न्याय की ओर संकेत करता है। यद्यपि यह प्रथा अत्यन्त क्रूर थी, किन्तु चोर के लिए महान् शिक्षा प्रस्तुत करती थी।

इसके बाद दो गजों में युद्ध होता था। ये दोनों गज परस्पर अपनी शुण्डों द्वारा एक दूसरे पर आघात करते थे। ये घात १४ प्रकार के होते थे।[2] इन सभी आघातों द्वारा गज परस्पर लड़ते थे। दोनों गजों के सम्मुख आ जाने पर अथवा अपने गज के गिर जाने पर उसको चाप द्वारा खींच लिया जाता था।

राजा विजयी व्यक्तियों को वस्त्र, धन, काञ्चन तथा आभूषण आदि देता था और अन्त में हथिनियों पर चढ़ कर अपने राजमंदिर को चला जाता था।

इस प्रकार के हस्तियुद्ध का प्रसंग दीघनिकाय में प्राप्त होता है जो तत्कालीन समाज में प्रचलित था और बौद्ध भिक्षुओं के लिए वर्जित था।[3] शुक्र ने भी हस्ति युद्ध का वर्णन किया है।[4]

वाजिवाह्याली विनोद

गजवाह्याली विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने वाजिवाह्याली विनोद का वर्णन किया है। सर्वप्रथम उन्होंने वाजि विनोद के लिए बनने वाली वाह्याली की भूमि का वर्णन किया है। वह कीचड़, पाषाण तथा शंकु से हीन, न बहुत मुलायम न बहुत कठिन भूमि में अत्यन्त विशाल वाह्याली राजा बनवाता था--

अकर्दमामपाषाणां गर्तशंकुविवर्जिताम् ।
न मृद्वीं नातिकठिनां प्रागुदीचीप्लवां शुभाम् ॥
विशालां सुषमां श्लक्ष्णां वाह्यालीं कारयेन्नृपः ॥[5]

दो द्वारों से युक्त उत्तरदिशा की ओर वायु के अनुकूल अथवा दक्षिण दिशा की ओर दर्शन मण्डप बनवाया जाता था। उस वाह्याली का निर्माण हो जाने

---

१. वही सूची ८।
२. मानसो० ४।३।६४५-६५४।
३. दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त, सू० १३ पृ० ७।
४. ए० वेंकटसूबिया—दिकलाज़ सूची ८।
५. मानसो० ४।४।६६२-६६३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर तथा गृहकारकों के निवेदन करने पर हयाध्यक्ष को बुलाकर राजा घोड़ों को वाह्याली में लाने की आज्ञा देता था।[1]

घोड़ों के आ जाने पर विनोद कराने के पूर्व राजा इनकी देश, नाम, आवर्त, वर्ण, सत्त्व, छाया, गन्ध, गति तथा आकार के अनुसार परीक्षा करता था--

समानीतांस्ततो वाहानवलोक्य महीपतिः।
तेषां जातीः परीक्षेत देशनामविभेदतः॥
आवर्तवर्णसत्त्वानि छायागन्धगतिस्वराः।
आकारश्चाष्टधाऽश्वानां श्रेष्ठमध्यकनीयसाम्॥[2]

नकुल ने भी अश्वों की परीक्षा के आवर्तादि यह आठ लक्षण बतलाये हैं—

इदानीं लक्षणं कृत्स्नं तुरंगाणां प्रवक्ष्यते।
आवर्तवर्णसत्त्वानिछायागन्धगतिस्वराः॥
शरीरं चैव वाहानां प्रोक्तं लक्षणमष्टधा॥[3]

सोमेश्वर की प्रथम पंक्ति आवर्त······ स्वराः तो पूर्ण रूप से नकुल से उद्धृत प्रतीत होती है।

सर्वप्रथम महाराज सोमेश्वर ने देश के नामों के अनुसार अश्वों का विभाजन किया है। उनके कथनानुसार देशनामानुसार सात उत्तमोत्तम अश्व, ५ उत्तम प्रकार के अश्व, १४ मध्यम वर्ग के तथा १३ निम्न कोटि के अश्व होते हैं।[4] इनके अतिरिक्त २६ भेद और हैं जिनके विषय में केवल यही कहकर छोड़ दिया है कि वे कलियुग में नहीं होते। इसी कारण उनके नामों को नहीं गिनाया है :--

षड्विंशतिविभेदाः स्युः राज्ञा ज्ञेयास्तुरगंमाः।
न जायन्ते कलौ यस्मात्तस्मान्न गणिता मया॥[5]

सोमेश्वर ने १—काम्बोज, २—यवन, ३—तेजी, ४—बाल्हीक, ५—चातल, ६—तोखारक, और ७—सकेकाण नाम के उत्तमोत्तम घोड़ों का वर्णन किया है।[6] नकुल ने काम्बोज के स्थान पर कांभोज नाम दिया है। यह अश्व रूप, कुल, गति वर्णादि सबमें श्रेष्ठ है। सोमेश्वर ने जो यवन अथवा यवनोद्भूत अश्वों का उल्लेख किया है वे सम्भवतः अरबी घोड़े रहे होंगे

---

१. मानसो० ४।४।६६६।
२. वही ४।४।६६७-६८।
३. नकुल—अश्वशास्त्र, पृ० २१।
४. मानसो० ४।४।६६९-६७४।
५. वही ४।४।६७५।
६. वही ४।४।६६९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्योंकि अरब के घोड़े आज भी प्रसिद्ध हैं। नकुल ने भी अपने अश्वशास्त्र में यवन अश्वों की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है—

चारुनयनकपोलास्तनुहनु वक्त्रास्तुरंगमाः शस्ताः।
यवनास्तुरगा विपुलाः पृथुघनं वक्षोललाटनयना स्युः॥
दीर्घाः सुकुक्षिकाः सुखुरा लघुक्रमाः शस्ताः।
प्रियदर्शनाः सुवर्णाः स्पष्टायततनुमहाकायाः।
तेजः सत्वोपेताः तनुत्वचश्चापि सूक्ष्मरोमाणः॥[1]

बाह्लीक अश्वों की परिभाषा नकुल ने भी दी है और उन्हें वर्णरूपादि में काम्भोजों के सदृश माना है। ये महागति वाले तथा रूप और सौन्दर्य से युक्त होते हैं। नकुल ने जो तुषार[2] नामक घोड़ों का वर्णन किया है, सम्भवतः उन्हीं का सोमेश्वर ने तोखार अथवा तोकार[3] नाम दिया है।

इसी प्रकार सोमेश्वर ने १—पोद्दार, २—कान्दलेय, ३—यौधेय, ४—वाजपेयक, ५—वनायुज और ६—पारसीक इन छः उत्तम प्रकार के अश्वों का वर्णन किया है।[4] इनमें से नकुल ने वनायुज अश्व का वर्णन किया है और सम्भवतः कान्दलेय तथा यौधेय नामक अश्वों का क्रमशः कादरेय[5] तथा गौधेय[6] नाम दिया है। ये अशुद्धियां हस्तलिपियों के पाठ-भेद के कारण हो सकती हैं।

महाराज सोमेश्वर ने चौदह प्रकार के मध्यम वर्ग के अश्वों का उल्लेख

---

१. अश्वशास्त्र नकुल—कुललक्षणाध्याय।

२. प्रियदर्शना मनोज्ञास्तेजोजवसत्वसंयुक्ताः ।
एवं तुषारकाश्वा जवसत्वबलान्विता महाकायाः।
अश्वशास्त्र।

३. तोकारदेशसम्भूतं सर्वलक्षणसंयुतम्। मानसो० ४।४।८१६।

४. पोद्दाराः कान्दलेयाश्च यौधेया वाजपेयकाः।
वनायुजाः पारसीकाः षडेते चोत्तमा हयाः॥
मानसो० ४।४।६७०।

५. पृथुजघनदृढ़पादा सुकुष्ठिकाः शुभाकरास्तुरंगाः।
अश्वास्तु कादरेया दृढपादाः सूक्ष्मवालरोमाणः।
अश्वशास्त्र—कुललक्षणाध्याय।

६. दृढपादा अक्रूरा शशिवर्णाः प्रायशस्तेऽश्वा ।
यौधेया भारसहा सुखुरा वृत्तायतघनग्रीवाः॥
अश्वशास्त्र—कुललक्षणाध्याय।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया है जो क्रमशः १—तैत्तिल, २—वत्स, ३—कान्धार, ४—वामतेय, ५—ससैन्धव, ६—सावित्र, ७—पार्वतेय, ८—काश्मीर, ९—साम्व्रतीयक, १०—तेजी, ११—कुलज, १२—नीहार, १३—सारस्वत तथा १४—तुरुष्कक हैं।[1] इनमें से तेजी नामक घोड़ों को सोमेश्वर ने उत्तमोत्तम घोड़ों में भी गिना है।[2] इससे विदित होता है कि उस समय में तेजी अश्वों की दो नस्लें होती थीं १—उत्तमोत्तम नस्ल और २—मध्यमवर्ग की नस्ल। नकुल ने भी काश्मीर[3] और कुलज[4] अश्वों का वर्णन किया है और सोमेश्वर के तैत्तिल कान्धार, ससैन्धव, सावित्र तथा पार्वतेय अश्वों का क्रमशः तैत्तिज, गान्धार, सैन्धव, सावित्रेय तथा पार्वतेय नाम दिया है। तुरुष्कक से अभिप्राय कदाचित् तुर्की घोड़ों से है।

मध्यम घोड़ों के पश्चात् सोमेश्वर ने १—मेदक, २—आर्जुनेय, ३—त्रैगर्त ४—गुर्जर, ५—राजस, ६—आवन्त्य, ७—सौराष्ट्र, ८—पारियात्र, ९—सहारक, १०—दुग्धवाट, ११—स्तब्धवाट और १२—अतिकष्ट इन १२ अधम अथवा कनिष्ठ कोटि के घोड़ों का वर्णन किया है।[5] इन घोड़ों में से त्रैगर्त तथा आवन्त्य प्रकार के अश्वों का नकुल ने विशेष विवरण दिया है—

> मृद्वङ्गाः वल्गुसटाः सुकुष्टिका दुर्मुखास्तुगाः।
> त्रैगर्ताः शशिवदनाः शशिबालाधिकेसराः शशिप्रोथाः॥
> पश्चार्धेषु च विषमाः तनूदराः ह्रस्वपृष्ठाश्च।
> आवन्त्याः स्थूलाङ्गाः पृथुवक्षोजघनसूक्ष्मरोमाणः॥[6]

इसके अतिरिक्त सोमेश्वर द्वारा कथित मेदक तथा आर्जुनेय अश्वों के क्रमशः नकुल ने मेचक और अर्जुनाश्व नाम दिया है। इसी प्रकार सोमेश्वर ने आवर्त, वर्ण इत्यादि के अनुसार भी अश्वों का विभाजन किया है।

---

१. मानसो० ४।४।६७१–६७२।

२ काम्बोजयवनास्तेजी, मानसो ४।४।६६९।

३. औरस्याः पृथुजंघा दृढ़पादा महोदररस्काः।
   काश्मीराः शुद्धाक्षा विपुलसटाः सुसंहताः सुखुराः॥
   अश्वशास्त्र—कुललक्षणाध्याय।

४. पृथुवक्षोजघनाक्षा भाराध्वसहाः सुगात्राश्च।
   कुलजा वृत्तग्रीवा आयतवक्त्राश्च दीर्घवालाश्च॥
   अश्वशास्त्र—कुललक्षणाध्याय

५. मानसो० ४।४।६७३–६६४।

६. नकुल—अश्वशास्त्र—कुललक्षणाध्याय।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

घोड़ों के लक्षण आदि का विस्तृत वर्णन कर सोमेश्वर ने घोड़ों के विनोद का वर्णन किया है। सोमेश्वर ने इसी पूर्वोक्त प्रकार के शुभ लक्षणों से युक्त राजोचित अश्वों को विनोद के लिए शिक्षा देने का आदेश दिया है :

महाजवा महाप्राणा नृपाणामुचिता हयाः।
एवं रूपगुणोपेतान् शिक्षितानश्ववाहकैः ॥[1]

विनोद के लिए सुवर्ण-पट्टों द्वारा घोड़ों का वक्षःस्थल सजाया जाता था। मस्तक पर सुन्दर पट्ट बांधे जाते थे। कनक की शृंखलाएँ उनके डाली जाती थीं। ग्रीवा में कुंकुम का लेप किया जाता था।[2] इस प्रकार सजे हुए अश्वों के वाह्याली में आ जाने पर राजा स्वयं वस्त्राभूषणों द्वारा शृंगार कर अत्यन्त सुन्दर घोड़े पर चढ़ कर वाह्याली में आता था। अत्यन्त चतुर अश्वारोही दो भागों में आठ-आठ की संख्या में विभक्त किए जाते थे।[3]

राजा के साथ अन्तःपुर की स्त्रियां, कुमार, सचिव, अमात्य, मन्त्री तथा अन्य बहुत से व्यक्ति रहते थे। राजा घोड़े पर अपनी प्रिया के साथ सुखपूर्वक बैठकर मण्डप में आता था।[4] तब राजा स्वयं काम्बोज अश्व पर चढ़कर विनोद के लिए वाह्याली में प्रवेश करता था—दोनों पक्षों की ओर दो तोरण तीन धनुष की दूरी पर बने होते थे। तोरण तथा स्तम्भों के मध्य चार धनुष की दूरी रहती थी। वहां से कन्दुक के निष्कासन द्वारा जय-पराजय का अनुमान किया जाता था।[5] जिन व्यक्तियों के द्वारा गेंद निकाल दिया जाता था वही विजयी होते थे। अश्वविनोद के समय कृष्णचर्म से आच्छादित मुख वाली पांच अंगुल परीणाह की हेम पट्ट से विभूषित एवं रत्न जटित गेद्दिका सब अश्वारोही धारण करते थे।[6] राजा अपने पक्ष के लोगों को तोरण के समीप स्थापित करता था और सब लोग उसी गेद्दिका के अग्रभाग द्वारा गोल, चिकने, पारिभद्र की लकड़ी के बने हुए चमड़े से आच्छादित, लाल वर्ण के गेंद को पृथ्वी पर फेंकते थे। एक पक्ष के व्यक्ति पुनः गेद को संघर्ष द्वारा लौटा देते थे और इसी बीच

---

१. मानसो० ४।४।७७९। २. वही ४।४।७८४-७९१।
३. वही ४।४।७९७। ४. वही ४।४।७९९-८००।
५. वही ४।४।८०१-८०२।
६. शोणेन चर्मणा नद्धा मुखे कृष्णेन गुण्ठिता।
पंचागुलपरीणाहा गेद्दिकाश्चापमात्रिका ॥
शोभिना हेमपट्टेन क्वचिद्रत्नविभूषिता:।
प्रगृह्य गेद्दिका: सर्वे पक्षद्वितयसादिनः ॥ सोमेश्वर—मानसो० ४।४।८०४—५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में कोई अन्य व्यक्ति वेग पूर्वक आकर कन्दुक को पकड़ लेता था फिर वह कन्दुक प्रतिपक्षी की ओर फेंक दिया जाता था।[1]

इसी प्रकार एक दूसरे की ओर संघर्षों द्वारा कन्दुक को उछालते हुए विनोद करते थे। कोई अनेक घातों द्वारा गेंद को फेंकता था, कोई आगे की ओर अथवा पीछे की ओर फेंकता था। कोई तिरछे आघात करता था, कोई बाहर फेंकता था, कोई हंसता हुआ गेद्दिका के अग्र भाग से गेंद को दूसरे से ले लेता था। एक आकाश में स्थित गेंद को गेद्दिका के अग्र भाग से धारण करता था तथा दूसरा अश्वारोही उसको आकाश से ले आता था। इस प्रकार जो संकुल घात द्वारा गेंद को पृथ्वी तथा आकाश से लाकर तोरण के अंतिम भाग से बाहर निकाल देता था वही विजय प्राप्त करता था—

गगनस्थं परः सादी गे (गोद्दि)काग्रेण धारयेत्।
अपरंश्चाश्ववारोऽपि तमादायाम्बरान्नयेत्॥
एवं संकुलघातेन कन्दुकं भुवि चाम्बरे।
नयन्तस्तोरणस्यान्तर्बहिर्निष्कास्य कन्दुकम्॥
जयं लभन्ते तत्पश्चात्तूर्यनादविजृम्भितम्।[2]

इस प्रकार से अश्व पर चढ़कर कन्दुक विनोद द्वारा राजा के विजय प्राप्त करने पर तूर्यवाद होता था। राजा खेल के पश्चात् घोड़े पर से उतर कर वन्दियों द्वारा स्तुति किया जाता हुआ तोख्खारी घोड़े पर बैठता था।[3] तत्पश्चात् अन्य व्यक्ति भी घोड़ों पर बैठते थे। राजा दृढ़तापूर्वक घोड़े की दोनों वलों को खींचकर दायें तथा बायें और घुमाकर शब्दों द्वारा घोड़े को रोक कर, उसे जांघों द्वारा पीड़ित कर, उचित रूप से अश्व पर बैठ कर वाहन विद्या के उत्कर्ष को प्रदर्शित करता था।[4]

अश्व विद्याविशारदों के द्वारा प्रेक्षक लोगों का मन प्रसन्न करने के पश्चात् राजा की महाराज्ञियां राजा की आरती करती थीं। तत्पश्चात् राजा अश्ववाहकों को सुवर्ण, वस्त्र, अलंकार पारितोषिक के रूप में देता था। गायक लोग राजा की स्तुति करते थे, कविगण उनके यश का गान करते थे। तब राजा राजमन्दिर में प्रवेश करता था।[5]

यह घोड़े पर चढ़कर गेंद खेलने की प्रथा भारतवर्ष में बहुत दिनों से प्रचलित है, किन्तु पूर्व में इसका नाम वाजिवाह्य क्रीड़ा थी।[6] इसके अतिरिक्त

---

१. मानसो० ४।४।८०६.८०९। २. वही ४।८१३.८१५।
३. वही ४।४।८१६.८१६। ४. वही ४।४।८१८.८२३।
५. वही ४।४।८२४-८२७। ६. भारतीय संस्कृति अंक, पृ०७२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बुद्ध काल में यह अश्व सम्बन्धी मनोरंजन अश्वों को परस्पर लड़वा कर किया जाता था। यह भी एक प्रकार का विनोद था जो बौद्ध भिक्षु के लिए वर्जित था—

·········नच्चं गीतं वादितं·········

वसं धावनं·····अस्स युद्धं·········

······एवरूपा विसूक दस्सना पटिविरतो

समणो गोतमो ति ॥[1]

वर्तमान काल में भी यह विनोद प्रचलित है जो Horse Polo (अश्वकन्दुकक्रीड़ा) नाम से प्रसिद्ध है।

अंक विनोद

तुरंग वाह्याली विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने अंक विनोद का वर्णन किया है। इस प्रकरण में सर्वप्रथम उन्होंने अंक की परिभाषा दी है। जो व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से समान अस्त्र लेकर लड़ता है वही व्यक्ति अंक कहलाता है।[2]

सोमेश्वर ने इस प्रकरण में आठ प्रकार के अंकों का वर्णन किया है—

१ परिभूतांक-गाली, केश खींचे जाने, ताडनादि से जिसका अनादर होता है।

२. मत्सरांक—एक ही वेश्या के लिए जो ईर्ष्या के कारण दूसरे व्यक्ति से युद्ध करता है।

३. भूम्यंक—गृह तथा क्षेत्रादि को हरने के कारण सीमा के बहाने से तथा भूमि को प्राप्त करने के लोभ से जो युद्ध करता है वह भूम्यंक होता है।

४. विरुदांक—एक व्यक्ति को उद्देशित करके सभी व्यक्ति उसके विरुद्ध चिल्लायें, काहल बजाये, दिन में भैंसे पर चढ़कर दीप जलावे तथा सभी मार्गों में तृण बिखेर दें।

५. विद्यांक—शस्त्र विद्या से सम्बन्धित जो युद्ध किया जाता है वह युद्ध करने वाला विद्यांक होता है।

६. वैरांक—पिता आदि को मारने से उत्पन्न वैमनस्य का स्मरण कर जो दूसरे से युद्ध करता है।

---

१. दीघनिकाय—ब्रह्मजाल सुत्त–सू० १३ पृ० ७।

२. येन वा युध्यते सार्धमेक: खलकधामनि।
समेनास्त्रेण यस्तज्ज्ञैरंक: स परिकीर्तित:॥
मानसोल्लास ४।५।८१८, ८२९

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

७. द्रोहांक—अपराध करने पर उसका निवारण करने के लिए राजा जिस को लड़वाता है वह द्रोहांक है।

८. प्रायश्चित्तांक—जो मोह से वशीभूत होकर पाप कर डालता है और विरक्त मन से राजा के समीप आकर शिकायत करता है उसके निवारणार्थ राजा जिसको लड़वाता है वह प्रायश्चित्तांक है।[1]
इस प्रकार से आठ प्रकार के अंक उस समय में होते थे।[2]

इन आठों प्रकार के अंकों में परस्पर जिन दो व्यक्तियों में वैमनस्य होता था उनको राजा दोनों में युद्ध करवा कर शान्त करता था। सोमेश्वर ने इसे धार्मिक कृत्य माना है—

ईदृशाष्टविधानंकान्योधयन् पृथिवीपतिः।
पापं नाप्नोति तेषां च व्याजपापं व्यपोहति॥[3]

इन आठों प्रकार के अंकों के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने उनके लड़ाने के लिए विशेष प्रकार के स्थान का वर्णन किया है। उन अंकों का युद्ध कराने के लिए राजा को एक अत्यन्त ऊँचा, वृत्त, मजबूत, सोलह हाथ विस्तीर्ण तथा ४८ हाथ परीणाह का, बत्तीस खम्भों से तथा एक द्वार से युक्त खलक बनवाना चाहिए। उन खम्भों को निम्न पत्र की पताकाओं से सुशोभित करवाये। द्वार की सीढ़ियों तथा तोरण से युक्त हो तथा खलक में दंडधारी व्यक्ति अधिष्ठित हों।[4] खलक के समान ही ऊंचाई पर राजा को देखने का स्थान बनवाना चाहिए जो चौकोर, विशाल आँगन से पूर्ण, वितान से आच्छादित, मध्य भाग में वेदिका से युक्त, अत्यन्त चिकनी तथा श्वेत भूमि से युक्त तथा सुवर्ण पट्ट से आच्छादित स्तम्भों से युक्त हो—

खलकेन समोत्सेधे कुर्याद्वीक्षणमंडपम्।
विशालचतुरस्रं च सवितानं च सांगणम्॥
मध्ये वेदिकया युक्तं चित्रभित्तिसमन्वितम्।
सुधाधवलितं रम्यं श्लक्ष्णकुट्टिमशोभितम्॥
स्वर्णपट्टपिनद्धैश्च स्तम्भैः सुपरिमंडितम्॥[5]

इस प्रकार के वीक्षण स्थल से राजा खलक में युद्ध करते हुए अंकों को देखता था। इन अंकों के युद्ध के लिए रविवार का दिन निश्चित किया जाता था—

---

१. मानसोल्लास ४।५।८३०,४०। २. वही ४।५।८४१।
३. वही ४।५।८४१,८४२। ४. वही ४।५।८४२,४५।
५. वही ४।५।८४५,४७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ततः प्रभाकरे वारे कृतपूर्वाह्निकक्रियः ।
निवर्त्य भोजनं राजा भवेत्सम्भृतमंडनः ॥[१]

उस दिन के पूर्व शनिवार को राजा उन दोनों अंकों (जिसमें विवाद के कारण वैनमस्य होता था) को बुलाता था और उनकी अनेक प्रकार की शौर्य एवं उत्साहपूर्ण प्रतिज्ञाओं को सुनकर उन्हें लिखवाता था—

वारे शनैश्चरे सोऽयमंकानाहूय योधयेत् ।
प्रतिज्ञां शृणुयात्तेषां विविधां शौर्यशालिनीं ॥
... ...
... ...
ब्रुवतामेवमन्योन्यं प्रतिज्ञां लेखयेन्नृपः ।[२]

जिस समय वे दोनों अंक राजा के समक्ष अपनी-अपनी प्रतिज्ञाओं को सुनाने के लिए उपस्थित होते थे उस समय उनके पारस्परिक वैमनस्य के भावों का सोमेश्वर महाराज ने बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ वर्णन किया है। दोनों ही अंक राजा के समक्ष अपनी-अपनी बातें कहते थे। यदि उनमें से एक व्यक्ति दूसरे को रोकने को, नोचने को तथा भगाने को कहता था तो दूसरा उसे मार डालने, पैर तोड़ देने, हस्तहीन कर देने आदि की धमकी देता था—

प्रधावाम्यहमित्येको रुणध्मीति तथापरः ।
खोञ्चामीति तथा चैको धारणामीति चापरः ॥
अपसर्पामि नेत्येकश्च सर्पामीति कश्चन् ।
मारयाम्यहमित्येको म्रियेऽहं नेति चापरः ॥
शस्त्र्यां शस्त्रिकया स्पर्शे हनिस्यामीति कश्चन् ।
अस्त्रशस्त्रैः तवांगानि दारयामीति चेतरः ॥
छिनद्मि पादं धावन्तं घ्नन्तं हस्तं निहन्म्यहम् ।
दंडं छिनद्मि निक्षिप्तं गात्रं विध्याम्युपागतम् ॥[३]

इस प्रकार की एक दूसरे के प्रति उत्साह, शौर्य एवं घृणा पूर्ण वाणी को सुनकर राजा उन सबको लिखवा कर उन्हें विदा कर देता था ।

रविवार को दिन के अन्तिम प्रहर में राजा उन अंकों के युद्ध को देखने के लिए अपनी रानियों, भृत्यों, मन्त्रियों, अमात्यों, मंडलाधीश्वरों, अन्य मंडल के

१. मानसोल्लास ४।५।८५४ । २. वही ४।५।८४८-८५३ ।
३. वही ४।५।८४९-८५२ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भूपालों के समेत वीक्षणमंडप में आकर अपने आसन पर बैठता था।[1] सभी लोगों के यथास्थान बैठ जाने पर तूर्यनाद से प्रसन्न होते हुए, सिंह के समान गर्जन करते हुए, काहल, वाद आदि बजाते तथा एक दूसरे के प्रति विरुद्ध बातें करते हुए हथिनियों पर चढ़कर अंक खलक-मंडल में आते थे।[2] उनकी वेशभूषा भी बड़ी विचित्र होती थी। कोई हरा, कोई पीला, कोई काला तथा कोई श्वेत वस्त्र धारण करता था। कोई त्रिबिन्दु, त्रिशूल तथा मंडलाकृति का मस्तक पर तिलक धारण करता था। कोई घुटनों तक का वस्त्र पहनता था तो कोई अनेक आभूषण धारण करता था।[3] इस प्रकार की विचित्र तथा विभिन्न प्रकार की वेशभूषा में अंक गण खलक में प्रवेश करते थे और कूर्मासन (घुटनों के बल भूमि पर बैठकर सिर भूमि पर रखकर) में बैठकर राजा को प्रणाम करते थे।

तब राजा प्रत्येक प्रकार के प्रतिद्वन्द्वी को अलग-अलग लड़वाता था। उदाहरणार्थ स्त्री मत्सर से युक्त को मत्सर करने वाले के साथ लड़ाता था—

क्षितीशः परिभूतेन योधयेत्परिभावकम्।
स्त्रीमत्सरसमायुक्तं मत्सरेणैव योधयेत्॥
सविरोधौ क्षितेरर्थे योधनीयौ परस्परम्।
विरुद्धं योधयेद्राजा विरुद्धप्रतिरोधिना॥
विद्यांकं समविद्येन तद्विधेनैव योधयेत्।
वैरांकौ वैरिणा सार्धं योधनीयौ महीभुजा॥
द्रोहांकं तादृशेनैव वध्येन सह योधयेत्।
पापिनं पापशुद्ध्यर्थं पापिना सह योधयेत्॥
दंडधारधृतं दंडमंकयोर्मध्यवर्तिनम्।
अपनीय ततो मुञ्चेद् द्वावंकौ युद्धलालसौ॥[4]

---

१ मानसो० ४।५।८५५.५७। २. वही ४।५।८५७.५८।
३. हरितांगरागकाः केचित्केचित्पीतांगरागिणः।
... ...
त्रिबिन्दुं बिन्दुमालं च त्रिशूलं मंडलाकृतिः।
... ...
... ...
पीतलोहितपट्टैश्च शोभिताश्चावलम्बने॥ वही ४।५।८५९-८६३।
४. वही ४।५।८६५-८६९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार आठों प्रकार के अंकों को उनके विरोधी अंकों के साथ समान अस्त्र-शस्त्र अथवा दण्ड देकर राजा दोनों को परस्पर युद्ध करने की आज्ञा देता था।

इन दोनों अंकों के पारस्परिक युद्ध का बड़ा ही विकराल एवं भयानक वर्णन हुआ है। दोनों ही अंक परस्पर लड़ते-लड़ते क्रुद्ध होकर एक दूसरे को नोचते, खोचते, मारते, भगाते तथा शस्त्र प्रहार करते थे। किसी के सभी अंग रुधिर से सन जाते थे, किसी की अँतड़ियाँ निकल आती थीं, किसी के अंग कट-कट कर गिर जाते थे। अन्त में युद्ध बन्द करने के लिए राजा उन दोनों के मध्य एक दंड लगवा देता था।[1]

इस प्रकार से राजा दोनों अंकों की ओर से निष्पक्ष होकर दोनों में युद्ध करवाता था। जो अपने विरोधी अंक को मार डालता था उसे तो ईश्वरप्रदत्त विजय प्राप्त होती थी। दोनों अंकों में जो अपनी की हुई किसी विशेष प्रतिज्ञा का पालन करता था उसे राजा स्वयं अत्यधिक वस्त्र, कांचन, भूषण, ग्राम, अश्व, निष्क तथा वृत्ति का दान कर उसे प्रसन्न कर उसे विजयी होने की घोषणा करता था।[2] युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए अंक के परिवार के रक्षणार्थ तथा उसकी क्रिया के लिए बहुत-सा सोना दया के रूप में दान करता था। इस प्रकार वह दिन का शेष समय व्यतीत करता था—

मृतानां बन्धुरक्षार्थं परलोकक्रियाकृते।
कृपादानं प्रदातव्यं काञ्चनं भूरि भूभुजा।
एवमुक्तविनोदेन दिनशेषं समाप्य च॥[3]

यह प्रकरण पूर्णरूप से सोमेश्वर के राज्य में दिये जानेवाले निष्पक्ष न्याय की ओर संकेत करता है। उनके राज्य में जो भी वैमनस्य की बात व्यक्तियों के बीच उत्पन्न होती थी वे व्यक्ति तुरन्त ही राजा के समीप अपनी-अपनी शिकायत लेकर जाते थे। राजा उन्हें सुनता था और निष्पक्ष होकर उन्हें परस्पर युद्ध करने का आदेश देता। राज्य में किसी को अपने आप परस्पर हत्या करने का अधिकार न था। उन दोनों का निर्णय स्वयं सम्पूर्ण सभा के समक्ष हो जाता

१. मुंच मुंचेति जल्पन्तौ खोंचखोंचेतिभाषिणौ।
स्खलद्गतियुतौ वीरौ क्षिपन्तौ पुरतः सह॥
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ लम्बमानान्त्रभालिकौ।
क्षुरिकायां विभिन्नायां पतितायां करादपि॥
विच्छिन्नशस्त्रबाहौ च चरणे परिखंडिते।
निवारणार्थं युद्धस्य दंडं मध्ये निवेशयेत्। मानसो० ४।५।८७१-७७३।
२. वही ४।५।८७४-८७६। ३. वही ४।५।८७६, ८७७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था। इससे राजा के ऊपर भी किसी प्रकार का लांछन नहीं लगता था और वे दोनों भी परस्पर युद्ध कर अपना निर्णय स्वयं कर लेते थे। इस अंक-युद्ध द्वारा किसी भी बात में बहुत से व्यक्तियों को फंसने, गवाही देने अथवा दंड मिलने का प्रश्न नहीं उठता था। युद्धका विषय केवल दो अंकों तक ही सीमित रहता था। सीमित संख्या में युद्ध कर्ताओं को अंक संज्ञा से अभिहित किया जाता था। इस प्रकार का प्रसंग अन्य किसी भी स्थान में नहीं प्राप्त होता। यह सोमेश्वर कालीन राज्य की ही विशेषता थी।

मल्लविनोद

अंक विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने मल्ल विनोद का वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि मल्लों के युद्ध द्वारा भी राजा का बड़ा मनोरञ्जन होता था। सोमेश्वर ने इस प्रकरण में मल्लों के प्रकार, उनके भोजन, उनको दी जाने वाली दांव-पेंच तथा चालों की शिक्षा तथा उनके पारस्परिक युद्धादि के विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सर्वप्रथम उन्होंने ज्येष्ठिक, अन्तर्ज्येष्ठिक तथा गोवल इन तीन प्रकार के मल्लों का उल्लेख किया है।[१] ज्येष्ठिक उत्तम प्रकार का मल्ल होता था, क्योंकि उसमें अधिक मात्रा में शारीरिक बल तथा गुण होते थे। अन्तर्ज्येष्ठिक मल्ल में इन गुणों की न्यूनता होती थी इस कारण यह मध्यम प्रकार का मल्ल होता था।[२] गोवल में सभी गुणों एवं शक्ति की अधिक न्यूनता होने के कारण यह कनिष्ठ प्रकार का मल्ल होता था—

ततोऽपि हीयमानश्चेदेतैरेव गुणैस्तथा।
गोवल्लो नाम मल्लोऽसौ नियुद्धे वेगवान्वरः॥[३]

ये सभी मल्ल शारीरिक शक्ति के अनुसार ही युद्ध करते थे। इसी कारण केवल बत्तीस वर्ष की अवधि ही इनके युद्ध के लिए उपयुक्त बतलाई गई :—

द्वात्रिंशतावत्सराणां पाल्यंशो देशविश्रुतः॥[४]

आयु के अनुसार भी अनेक प्रकार के मल्लों का उल्लेख मानसोल्लास में

---

१. मल्लास्तु त्रिविधा ज्ञेया उत्तमो मध्यमोऽधमः।
उत्तमो ज्येष्ठिको नाम मध्यमोऽन्तरज्येष्ठिकः।
कनिष्ठो गोवलो ज्ञेयः कायप्राणगुणोत्तरान्॥ मानसो० ४।६।८७९, ८८०

२. ज्येष्ठिकः कथ्यते मल्लः प्राणविद्याधिकोऽपि वा।
अर्धेन ज्येष्ठिमल्लस्य कायप्राणगुणैस्तु यः।
हीयमानो भवेन्मल्लो नाम्ना सोऽन्तरज्येष्ठिकः॥ वही ४।६।८८३ ८८४

३. वही ४।६।८८४.८८५। ४. वही ४।६।८८६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुआ है। बीस वर्ष की आयु वाला मल्ल भविष्णु, तीस वर्ष का मल्ल प्ररूढ कहलाता था :—

> आविंशतेर्वत्सरेभ्यो भविष्णुर्मल्ल उच्यते ।
> तत ऊर्ध्वं त्रिंशदब्दात्प्ररूढः परिकीर्तितः ॥[1]

भविष्णु प्रकार का मल्ल अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकार का मल्ल होता था और वह प्रारम्भ से ही वेगवान्, शक्तिशाली, सरस तथा महान्काय होता था।[2]

राजा इन्हीं श्रेष्ठ प्रकार के मल्लों को अपना मनोरंजन करने के लिये अपने यहां रखता था और उनको पूर्णरूप से पुष्ट करने के लिये उन्हें पौष्टिक पदार्थों को दिलवाता था। इसके साथ ही साथ वह यह शर्त उनके समक्ष रखता था कि बत्तीस वर्ष की आयु के पश्चात् भी समय पड़ने पर उन्हें युद्ध करना पड़ेगा।[3] इस शर्त से विदित होता है कि सम्भवतः राजा मल्लविनोद का बड़ा प्रेमी था और इसी कारण वह उनके स्वास्थ्य का विशेष रूप से ध्यान रखता था। इन भविष्णु तथा प्ररूढ मल्लों को अत्यन्त पौष्टिक भोजन द्वारा पुष्ट किया जाता था और उन्हें माष (उरद की दाल), मांस, दही तथा दुग्ध-मिश्रित पिष्ट खाने को दिया जाता था।[4] इसके अतिरिक्त उन्हें स्त्रियों के दर्शन, स्पर्श, संलाप तथा संगम से दूर रखा जाता था, जिससे वे अपनी शक्ति को नष्ट न कर सकें। सभी मल्लों में भविष्णु मल्ल का विशेष रूप से यत्नपूर्वक पालन किया जाता था और उसकी शारीरिक शक्ति की यत्नपूर्वक रक्षा की जाती थी।[5] इनकी रक्षा के लिये इन्हें एक अध्यक्ष के निरीक्षण में रखा जाता था। यह अध्यक्ष सदैव इनके साथ रहता था और एक दिन बीच में छोड़कर उनका गोवलादि मल्लों के साथ युद्ध करवाता था, जिससे वे थकित न हों। इन सभी मल्लों को अलग-अलग गृहों में रखा जाता था।[6]

इन मल्लों का अध्यक्ष इन्हें सब प्रकार के संस्थानों (दावों) तथा सब प्रकार के विज्ञानों को प्रयोग करने का नियम बतलाता था। सोमेश्वर ने अघाङ्घ्रक[7] (एक मल्ल के प्रोत्तान होकर गिर पड़ने पर कांख को उलटपुलट कर अपने पार्श्व द्वारा अन्य के कपोल को दबाना), करवल[8] (मल्ल के प्रोत्तान

---

१. मानसो० ४।६।८८१। २. वही ४।६।८८५।

३. पूर्णासु तासु पालीषु वर्तयिष्ये नियोधनम्।
एवं समादिशन्मल्लान् सर्वान् क्षोणिपतिः स्वयं ॥ वही ४।६।८८७।

४. वही ४।६।८८८-९०। ५. वही ४।६।८९०.९१।

६. वही ४।६।८९१,९२। ७. वही ४।४।८९४.९५।

८. वही ४।६।८९७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होकर गिर पड़ने पर कांख को आगे करके सिर पह कूर्मासन में बैठ कर उसे पीड़ित करे अथवा अपने दोनों चरणों से उसे गिराने के लिये उसके उदर से उच्च स्थान पर आघात करे, यह करवल स्थान है), जठरस्थान[1] (स्वयं गिर कर पैरों से अन्य मल्ल के मध्य भाग पर आघात करना) तथा पृष्ठस्थान[2] (अन्य मल्ल के पराङ्मुख होकर स्थित होने पर अथवा गिरने पर पार्श्वों द्वारा कक्ष का लंघन करे) इन चार संस्थानों का वर्णन किया है। इनका उचित रूप से दृढ़ अभ्यास मल्ल को कराया जाता था :—

संस्थानानि च चत्वारि कल्पयेयुर्दृढानि च।[3]

इन संस्थानों के प्रयोग के पश्चात् उन्हें विज्ञानों का अभ्यास कराया जाता था। सोमेश्वर ने विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी है :

स्वरूपेण तथा नाम्ना विस्तरेण यथागमम्।
अर्धाङ्गस्थानकस्थेन मल्लेन स्थूलवर्ष्मणा॥
पीडनान्मुखदेशस्य विज्ञानं स्यात्तदेव तु।[4]

विज्ञान अनेक प्रकार के होते हैं। विभिन्न अंगों एवं स्थितियों में विभिन्न प्रकार के विज्ञानों का प्रयोग होता है। इन्हीं को मल्लों द्वारा पेंच भी कहा जाता है। सोमेश्वर ने ग्यारह प्रकार के शिरस्थानक विज्ञानों का उल्लेख किया है :—

१. पादमोटन[5]—अर्धांगक स्थान में स्थित होकर बाहर पैर फेंके।

२. बाहुमोटन[6]—शिरस्थान में स्थित हो कर शिर को पकड़ कर बाहुओं को नीचे कर शरीर को दबाना।

३. बाहुसी[7]—हाथों को फैला कर पाश में बांध कर दबाना।

४. गुणाल[8]—जंघाओं द्वारा भुजाओं को दबा कर शिर पर प्रहार कर कक्ष को बाहर खींचना। यह प्राणघातक विज्ञान होता है।

५. उत्तरढोकर[9]—शिर को भुजाओं द्वारा पकड़ कर एक दूसरे की जंघा में जंघा भिड़ा कर गिराना।

६. पार्ष्णिक[10]—शिर पर बैठ कर सक्थियुग्म को पकड़ कर कक्ष में दबाना।

---

१. वही ४।६।८९८।
२. वही ४।६।८९८.९९।
३. वही ४।६।८९३।
४. वही ४।६।९००.१।
५. मानसो० ४।६।९०१.२।
६. वही ४।६।९०२.३।
७. वही ४।६।९०२.३।
८. वही ४।६।९०४.५।
९. वही ४।६।९०५.६।
१०. वही ४।६।९०७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

७. [1]पट्टिश—घुटनों के उत्तान हो जाने पर कटियन्त्र द्वारा दबाना।

८. छुड्डकी[2]—बाहु की सन्धि अर्थात् हाथों को मिला कर खूब जोर से दबाना।

९. अन्तश्छुड्डकी[3]—बाहुओं से अर्धभाग में स्थापित कर पूर्ववत् जोर से दबाना।

१०. ढोकर[4]—मन्या को कक्ष में दबा कर भुजाओं को एक दूसरे से मिला कर गले को हस्तप्रकोष्ठों द्वारा पीड़ित करना।

११. तुर्याष्टि[5]—अर्धागक स्थान में स्थित हो कर भुजाओं से मध्य प्रदेश को ऊँचा कर पार्श्वों द्वारा कठ को तथा अपनी जंघाओं द्वारा कक्ष को दबाना, यह शिरस्थानक विज्ञान है।

इसके अतिरिक्त करवल स्थान में स्थित होकर दूसरे मल्ल के मुख को अपने उदर द्वारा दबा दे जिससे उसकी सांस रुक जाय। इसे पादमुद्दवड[6] विज्ञान कहते हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित अन्य विज्ञानों का उल्लेख मिलता है[7]—

सुखपट्टक—हृदय द्वारा मुख को दबाना।

मुस्तिक—दोनो हाथों से मुख को दबाना।

कुट्टान—करवल स्थान में स्थित होकर मणिवंध द्वारा दूसरे के शरीर को दबाना।

चरणपट्टिश—भुजाओं द्वारा मध्य भाग को पकड़ कर जंघा को दबा..।

लोलपादक—जंघाओं द्वारा उरुओं को दबाना।

सन्देश—बाहुओं को बाहर फैला कर दबाना।

टोकार—जानुसंधियाँ को दबाकर कक्ष को हाथों द्वारा बाहर खींचना।

जवलशंख—उरुओं द्वारा मध्य प्रदेश को दबाकर कक्ष में पैरों को बांध कर हाथों द्वारा जंघा को पकड़ कर दबाना।

कक्षवड—एक दूसरे के पैरों को दबाना।

सुमुखी—अंगों को संकुचित कर मध्यप्रदेश में स्थापित हो कर अन्य मल्ल के सब अंगों को पीड़ित करना।

---

१. मानसो० ४।६।९०७.८।
२. वही ४।६।९०८.९।
३. वही ४।६।९०९.१०।
४. वही ४।६।९१०.१२।
५. वही ४।६।९१२.१३।
६. मानसो० ४।६।९१५ पादमुद्दवडं नाम्ना विज्ञानं श्वासरोधनम्।
७. वही ४।६।९१५.३३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ढांगुलि—उरुओं से मध्य प्रदेश को पीड़ित कर न्या को कक्ष में दबा कर कण्ठ को दबाना।

गरुडपक्ष—कर बन्धनों द्वारा मन्या को दबा कर शिर को नीचे कर उरुओं से मध्य प्रदेश को दबाना।

वेष्टन—पृष्ठ के बल मल्ल के लेटने पर पृष्ठभाग को भुजाओं के द्वारा खींचना।

अंगवलन—जानुसन्धियों को जंघाओं में डाल कर मुख को नीचा कर वक्षःस्थल द्वारा उसके शरीर को दबाना।

सदुपवेदन—मन्या को कक्ष के अन्दर डाल कर हाथी को गरुडपक्ष की भांति फैला कर मध्य प्रदेश को दबाये।

चतुरंगुलम्—अगुष्ठ को छोड़ कर अन्य चारों अंगुलियों को दबाना।

मुद्गक—एक दूसरे की भुजाओं में भुजाओं को बांधना।

डोक्कर—हाथों पैरों तथा शिर को पैरों द्वारा दबाना।

इन स्थानक तथा विज्ञानों के प्रयोग के अभ्यास के साथ ही साथ मल्लों को दांव-पेचों से अपनी रक्षा करने के उपायों का जानना भी आवश्यक है। तभी वह युद्ध में सफल हो सकते हैं। इसी कारण सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के बचने के उपायों का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ यदि एक मल्ल छुडिका विज्ञान का प्रयोग करे तो दूसरा उसके मुख के ऊपर जंघा को डाल कर अपने को हटा ले, बाहुमोटन के विज्ञान में हाथों को मिला कर और दबाकर अपने को छुड़ा ले। इसी प्रकार अनेक प्रकार के उपायों एवं चालों द्वारा अपने को बचाने का आदेश मल्ल को दिया है।[२]

मल्ल का अध्यक्ष इन सभी प्रकार के दांव-पेचों एवं चालों का ज्ञान मल्ल को करवाता था किन्तु वह इन सभी का उचित रूप से प्रयोग तभी कर सकता था जब उसमें शारीरिक बल की वृद्धि हो। इस कारण उससे अनेक प्रकार के श्रम कराये जाते थे। सोमेश्वर ने मल्ल के लिये पांच प्रकार के श्रमों को करने का आदेश दिया है। ज्येष्ठिक मल्ल को विशेष रूप से प्रातःकाल उठकर कोई अत्यन्त भारी वस्तु उठानी चाहिये यह भारश्रम[3] कहलाता था। इसका अभ्यास मल्ल प्रातःकाल ही करता था।[४] इस प्रकार की क्रिया आजकल भी अपने शरीर के वजन को बढ़ाने के लिये पहलवान लोग पहिया लगी हुई बहुत भारी

१. मानसो० ४।६।९१५-९३३। २. वही ४।६।९३४-९४१।

३. वही ४।६।९४२-९४५।

४. स च प्रभाते कर्त्तव्यो विशानोपायसिद्धितः ।। मानसो० ४।६।९४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवं मोटी शलाका को उठाते हैं। इसे Weight lifting कहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन मल्ल कोस अथवा दो कोस तक बाहर टहलने जाता था। इसे भ्रमण श्रम कहते थे।[१] पुष्करी, तडाग अथवा नदी में कण्ठ तक के जल में जाकर अपने शरीर को पुष्ट करता था। यह सलिलश्रम[२] कहलाता था। सायंकाल के समय अपने हाथों को जोर से एक दूसरे पर दबाकर तथा हाथों द्वारा अपनी भुजाओं को जोर से पकड़ता था। इसे बाहुपेल्लण[3] कहते थे। इससे उसके हाथों द्वारा किसी वस्तु को पकड़ने की शक्ति की वृद्धि होती थी। इसके अतिरिक्त चंदन के द्वारा निर्मित अत्यन्त मज़बूत, मोटे तथा चिकने स्तम्भ में मल्ल अपने शरीर, बाहु एवं वक्षःस्थल आदि को घिसकर अपने शरीर के अंगों को पुष्ट करता था यह स्तम्भ श्रम कहलाता था। आजकल पहलवान स्तम्भ द्वारा अपने शरीर का घर्षण कर अपने अंगों को पुष्ट करते हैं, उस स्तम्भ को मल्ल स्तम्भ कहते हैं।

इन श्रमों द्वारा पूर्ण रूप से हृष्ट पुष्ट हो जाने पर सभी मल्ल अपने अध्यक्ष के साथ आ कर राजा से कहते थे कि हम लोगों की अवधि पूर्ण हो गई है और हम लोगों ने श्रम करके अपने शरीर को खूब पुष्ट बना लिया है। अब आप हमें लड़ाइये—

विज्ञापेयुः महीपालं मल्लाध्यक्षपुरःसराः।
पाल्यः पूर्णा इहास्माकं पोषिता च निजा तनुः॥[४]
जितश्रमा वयं जाता नियोधय महीपते।[५]

इस प्रकार की उनकी प्रार्थना को सुन कर राजा उनके गुणों पर विचार करता था। गुणों के अनुसार सोमेश्वर ने बारह प्रकार के मल्लों का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ महान् शरीर वाला मल्ल भारी, अत्यन्त बली मल्ल प्राणी, सुशिक्षित मल्ल ऊर्जल, अपने स्थान पर स्थित रहने वाला मल्ल संस्थाननिरत तथा युद्ध में न थकने वाला मल्ल बहुयोधी कहलाता था।[६] विज्ञान के द्वारा पकड़े

१. मानसो० ४।६।९४५.९४६। २. वही ४।६।०४७.९४८।
३. वही ४।६।९४८.९४९। ४. वही ४।६।९४९.९४२।
५. वही ४।६।९५३.९५४।
६. महाकायस्तु यो मल्लो भारी स परिकीर्तितः।
बलाढ्यः कथ्यते प्राणी ऊर्ज्वलश्च सुशिक्षितः॥
संस्थाननिरतो ज्ञेयो यः स्थाने सुस्थितासनः।
श्रमं न याति यो युद्धे बहुयोधी स कथ्यते॥
मानसो० ४।६।९५५.५७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जाने पर भी जो न बोलता है और न छोड़ता है तथा नीचे गिर पड़ता है वह सम्बद्ध, बल को सहन करने वाला बलनेसह, विज्ञान की रक्षा करने वाला रक्षणक, शीघ्रता से प्रयुक्त हुये विज्ञान को शीघ्र ही नष्ट कर देने वाला ढकण, दूसरे की क्रियाओं की त्रुटि देख कर अपना उपाय चलाने वाला दर्शन, उचक कर कण्ठ में चिपट जाने वाला लगन तथा मर्यादा की रक्षा करने वाला मल्ल नियत होता है।[1] इन सभी प्रकार के गुणों के अनुसार प्रत्येक मल्ल को सर्वप्रथम समझना राजा के लिये आवश्यक है क्योंकि समान गुणों वाले मल्लों को ही परस्पर लड़वाना चाहिये—

भैदेर्द्वादशभिर्युक्तान्मिथस्तेषां नियोधने ॥[2]

राजा के सामने आकर वे दोनों ही समान गुण वाले मल्ल परस्पर हाथ मिलाते थे। यह प्रथा आजकल भी है। दो मल्ल जब युद्ध करते हैं तो सबसे पहले भूमि की मिट्टी हाथ में लगाकर ताल ठोंक कर हाथ मिलाकर युद्ध प्रारम्भ करते हैं। वे दोनों मल्ल राजा के समक्ष अपने-अपने जोशपूर्ण वचन एक दूसरे के प्रति बोलते थे। कोई कहता था कि मैं अपनी शक्ति से दो मल्लों को गिरा दूंगा, कोई ज्येष्ठिक मल्ल कहता था मैं तीन मल्लों को मार डालूंगा, कोई कहता था मैं एक ही विज्ञान के प्रयोग द्वारा इसे गिरा दूंगा। इस प्रकार की उनके द्वारा कही हुई प्रतिज्ञाओं को राजा ध्यानपूर्वक सुनता था।[5] और करस्फालन द्वारा युद्ध को निश्चित कर मल्ल चले जाते थे। उस दिन रात्रि में उनके शरीर पर खूब तैल मर्दन किया जाता था।[6]

राजा उसी समय अपने गृहाध्यक्ष को बुलाता था जिसे महत्तर कहते थे। राजा उसे अखाड़े के बनाने का आदेश देता था क्योंकि इसी में मल्लों का युद्ध कराया जाता था। यह अखाड़ा सोलह स्तम्भों से पूर्ण, पश्चिम भाग की ओर

---

१. मानसो० ४।६।६५७–९६२। २. वही ४।६।९५५।

३. नियुद्धे योजयेद्राजा करास्फालनपूर्वकम् ॥ वही ४।६।९६३।

४. घटिकाभ्यन्तरे देव मोटयेत्प्रतिरोधिनम्।
मल्लद्वयं मोटयामि जल्पत्येव तथापरः ॥
मल्लत्रयं भिनद्मीति वदेदन्योऽपि ज्येष्ठकः।
विज्ञानेनाहमेकेन पातयामीति भाषते ॥
मानसो० ४।६।९६४–६५।

५. प्रतिज्ञां ते च जल्पन्ति शृणुयात्तां नराधिपः ॥
वही ४।५।९६३।

६. वही ४।६।९६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विस्तृत एवं चौकोर तथा एक ऊँची डेढ हाथ की वेदिका से युक्त होता था। उस वेदिका की आग्नेय दिशा में श्रीकृष्ण भगवान् का (श्रीकृष्ण का मल्ल रूप अत्यन्त पूजनीय है) मण्डप बनता था। वेदिका के अगले भाग को ओर दस हाथ विस्तृत तथा तीस हाथ परीणाह के दो गड्ढे बनते थे। उन्हें ग्राम की मुलायम मिट्टी से पूरा जाता था। उस मिट्टी को किंचित् जल से गीला किया जाता था और फिर उसे कुदाल द्वारा खोदा जाता था। तब उस मिट्टी के कंकणों को दूर करने के लिये उसे चलनी द्वारा छाना जाता था। तब मिट्टी चिकनी, कुछ गीली तथा शुद्ध बनाई जाती थी। इस प्रकार के अखाड़े का निर्माण महत्तर करता था और प्रातःकाल वह राजा को अखाड़े के तैयार हो जाने की सूचना देता था।[1]

राजा तब मल्लाध्यक्ष को बुलाता था[2] और मल्लों को अखाड़े में लाने का आदेश देकर[3] स्वयं भोजन से निवृत्त हो कर सायंकाल के समय श्रृंगार कर अपने पुत्रों, मित्रों तथा अंतःपुर की स्त्रियों समेत अखाड़े में आकर वेदिका पर बैठता था और सब के बैठ जाने का निरीक्षण करता था।[4]

अखाड़े में आने के पूर्व राजा मल्लों के श्रृंगार करने के लिए श्रृंगार की सामग्री, तूर्य, तथा चढ़ने के लिये हस्तिनियों को भेजता था। वे मल्ल अपने सभी अंगों में चंदन का लेप कर, आभूषणों से सुसज्जित होकर, थोड़ा दधि-भात खाकर, अक्षत तथा दूब हाथ में लेकर हथिनियों पर चढ़ कर अखाड़े में आते थे। अखाड़े में उचित रूप से सब के बैठ जाने पर जो पूर्व में करस्फालन कर चुके थे ऐसे उन मल्लों को बुलाकर उन्हें मुक्त कर परस्पर लड़ने की आज्ञा देता था।[5]

दोनों मल्लों के युद्ध का सोमेश्वर ने बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया है। वे दोनों मल्ल कच्छ को कसकर, जूड़ा बांधकर, परस्पर एक दूसरे की ओर हाथ फैलाकर युद्ध प्रारम्भ करते थे—

चल्लणं (वल्लभं) परिधास्यं च दृढकच्छां विवेष्ट्य च ।
जूडकं वंधयित्वा तु भुजावास्फाल्य सम्मुखौ ॥
नियुध्येतामुभौ मल्लौ रोधने प्रतिरोधने ॥[6]

---

१. मानसो० ४।६।९६७–९७३ ।

२. "ततःकौतुकसंयुक्तो मल्लाध्यक्षं समादिशेत् । वही ४।६।९७४ ।

३. "आवाह्याखिलान् मल्लान् नियुद्धायेति भूपतिः" ।
वही ४।६।९७५ ।

४. वही ४।६।९८०–९८३ । ५. वही ४।६।९८३–९८४ ।

६. वही ४।६।९८४,९८५ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तत्पश्चात् वे दोनो मल्ल प्रकोष्ठ धारण, मणिवंध को छुड़ाकर पातन तथा अवपातन, बाहुसंघट्टन, पादघट्टन, पीडन, लगन, भ्रमण, फूत्कार आदि अनेक स्थान, विज्ञान एवं वंचनोपायों द्वारा लड़ते थे[1] और लड़ते-लड़ते वे स्वेद तथा कीचड़ से पूर्ण हो जाते थे तथा व्याकुल हो कर फूत्कार छोड़ने लगते थे—

मुचन्तःश्वासफूत्कारं दृश्यन्ते ते समाकुलाः।[2]

जब दोनो ही मल्ल समान रूप से व्याकुल हुये दिखाई पड़ते थे तो दोनों ही समान समझे जाते थे[3] किन्तु जो थकित नहीं होता था अथवा अपने प्रतिरोधी का कोई अंग तोड़ डालता था तब उसकी विशेष रूप से विजय समझी जाती थी—

अश्रमस्य जयं दद्यान्मोटनाच्च विशेषतः।
एवं नियोध्य तान् सर्वान् सजयान् भूरिकांचनैः॥[4]

मल्ल-युद्ध में परस्पर एक दूसरे के अंगों को तोड़ डालना यह दक्षिण में होने वाले मल्ल युद्ध की विशेषता है। सोमेश्वर दक्षिण का ही राजा था अतः यह पंक्ति उसके राज्य में होने वाले मल्ल-युद्ध को प्रदर्शित करती हैं। भारतवर्ष के उत्तरी प्रदेशों में केवल एक मल्ल को चित्त लिटा देने पर ही दूसरे मल्ल की विजय समझी जाती है। दक्षिण में मल्ल युद्ध अत्यन्त भीषण होता था।

मल्लों के विजय की घोषणा कर देने पर राजा उन्हें वस्त्र आभरणादि पारितोषिक के रूप में देता था और उन्हें विसर्जित करता था[5]। तब अपने सेवकों से घिरा हुआ राजा मल्लों द्वारा प्रदर्शित किए गये युद्ध की आलोचना करता था और तब अपने राज-मंदिर में प्रवेश करता था।

भारतवर्ष में मल्ल युद्ध के प्रसंग प्राचीन साहित्य में प्राप्त होते हैं। महाभारत तथा पुराणों में भी इस युद्ध का उल्लेख हुआ है। महाभारत में भीम अत्यन्त योधा मल्ल माने गये हैं। मत्स्य राजा की सभा में भीम का जीमूत नामक मल्ल के साथ युद्ध हुआ था।[6] युद्ध के समय मल्ल कच्छा अर्थात् लंगोट बाँधते थे। कच्छा बांधने का प्रसंग सोमेश्वर ने भी दिया है। इसके साथ ही साथ उन्होंने जूड़ा बांधने का भी विधान बताया है। इसके अतिरिक्त कृतदाव, प्रतिकृत, सन्निपात, अवधूत, प्रमाथ, प्रच्यावन, उन्मथन, वराहोद्धूत-

---

१. मानसो० ४।६।९८६-९८९। २. वही ४।६।९९१।
३. द्वावप्येवंविधौ दृष्ट्वा समीकुर्यान्नृपेश्वरः। वही ४।६।९९१।
४. वही ४।६।९९२। ५. वही ४।६।९९३।
६. महा० विराट पर्व अध्याय १२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निस्वन, तलाव्य, वज्र, प्रहृति, शवघट्टन, प्रकर्षण, अभ्याकर्षण तथा विकर्षण आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख महाभारत में हुआ है। यह सभी मल्ल युद्ध में प्रयोग किए जाने वाले विज्ञान है। इनमें से शवघट्टन (जंघाओं से रगेदना), प्रहृति (फैली अगुलियों द्वारा मारना), तथा तलाव्य (अंगुष्ठ तथा तर्जनी को छोड़कर तीन अङ्गुलियों द्वारा प्रहार करना), आदि का ही सोमेश्वर ने क्रमशः चरणपट्टिश,[1] (पैरों में पैर मिला कर मारना), मुस्तिक[2] (फैले हाथों द्वारा मुंह पर मारना), तथा चतुरंगुल[3] (एक, दो, तीन, अथवा चार अङ्गुलियों से मारना), नाम दिया है। इसके साथ ही साथ सोमेश्वर ने भी मल्ल युद्ध में सन्निपात, अवधूत आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है[4]।

श्रीमद्‌भागवत पुराण में भी परिभ्रामण, विक्षेप, परिरम्भ, अवपातन, उत्सर्पण, उन्नयन, स्थापन तथा चालन आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख हुआ है—

परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः ।
उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥
उत्थापनैरुन्ननैश्चालनैः स्थापनैरपि ।
परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥[5]

इन सभी दांव-पेंचों के द्वारा श्रीकृष्ण ने कंस की मल्ल शाला में चाणूर नामक मल्ल को पराजित किया था। इन दांव पेंचों का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे हुआ है[6]। इनमें से सोमेश्वर ने भी परिभ्रामण,[7] अन्योन्यप्रतिरोध,[8] उन्नयन,[9] उत्सर्पण, अपसर्पण[10] आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। श्रीमद्‌भागवत पुराण में कंश की मल्लशाला का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। इनमें सभी मल्ल आकर पूजा करते थे। मल्लशाला मल्ल-युद्ध के समय मालाओं तथा

---

१. मानसो० ४।६।९१८। २. वही ४।६।९१६।
३. एकद्वित्र्यंगुलीं मुक्त्वा ··· ··· ··· चतुरंगुलम् ॥
वही ४।६।९३०,९३१।
४. सन्निपातावधूतैश्च ··· ··· ··· ॥ वही ४।६।९८९।
५. श्रीमद्‌भा० पु० १०।४४।४,५। ६. श्रीमद्भा० १०।४४।८.५०।
७. मानसो० ४।६।९८८। ८. रोधने प्रतिरोधने ··· ··· ॥
वही ४।६।९८५।
९. बाहुभ्यामुन्नयन् ··· ··· ॥ वही ४।६।९१२।
१०. आश्लेषैः पीडनैश्चैव विश्लेषैरपसर्पणैः ॥ वही ४।६।९८७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पताकाओं द्वारा सजाई जाती थी। नगर के सभी व्यक्ति आकर मल्लों का युद्ध देखते थे[१] और उस मल्ल-शाला में मल्ल-क्रीडा महोत्सव होता था—

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यःसमुत्थिते।
कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम्॥
आनर्चुः पुरुषा रंगतूर्यभेर्यश्च जघ्निरे।
मंचाश्चालंकृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः॥[२]

पुराणों में श्रीकृष्ण का मल्ल रूप अत्यन्त पूजनीय माना गया है[१]। इसी कारण सोमेश्वर ने भी मल्लशाला में श्रीकृष्ण का मण्डप बनवाने का आदेश दिया है। वर्तमान काल में श्रीकृष्ण के स्थान पर हनुमान् जी की मूर्ति स्थापित की जाती है। वात्स्यायन के समय में भी मल्लों के युद्ध को देख कर नागरक अपना मनोरंजन करता था। सभी नागरक मल्ल युद्ध देखने के प्रेमी थे।[३]

बौद्ध साहित्य में बाहुयुद्ध तथा मुष्टियुद्ध नाम की कलाओं का उल्लेख हुआ है। सम्भवः 'बाहुजुद्धम्' तथा 'मुट्ठिजुद्धम्' आदि शब्द मल्ल युद्ध (कुश्ती) के लिये ही प्रयुक्त हुए हैं[४]। ललितविस्तर में भी लिपि, मुद्रा, संख्या, धनुर्वेद आदि कलाओं के साथ मल्ल युद्ध का उलेख हुआ है[५]। शुक्र ने भी 'संध्याघातामृष्टिभेदैः मल्लयुद्धम्'[६] कह कर अपने समय में होने वाले मल्ल युद्ध की ओर संकेत किया है। वर्तमान काल में भी इस युद्ध की प्रथा है जिसे Wrestling कहते हैं और गामा आदि मल्ल प्रसिद्ध भी हैं।

समवाय सुत्त में भी दो प्राणियों के द्वारा किये जाने वाले विजय पराजय वाले युद्ध को 'सजीवम्' नाम दिया है[७]। वात्स्यायन ने भी मन द्वारा निर्दिष्ट समाह्वय को सजीव द्यूत के अन्तर्गत माना है[८]। दशकुमारचरित में भी इसी प्रकार का प्रसंग प्राप्त होता है।[९] मनु ने प्राणियों के युद्ध को समाह्वय नाम दिया है।[१०]

---

१. श्रीमद्भा० १०।४२।३४-३८। २. वही १०।४२।३२-३३।
३. मल्लयोर्युद्धे—कामसूत्र सू० ५७ पृ० ८४।
४. ए० वेंकटसुब्रिया 'दि कलाज़' सूची १ ललितविस्तार पृ० १७८।
५. वही सूची २ ललितविस्तार पृ० १७८।
६. वही सूची ८ शुक्रनीतिसार।
७. वही सूची १।
८. वात्स्यायन कामसूत्र पृ० ३१।
९. दशकुमारचरित १ ४२।२। १०. मनु० ९।२२३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुक्कुट विनोद

मल्ल विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने ताम्रचूडविनोद का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। मुर्गे द्वारा प्राचीन काल में राजा लोग विशेष रूप से अपना मनोरंजन करते थे। सर्वप्रथम इस प्रकरण में सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के मुर्गों के शरीर के लक्षणों का वर्णन कर उनकी अनेक प्रकार की जातियों का उल्लेख किया है। श्वेत पाद, पांडु वर्ण नखों वाला, श्वेत आंखों वाला, शंख ध्वनि के सदृश नाद करने वाला, तीक्ष्ण अग्रभाग से युक्त, कम्बु ग्रन्थि के सदृश शीर्ष वाला मुर्गा शंख जाति का होता है।[१] पांडु वर्ण की छाया से युक्त चरण वाला, दीर्घ तथा कृश अंगुलियों वाला मुर्गा कुक्कुट जाति का होता है।[२] उन्नत, वृत्ताकार तथा श्वेत चरणों वाला, विशाल वक्षस्थल वाला युद्ध करने में शूरवीर मुर्गा अंशु जाति का होता है।[३] सूक्ष्म सार वाला, लाल पैरों वाला, श्वेत आंखों वाला, दीर्घ शब्द करने वाला मुर्गा नार जाति का होता है।[४] पीले चरणों वाला, श्वेत अथवा कृष्ण बिन्दुओं से युक्त, कांस्य वर्ण वाला कृष्ण नखों से युक्त तथा रक्त नेत्रों वाला काला अथवा चितकबरा मुर्गा कुक्कुट जाति का होता है।[५] श्यामल शक्ति वाला किंचित् पांडु वर्ण की रेखाओं से युक्त मुर्गा अतेग जाति का होता है।[६] कृष्ण वर्ण का, वक्र तुंड से युक्त, युद्ध में कुशल, दीर्घ अंगों वाला जोर का शब्द करने वाला मुर्गा श्रोणि होता है।[७] काले पैरों वाला कृष्ण दीर्घ पक्षों वाला, युद्ध में अपने सिर को बचाने वाला मुर्गा सर्प जाति का तथा हरित छाया से युक्त पैरों वाला, श्वेत आंखों वाला, बर्तुल आकार वाला मुर्गा कूर्म जाति का का होता है।[८]

इन अनेक प्रकार के मुर्गों की जातियों के वर्णन के पश्चात् मुर्गे के अंग प्रत्यंगों पर उगने वाले पिच्छों के नामों का सोमेश्वर ने उल्लेख किया है। कन्धरा पर उगने वाले पिच्छ केसर, त्रिकस्थान पर उगने वाले पिच्छ अन्तरक, पुच्छ में सिक्थ, भुज तथा शाखा आदि में उत्पन्न हुए पिच्छ महिला पिच्छ तथा उन्हीं पिच्छों के ऊर्ध्व भाग में उगने पर वे पुंपिच्छ तथा बाहर के स्थान में उगे हुए पिच्छ योषित्पिच्छ कहलाते हैं।[९] इसके अतिरिक्त निर्मांस पादतलों वाला, ह्रस्व चरण वाला, वृत्तआर तथा चिकना एवं गोल जंघाओं वाला,

---

१. मानसोल्लास ४।७।९९९–१००१।
२. वही ४।७।१००१–१००३। ३. वही ४।७।१००३,१००४।
४. वही ४।७।१००४,१००५। ५. वही ४।७।१००५–१००७।
६. वही ४।७।१००७,१००८। ७. वही ४।७।१००७–१००९।
८. वही ४।७।१०१०,१०११। ९. वही ४।७।१०११–१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किञ्चित् वक्रपादों वाला, विशाल क्रोड़ देश से युक्त, दीर्घ तथा मोटी गर्दन वाला, स्थूल शिर तथा छोटी आंखों वाला, सुन्दर शरीर वाला, घने तथा दीर्घ केसर वाला, उन्नत स्कन्ध, कर्कश पिच्छ, कूर्म के सदृश विस्तृत पृष्ठ प्रदेश तथा लघु महिला पिच्छ से युक्त मुर्गा श्रेष्ठ बतलाया गया है।[1] ऐसे सुन्दर एवं श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त मुर्गे को राजा को अपने यहां रखकर उचित प्रकार से पोषण करवाना चाहिए।[2]

सोमेश्वर देव ने मुर्गे का पालन-पोषण उसके जानने वालों द्वारा करवाने का आदेश दिया है और साथ ही साथ उसके भक्षण की वस्तुओं एवं पोषण के प्रकार पर भी प्रकाश डाला है। घृत तथा दधि से पूर्ण रसोदन को आंवले के बराबर के ग्रास बनाकर अंगुष्ठ तथा तर्जनी द्वारा उसे खिलावे। उसको शीतल जल पिलावे, मुख पर लवण युक्त मृत्तिका का लेप करे। उसको आलस्यरहित करने के लिए चंक्रमण करावे, रात्रि के शयन के लिए वास यष्टि बनाकर रात्रि को उसे वही पर सुलावे। मार्जारादि से उसकी रक्षा करे। इस प्रकार से राजा को कुक्कुट के युद्ध को जानने वाले व्यक्तियों द्वारा उसका पोषण करवाना चाहिए।[3]

सोमेश्वर ने मुर्गों का युद्ध करवाने के लिए आश्विन से फाल्गुन मास तक का समय बतलाया है क्योंकि ग्रीष्म ऋतु में उनके पंख फट जाते हैं और आषाढ़ में उत्पन्न होते हैं। अश्विन मास तक कोमल बने रहते हैं उसके पश्चात् दृढता को प्राप्त करते हैं।[4] अतः उसी समय के बाद से फाल्गुन तक जब तक उनके पंख न गिरे तब तक युद्ध करवाना चाहिए—

योधयेत्फाल्गुनं यावत्तत्र ऊर्ध्वं न योधयेत्।[5]

कुक्कुट युद्ध के विषय में सर्वप्रथम इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कौन सा मुर्गा विजयी होगा। इसे समझने के लिए सोमेश्वर ने मुर्गों की अनेक प्रकार की चेष्टाओं का वर्णन किया है। जो अपने पैरों के मध्य के स्थान को देखे तथा दक्षिण चरण से अपने पृष्ठ भाग को छुए, अपने दक्षिण चरण के अग्र भाग से कलंगी का स्पर्श करे अथवा नख के अग्र भाग से नासिका अथवा मस्तक को छुए, दोनों पंखों को समान रूप से फेंके, दक्षिण चरण से चले वह विजयी होता है।[6] इसके अतिरिक्त सोमेश्वर ने एक प्रकार के रति मंडल में

---

१. मानसो० ४।७।१०१४–२०।
२. वही ४।७।१०२१।
३. वही ४।७।१०२१-२९।
४. वही ४।७।१०९४,९५।
५. वही ४।७।१०९६।
६. वही ४।७।१०६७-७०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बने हुए कोष्ठों से सम्बन्धित चेष्टाओं द्वारा भी कुकुट को विजयी जानने का लक्षण बतलाया है।[१]

शनिवार की रात्रि को भूमि को धोकर, लीपकर ग्रन्थियों से नियत सूत्र के प्रमाण द्वारा एकादश मुष्टि का चौकोर मंडल बनावे। उसके उत्तर से दक्षिण की ओर तथा पूर्व पश्चिम की ओर दो दो रेखायें खींचे। इस प्रकार से नव कोष्ठों को बनाकर विभिन्न कोष्ठों में विभिन्न देवताओं की स्थिति करावे। ।मध्य के कोष्ठ में ब्रह्मा की, प्राच्य दिशा के कोष्ठ में इन्द्र की, आग्नेयक कोष्ठ में वह्नि की, दक्षिण के कोष्ठ में यम की, वायव्य दिशा के कोष्ठ में वायु की, उत्तर दिशा में मैख की, ईशान कोण में ईश की स्थापना करावे।[२] प्राची दिशा के बाहर सूर्य के सदृश मंडलाकार तथा अर्ध चंद्र के सदृश मंडल बनाकर दक्षिण दिशा की ओर क्षुरिका से शक्र का कोष्ठ बनावे।[३] इसी प्रकार से और अनेक प्रकार के कोष्ठों का निर्माण कर अन्य देवताओं की स्थापना करने का आदेश दिया गया है।[४] वरुण के कोष्ठ के पश्चिम की ओर एक त्रिकोण बनाकर उसमें कुकुट के दो पैर बनावे।[५] यह रति मंडल अत्यन्त पवित्रस्थान में बनता था और उन्हीं कोष्ठों के समीप आचार्य लोग बैठकर इन सभी कोष्ठों से सम्बन्धित देवताओं की स्तुति के लिए मंत्र पढ़ते थे।[६]

इसके पश्चात् शुभ चेष्टाओं को प्रकट करने वाले कुक्कुट को युद्ध के लिए चुनना चाहिए। सोमेश्वर ने दो प्रकार से कुक्कुट का युद्ध करने का आदेश दिया है :

(१) रति मंडल में कुक्कुटों को स्थापित करके।

(२) खलक में स्थापित कर के।

(१) रतिमंडल द्वारा—कुक्कुटों को पूर्ण रूप से पुष्ट करने के पश्चात् राजा को चाहिए कि वह अपने प्रतिरोधी के मुर्गे के साथ कुक्कुट का युद्ध करावे। राजा को अपना प्रत्यर्थी अपनी प्राणवल्लभा को बना कर उसके कुक्कुट के साथ युद्ध कराना चाहिए। शनिवार की रात्रि को पूर्वोक्त विधि से रतिमंडल बनाकर उसके विभिन्न कोष्ठों में विभिन्न देवताओं की स्थापना करवा कर वरुण के कोष्ठ के समीप बने हुए त्रिकोण के अन्त में राजा बैठता था। तब पूर्व में जो एक विजय प्राप्त कर चुका है ऐसे पीले वर्ण के मुर्गे को श्वेत मुर्गे के पक्ष तथा कृष्ण मुर्गे को कृष्ण मुर्गे के पक्ष में छोड़ा जाता था। इसके बाद

१. मानसो० ४,७।२०७३। २. वही ४।७।१०३५-१०३७।
३. वही ४।७।१०३८। ४. वही ४।७।१०३९ ४१।
५. वही ४।७।१०४२। ६. वही ४।७।१०४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मोक्षक गरुड़ जाति के मुर्गे को छोड़ता था और आचार्य लोग उस समय 'ॐ गरुडानां सुवर्चा पक्षपक्षित्वनंतरं ग्रवत अमायाहि स्वाहा' इस मंत्र का उच्चारण करते थे।[1] छोड़ा हुआ मुर्गा वहां पर बिखरे हुए फूलों में जिस वर्ण का फूल चोंच से सर्वप्रथम ग्रहण करता था उसी वर्ण का मुर्गा उसका विपक्षी बनाकर छोड़ा जाता था—

विमुक्तस्ताम्रचूडस्तु यद्वर्णं कुसुमं स्पृशेत् ।
चंच्वा तद्वर्गमाशंसेत्कुक्कुटं प्रतियोधिनम् ॥[2]

इस प्रकार से मंत्रों के उच्चारण के पश्चात् छोड़े गए कुक्कुट परस्पर खूब लड़ते थे और अन्त में जो विजयी होता था उसके शिखर पर दिया के काजल का नजर न लगने के कारण तिलक कर दिया जाता था—

दीपोत्थकज्जलेनेषां शिखरे तिलकं न्यसेत् ।[3]

इस युद्ध के लिए पांच, सात अथवा नौ कुक्कुट तैयार किए जाते थे और युद्ध के दिन प्रातः काल उन्हें थोड़ा ही भोजन दिया जाता था और पट्टों द्वारा चन्दन कुंकुम आदि लगा कर माला तथा आभूषण पहना कर नर्तक सजाये जाते थे और वादकों को पुष्पमालाओं तथा विलेपन द्वारा सजाया जाता था।[4] कुक्कुट के युद्ध के प्रेमी अन्य जनों तथा कुक्कुट के युद्ध के विज्ञान को जानने वाले व्यक्तियों को भी सुन्दर वेशभूषा द्वारा सजाया जाता था। सेवकों को विशेष रूप से तैयार किया जाता था। एक कुक्कुट के जीत जाने पर और ध्वजा को उसके स्वामी के ग्रहण कर लेने पर तूर्य नाद होता था जिससे सभी को प्रसन्नता होती थी।[5]

एक दूसरे प्रकार से भी कुक्कुट का युद्ध होता था जो तीस हाथ परीणाह की गोल वेदिका से युक्त खलक मे होता था। यह खलक बहुत से स्तम्भों से युक्त मुलायम भूमिवाला, पांसु, पाषाण तथा कीचड़ से शून्य, समतल, दृढ़, पूर्व द्वार से युक्त, पुष्प की मंडपिका से युक्त होता था।[6] इसमें राजा के पक्ष वाले व्यक्ति पहले प्रवेश करते थे।[7] उत्तर तथा दक्षिण की ओर वस्त्रों से ढककर पंक्ति में कुक्कुट बैठा दिए जाते थे। तब राजा अपनी अंतःपुर की स्त्रियों तथा प्राणवल्लभाओं के साथ आकर खलक की वेदिका पर बैठता था।[8] युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व मुर्गा के पैरों में पैनी की हुई छुरियां

१. मानसोल्लास ४।७।१०५० ।
२. वही ४।७।१०५२ ।
३. वही ४.७।१०९४ ।
४. वही ४।७।१०९८-९९ ।
५. वही ४.७।११०१-२ ।
६. वही ४।७।११०३-६ ।
७. वही ४।७।११०६ ।
८. वही ४।७।११०७-९ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बांध दी जाती थीं। जिसके पक्ष में स्थित हुआ कुक्कुट जब जब अपने अन्य प्रतिरोधी कुक्कुट पर प्रहार करता था तब तब उसके पक्ष वाले व्यक्ति शब्द करते थे। एक कुक्कुट के नेत्रों के बन्द कर लेने पर अथवा खोल देने पर अथवा चोंच के टूट जाने पर, श्रांत हो जाने पर अथवा उसके शरीर से रक्त निकलने पर उसकी पराजय मानकर युद्ध से उसे हटा लिया जाता था। किन्तु एक कुक्कुट के मर जाने पर अथवा युद्ध से भाग जाने पर दूसरे पक्ष की विजय दैवयोग से हो जाती थी।[१] विजयी व्यक्ति पराजित हुए व्यक्ति के कन्धे पर चढ़ता था और उस हारे हुए व्यक्ति को अनेक प्रकार के वचनों द्वारा लज्जित किया जाता था। यह दक्षिणी भारत की प्रथा विदित होती है जहां विजयी दल के लोग पराजित दल की पीठ पर बैठते हैं। गुजरात में अब भी मियां मियां जी नाम का एक खेल खेला जाता है जो पीठ पर चढ़ कर खेला जाता है। इसमें पीठ पर बैठना दण्ड के रूप में नहीं होता। पराजित हुए व्यक्तियों की ध्वजा बलपूर्वक हटा दी जाती थी तथा अनेक रागों एवं त्रिपदी द्वारा तथा अनेक गालियों द्वारा उसको गाकर लज्जित किया जाता था।[2] तत्पश्चात् तूर्यनाद द्वारा जय की घोषणा हो जाने पर नर्तक नृत्य करते थे और विजयी कुक्कुट को हस्तिनियों पर बैठा कर नगर की गलियों में घुमाकर राजमन्दिर में लाया जाता था।[3] इस प्रकार से संलग्न होकर राजा कुक्कुटों का युद्ध करवाता था—

दिवसत्रितयन्त्वेवं बिना पानीयसंख्यया।
योधयेत्कुक्कुटान्श्रेष्ठान् जयावधि महीपतिः॥[४]

ये मुर्गे लगातार पांच सोमवारों तक लड़ाये जाते थे। छठे सोमवार को विजयी मुर्गा वस्त्रों, कांचन पट्टों आदि से सजाया जाता था[५]।

कुक्कुट युद्ध प्राचीन काल से ही भारतवासियों का प्रिय मनोरंजन रहा है। मनु ने एक स्थल पर ऐसा कहा है—

प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः॥[६]

अर्थात् प्राणियों (मेढा मुर्गा) से जो हार जीत होती है उसे समाह्वय कहते हैं। अतः मनु ने इस कुक्कुट युद्ध को एक प्रकार का जुआ ही माना है और उन्होंने राजा के लिए ऐसा आदेश दिया है कि जो भी व्यक्ति उसके राज्य

---

१. मानसो० ४।७।११३०।
२ वही ४।७।११३१-३२।
३. वही ४।७।११३३-३४।
४. वही ४।७।११३५।
५. वही ४।७।११४७-४८।
६. मनु० ९।२२३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में समाह्वय करे उसे वह दंड दे ।[1] इससे विदित होता है कि मनु के समय में भी व्यक्ति कभी इस कुक्कुट युद्ध द्वारा छिप कर अपना मनोरंजन करते थे। याज्ञवल्क्य ने भी 'प्राणिद्यूते समाह्वये'[2] कहकर मुर्गा आदि के युद्ध को ही समाह्वय माना है, किन्तु इनके समय में यह प्रथा कुछ अधिक प्रचलित हो गई थी और समाज में व्यक्ति अधिकांशतः इस समाह्वय द्वारा विनोद करते थे। इसका उचित रूप से प्रबन्ध करने के लिए राजा की ओर से एक कर्मचारी नियुक्त होता था, क्योंकि याज्ञवल्क्य ने चारों को पहिचानने के लिए जुआरियों का एक प्रधान व्यक्ति बनाने का आदेश दिया है जो समाह्वय में दोनों पक्षों का ध्यान रखता था—

दूतमेकमुखं कार्यं तस्करज्ञानकारणात्।
एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिदूते समाह्वये ॥[3]

वात्स्यायन के समय तक कुक्कुट युद्ध अधिक मात्रा में समाज में प्रचलित हो गया था। अपना मध्याह्न का भोजन कर चुकने के पश्चात नागरिक कुक्कुट द्वारा अपना मनोरञ्जन करता था—

भोजनान्तरं शुकसारिका प्रलापनव्यापारः।
······कुक्कुट···युद्धानि···विदूषकायत्ता
व्यापारा, दिवाशय्या च ॥[4]

इसके अतिरिक्त कामसूत्र में अन्य स्थलों पर भी कुक्कुट युद्ध के प्रसंग प्राप्त होते हैं।[5] इससे विदित होता है कि उस समय में यह नागरकों का अत्यन्त प्रिय मनोरंजन था। बौद्ध काल में भी यह प्रथा समाज में बहुत प्रचलित थी क्योंकि भगवान् बुद्ध ने बौद्ध भिक्षु के लिए कुक्कुट युद्ध का निषेध बतलाया है—

यथा वा पने के भोन्तो समण ब्राह्मण···
······हत्थि युद्धं अस्स युद्धं
······कुक्कुट युद्धं······ ·········
इति एवरूपा विसूक दस्सना पटिविरतो समणो गोतुमोति ।[6]

यहां तक कि कुक्कुट का ग्रहण करना भी श्रमण के लिए वर्जित था—

---

१. वही ९।२२४। २. याज्ञ० द्यूतसमाह्वयप्रकरण ३।२०७।
३. वही। ४. कामसूत्र सू० २।
५. वही सू० ३३ तथा सू० ४०,४१।
६. दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त सु० १३, पृ० ७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कुक्कुट सूकर पटिग्गहण पटिविरतो सचणो गोतमो।[1]

इसके अतिरिक्त कुक्कुटादि के लक्षणों की विद्या से भी श्रमण विरत रहता था—

सेय्यथीदं, मणि लक्खणं, वत्थ
लक्खणं कुमार लक्खणं
गो लक्खणं, अज लक्खणं
कुक्कुट लक्खणं
मिग लक्खणं इति वा इति एवरूपाय
तिरच्छानविज्जाय पटिविरतो समणो गोतमो ति॥[2]

समवायसुत्त में कुक्कुट लक्षण का प्रसंग प्राप्त होता है।[3] इसके अतिरिक्त बृहत्संहिता में भी इसका प्रसंग मिलता है।[4] अशोक भी जब से बौद्ध धर्म का अनुयायी हुआ था तब से उसने प्राणि समाह्वय का अपने राज्य में बिल्कुल निषेध कर दिया था, किन्तु फिर भी यह किसी न किसी रूप में समाज में प्रचलित ही रहा। मुगल काल में भी व्यक्ति अपना अधिक समय मुर्गाबाजी तथा बटेर बाजी आदि में ही व्यतीत करते थे। आज भी वह प्रथा समाज में अपने जीर्ण-शीर्ण शरीर को लिए हुए जीवित है।

लावक युद्ध

कुक्कुट-विनोद के पश्चात् सोमेश्वर देव ने लावक पक्षी के युद्ध द्वारा प्राप्त हुए विनोद का वर्णन किया है। सर्वप्रथम उन्होंने छः प्रकार की लावकों की जातियों का वर्णन किया है—

कच्छेलः खारडीकश्च गोरंजो विगरस्थता।
पांसुलाश्वे (लोवे) रसश्चैताः षट्स्युर्लावकजातयः॥[5]

इन सभी लावकों के लक्षणों को भी स्पष्ट रूप से उल्लेख हुआ है। कच्छ-मण्डल से सम्भूत लावक कच्छेल, उनके वंश के गृह में उत्पन्न खारडीक, विन्ध्य तथा सह्य पर्वत पर उत्पन्न शोणमस्तक वाले लावक गोरंज होते हैं। यह युद्ध-कर्म के लिए मध्यम जाति के होते हैं—

विन्ध्ये सह्ये च सम्भूता लावकाः शोणमस्तकाः।
गोरंजा इति विख्याता युद्धकर्मणि मध्यमाः॥[6]

१. दीघनिकाय, ब्र० सु० सु० १०, पृ० ६।
२. वही सु० २२, पृ० ११
३. समवाय सुत्त २।२।२६।
४. बृहत्संहिता अ० ६३।
५. मानसो० ४।८।११७१।
६. वही ४।८।११७३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ये विशेष प्रकार की लावक जातियाँ हैं। अब इन्हीं के मिश्रण से उत्पन्न मिश्र जाति वाले लावकों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है। खारडीक से गेरंज के मिलने पर उत्पन्न हुआ लावक विगर होता है। यह मिश्र जाति का होता है। कच्छ देश को छोड़कर अन्य देशों में उत्पन्न हुए अशोणमस्तक वाले लावक पांसुल, खारडीक तथा पांसुल के मिश्रण से उत्पन्न लावक लाव होते हैं।[१] इन सभी प्रकार के लावकों में खारडीक तथा विगर उत्तम प्रकार के वेरस तथा पासुल्ल मध्यम प्रकार के लावक माने गए हैं।[२] पांसुल लाव का युद्ध उत्तम होता है, गेरंज लावक युद्ध कर्म के लिए असफल माना गया है—

युद्ध कर्मसु गेरंजः कातरः परिकीर्तितः।[3]

सोमेश्वर ने प्रसूता लाविकों को दो प्रकार का बतलाया है: १. अग्रजा, जो आश्विन से फाल्गुन मास तक बच्चे उत्पन्न करती थी, २. पाश्चात्य, जब वह मधूक पुष्प आदि के पतन के समय प्रसूता होती थी पाश्चात्य कहलाती थीं—

आश्विनात्फाल्गुनं यावत् प्रस्यन्ते तु लावकाः॥
तिलपुष्पोद्गमे जाता अग्रजाः परिकीर्तिताः।
मधूकपुष्पपाते तु पाश्चात्या इति विश्रुताः॥[४]

गेरंजी तथा खारडी लावी विशाल शरीर एवं शुभ लक्षणोंवाली होती हैं इसी कारण उन्हें पकड़वा कर राजा पञ्जर में रखवा कर उनका उचित रीति से पालन-पोषण करवाता था। उन्हें खाने के लिए गोधूम चूर्ण, मत्स्य का मांस, प्रियंगु, तंडुल आदि दिन में तीन बार दिया जाता था।[५] इसके साथ ही साथ राजा नर खारडिक लावक का भी प्रजनन के लिए उचित रूप से पालन करवाता था।[६] तब दोनों के सम्भोग की इच्छा प्रकट करने पर उन्हें मिलाया जाता था।[७] लावी आदि के अण्डे दे चुकने पर उनकी रक्षा की जाती थी तब उसमें से बच्चे होते थे—

त्रिसप्तवासराण्येवं रक्षत्यण्डान्यहर्निशम्।
ततश्चांडानि निर्भेद्य निःसरन्ति च पिल्लकाः॥[८]

वे बच्चे अलग-अलग पिंजड़ों में रखे जाते थे और उनका उचित रीति से पालन

---

१. मानसो० ४।८।११७४-७६। २. वही ४।८।११७७।
३, वही ४।८।११७९। ४. वही ४।८।११८०।
५. वही ४।८।११८१-८६। ६. वही ४।८।११८८।
७. वही ४।८।११८८। ८. वही ४।८।११९७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पोषण होता था। एक वर्ष के पश्चात् वे युद्ध करने के योग्य हो जाते थे।[१] कुछ दिन पश्चात् जब वे परस्पर दर्प तथा क्रोध से पूर्ण होकर पारस्परिक वैमनस्य को नहीं सहन कर सकते थे 'तब उन्हें युद्ध करवाने की शिक्षा के लिए परिश्रम करने का आदेश सोमेश्वर ने दिया है—

अन्योन्यं न सहन्ते ते दर्पक्रोधसमन्विताः।
ततः श्रमं कारयेत लावकान्युद्धशिद्धये॥[२]

इसके पश्चात् उनको उचित रूप से युद्ध के लिए शिक्षा दी जाती थी। लावी को पिंजड़े में रखकर लावक को उसे दिखा कर लावक को पिंजड़े से निकाल कर बाहर उसीके समीप रखा जाता था और उन्हें युद्ध की शिक्षा दी जाती थो। शिक्षक लावक को वस्त्र से ढँक कर थोड़ी दूर पर रखता था और रज्जु को धारण किए हुए लावकी को दिखाता था और धीरे-धीरे लाविका को लावक के पीछे-पीछे लावक को पकड़ने के लिए चलाता था और उसके पङ्खों को दृढ़ करने के लिए उसे ऊपर फेंकता था।[३] लावक का उचित रीति से पालन कर पोषक उसके शूर-वीर तथा युद्ध के योग्य बन जाने पर प्रतिरोधी से लड़वाता था।[४]

सोमेश्वर ने आँवले के सदृश मस्तक, स्थूल स्कन्ध अपांडु भ्रू, ह्रस्वलोचन, टेढ़ी चोंच, दीर्घ पैरों की अंगुलियों वाले महाकाय लावक को युद्ध कर्म में कुशल बताया है।[५] इसी प्रकार के श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त लावकों का युद्ध करवाना चाहिए। युद्ध करवाने के लिए नाड़ी के आधार पर सोमेश्वर ने समय भी निर्धारित किया है। इस नाडी का प्रमाण सोमेश्वर ने इस प्रकार बताया है—

मात्राशतेन विंशेन पूर्यन्ते तोयधारया।
तावत्पात्रं प्रकुर्वीत सा नाडी कथिता बुधैः॥[६]

इसी नाड़ी के समय के अनुसार ही लावकों का युद्ध करवाना चाहिए। इस युद्ध को राजा ही करवाता था। लावकों के युद्ध करवाने के विषय में सोमेश्वर ने सात अथवा नौ नाड़ी तक का समय निर्धारित किया है। राजा को उत्तम, मध्यम तथा हीन तीनों प्रकार के लावकों द्वारा युद्ध करवाने का आदेश दिया है—

---

१. मानसो० ४।८।१२०२।
२. वही ४।८।१२०३।
३. वही ४।८।१२०४-१२०८।
४. वही ४।८।१२०९।
५. वही ४।८।१२१०-१२११।
६. वही ४।८।१२१४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एवं च योधयेत्सप्त नव चैव यथाक्रमम्।
हीनं मध्यं तथा ज्येष्ठं लावकं धरणीपतिः ॥[1]

सर्वप्रथम लावकों को एक नाड़ी तक युद्ध करवाया जाता था। तत्पश्चात् उन्हें एक नाड़ी तक विश्राम करवाया जाता था। विश्राम कर लेने के पश्चात् उन्हें पांच नाड़ी तक बराबर युद्ध करवाया जाता था।[2]

इसके बाद सोमेश्वर ने युद्ध का वर्णन किया है। यह लावकों का युद्ध एक प्रकार के अखाड़े में होता था जो तीन हाथ विस्तृत वृत्ताकार, ऊँचा तथा खलक की आकृति का होता था। यह वस्त्र से आच्छादित रहता था—

वितस्त्युत्सेधसयुक्तं हस्तत्रितयविस्तृतम्।
किलिंज कारयेन्नीलंवस्त्रेण परिगुम्फितम्॥
वृत्ताकारं तथादाय भूतले खलकाकृति।
अक्खाडं नाम तज्ज्ञेयं लावौ तत्र तु योधयेत्॥[3]

इनमें युद्ध करवाने के लिए कुछ नियमों का भी ध्यान रखा जाता था। राजा उस अखाड़े में समान जाति वाले लावकों में परस्पर युद्ध करवाता था। खारडी का खारडी के साथ, विगर का विगर के साथ, वेरस का वेरस के साथ तथा कच्छल का कच्छुल जाति के लावक के साथ युद्ध होता था[4] पहले अग्रेयोधि का अग्रयोधि से तत्र अन्तर्ज्येष्टि का अन्तर्ज्येष्टि के साथ युद्ध होता था।[5] जो अपने लावक को अभिमानपूर्वक छोड़ता था और यदि वह नाडी की अवधि तक युद्ध करता रहता था और अन्त में विजय प्राप्त करता था तो उसकी विशेष प्रकार की विजय समझी जाती थी।[6] यदि लावक नौ नाडी की अवधि की संख्या को लड़ते-लड़ते समाप्त कर देता था तो भी उसकी विजय समझी जाती थी—

नवनाडीकृतां संख्यां पूरयेद्यदि लावकः।
तस्यैव विजयो ज्ञेयो येनावस्तर उच्छ्रितः॥[7]

किन्तु नव नाडी की अवधि को समाप्त कर लेने के पश्चात् भी यदि लावक

---

१. वही ४।८।१२१६। २. मानसो० ४।८।१२१५।
३. वही ४।८।१२१७,१८।
४. खारडीं खारडीकेन विगरं विगरेण च।
वेरसं वेरसेनैव कच्छुलं कच्छलेन च॥ वही ४।८।१२१६।
५. वही ४।८।१२२०। ६. वही ४।८।१२२१,२२।
७. वही ४।८।१२२३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

युद्ध से भाग जाता था तो विजय दूसरे लावक की ही समझी जाती थी।[1] यह युद्ध किसी पण (शर्त) द्वारा करवाया जाता था। समानता होने पर वह पण किसी को नहीं दिया जाता था।[2] इस प्रकार के नियमों का पालन युद्ध के समय किया जाता था और विजय इन्हीं नियमों के आधार पर मानी जाती थी।

युद्ध के समय लावक क्रुद्ध होकर अत्यन्त भीषण युद्ध करते थे। वे परस्पर चोंचों द्वारा एक दूसरे के मस्तक पर प्रहार करते थे। कभी कृकाटिका को पकड़ कर, उसके पङ्खों को उठाकर बार-बार उस पर मुक्ति पाने के लिए प्रहार करते थे। कभी ग्रीवा तथा पुच्छ को उठाकर चोंच द्वारा एक दूसरे के स्कन्धों को भेदते थे और कभी पङ्खों द्वारा प्रहार करते थे।[3] इस प्रकार युद्ध के समय कोई रक्त से पूर्ण सिर वाला, कोई भिन्न ग्रीवावाला, कोई पङ्ख शून्य, कोई रक्त से आलिप्त शरीर वाला, कोई उखड़े नख वाला, कोई भग्न चोंच वाला, कोई रक्त प्रवाह से युक्त, कोई भग्न स्कन्ध वाला हो जाता था। कोई आगे की ओर भागता था, कोई पीछे को ओर जाता था।[4] इस प्रकार वे स्रस्तांग, स्रस्तपक्ष लावक एक दूसरे को पराजित करने का प्रयत्न करते थे—

स्रस्तांगाः स्रस्तपक्षाश्च स्रस्तग्रीवा विलोचनाः।
स्रस्तजंघोरुपादाश्च स्रस्तसर्वांगसन्धयः॥[5]

वे परस्पर धैर्य धारण कर शरीर का ध्यान न रखकर मन से युद्ध करते थे। युद्ध की प्रथम अवस्था को पार कर वे परस्पर एक दूसरे को मारने का प्रयत्न करते थे और गर्जन तथा नाद करते थे।[6] युद्ध के अन्त में शूरवीर लावक को विजयी समझा जाता था और भाग जाने वाला लावक पराजित समझा जाता था। इस प्रकार राजा का लावक युद्ध द्वारा मनोरंजन होता था। इस प्रकरण में सोमेश्वर ने राजा से सम्बन्धित किसी प्रकार का वर्णन नहीं किया है। अतः यह सम्भवतः समाज के सब व्यक्तियों के सब व्यक्तियों के मनोरञ्जन का साधन था।

लावकों का युद्ध अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत में प्रचलित है। सदैव से ही मनुष्य का पक्षियों से दो प्रकार का सम्बन्ध रहा है—१. खाने का (वध) तथा २. मनोरञ्जन प्राप्त करने का (बन्ध)।

---

१. मानसो० ४।८।१२२४। २. वही ४।८।१२२५।
३. वही ४।८।१२२७-२८। ४. वही ४।८।१२३१।
५. वही ४।८।१२३२। ६. वही ४।८।१२३३-३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भक्षार्थं क्रीडनार्थं वा नरा वांच्छन्ति पक्षिणम्।
तृतीयो नास्ति संयोगो वधबंधादृते क्षमः॥[१]

इसके अनुसार पक्षियों के साथ तीसरा कोई भी सम्बन्ध नहीं, किन्तु भारतीय साहित्य का अवलोकन करने पर एक और प्रकार का पक्षियों के साथ सम्बन्ध समझ में आता है, वह है प्रेम का सम्बन्ध।[२]

उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट है कि पक्षियों के पारस्परिक युद्ध भारत में सदा से ही होते रहे हैं। लावक युद्ध का वात्स्यायन के समय में भी अधिक प्रचार था—

भोजनान्तरं······लावक······युद्धानि।
दिवाशय्या च॥[3]

अर्थात् नागरिक अपना दिन का भोजन समाप्त कर लावक आदि पक्षियों के युद्ध द्वारा मनोरञ्जन करता था। इसके अतिरिक्त कामसूत्र में अन्य स्थलों पर भी लावक युद्ध के प्रसंग प्राप्त होते हैं।[४] वात्स्यायन ने लावक युद्ध को ६४ कलाओं के अन्तर्गत माना है।[५]

बाण ने भी कादम्बरी में ऐसा प्रसंग दिया है कि अंतःपुर से बाहर निकलने पर राजकुल के प्रथम प्रकोष्ठ में बहुत से पक्षी पले रहते थे, जिनमें कुक्कुट, कुरक, कपिंजल तथा लावकादि थे। इन लावकादि पक्षियों के युद्ध द्वारा नागरिकों का मनोरंजन होता था।[६] सोमेश्वर के समय में भी लावकों का पालन करने के लिए अनेक व्यक्ति रहते थे जो पिता की भांति उनका पालन करते थे और उनको शिक्षा दे चुकने पर युद्ध कराकर जनता का मनोविनोद करते थे।

मेषयुद्ध विनोद

दो मेषों में पण की स्थापना कर जो युद्ध कराया जाता था उससे भी राजा का मनोरंजन होता था। सोमेश्वर ने चोलिका, जटिला तथा शोणवर्णा इन तीन प्रकार के मेषों का उल्लेख किया है।[७] जिस मेष के भ्रू, पाद, उदर, पुच्छ, दोनों कर्ण तथा मुख कृष्ण वर्ण के हों वह चोलिका मेष होता है, किन्तु जिस मेष के ये उपर्युक्त अंग श्वेत वर्ण के हों और सम्पूर्ण शरीर कृष्ण वर्ण का हो वह मेष उत्साह चोलिका कहलाता है। इस प्रकार चोलिका मेष दो प्रकार का होता है—

---

१. महा० शान्ति० १३९।६०।

२. हाल सतसई १.४, बृहत्संहिता ५६.६६, कुमार ५।२६, ऋतु० ३।

३. कामसूत्र सू० २१। ४. वही ४०।

५. कामसूत्र, साधारणाधिकरण तृतीय।

६. कादम्बरी, पृ० १७३। ७. मानसोल्लास ५।९।१२३९,४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भ्रुवौ पादाश्च जठरं पुच्छमास्यं श्रुतिद्वयम् ।
इति यस्य भवेत्कृष्णं चोलिकः स उदाहृतः ॥
एतैरेव भवेच्छ्वेतैः कृष्णश्चोत्साहचोलिकः ।[१]

जिस मेष के स्तन तथा कंठ के रोम स्थूल तथा दीर्घ होते हैं वह मृदुल और गुम्फित तथा श्लक्ष्ण रोम वाला मेष जटिल होता है, उसके सम्पूर्ण शरीर का वर्ण चाहे किसी प्रकार का भी हो—

रोमाणि स्थूलदीर्घाणि तेषां कंठे स्तनौ तथा ।
येनकेनापि वर्णेन यस्योर्णा सर्वगात्रजा ॥
मृदुला गुम्फिता श्लक्ष्णा जटिलः स परिकीर्तितः ।[२]

किन्तु जो मेष लाल वर्ण का हो तथा जिसके संपूर्ण शरीर में ह्रस्व तथा मोटे रोम हों वह शोण मेष कहलाता है।[३] जो मेष शूर तथा अक्षत तुण्ड वाला, आवर्तों से पूर्ण प्रोथ देश वाला, शत पद्मों के समान आकृति वाला तथा मुकुलावर्त पुच्छ से युक्त होता है, वह मेष शुभ लक्षणों वाला होता है तथा जो उत्पन्न होते समय विपरीत मुख वाला होता है उस मेष को कोई पराजित नहीं कर सकता।[४] इसके अतिरिक्त काले मस्तक वाला मेष भी निश्चय रूप से शूरवीर होता है—

कृष्णमस्तकमेषोऽपि शूरः स्यादिति निश्चितम् ।[५]

अतः इन्हीं शुभ लक्षणों वाले मेषों को युद्ध कराने के लिए पुष्ट करना चाहिए। सोमेश्वर ने जो 'परामुखो य उत्पन्नो युद्धे न स पराजितः'[६] लिखा है इस प्रसंग से यह पूर्ण रूपेण प्रकट हो जाता है कि मेष युद्ध के प्रेमी व्यक्ति उसे उत्पन्न होने के समय से ही शुभ लक्षणों वाला देखकर ग्रहण कर उसको दाल, चना, तेल से युक्त कृसर तथा दूर्वा द्वारा पालते थे। उसके शक्तिशाली बनाने के लिए सातवें दिन अर्थात् सप्ताह में एक बार सैन्धव लवण युक्त घृत दिया जाता था। इसके अतिरिक्त प्रातः तथा सायंकाल उनको शनैः शनैः घुमाने से भी उनके शरीर की पुष्टि होती थी।[७] युद्ध के लिए उन्हें तैयार करने के लिए उनके सींगों को लोहे की पत्तियों द्वारा जड़वा दिया जाता था और उनमें मुद्रिका पहनाकर दोनों को बांध दिया जाता था तथा उन्हे अंधेरे में रखकर लशुन खिलाया जाता था।[८] इस प्रकार से मेषों को युद्ध करने के लिए तैयार किया जाता था।

---

१. वही ४।९।१२४०,४१ । २. वही ४।९।१२४२,४३ ।
३. वही ४।९।१२४३,४४ । ४. वही ४।९।१२४५,४६ ।
५. वही ४।९।१२४७ । ६. वही ४।९।१२४८ ।
७. वही ४।९।१२४७–४९ । ८. वही ४।९।१२५२ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मेषों के युद्ध के योग्य बन जाने पर रविवार के दिन उनका युद्ध कराया जाता था। उस दिन उन्हें भोजन थोड़ा कराया जाता था।[१] उन्हें उन्मत्त करने के लिए मदिरा तथा क्रोध दिलाने के लिए भूना हुआ व्योष उनके मुख में डाल दिया जाता था, जिससे वे वीरता पूर्वक युद्ध करते थे।[२] इस प्रकार युद्ध के लिए तैयार हो जाने पर दोनों परस्पर घोर घट्टन द्वारा युद्ध करते थे। कभी दोनों दूर भाग जाते थे कभी फिर पास आकर परस्पर अपना सिर भिड़ाने लगते थे। किन्तु जब वे एक दूसरे से कुछ क्षणों के लिए दूर हो जाते थे तो पुनः उन्हें युद्ध करवाने के लिए उनके समक्ष कृकाटी के मांस के टुकड़ों को डाला जाता था।[३] उन दोनों में जो बलवान् होता था वह सैकड़ों बार दूसरे पर प्रहार करके गिरा देता था। दुर्बल मेष दूर हट जाता था। जो मेष युद्ध के समय दूसरे से दूर भाग जाता था उसे युद्ध में पुनः न लगाने का आदेश दिया गया है—

पलायितस्तु यो मेषो न स शक्यः प्रयोजितुम्।[४]

उन दोनों मेषों को ध्वजा का पण (शर्त) लगाकर युद्ध करवाया जाता था। जिसका मेष जीत जाता था वही व्यक्ति ध्वजा को पारितोषिक रूप में प्राप्त कर लेता था। इस प्रकार से दो सुशिक्षित मेषों को पुष्ट कर उन्हें युद्ध के लिए तैयार कर उनके युद्ध द्वारा मनोरंजन कर अपना समय व्यतीत किया जाता था।

सोमेश्वर ने इस प्रकरण में राजा से सम्बन्धित किसी बात का भी उल्लेख नहीं किया है इससे विदित होता है कि यह सम्भवतः जनता का प्रिय मनोरंजन था जो रविवार के दिन किया जाता था और जिसे देखने के लिए खूब भीड़ जमा होती होगी, क्योंकि सम्भवतः उस दिन सबकी छुट्टी रहती होगी। सोमेश्वर ने इस प्रकरण में अनेक प्रकार के मेषों का प्रसंग दिया है जिससे विदित होता है कि उनके समय में व्यक्तियों को मेष विषयक अधिक ज्ञान था। वे अत्यन्त रुचिपूर्वक अपने मेषों का लालन-पालन कर उन्हें अधिकाधिक मात्रा में पुष्ट करने का प्रयत्न करते थे और उनके क्रोधपूर्ण युद्ध को देखकर समाज के सभी व्यक्ति अत्यधिक प्रसन्न होते थे। इसी कारण उन्हें अधिक मात्रा में क्रोध दिलाने के लिए मेषों को लड़ानेवाले व्यक्ति उन्हें मदिरा पान तथा व्योष भक्षण करवाते थे।

मेष युद्ध का इतना सुचारु रूप से विस्तृत वर्णन अन्यत्र नहीं प्राप्त होता,

१. मानसो० ४।९।१२५२। २. वही ४।९।१२५३।

३. वही ४।९।१२५४,५५।

४. पणपूर्वं नियोध्यास्ते ध्वजहेतोर्नियोधनम्॥ वही ४।९।१२५७

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किन्तु फिर भी प्राप्त प्रसंगों से विदित होता है कि यह प्राचीनकाल से ही भारतीयों के मनोरंजन का साधन रहा है। मनुस्मृति के प्रसंगों से विदित होता है कि यह मेष युद्ध उस समय भी समाज में प्रचलित था, किन्तु मनु ने समाह्वय (दो प्राणियों का पारस्परिक युद्ध) को प्रकट चौर्य माना है और राजा को इसे अपने राज्य में बिल्कुल दूर करने का आदेश दिया है—

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्द्वेनसमाह्वयौ ।
तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥[1]

मनु ने यहाँ तक कि समाह्वय करने वाले व्यक्तियों को मरवा डालने का आदेश दिया है—

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत् वा ।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिंगिनः ।[2]

याज्ञवल्क्य ने इस प्रथा को समाज में इतना निषिद्ध नहीं बतलाया है। उन्होंने प्राणि समाह्वय में भी द्यूत की विधि को ही अपनाने का आदेश दिया है।[3] इससे विदित होता है कि इनके युद्धों को देखने के लिए भी राजा की ओर से कर्मचारी नियुक्त रहते थे और इस समाह्वय में जीतने पर भी राजा पाँच प्रतिशत अथवा दशमांश ग्रहण करता था, क्योंकि द्यूत में तो इसी प्रकार का उल्लेख हुआ है।[4]

वात्स्यायन के कामसूत्र में मेष युद्ध सम्बन्धी अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं।[5] उस समय का नागरिक मेष युद्ध में बड़ा ही मनोरंजन प्राप्त करता था—

पूर्वाह्ण एव स्वलंकृतास्तुरगाधिरूढाः वेश्याभिः……
……मेषयुद्धद्यूतैः प्रेक्षाभिरनुकूलैश्चचेष्टितै……
प्रत्याव्रजेयुः ॥[6]

अशोक के समय में भी यह मेष युद्ध की प्रथा समाज में अधिकांशतः प्रचलित थी, किन्तु बौद्ध हो जाने के पश्चात् उसने इस प्रथा का अपने राज्य में बिल्कुल ही निषेध कर दिया था फिर भी यह मनोरंजन किसी अंश तक भारतीयों में विद्यमान रहा। यद्यपि सदा से मेष युद्ध को देखने के लिए नागरिकों की भीड़ एकत्र हो जाती थी किन्तु फिर भी भारत में यह प्रथा कभी भी रोम देश की भांति अपनी उन्मत्त दशा पर न पहुँची।

---

१. मनु० ९।२२२। २. वही ९।२२४।
३. याज्ञ० ३।२०७। ४. वही ३।२०३,२०४।
५. कामसूत्र सू० २१,३३ तथा सू० ४०,४१।
६. कामसूत्र सू० ४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महिष विनोद

मानसोल्लास में वर्णित महिष विनोद इस बात को प्रकट करता है कि दो महिषों के युद्ध द्वारा भी राजा अपना मनोरंजन करता था क्योंकि इस प्रकरण में जो 'युद्धवेदिनः'[१] शब्द आया है वह इसी प्रकार के युद्ध की ही पुष्टि करता है। सोमेश्वर ने विदर्भ, करहाट, जालन्धर, सौराष्ट्र और मध्य देश में उत्पन्न हुए भैंसों को युद्ध का जाननेवाला बतलाया है।[२]

तत्पश्चात् सोमेश्वर विनोद करने के लिए युद्ध में लगानेवाले महिषों का वर्णन करते हैं। उनका कथन है कि स्थूल कंधेवाले, महान् शरीरवाले, विशाल वक्षस्थल से युक्त, सुन्दर पैरवाले, लाख की भांति नेत्र वाले, समान उदर वाले, श्वेत तथा काले, श्वेत पुच्छ से युक्त महिषों को युद्ध कर्म में लगाना चाहिए।[३] इन महिषों को अपने यहाँ रखकर राजा को चाहिए कि वह उन्हें दुग्धमिश्रित प्रियंगु के पिष्ट (पिसान) से उनका पोषण करे। उरद (माष) के चूर्ण के सहित दही को उन्हें बलवान बनाने के लिए दे। इन महिषों को छोटेपन से ही राजा अपने राजप्रासाद में रखवाता था और एक वर्ष के हो जाने पर रज्जु डालकर उनकी नासिका बेध दे :

ऊर्ध्वं संवत्सरात्तेषां नासाबेधं समाचरेत्।
नासायां निक्षिपेद्रज्जुं दृढां धारणहेतवे ॥[४]

इसके अतिरिक्त उन्हें बिना दले चने, तेल युक्त कृशर तथा लवण मिश्रित तक्र खिलाना चाहिए। इसके साथ ही साथ जल में ठीक से स्नान करवा कर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिए क्योंकि भैंसों को जलावगाहन अत्यन्त प्रिय होता है।[५]

जब ये महिष पांच वर्ष के ऊपर हो जाते थे तथा दर्पवान्, बलवान्, महान् शरीर से युक्त होते थे तब ये युद्ध के योग्य हो जाते थे। अतः तभी राजा इनका युद्ध करवाता था। युद्ध करने के पूर्व ये महिषियों के झुण्ड के मध्य क्रीडा कर खूब अपने अंगों को धूल से लपेट लेते थे। तब इनके गले में नीम की पत्तियों की माला पहनाई जाती थी—

निम्बपत्रकृतां मालां धारयन्तावुरःस्थले[६]।

और उनके नासिका के बन्धनों को खोल दिया जाता था। उसी समय दो ऐसे व्यक्ति नियुक्त रहते थे जो तालियां बजाते थे और सिंहनाद करते थे। यह सुनकर वे दो महिष एक दूसरे के शरीर की ओर देखते थे और दो बलवान्

१. मानसोल्लास ४।१०।१२६१। २. वही ४।१०।१२६१,६२।
३. वही ४।१०।१२६१-६४। ४. वही ४।१०।१२६५,६६।
५. वही ४।१०।१२६८। ६. वही ४।१०।१२७०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हाथियों की भांति लड़ने लगते थे। दोनों ही क्रुद्ध होकर अपने मस्तकों को मिलाकर एक दूसरे को सींगों के अग्र भाग से मारते थे, खूब गर्जन करते थे, भागते थे, भूमि पर घुटनों के बल बैठ जाते थे, क्रोध से रक्त नेत्र करके खूब जोर से श्वास लेते हुए, मुख से फेन निकालते हुए परस्पर युद्ध करते थे। अन्त में जो बलवान महिष होता था वह दूसरे महिष को परास्त कर देता था और अपने शृंगों द्वारा प्रहार करता हुआ उसके स्कन्ध प्रदेश को घायल कर देता था। इस प्रकार जो अपनी सींगों द्वारा दूसरे महिष को ढकेलता हुआ दौड़ाता था वही महिष विजयी समझा जाता था।[1] इस प्रकार राजा दो महिषों को परस्पर लड़ाकर आनन्द का अनुभव करता था।

महिष युद्ध के बहुत ही थोड़े प्रसंग भारतीय साहित्य में प्राप्त होते हैं। यद्यपि पुराणों में महिषों को मेध्य पशु मानकर उनका शिकार करने का प्रसंग प्राप्त होता है[2] किन्तु उनके युद्धों पर प्रकाश नहीं डाला गया। बुद्ध काल में सम्भवतः यह प्रथा प्रचलित थी इसी कारण बौद्ध भिक्षु को इस महिष युद्ध द्वारा मनोरञ्जन प्राप्त करने का निषेध हुआ है—

......हत्थि युद्धे......महिस युद्धं उसमं युद्धं......इति वा, इति एवं रूपा विसूक दस्सना पटिविरतो समणो गोतमो ॥[3]

महिष के लक्षणों को भी बौद्ध भिक्षु को जानने की चेष्टा न करनी चाहिए ......अस्स लक्खणं महिंस लक्खणं उसम लक्खणं......मिग लक्खणं इति वा, इति......पटिविरतो समणो गोतमो ॥[4]

इन महिष के लक्षणों को बुद्ध ने तिरश्चान विद्या[5] (तिरच्छान विज्जाय) माना है।

सोमेश्वर के समय में महिष युद्ध समाज में अधिक मात्रा में प्रचलित था और सम्पूर्ण जनता इस युद्ध द्वारा मनोविनोद करती थी।

पारावत विनोद

सोमेश्वरकालीन समाज में कबूतर भी सामाजिक मनोरञ्जन का साधन था और राजा का भी पारावत विनोद द्वारा मनोरंजन होता था। इस प्रकरण में सोमेश्वर महाराज ने सर्वप्रथम सिन्धु देश में उत्पन्न होने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीन जातियों वाले कबूतरों का उल्लेख किया है। शूद्र जाति के कबूतर तो कहीं भी प्राप्त हो सकते हैं :—

---

१. वही ४।१०।१२७५,७६। २. श्रीमद्० पु० ४।२६।१०।

३. दीघनिकाय ब्रह्मजाल सुत्त सू० १३, पृ० ७।

४. वही सू० २२, पृ० ११। ५. वही।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिन्धु देशे विशेषेण ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ।
पारावताः प्रजायन्ते शूद्रास्युर्यत्र कुत्रचित् ।[1]

सिन्धु प्रदेश को ही विशेष रूपसे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातिवाले कबूतरों का जन्म स्थान बताया है। इसके साथ ही साथ उन्होंने उनके लक्षणों का भी वर्णन किया है। ब्राह्मण जातिवाले कबूतर का लक्षण सोमेश्वर ने निम्न प्रकार से बतलाया है—

सशिला पादपिच्छाढ्याश्चिरक्कणनशालिनः ।
ज्ञेयास्ते ब्राह्मणा जात्या पवित्रा शुभदर्शनाः ॥[2]

ब्राह्मण जातिवाले कबूतर का दर्शन करना सोमेश्वर ने अत्यन्त शुभ माना है। शिखाहीन पादपिच्छों से युक्त कबूतर क्षत्रिय जाति का होता है[3] तथा अल्पक्कण से युक्त, शिखाहीन तथा पादपिच्छों से हीन कबूतर वैश्य जाति का होता है।[4] इन तीनों जातियों में श्वेत, कृष्ण, रक्त, पीत चितकबरे आदि अनेक वर्णों के कबूतर होते हैं।[5] रक्त नेत्र तथा पादों से युक्त, हरितवर्ण के, नीलकंठ वाले तथा काले पंख वाले कबूतर शूद्र वर्ण के होते हैं।[6] इन कबूतरों को सोमेश्वर ने अत्यन्त अधम प्रकार का माना है। यदि ये मंदिर, प्रासाद, पर्वत के अग्र भाग आदि प्रदेशों में रहते हैं तो भी इनका पालन एवं पोषण करना वर्जित है—

देवालये तथा सौधे शैलाग्रे च वसन्ति ते ।
न पोष्या ध्वनिहीनत्वाच्छूद्राः पारावताधमाः ॥[7]

शूद्र जाति के कबूतर भी अनेक प्रकार के होते हैं किन्तु ये सभी मनुष्य मात्र के लिए कष्टदायी हैं, इसी कारण किसी भी गृहस्थ को इनका स्पर्श तथा पोषण नहीं करना चाहिए—

न स्पृश्या नैव सम्पोष्या गृहस्तेन कदाचन ।[8]

यदि यह अन्त्यज जाति का कबूतर किसी प्रकार से गृह में प्रवेश भी कर जावे तो गृहस्थ को शास्त्रोक्त विधि से प्रायश्चित्त करना चाहिए। इनका संसर्ग बड़ा ही अनिष्टप्रद होता है।

---

१. मानसोल्लास ४।११।१२७७,७८ ।
२. वही ४।११।११७८,७९ । ३. वही ४।११।१२७९,८० ।
४. वही ४।११।१२८०,८१ । ५. वही ४।११।१२८१,८२ ।
६. वही ४।११।१२८२,८३ ।
७. वही ४।११।१२८३,८४ । ८. वही ४।११।१२८५ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर ने राजा को केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जाति के कबूतरों को ही अपने प्रासाद में रखने का आदेश दिया है—

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चेमे प्रशस्ता राजमन्दिरे।[1]

राजा को चाहिए कि इन तीनों वर्णों के कबूतरों को अपने राजमंदिर में रखकर यव, गेहूँ तथा चावल आदि द्वारा उनका पोषण करे। उन्हें सुवर्ण, चांदी अथवा देवदारु की लकड़ी के बने हुए पिजड़े में रखे।[2] राजा एक पिंजड़े में वर्ण तथा रूप के अनुसार कबूतर के जोड़े को एक साथ रखे क्योंकि कबूतर की स्त्रियां बड़ी ही पतिव्रता होती हैं और वे किसी अन्य कबूतर को अपने पिंजड़े में नहीं घुसने देती।[3] कबूतर भी अपनी प्रिया को देखकर कंठ से मधुर नाद करके प्रफुल्लित होकर अपनी पूछ को प्रसारित कर नाचता है और अपनी प्रेयसी को बार-बार चुम्बन कर रमण करता है। अंडों को रक्षापूर्वक रात्रि के समय अलग रख कर बच्चों के कंठ में आहार देकर वे उन्हें पालते हैं।[4] इस प्रकार के सुलक्षणों से युक्त कबूतरों को राजा को मार्ग की शिक्षा देनी चाहिए—

पारावतं तथाभूतं शिक्षितं क्रमशः पथि।[5]

शिक्षा देने का सोमेश्वर ने इस प्रकार नियम बतलाया है कि राजा को चाहिए कि कबूतर को उस पिंजड़े से निकाल कर अलग ले जा कर, इसे निकाल कर उसके कंठ में पत्र लेख बांध दे और राजा उसे छोड़ दे। वह कबूतर दिन भर में २० योजन का चक्कर लगाकर अपनी प्रिया की याद करता हुआ पुनः अपने स्थान पर लौट आवेगा। इतना उपयोगी होने के कारण ही वह राजा के लिए आवश्यक था। सोमेश्वर ने इस पवित्र आत्मा वाले कबूतर को राज्य की वृद्धि के लिए अपनी प्रिया के हाथ रखने का आदेश दिया है—

अतएव महीपालैः संग्राह्यास्ते विशेषतः।
रतिकालेऽपि ते धार्या रागवर्धनहेतवे॥[6]

इस प्रकार से कंठ के घुरघुराते हुए शब्द द्वारा यह राजा के हृदय में आनन्द का उत्पादन करते थे इसी कारण उस समय में कबूतर राजा के हार्दिक विनोद का आधार था।

सोमेश्वर ने पारावत विनोद को धर्म, कर्म, अर्थ की सिद्धि का कारण माना है—

---

१. वही ४।११।१२८६।
२. वही ४।११।१२८७,८८।
३. वही ४।११।१२८९,९०।
४. वही ४।११।१२९१-९३।
५. वही ४।११।१२९३।
६. वही ४।११।१२९६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पारावतविनोदोऽयं धर्मकर्मार्थसिद्धये ॥[1]

वास्तव में कबूतर धर्म का प्रतीक था। कबूतर तथा उसकी प्रिया अपने पारस्परिक निश्छल एवं निर्मल प्रेम द्वारा राजा के हृदय में अपनी प्रिया के प्रति अत्यधिक प्रेम उत्पन्न करते थे। इसके अतिरिक्त राजा के पत्रों का वाहक भी कबूतर ही था। यह अपनी प्रिया को अत्यधिक प्रेम करता था। इसी कारण जब राजा उसके गले में कोई पत्र बांध देता था तो वह उसी के विरह में इधर उधर घूमता हुआ पुनः अपने स्थान पर आ जाता था और राजा का पत्र भी उसकी प्रिया तक पहुँच जाता था। इसी कारण उसे कर्म की सिद्धि का आश्रय माना है।

कबूतरों के साथ विनोद करना भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। सभी प्राचीन भारतीय राजाओं का कबूतर मनोरंजन का साधन था। किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मनोरंजन के साथ ही साथ कबूतर स्वास्थ्यवर्धक पक्षी है। कबूतर के पंखों से निसृत जितनी भी वायु होती है वह अत्यन्त शुद्ध तथा अनेक प्रकार के रोगों को नाश करने वाली होती है। अतः राजा का पारावतों के प्रति इतने स्नेह का यह भी एक कारण हो सकता है। पारावतों के साथ विनोद करते समय कबूतर के पंखों की वायु राजा तक अवश्य पहुँचती थी जो उसके स्वास्थ्य की वृद्धि में सहायक सिद्ध होती थी। सोमेश्वर ने कबूतर के प्रति अत्यन्त पवित्र प्रेम स्पष्ट किया है। उसे उन्होंने पवित्र, शुभदर्शन वाला, राज्य कार्य के लिए उपयोगी बतलाया है।

सारमेय विनोद

पारावत विनोद के पश्चात् सोमेश्वर देव ने सारमेय विनोद का वर्णन किया है। राजा उस समय में अनेक प्रकार के शुभ लक्षणों वाले कुत्तों तथा कुतियों द्वारा भी अनेक प्रकार से मनोरंजन करता था। उसी का वर्णन इस सारमेय-विनोद के प्रकरण में हुआ है। इस प्रकरण में सर्वप्रथम सोमेश्वर देव ने बलवान कुत्तों की उत्पत्ति के लिए आभिर, सेवुण, कह्लोर, त्रैगर्त, दुग्धवाट, कर्णाट देश, आन्ध्र देश, वनवास, तालनोर, तापीतट आदि राष्ट्रों के नामों का उल्लेख किया है।[2]

इसके पश्चात् कुत्तों के लक्षण बतलाये हैं। रोम युक्त शरीर वाला कुत्ता आभीर, पतली त्वचा वाला कुत्ता सेवुण, स्वच्छ रोमों से युक्त कुत्ता कह्लोर (इसकी पूछ बड़ी तथा पतली होती है), महान् शरीर वाला कुत्ता त्रैगर्त, कृश अंगों वाला कुत्ता दुग्धवाट होता है। कर्णाट देश में उत्पन्न हुआ कुत्ता टेढ़े

---

१. वही ४।११।१२९७। २. वही ४।१२।१२९८-१३००।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मेढे बालों से युक्त होता है। आन्ध्र देश का कुत्ता छोटे शरीर वाला होने पर भी अत्यन्त बलशाली होता है। वनवास का कुत्ता रोम युक्त, विदर्भ देश का कुत्ता सुन्दर तथा रम्य आकृति वाला, तालनीर में उत्पन्न हुआ कुत्ता छोटे रोमवाला, कान्तिमान् एव सुन्दर होता है। तापीतट का कुता कोमल अंगों वाला तथा पांडुर का कुत्ता चितकबरा होता है।[1] इस प्रकार के विभिन्न देशों में उत्पन्न हुए विभिन्न प्रकार के कुत्तों के शारीरिक लक्षणों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है।

धूम्रश्रङ्ग वाले, कृष्ण वर्णवाले, श्वेत भ्रू तथा नेत्र वाले, कृष्णरोहित, अनेक वर्णों वाले, श्वेत बिन्दु से युक्त त्वचा वाले, ऊँचे, चिकने तथा गिरे हुए कान वाले, शिर में श्वेत बालों से युक्त आवर्तहीन कुत्तों को सोमेश्वर ने अधम प्रकार का बताया है और उन्हें ग्रहण न करने का आदेश दिया है।[2] राजा को इस प्रकार के कुत्तों को न कभी ग्रहण करना चाहिए और न उन्हें विनोद के लिए ही प्रयोग में लाना चाहिए।

सोमेश्वर के समय में सारमेय तथा सारमेयी दोनों के द्वारा ही विनोद किया जाता था। इसी कारण सोमेश्वर ने विनोद के उपयुक्त कुत्ते के लक्षणों का भी वर्णन किया है। रसोन के बीज के सदृश दाँतों से युक्त, आम्र-पत्र की भाँति जिह्वा तथा रञ्जित मुखवाला, लाख के सदृश लाल तथा ऊँचे नेत्रों से युक्त, झुकी हुई भौंहों वाला, स्थूल शिरवाला, सर्जपत्र के सदृश कर्ण-प्रदेशवाला, स्थूल दीर्घग्रीवा एवं नखों से युक्त, विस्तीर्ण वक्षस्थल, मांस से हीन उरु तथा जंघा वाला, कर्कश रोमों से युक्त, सुअर, पुंडरीकाश्व, मल्ल आदि को भेदने में चतुर, शक्तिशाली कुत्ते को विनोद के लिए राजा को प्रयोग में लाना चाहिए।[3]

कुत्तों के पश्चात् दीर्घ, निर्मांस शरीरवाली, कृशनासिकावाली, अल्पभोजन करनेवाली, सुन्दर कर्णोंवाली, कृश स्कन्धवाली, शशक के सदृश पृष्ठ भाग से युक्त, कन्दुक के आकार के मस्तक से युक्त, समान जंघाओंवाली, सूक्ष्म रोमों से युक्त शरीरवाली, एक-दो अथवा तीन बार की प्रसूता कुक्कुरांगनाओं को शश, कोंकट, सारंग, कुरंग आदि को मारने के लिए लगाना चाहिए।

शशकोंकट्टसारंगकुरंगहरिणेनकान् ।
हन्तुमेताः प्रयोक्तव्यास्त्वरिताः कुक्कुरांगनाः ॥[4]

इन कुत्तियों को मांस, चर्बी तथा रात्रि में खीर द्वारा पुष्ट करना चाहिए।

---

१. वही ४।११।१३०१-१३०५ । २. वही ४।१२।१३०६-१३०९ ।
३. वही ४।१२।१३०९.१३१६ । ४. वही ४।१२।१३२० ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रसूता कुत्तियों को उसी प्रकार माड़ पिलाकर पुष्ट करना चाहिए जैसे दुग्ध पान द्वारा बालक पुष्ट किया जाता है।[1]

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त दो कुत्तियों को वन में अपने घोसले में स्थित शश को मारने के लिए भेजना चाहिए। यह कार्य राजा की पण (शर्त) के आधार पर करवाना चाहिए। जो कुतिया सर्वप्रथम आगे जाकर उसे मार दे वही जीत जाती थी, किन्तु यदि वे दोनों जाकर साथ ही उसे पकड़ती थीं तो वे दोनों ही बराबर रहती थीं। इस प्रकार राजा विनोद करता था।[2]

सुअर को मारने के लिए अनेक उत्तम लक्षण वाले कुत्ते छोड़े जाते थे। वे सब उसके पीछे लग जाते थे। कुत्तों के पीड़ित करने पर यदि सुअर उन्हें रोकने के लिए अपना सिर आगे करता था, गर्जन करता था, घर्घरनाद कर भीषण संघटन करता था तो राजा तुरन्त तोमर, भाला तथा तीक्ष्ण बाण आदि के द्वारा उसे बेंध देता था। तब वे सभी कुत्ते दौड़ कर उसके स्कन्ध, कण्ठ तथा कर्णादि को अपने दांतों से पकड़ कर, काटकर खा जाते थे और किलकिल नाद करता हुआ वह अपने प्राण त्याग देता था। इस प्रकार अपने कुत्तों के शौर्य को देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होता था। सम्भवतः उस समय में कुत्तों तथा कुत्तियों द्वारा सुअर तथा मृगों आदि का शिकार कराया जाता था जिसके द्वारा राजा का मनोरंजन होता था।

सारमेय विनोद का यह प्रकरण इस बात की पुष्टि करता है कि सम्भवतः सोमेश्वर के समय में कुत्तों एवं कुत्तियों की शिक्षा पर भी अधिक ध्यान दिया जाता था। राजा को कुत्तों के लक्षणों का पूर्ण ज्ञान था। उसी ज्ञान के आधार पर वह उत्तम लक्षण वाले कुत्तों एवं कुत्तियों को अपने समीप रखकर शिक्षा दिलवा कर उनके द्वारा शिकार करवा कर अत्यन्त आनन्द का अनुभव करता था। कुत्ते राजा के प्रासाद में ही पाले जाते थे और जब कोई जंगली सुअर अथवा मृग अचानक राजधानी के अन्दर प्रवेश करता होगा तब इन कुत्तों को उस पर छोड़कर उसे मरवाया जाता होगा। इस प्रकार कुत्ते उस समय राजा के विनोद तथा रक्षा दोनों के ही साधन थे।

श्येन विनोद

इस विनोद को सोमेश्वर ने बड़ा ही कौतूहलपूर्ण बतलाया है। सर्वप्रथम सोमेश्वर ने शालिव, जावल, लड्घु, प्राजिक, लंगण, संचाण, वेंसर, गृध्र, जवल कंठिक, चंडी, यवावह आदि अनेक प्रकार की श्येनों की जातियों का वर्णन किया है—

---

१. वही ४।१२।१३२२-२४। २. वही ४।१२।१३२४-१३३८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शालिवा जावला लङ्घु(ग्नः) प्राजिको लंगणस्तथा ॥
सचाणा वेसरा गृधास्तथा जवलकंठिकाः ।
चंडी यावावहाः श्येनाः श्येनानां जातयस्त्विमाः ॥[1]

इन सब जातियों के वर्णन के पश्चात् सोमेश्वर ने अजड नामक श्येनयोषित् को ही विनोद के लिए उपयुक्त तथा श्रेष्ठ बतलाया है क्योंकि यह विशाल शरीर धारण करने के कारण विनोद के समय अधिक मनोरञ्जक करती थी—

अजडेति च विख्याता श्येनयोषा बृहद्वपुः ।
श्येनजातिषु विख्याता विनोदेष्वजडा वरा ॥[2]

कोणक जाति का श्येन अल्प शरीरवाला होने के कारण अधम माना गया है और उसके द्वारा विनोद में भी अधिक आनन्द नहीं आता ऐसा सोमेश्वर ने कहा है—

कोणका स्वल्पकायत्वादधमा लघुमानकाः ।[3]

राजा को विनोद के लिए श्येनों को प्रारम्भ से ही रखना चाहिए। एक वर्ष के श्येन के बच्चे को नव[4], मुक्त तथा प्ररूढ़ पुच्छ वाले को कुपुचा[5] तथा जो पक्षहीन हैं उन बच्चों को अजेलम्ब[6] कहते हैं। यह श्येन कुछ बड़े हो जाने पर वर्षाकाल में अपने पंखों को गिरा देते हैं तथा शरद् ऋतु में उनके पुनः नवीन पंख जम आते हैं—

वर्षासु पुच्छं मुंचन्ति नवं शरदि बिभ्रति ।[7]

इसी प्रकार प्रतिवर्ष नवीन तथा दृढ़ पंखों को धारण कर और अधिक बली हो जाते हैं।

इन श्येनों को पकड़ने के लिए चार प्रकार के नियमों का उल्लेख किया है—

करैर्जालैश्च पाशैश्च चिक्कलेपैश्च युक्तितः[8]

अर्थात् जो श्येन शावक छोटे होते थे तथा जिनके पंख आदि ठीक प्रकार से नहीं जम पाते थे उन संचाण तथा वेसर प्रकार के श्येनों को हाथ से ही पकड़ लिया जाता था। जाल से पकड़ने के लिए एक जाल बिछा दिया जाता था और जाल के अन्त में कबूतर बैठा दिये जाते थे। इस प्रकार श्येनों को कबूतर का लालच दिलाकर आकाश से उतारा जाता था। तब वे आकर जाल

१. वही ४।१३।१३२९-३० ।
२. वही ४।१३।१३३२ ।
३. वही ४।१३।१३३३ ।
४. वही ।
५ वही ४।१३।१३३४ ।
६. वही ४।१३।१३३७ ।
७. वही ४।१३।१३३४ ।
८. वही ४।१३।१३३६ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में फंस जाते थे।[1] इसी प्रकार दंड में जाल फंसाकर हरित पल्लवों से ढककर रख दे। जब श्येन खाने के लिए आते थे तो उनका गला पकड़ कर खींच लिया जाता था और शीघ्र ही पाश से मुक्त कर दिया जाता था।[2]

इसके अतिरिक्त एक चिपचिपे पदार्थ द्वारा भी श्येनों को पकड़ा जाता था। यह विधि अत्यन्त मनोरंजक होती थी। अश्वत्थ के दुग्ध को अग्नि में पकाकर जब वह चिपचिपा हो जाता था तो उसमें थोड़ा तेल मिलाकर वह चिपचिपा पदार्थ उन्हीं बंधी हुई लकड़ियों में लगा दिया जाता था और वे यष्टियां बंधे हुए पक्षी के पास ही रख दी जाती थी। जब श्येन पक्षी खाने के लालच से उतर कर उन यष्टियों पर बैठता था तो चिपक जाता था। उससे चिपक जाने पर उसे पकड़ कर तेल द्वारा चिपका पदार्थ उसके पंखों से छुड़ा दिया जाता था और उसके पैर में एक डोरी बांध दी जाती थी।[3] श्येन को पकड़ लेने के पश्चात् उसके मुख को मांस खंड देकर छुआ जाता था।[4] और उसका डर छुड़ाने के लिए उसे बार बार छुआ जाता था। उसे दो रात्रियों तक सोने नहीं दिया जाता था। तीसरे दिन सोकर उठने पर उसे चना दिया जाता था।[5] श्येन का धारक श्येन को ये वस्तुयें इतनी मात्रा में देता था जिससे उसकी क्षुधा शीघ्र ही बढ़ जाती थी। थोड़ी देर पश्चात् उसे कुछ खाद्य पदार्थ एक हाथ की दूरी से दिखाया जाता था जिससे वह आकर्षित होकर उसे पकड़ने की चेष्टा करता था।[6] उस श्येन को एक बड़ी तथा चिकनी डोरी द्वारा बांधा जाता था जिसके एक ओर जाल तथा एक और मुद्रिका बंधी रहती थी।[7] उस डोरी के दोनों छोरों को श्येन के पोषक तथा शिक्षक हाथ से पकड़ते थे।[8]

इस प्रकार से श्येन को बांधने के पश्चात् श्येन को शिक्षा दी जाती थी। उसे चटक दिखाकर उससे 'एहीति' (आओ) कहा जाता था।[9] थोड़े दिन पश्चात् उसे कुछ दूर से चटकादि दिखाया जाता था और वह उसे दौड़ कर ग्रहण कर लेता था। तब उसे बन्धन से मुक्त कर दिया जाता था और उसे आकार में चटकों को मारने के लिए मुट्ठी में पकड़कर छोड़ा जाता था।[10] इस प्रकार से सचाण, वेसर तथा रगण जाति के श्येनों को शिक्षा दी जाती थी।

१. वही ४।१३।१३३९।
२. वही ४।१३।१३४१-४३।
३. वही ४।१३।१३४४-१३४८।
४. वही ४।१३।१३४८,४९।
५. वही ४।१३।४९-५१।
६. वही ४।१३।१३५३।
७. वही ४।१३।१३५४।
८. वही ४।१३।१३५५।
९. वही ४।१३।१३५६।
१०. वही ४।१३।१३५८,५९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्य प्रकार के श्येनों की शिक्षा में मुट्ठी द्वारा छोड़ने का आदेश नहीं दिया गया है—

> संचाणं वेसरं चैव तथा रगणजातिकम्।
> शिक्षयेन्मुष्टियोगेन तदन्यान्मुष्टिना विना ॥[1]

जलव तथा कट्टिक जाति वाले श्येनों को सोमेश्वर ने बिना यष्टि तथा मुट्ठी के शिक्षा देने के लिए बताया है और प्राची तथा गृध्र जातिवाले श्येनों को शशक के द्वारा शिक्षा दी जाती थी।[2] जालिव तथा जावल आदि जातियों वाले श्येनों को वचनों द्वारा ही शिक्षा दी जाती थी।[3] इसको शिक्षा देने के लिए बड़े ही मनोरंजक ढंग का सोमेश्वर ने वर्णन किया है।

सर्वप्रथम हाथ में कौआ लेकर श्येन को दिख कर उसे बुलाया जाता था। जब वह दौड़कर उस पर झपटता था तो हाथ से कौआ छोड़ दिया जाता था।[4] इसी प्रकार अनेक बार किया जाता था जिससे उसे अपने शिकार को झपट कर पकड़ने का अभ्यास हो जाता था। वचनों द्वारा भी उसे कार्य करने के लिए अभ्यस्त बनाया जाता था। इसी प्रकार उसे आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को भी मारने की शिक्षा दी जाती थी।[5]

श्येनों के पूर्णरूपेण शिक्षित हो जाने पर राजा उनको विनोद के लिए प्रयुक्त करता था। विनोद करवाने के एक दिन पूर्व श्येन को आधा ही पेट भोजन दिया जाता था तथा उसे सोने भी नहीं दिया जाता था। इससे उसमें क्रोध की वृद्धि होती थी।[6] इस प्रकार के श्येनों को लेकर श्येनों का मोचक राजा के साथ उस भूमि में जाता था जहां बहुत से तृण होते थे।[7]

वन में पहुँच कर सर्वप्रथम यष्टियों द्वारा घास को तथा झाड़ियों को खूब पीटा जाता था जिससे सभी पक्षी तथा खरगोश आदि भयभीत हो जायं।[8] तत्पश्चात् राजा विविध प्रकार के लावकों को भिन्न-भिन्न पक्षियों तथा पशुओं आदि के बीच में छोड़ता था। वेसर तथा अल्लग जाति के श्येनों को कपिंजल, लवा, तित्तिर, मयूर आदि पक्षिकों के मध्य छोड़ा जाता था।[9] शालिव श्येन को क्रौंच, सारस तथा कंक पक्षियों के मध्य, गृध्र जाति के श्येन को बकुला, तथा काकों के मध्य छोड़ता था[10] और प्रसन्न होकर उनका युद्ध देखता था।

---

१. वही ४।१३।१३६०।
२. प्रांची च गृध्रजाती च शशकेषु नियोजयेत्। वही ४।१३।१३६१।
३. वही ४।१३।१३६१।
४. वही ४।१३।१३६२,६३।
५. वही ४।१३।१३६४,६५।
६. वही ४।१३।१३६६,६७।
७. वही ४।१३।१३६८,६९।
८. वही ४।१३।१३७०,७१।
९. वही ४।१३।१३७२,७३।
१०. वही ४।१३।१३७२-७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सभी जाति के श्येन अपने चारों ओर के पशुओं एवं पक्षियों से युद्ध करते थे वेसर श्येन रगणों को तथा संचाण अपनी मुष्टि शक्ति तथा वेग से आकाश में स्थित पक्षियों को, शाल्वि दूर में स्थित दिखाई पड़ने वाले कंक आदि को अपने पक्ष के बल से मार डालता था।[1] प्राजिक तथा गृध्र जाति के श्येन अपने स्थूल शरीर द्वारा बड़े-बड़े पक्षियों को मार डालते थे तथा दूर में स्थित पक्षियों पर झपट कर उन्हें अपने पक्ष बल द्वारा समाप्त कर देते थे।[2] राजा वहीं पर समीप में ही बैठ कर उन सभी श्येनों के युद्ध को देखकर अपना मनोरंजन करता था।

श्येन विनोद के प्रसंग का अन्यत्र उल्लेख नहीं हुआ है। इससे विदित होता है कि यह श्येन युद्ध विनोद सम्भवतः पहिले समाज में प्रचलित न था अथवा यदि प्रचलित भी होगा तो बहुत ही कम। इसी कारण कुक्कुट, मेष आदि के युद्ध के साथ-साथ श्येन युद्ध के प्रसंग नहीं प्राप्त होते। किन्तु सोमेश्वर के समय में यह श्येन युद्ध द्वारा विनोद प्राप्त करने की प्रथा अधिकांश रूप में प्रचलित थी। अन्य जनों के साथ राजा भी इस युद्ध को देखता था।

सोमेश्वर के समय में श्येन विनोद जिस प्रकार से किया जाता था उससे विदित होता है कि अपने शिकार को पूर्ण रूप से मार लेने की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर ही अनेक जातिवाले श्येनों को वन में ले जाकर राजा सभी पक्षियों के मध्य छोड़ता था।

मत्स्य विनोद

श्येन विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने मत्स्य विनोद का वर्णन किया है। अन्य पशुओं के साथ ही साथ मछलियां भी तत्कालीन समाज में व्यक्तियों के विनोद का आधार थीं। राजा विशेषरूप से इस विनोद द्वारा अपना मनोरञ्जन करता था इसी कारण सोमेश्वर ने इस विनोद के लिये 'राजवल्लभः'[3] शब्द का प्रयोग किया है। इस विनोद के अन्तर्गत सोमेश्वर ने मछलियों की जातियों उनके अनेक प्रकार, उनके उत्पन्न होने का स्थान उन्हें पकड़ने के लिये प्रयोग की जानेवाली वस्तुओं तथा अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुओं का वर्णन किया है। सोमेश्वर ने मछलियों की जाति के विषय में कहा है—

मत्स्याः स्युर्बहुजातीया गणनागोचरा न ते।[4]

---

१. वही ४।१२।१३७६,७७। २. वही ४।१३।१३७८,७९।

३. 'अग्रे मत्स्यविनोदोऽयं कीर्त्यते राजवल्लभः।'

वही ४।१४।१३८१

४. मानसो० ४।१४।१३८१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इससे विदित होता है कि मछलियों की जाति की गणना करना अत्यन्त कठिन है। उन्होंने इस प्रकरण में केवल विनोद के लिये उपयुक्त मछलियों का ही वर्णन किया है। विनोद के उपयक्त सोमेश्वर ने केवल दो प्रकार की मछलियाँ बताई हैं[१] : १. चर्मजा और २. शल्कजा। वृक्ष के चर्म के सदृश चर्म से पूर्ण मछलियां चर्मजा होती है ये शल्क से शून्य होती है।[२] किन्तु शल्क शक्ति से से पूर्ण अंगवाली मछलियां शल्कजा कहलाती है।[३] ये दोनों प्रकार की मछलियाँ स्थूल (मोटाई) तथा सूक्ष्म (दुबला) के भेद से दो-दो प्रकार की होती हैं—

प्रत्येकं ते द्विधा प्रोक्ताः स्थूलसूक्ष्मविभेदतः।[४]

इन दोनों प्रकार की मछलियों के भी अनेक भेद हैं और उनमें से कुछ सागर में उत्पन्न होनेवाली हैं तथा कुछ नदियों में उत्पन्न होनेवाली मछलियां हैं। सौर, शृंगसोर, चंविलोच, बल्ल, कण्टकार, सेकुचक आदि मछलियां चर्मजा मछलियां हे और ये सागर में उत्पन्न होती हैं[५] तथा कोवासक, खिरीड, पाठीन, सिंहतुण्डक आदि चर्मजा मछलियां समुद्रों में नीचे की ओर रहनेवाली होती हैं और इनका बड़ा ही विशाल शरीर होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की मध्यम कायवाली चर्मजा मछलियां नदी में उत्पन्न होती हैं।[६] गाग्घर, गोज्जल, विदुव आदि स्वल्पशरीरवाली मछलियां भी नदी में ही उत्पन्न होती हैं।

शल्कजा मछलियों में पिण्डमान महान् शरीर वाली तथा पल्मकु, तोमर आदि मध्यम शरीरवाली मछकियां समुद्र में उत्पन्न होती हैं।[७] महाशील, कह्वव, नाडक, वडिश, वटगि आदि महान् शरीर वाली मछलियां तथा रोहित, स्वर्णमीन खण्डालिप आदि मध्यम शरीर वाली मछलियाँ सरिताओं में होती हैं।[८] इस प्रकार सोमेश्वर ने नदी तथा सागर में प्राप्त होनेवाली प्रत्येक जाति की

---

१. तथापि कियतो वक्ष्ये विनोदेषूपयोगिनः।
ते च जात्या द्विधा ज्ञेयाश्चर्मजाः शल्कजा इति ॥
मानसो० ४।१४।१३८२।

२. "द्रुमचर्मविनद्धांगाः चर्मजाः शल्कवर्जिताः।'
मानसो० ४।१४।१३८३।

३. "शल्कशुक्तिपिनद्धांगाः शल्कजाः ते प्रकीर्तिताः।"
मानसो० ४।१४।१३८४।

४. मानसो० ४।१४।१३८३। ५. मानसो० ४।१४।१३८५,८६।

६. पाटलः पिच्छकस्त्वेकस्तथान्यो दन्तपाटलः।
मध्यकायाविमौ मत्स्यौ नदीजौ चर्मसम्भवौ ॥ वही ४।१४।१३८७,८८

७ वही ४।१४।१३८९,९०। ८. वही ४।१४।१३९०-९२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्तम विशाल तथा मध्यम शरीर वाली अनेक प्रकार की मछलियों का वर्णन किया है।

इसके पश्चात् वे मछलियों को प्राप्त करने के स्थानों का उल्लेख करते हैं। सागर से लेकर पर्वत तक की कौरत्थ आदि छः अथवा सात योजन के विस्तारवाली नदियों में, गम्भीर तथा विशाल जलराशि से युक्त तालाबों में, मसिल, तुम्ब्र तथा वाम्त्रि आदि मध्यम प्रकार की शल्कजा मछलियां विलास करती हैं।[1]

इनको इन्हीं स्थानो में प्राप्त किया जा सकता है—

तेषां संग्रहणे स्थानमिदमेव न सागरः।[2]

शिलाओं से पूर्ण तथा कर्दमहीन नदियों में कोवाकी आदि विशालशरीरवाली मध्य जाति की शल्कजा मछलियां रहती है।[3] अत्यधिक बालुका से युक्त गम्भीर जल में रोहितादि जाति की मछलियां प्राप्त हो सकती हैं। पंख से पूर्ण, सुविस्तीर्ण प्रवाहरहित ह्रदों में पाठीन जाति की मछलियां कच्छपों के साथ निवास करती हैं तथा पर्वतीय प्रदेश के विवरों, नाभि पर्यन्त जल में, ह्रदशीर्षों के मध्य में अथवा शृंगस्थल में, योग्यस, तुम्ब्र, वामी आदि मछलियां इच्छापूर्वक विचरण करती हैं।[4] इस प्रकार सोमेश्वर ने जो विभिन्न प्रकार की मछलियों को प्राप्त करने के लिये विभिन्न स्थानों का उल्लेख किया है, यह विवरण सोमेश्वर के मत्स्य-विषयक विशेष ज्ञान को प्रकट करता है।

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने मछलियों की विभिन्न प्रकार की खाद्य वस्तुओं का वर्णन किया है। उनका कथन है कि तिल, मांस, पिण्ड, लाई का चूर्ण, तथा भूने हुये चने का चूर्ण भात में मिला कर बेल के बराबर बने हुए गोलों द्वारा पह्लव आदि एवं नदियों में विचरण करने वाली शल्कजा मछलियों को चुनना चाहिये।[5] सिक्थ से युक्त चूर्ण को जल के मध्य डाल कर, उसे हिला कर रोदनमिश्रित तिल तथा मांस के कणों के बेर के बराबर गोले बनाकर रोहितादि मध्यकाय वाली शल्कजा मछलियों को चराना चाहिये।[6] इसके अतिरिक्त कौसुम्भ के तूर्ण तथा भात मिश्रित सत्तू के आम की आकृति के बने हुए गोलों

---

१. वही ४।१३।१३९३,९४। २. वही ४।१४।१३९५।

३. नद्यां कर्दमहीनायां सशिलायां भवन्ति ते।
कोवाकीया महाकायाः सुशल्का मध्यजातयः॥'
वही ४।१४।१३९५,९६।

४. वही ४।१४।१३९६-१३९९। ५. वही ४।१४।१४००,१४०१।

६. वही ४।१४।१४०२,०३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वारा ब्रडिश जाति की मछलियों को, बिल्व पत्रों को सत्तू के साथ मिलाकर धात्रीफल के आकार के पिण्ड बनाकर तथा तिल के खण्डों द्वारा कोवकादि मछलियों को चुनाना चाहिए।[१] सुगन्धित मांस के द्वारा पाठीन सिंहतुण्ड आदि मछलियों को चुनाना चाहिये।[२] मरली मछली को यत्नपूर्वक कर्कट के मांस द्वारा तथा भुने हुए चूहे के मांस के टुकड़ों द्वारा कच्छपों को चुनाना चाहिये।[३] भूलव आदि क्षुद्र मछलियों को तडाग जालिदेश अथवा जल लेने के स्थानों में मांस खिलाना चाहिये।[४] इस प्रकार से राजा उक्त भक्ष्य सामग्री द्वारा विभिन्न प्रकार की मछलियों को अपने सेवकों द्वारा चुनवाये। मछलियों के साथ ही साथ सोमेश्वर ने कच्छपों को चुनाने की सामग्री का भी वर्णन किया है। यह प्रकरण इस बात की पुष्टि करता है कि सोमेश्वर इन सभी प्रकार की मछलियों द्वारा विनोद करता था। उसे प्रत्येक प्रकार की मछलियों की खाने वाली सामग्री का पूर्ण ज्ञान था, क्योंकि मत्स्यविनोद में मछलियों को पकड़ते समय उनके प्रिय भोजन द्वारा ही उन्हें समीप लाया जाता था।

जल में भोजन डलवा कर, अपने समीप बुलाकर सोमेश्वर ने मछलियों के वेधने का आदेश दिया है। मछलियों को वेधने के लिये उन्होंने अनेक प्रकार की घड़ियों एवं रज्जुओं का वर्णन किया है जिनके द्वारा उस समय में मछलियाँ वेधी जाती थीं। रज्जुओं में दृढ़ता के ध्यान से मूर्वा से बनी रज्जु श्रेष्ठ, कन्दुक तथा अर्क से बनी हुई रज्जु निम्नतर प्रकार की होती है—

"तत्र मूर्वाभवाः श्रेष्ठा मध्यमा कन्दुकार्कजाः।
कार्पासजाः कनिष्ठाः स्युर्द्राढर्चमेद्यथा क्रमम्॥"[५]

स्थूल, मध्यम तथा सूक्ष्म के ध्यान से तीन प्रकार की रज्जु होती है। यह डोली आम के वृक्ष की टहनी के अन्तप्रदेश के बराबर मोटी हो।[६]

रज्जु के पश्चात् यष्टि का वर्णन हुआ है। यष्टि पृथ्वी से निकले हुए मुलायम बांस की बनानी चाहिए। इसके अतिरिक्त माड की शाखा से अथवा खरट के पुच्छ भाग से भी बन सकती है। यष्टि चिकनी, बिना छिद्र की, न बहुत बड़ी, न बहुत छोटी, न शिथिल, न अधिक दृढ़ होनी चाहिए।[७] तन्वी यष्टि सबसे

१. वही ४।१४।१४०३ ०४। २. वही ४।१४।१४०६।
३. वही ४।१४।१४०७।
४. 'भूलवाक्षुद्रमत्स्यांश्च चारयेद्वामिषं वतो।
तडागपालिपादेशे जलाहरणतीर्थके॥'" वही ४।१४।१४०८।
५. वही ४।१४।१४११.१२। ६. वही ४।१४।१४१४।
७. वही ४।१४।१४१८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्रेष्ठ मानी जाती है। यह अंकुश की भांति वक्र होती है। इसका मूल भाग स्थूल तथा आगे का भाग सूक्ष्म होता है और कांटा बंधा होता है। रज्जु बांधने का स्थान या तो वृत्ताकार होता है अथवा फलक के आकार का होता है।[1]

बडिश पानी के अन्दर डाल दी जाती है।[2] स्थूल रस्सी में स्थूल यष्टि तथा कृश रज्जु में कृश यष्टि नहीं बांधनी चाहिए और यह रज्जु जल तथा मीन के प्रमाण से दीर्घ अथवा ह्रस्व बनानी चाहिये। इसी रज्जु के मध्य में मयूर पिच्छ बांध कर और यष्टि के मूल में अन्य रज्जु बांध दे और इस प्रकार मछली को मोहित करने के लिये उसे पुच्छ के आकार का बनादे। इसी पुच्छ के समीप मछली की रुचि का आहार पिष्ट अथवा मांस बांध दे। बडिश के खाने योग्य पदार्थ चुनने के स्थान में अर्थात् जल में फेंक दे। जब वह अपने भक्ष्य पदार्थ से आकर्षित होकर उसके समीप आकर उसे खा चुके और चलने लगे तब उस पर आघात करे और रज्जु द्वारा खींच ले। इस प्रकार बडिश को बेधने का नियम सोमेश्वर ने बतलाया है।[3] इससे विदित होता है कि अधिकांशतः बडिश मछली द्वारा ही विनोद उस समय में होता था।

इसके अतिरिक्त अन्य मछलियों को बेधने के भिन्न-भिन्न प्रकार बतलाये हैं। यदि मछली बलहीन हो तो इसे खींच कर निकाल ले, यदि स्थूलकाय हो तो यष्टि को छोड़ कर धीरे-धीरे खींचे।[4] इस प्रकार राजा अपने सेवकों के साथ मत्स्य विनोद करता था।[5]

सोमेश्वर ने मत्स्य विनोद का इतना स्वाभाविक एवं विस्तृत वर्णन किया है कि उस समय में होने वाले मत्स्य विनोद का पूर्ण चित्र उपस्थित हो जाता है। राजा अपने खाली समय में मत्स्य-विनोद कर बड़ा आनन्द प्राप्त करता था।

मछली प्रारम्भ से ही व्यक्तियों के मनोरंजन का साधन रही है चाहे वह खाने के विषय में रही हो अथवा अन्य किसी क्षेत्र में। भारतीय राजा मछली खाने के सदा से बड़े प्रेमी रहे हैं किन्तु मछली मारने से उत्पन्न विनोद का इतना विस्तृत प्रसंग अन्यत्र नहीं प्राप्त होता। हिन्दी में 'झष मारने' की किंवदन्ती बहुत प्रसिद्ध है। संस्कृत में एक स्थल पर मछली से सम्बन्धित ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

---

१. 'स्थूलमूलं च सूक्ष्माण्डं कण्टकेन समन्वितम्।
रज्जुबन्धनदेशस्तु वृत्तोऽथवा फलकाकृतिः॥'
वही ४।१४।१४२२।

२. वही ४।१३।१४२३। ३. वही ४।१४।१४२२-१४२८।

४. वही ४।१४।१४३०। ५. वही ४।१४।१४३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्षारं वारि न चिन्तितं न गणिताः क्रूराश्च नक्रादय-
श्चञ्चद्वीचिकदम्बडम्बरमिलत्त्रासोऽपि दूरीकृतः।
मध्येऽम्भोनिधिमत्स्यांक भवता झम्पः कृतो लीलया
संपत्तिर्मकरार्जनै क्षिपदिह प्राणप्रयाणावधिः॥[1]

इस श्लोक में प्रयुक्त "कृतो लीलया" शब्द सम्भवतः मत्स्य-विनोद की ओर ही संकेत करता है। सोमेश्वर ने अनेक प्रकार की मछलियों का तथा उनके पकड़ने के नियम का सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन किया है। सम्भवतः उस समय में राजा मछली मारने में विशेष आनन्द प्राप्त करता था।

मृगया विनोद

मृगया विनोद प्रारम्भ ही से सभी राजाओं का विशेष रूप से मनोरञ्जन का साधन रहा है। महाराज सोमेश्वर भी मृगया के प्रेमी थे इसी कारण उन्होंने इस 'मृगया विनोद' के प्रकरण के अन्तर्गत ३१ प्रकार की मृगया का वर्णन किया है—

पानीयजा चारजा च क्षेत्रजा मार्गजा तथा।
उषरा दीपमृगया तथा च विटपाश्रया॥
वध्रजा काण्डपटजा मञ्चजा भूमिगेहजा।
वलिवर्दतिरोधाना महिषारोहणोद्भवाः॥
अश्वजा चित्रजा चैव शारीरी स्तम्भनी तथा।
वायुजा दमनोत्पन्ना गौरिजा कोपसम्भवा॥
कामजा ध्वनिजाता च तथा मदविकारजा।
नीहारजा पाशजाता जालजा यन्त्रसम्भवा॥
व्याघ्रमोक्षणसम्भूता तथा कवलदानजा।
एकत्रिंशत्प्रकारेयं मृगया राजसम्मता॥[2]

इन मृगयाओं के वर्णन के पूर्व सोमेश्वर ने सर्वप्रथम राजा के मृगया करने के लिये उपयुक्त स्थान एवं वन का वर्णन किया है। उन्नत पर्वतों से, गह्वर तथा कन्दराओं से युक्त, कण्टकों से पूर्ण, अधिक पाषाणों से भरे हुए दुर्गम मार्गों से युक्त, चलने में क्लेशदायी, अन्धकारपूर्ण, ऋक्ष व्याघ्रादि से सेवित, गज तथा सर्पादि से पूर्ण वन में राजा को मृगया के लिये नहीं जाना चाहिये।[3]

---

१. सुभाषितरत्नभाण्डागार पृ० २३४ जलचरान्योनयः १।

२. मानसो० ४।१५।१४४६-१४५०।

३. पर्वतैरुन्नतैर्युक्ता गह्वरैः कन्दरैर्युता।
मातंगसर्पबहुला वर्जनीयाटवान्तपैः॥ मानसो० ४।१५।१४३३.३५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राजा को चाहिये कि वह वन सदैव कण्टकों से हीन, वृक्षों से पूर्ण, समतल भूभाग से सुशोभित, वापी तडागों से पूर्ण, खाने योग्य फलों से युक्त वृक्षोंवाले, रक्षा से पूर्ण, छोटे, दुष्ट प्राणियों से शून्य, सारंग, हरिण, कुरंग, रुरु, शम्बर आदि मृगों, मयूर, लावक, कपिञ्जल, कपोत आदि पक्षियों से पूर्ण हो।[१] इस प्रकार के सुन्दर वन में राजा को मृगया के लिये जाना चाहिये। जो वन पूर्णरूप से सुरक्षित हो, एक योजन विस्तृत हो, जनरव से शून्य, विस्तृत मृगों से पूर्ण तथा समान भूभाग वाला हो ऐसे वनों की रक्षा करना सोमेश्वर ने राजा का परम कर्त्तव्य बतलाया है।[२]

राजा को चाहिये कि वह अपने नगर के समीप में स्थित वन में ही भैसों पर चढ़े हुए लुब्धकों के साथ मृगया करने जाय। इसके आगे वे पूर्व कथित अनेक प्रकार की मृगया क्रीड़ा का वर्णन करते हैं। इन मृगयाओं को सोमेश्वर ने राजा के योग्य बताया है क्योंकि इसी प्रसंग में वे कुछ ऐसी मृगयाओं का वर्णन करते हैं जो प्रमादपूर्ण तथा कुत्सित है और उन्हें राजा के लिये वर्जित बतलाया है।[3] इसके अतिरिक्त शिवा, जम्बुक, मार्जार, कोक, मूषिक आदि से उत्पन्न मृगया को सोमेश्वर ने कुत्सित बतलाया है और इसी कारण राजा को उसे त्याग देने का तथा विनोद के लिये उसका प्रयोग न करने का आदेश दिया है।[४] इसके आगे सोमेश्वर विभिन्न प्रकार की राजा के उपर्युक्त मृगयाओं का वर्णन करते हैं—

पानीयजा

इस मृगया के लिये पूर्व से ही राजा के सेवक तथा लुब्धकगण तैयारी करते हैं। जिस प्रकार के नदी, तडाग आदि के समीप विस्तृतस्थान को देखकर मृग पानी की इच्छा से आते हों उसी प्रकार का कृत्रिम जलाशय बनावे। जल का गड्ढा बनाकर लुब्धकगण रोक दे।[५] एक गड्ढा और खोद कर उसे वृत्त, बाँस, जाल, कटक आदि से चारों ओर से घेर दे[६] और उसके समीप

१. मानसो० ४।१५।१४३६-४१। २. वही ४।१५।१४४२,४३।

३. निमज्जनाज्जलस्यान्तः प्रवेशाच्च बिलान्तरे।
गवयस्याच्छभल्लस्य व्याघ्रस्य महिषस्य च॥
खड्गस्य मृगयात्त्यर्थं प्रमादबहुलायतः।
तस्मादेषा विवर्ज्या स्यात् धीमतां पृथिवीभुजाम्॥
वही ४।१५।१४५१,५२।

४. शिवाजम्बुकमार्जारकोकमूषिकसम्भवा।
कुत्सिता मृगया भूपैर्वर्जनीया विनोदने॥ वही ४।१४।१४५३

५. वही ४।१५।१४५५। ६. वही ४।१५।१४५६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वायु की दिशा को देखकर इस प्रकार का आंगन बनावे जिससे मनुष्य की गन्ध मृगादि न समझ सकें क्योंकि मनुष्य की गन्ध जानकर वे भाग जायेंगे।[१] इस प्रकार वायु की गति को जानकर दो गड्ढे बनावे। इसके अतिरिक्त जल पीने के स्थान के दोनों ओर दो गड्ढे बनावे जो दो धनु के बराबर विस्तीर्ण, एक हस्त के बराबर वर्तुल हो। उन दोनों गर्तों के पास आधा हाथ चौड़ा तथा दो हाथ लम्बा गड्ढा और बनावे। प्रधान गर्त के पश्चात् एक अन्य गर्त और बनावे जो दो हाथ लम्बा तथा तीन हाथ-चौड़ा हो। ये गर्त इस प्रकार से बनने चाहिये जिससे मनुष्यों की गन्ध को मृगादि न जान सकें।[२] इस प्रकार का प्रबन्ध करने के पश्चात् लुब्धक राजा के समीप जाकर गर्तों के निर्माण की तथा सब प्रकार के प्रबन्ध की इस प्रकार सूचना देता था—

विजयः क्रियतां देव कौतुकं ते भविष्यति।
मृगबेधेन पूर्यन्ते सायका शतसंख्यया॥"[३]

लुब्धक के द्वारा ऐसा निवेदन किये जाने पर राजा उल्लासपूर्ण मन से वाहनों को बुलाकर कुछ अन्य लुब्धकों तथा प्रेयसियों के साथ मृगया के लिये तैयार किये हुए स्थान को जाता था। वह अपने घोड़ों आदि वाहनों तथा अन्य व्यक्तियों को स्थान से बहुत दूर रखता था जिससे उनके शब्द को मृग न जान सकें।[४] राजा तथा उसके साथ के सभी जन हरितवर्ण के अंशुक तथा द्विपदी (पायजामे की भांति का एक वस्त्र) धारण किए रहते थे। सिर पर भी राजा हरा वस्त्र ही धारण करता था[५] और कुछ दीप मृगों के साथ तीक्ष्ण बाण हाथों में लिये हुए उस स्थान पर आता था।

मृगया के स्थल पर बना हुआ गर्त तूलगर्भित गद्दी से ढका रहता था और किसी गर्त के मध्य भाग में नीले स्वर्ण की तकियों से युक्त शय्या पड़ी होती थी। गर्त की पश्चिमी भित्ति नील वर्ण के वस्त्र से ढकी होती थी और कीलों द्वारा वह वस्त्र जड़ा होता था जिससे मिट्टी ऊपर न गिर सके। शय्या के आगे के भाग में धनुष रखा होता था। दोनों ओर के गर्तों में राजा अनेक तीक्ष्ण बाणों तथा फलक से युक्त लुब्धकों को बैठा देता था और पीछे के गर्त में दस, आठ, पांच अथवा सात भटों को छिपा देता था।[६] तत्पश्चात् राजा सन्ध्या समय अपनी प्रेयसियों के साथ प्रधान गर्त में प्रवेश करता था। शय्या पर वह स्वयं बैठता था और पीछे प्रेयसियों को बैठाता था। वहां पर

---

१. वही ४।१५।१४५८। २. वही ४।१५।१४५८-१४६२।
३. वही ४।१५।१४६४। ४. वही ४।१५।१४६५-६७।
५. वही ४।१५।१४६८। ६. वही ४।१५।१४६९-१४७४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रवेश करने के पश्चात् सभी हरित द्विपदी (पायजामे) को धारण कर लेते थे। वहां पर सब बिलकुल स्तब्ध दशा में चापल्यहीन होकर बैठते थे। सूर्य के अस्त हो जाने पर ताम्बूल को धारण करने वाले जो व्यक्ति गर्त के बाहर होते थे वे मृगों को दूर से देखकर उस स्थान से चले जाते थे।[1] मनुष्य से हीन स्थान हो जाने पर रज्जु के द्वारा उन दीप मृगों को लुब्धक चलाता था। उन्हें देखकर प्यासे वन मृग पानी पीने वहां आते थे। वहां पर मृगों के खाने के लिये चने आदि पड़े रहते थे।[2] मृग वहां आकर जब नीचे की ओर दृष्टि करके उन दीप मृगों के पीछे पानी पीने के लिये आते थे और नवीन गर्त को देखकर कुछ देर निश्चल हो जाते थे। पुनः जब वे झुकी हुई गर्दन से अपना सर गर्त में डालकर पानी पीने चलते थे उस समय राजा धनुष पर तिरछा बाण चलाकर मृग की कक्ष भाग में जोर से मार देता था और मृग पीड़ित हो जाता था तब उसे बांध लिया जाता था।[3] इस मृगया द्वारा राजा का बहुत मनोरंजन होता था क्योंकि अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही राजा उसमें मृग का वध कर देता था। उसे इधर-उधर मृग की खोज में भटकना नहीं पड़ता था। यह मृगया सभी में सर्वोत्तम मानी गई है।[4]

चारजा

जब वन में दावाग्नि लग जाती है और वहां की सब घास तथा तृण नष्ट हो जाते हैं तब वहां के मृग, कोयल आदि, पल्लव, अश्वत्थ, मधुक, फल, पुष्प, पके हुए चिञ्चा फलों, मदन, बकुल तथा आँवला आदि से पूर्ण वन में जाते हैं। वहां वे मूर्ख मृग विश्वासपूर्वक आयेंगे। तब राजा पूर्व की ही भांति गर्त में अथवा वृक्ष की ओट में बैठे। अपने आगे दीपमृगों को करके मध्याह्न अथवा रात्रि में मृगों के आने का समय जानकर राजा वहां ठहरे। दिन में गर्त में बैठकर, रात्रि में वृक्ष की ओट में अपने को छिपाकर अथवा गर्त में बैठकर राजा सारंग, हरिण, एण, रुरु तथा सम्बर आदि मृगों को मारता था।[5]

इन मृगों के बेधने के पश्चात् सोमेश्वर ने वराहों को बेधने का उपाय बतलाया है। सोमेश्वर ने पुष्ट वराहों को ही मारने का आदेश दिया है।[6]

क्षेत्रजा

चारजा मृगया के पश्चात् क्षेत्रजा मृगया का वर्णन हुआ है। यह मृगया का वर्णन हुआ है। यह मृगया क्षेत्र से ही सम्बन्धित है। अरहर, तिल,

---

१. वही ४।१५।१४७५-१४७९। २. वही ४।१५।१४८०, ८१।
३. वही ४।१५।१४८५-९१। ४. वही ४।१५।१४९२।
५. वही ४।१५।१४९९-१५०७। ६. वही ४।१५।१५०८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निष्पाव, गेहूँ, चने आदि के पुष्पों एवं फलों से पूर्ण क्षेत्रों में खाने के लिये जहां बहुत से मृग आते थे वहां पर गर्त खुदवा कर उसमें बैठ कर अथवा भूगृह (पृथ्वी के नीचे गृह ऐसा बनवाकर) में छिपकर राजा मृगों को मारकर मृगया का आनन्द उठाता था। इस मृगया को सोमेश्वर देव ने आनन्ददायी माना है।[1]

मार्गजा

जिस मार्ग से हरिण अपना भोजन प्राप्त करने के लिये अथवा जल पीने के लिये आते हों उस स्थान में ठहर कर गर्त अथवा वृक्ष की ओट में अपने को छिपा कर हरित अंशुक धारण कर राजा मृगों के आने के समय पर अचानक उन्हें रात्रि अथवा दिन में मारता था। अचानक मार्ग के बीच में ही मृगया करने के कारण इसे मार्गजा कहते थे।[2] यदि राजा दिन में मृगया करता था तो उसकी प्रेयसी का स्थान कुछ दूर पर बनाया जाता था और रात्रि में यदि मृगया करता था तो पांच लुब्धक उसके साथ रहते थे :

"पञ्चके लुब्धके युक्तौ विध्येद्रात्रौ दिवाऽपि वा।
दिवा चेत्प्रेयसीस्थानं किञ्चिद्दूरे प्रकल्पयेत् ॥"[3]

ऊषजा

यह मृगया अधिकांशतः ऊसर स्थान में ही की जाती थी। ऊसर स्थान में आकर जहां गर्त में पर्वत के तट पर, नदी के तट पर आकर मृग लवणान्वित मिट्टी खाते थे वहां वायु की गति को जान कर वृक्ष की ओट में राजा बैठ जाता था और मृग के पृष्ठ भाग में बाण मारता था।[4] वायु की गति का ध्यान इस कारण रखा जाता था जिससे वायु के साथ छिपे हुए राजा की गन्ध मृग तक न पहुँचे। इसी को ऊषजा मृगया कहते थे।

दीप मृगजा

यह मृगया दीप मृगों की सहायता से की जाती थी। इस प्रकरण में सर्वप्रथम सोमेश्वर ने दीपमृगों का लक्षण बतलाया है। जो सुन्दर नेत्र वाले, अभीरु, स्थिर, धीर, सहिष्णु तथा लोह निर्मित रज्जु से पूर्ण मुख वाले होते हैं

---

१. आढकीतिलनिष्पावगोधूमचणकादिभिः।
पुष्पितैः फलितैः पूर्णं क्षेत्रमायान्ति खादितुम्।
गर्ते वा भूगृहे स्थित्वा मृगान्विध्येन्नराधिपः ॥
वही ४।१५।१५४७, ४९।

२. वही ४।१५।१५५०, १५५३।

३. वही ४।१५।१५५२। ४. वही ४।१५।१५५४-१५५६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वही दीपमृग कहलाते हैं ।[१] इनके मुख में रज्जु बिल्कुल घोड़े की रास की ही भांति होती है । इन दीप मृगों में वे ही मृग श्रेष्ठ होते हैं जो चारे के लोभ से अपने पोषक का साथ नहीं छोड़ते और न अन्य वन्य मृगों के साथ मिल जाने पर ही अपने स्वामी को त्यागते हैं ।[२] इन्हीं की मृगया के लिये शिक्षा देनी चाहिये । इसके अतिरिक्त दीप हरिणियाँ भी इस मृगया में सहायता देती हैं ।

वर्षा ऋतु में वन के हरित तृणों से पूर्ण हो जाने पर पश्चिमी वायु चलने पर राजा प्रातः काल उठकर मृगया के लिये दीपमृगों से युक्त लुब्धकों के साथ जाता था ।[३]

वहां पर लुब्धक गण स्वेच्छापूर्वक चरते हुए मृगों को देखकर उनके आगे दीप मृगों को छोड़ देते थे और जब वन्य हिरन समीप आजाते थे तब राजा दीप मृग के पीछे से अथवा वृक्ष पर से चुपचाप छिपकर, बाण चलाकर उनको मार डालता था ।[४] दीप मृगों को वृक्ष से बांधकर भी उनका वध किया जाता था ।[५] इसके अतिरिक्त मुक्त दीप मृगों की सहायता से भी मृगया की जाती थी। तब लुब्धक वन में चने फैलाकर कुछ निश्चित संकेत करता था जिससे दीप मृग वापस आते थे और उनके साथ कुछ अन्य मृग भी आ जाते थे जिनका तुरन्त वध कर दिया जाता था ।[६]

इसके अतिरिक्त बलीवर्दतिरोधान[७] की विधि का उल्लेख सोमेश्वर ने किया है, जिसमें लुब्धक अपने को बैलों के पीछे छिपाकर उसके साथ चलते थे तत्पश्चात् कुछ मुक्त दीपमृग छोड़ दिये जाते थे जो जाकर वन्य मृगों के साथ मिल जाते थे। इस प्रकार चारों ओर से वन्य मृगों को घेर लेते थे और जब दीप मृग तथा वन्य मृग निश्चित स्थान पर आ जाते थे तब राजा वन्य मृगों को मार देता था ।[८]

इन विधियों के अतिरिक्त राजा दीपमृगों को लेकर वन में जाता था। जब वन्य मृग कामातुर होकर मृगों के समीप आते थे तब लुब्धक उनको भयभीत कर देते थे, जिससे वे भागते थे । इससे दीप मृग तथा वन्य मृग अलग अलग हो जाते थे उसी समय राजा उन भयभीत वन्य मृगों को मारता था ।[९] इस

---

१. वही ३।१५।१५५८-६१ ।
२. वही ४।१५।१५६२, ६३ ।
३. वही ४।१५।१४८७ ।
४. वही ४।१५।१५९६,१६०१ ।
५. वही ४।१५।१६०२ ।
६. वही ४।१५।१६०३-७ ।
७. वही ४।१५।१६०८ ।
८. वही ४।१५।१६०९-१६ ।
९. वही ४।१५।१६२०-२३ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रकार की मृगया का रामायण[1] तथा महाभारत[2] में निषेध प्राप्त होता है।

विटपजा

इसमें राजा हाथ में कोई छोटा वृक्ष धारण कर और अपने शरीर को उससे छिपा कर वायु की गति का ध्यान रखकर मृग के समीप जाता था। पश्चिम की वायु चलने पर अनेक वृक्षों तथा हरी घास से पूर्ण वन में राजा धीरे धीरे जाता था और स्वयं वृक्षवत् होकर अर्थात् अपने को वृक्ष के पत्रों में छिपाकर राजा तीक्ष्ण बाण द्वारा मृग को बेधता था।[3] इस मृगया में वृक्ष के द्वारा ही मृग को मारा जाता था। इसी कारण इसका नाम विटपजा पड़ा।

वध्रजा

इस मृगया में जाल द्वारा मृग बेधा जाता था। वायु का तिरछा प्रवाह होने पर चमड़े का बना हुआ रोमयुक्त जाल मृगयूथ को आता हुआ देखकर फैला दिया जाता था। उसके अन्त प्रदेश में राजा वृक्ष पर चढ़ कर बैठता था और सब लुब्धक बैल की भांति अपने चारों हाथ पैरों से इधर उधर घूमते थे। मृग के झुंड को देख कर एक उनमें से जोर जोर से शब्द करने लगता था। इस पर सभी मृग भय से त्रस्त होकर भागते थे और बधिका को पार करने का शीघ्रता से प्रयत्न करते थे। इस प्रकार भयभीत हुए मृग जाल को पार करते समय राजा के समीप आते थे और राजा उसी क्षण तीक्ष्ण बाण चलाकर मृग को मार कर अपना हस्तलाघव दिखाता था।[4] यह बड़ी ही कौतूहलपूर्ण मृगया थी। वध्री का आश्रय लेने के कारण ही यह बध्रजा नाम से प्रसिद्ध है।

काण्डपटजा

यह मृगया भी बड़ी ही मनोरञ्जक थी। इसके लिये भी पूर्व से ही तैयारी करनी पड़ती थी। मृग से पूर्ण वन के किसी बड़े वृक्ष की दक्षिणी पश्चिमी शाखा को काटकर उसके सामने तथा उसके दोनों ओर दो हाथ की दूरी पर दीवारें बनाई जाती थीं। पेड़ के पीछे की दीवार पांच हाथ की होती थी। उन दोनों ओर की दीवारों को नाभि प्रदेश की ऊँचाई तक पत्तियों एवं घास द्वारा ढक दिया जाता था। इस स्थान से लेकर कोस अथवा दो कोस की दूरी तक एक परदा लगाया जाता था। इसके दोनों ओर अंत तक सौ लुब्धक छिपे रहते थे। राजा उसे वृक्ष के सामने अपना धनुष बाण लेकर खड़ा होता था।

---

१. 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥ वा० रा०

२. किन्दम ऋषि ने पाण्डु को शाप दिया था।

३. मानसो० ४।१५।१६४१-४४। ४. वही ४।१५।१६४४-४९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उस मृगया के समय उसकी महाराज्ञी तथा अन्य रानियाँ भी साथ रहती थीं जो राजा के पीछे रहती थीं। उन स्त्रियों के पीछे शस्त्रधारी लुब्धक रहते थे जो उनकी रक्षा करने के लिये भित्ति के मध्य में चुपचाप बैठते थे। जब कोई मृग आता दिखाई पड़ता था तो वे पंक्ति में बैठे हुए सभी लुब्धक उसे डराने के लिये जोर से ध्वनि करते थे और उसी के पीछे सब दौड़ते थे। इस प्रकार वे भयातुर मृग राजा के समीप आते थे। उनके साथ ही साथ रुरु, सारंग, संबर, हरिण, सूकर, वृक, व्याघ्र, ऋक्ष तथा सियार भी उन्हीं के साथ भागते थे। इन सभी के समीप आने पर राजा अनेक वाणों द्वारा दोनों पंक्तियों में दौड़ते हुए पशुओं को मारता था।[१]

इसके अतिरिक्त यह काण्डपटजा मृगया अन्य प्रकार से भी खेली जाती थी। जहां पर मृगों का झुण्ड विश्वासपूर्वक निर्भय होकर चरता था वहां लुब्धकगण चार हाथ पैरों द्वारा चार पैर वाले पशु की भांति चलकर वहां तक जाते थे और उन्हें इस प्रकार से चारों ओर से घेर लेते थे कि कोई भी मृग उनके बन्धन से बाहर न जा सकता था।[२] उन्हें भली प्रकार घेर लेने में वे वायु की गति का बड़ा ध्यान रखते थे क्योंकि जिससे वायु के साथ उनकी गन्ध मृग तक न पहुँच सके। वे सब उन्हें बड़ी दृढ़ता से घेरते थे और भगाते हुए राजा तक लाते थे। राजा के समीप तक आते आते वे बहुत थकित हो जाते थे तब राजा उन्हे सावधानी के साथ तीव्र बाण द्वारा बेधता था।[३] इस मृगया में परदे का आश्रय लेना पड़ता था इसी कारण इसका काण्डपटजा नाम पड़ा।

अश्वजा

जब अत्यन्त शिक्षित तथा वेगवान घोड़े पर चढ़कर राजा मृगया खेलने जाता था और उसी पर से तीक्ष्ण बाण, भाला आदि के द्वारा हिरणों को मारता था तब वह अश्वजा मृगया कहलाती थी।[४]

ताडिका

इस मृगया में वायु का प्रवाह पश्चिम की ओर होने पर कोरूल घास से पूर्णवन में राजा जाता था। वहां पर वह अन्य सब सेवकों को हटाकर ताड़कों के साथ पांच घोड़ों सहित धनुष लेकर मृगया खेलने जाता था। राजा दूर बैठता था और ताड़कों को भेजता था। दूर जाकर ताड़क लोग दोनों हाथ पीछे कर तथा सिर को आगे कर वहीं बन में घूमते थे और किसी मृग को देखकर जोर से शब्द करने लगते थे। मृग चकित होकर उन्हीं ताड़कों की ओर

---

१. वही ४।१५।१६४९-६३। २, वही ४।१५।१६६४-६७।
३. वही ४।१५।१६६७-७१। ४. वही ४।१५।१६७३-७४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

देखने लगते थे उसी समय राजा धीरे-धीरे आकर मृग के पृष्ठभाग पर प्रहार करता था।[१] इस प्रकार से ताड़िका मृगया खेली जाती थी।

वायुजा

वायु के अत्यधिक तीव्र गति से चलने पर राजा अठारह लुब्धकों को लेकर मृगों के यूथ के समीप सुन्दर गन्ध पूर्ण स्थान में जाता था और वहां पर किसी वृक्ष की शाखा अथवा किसी अन्य वस्तु की ओट में अपने को छिपा कर हाथ में धनुष-बाण धारण कर खड़ा हो जाता था। अन्य लुब्धकगण चले जाते थे। शनैः शनैः मृगों के उस स्थल में आने पर राजा उनको लक्ष्य बनाकर कान तक धनुष खींचकर मृगों को मारता था। लुब्धकगण पूर्व से ही बताये हुए मार्ग पर जाते थे और मृगों के इधर-उधर स्वच्छन्दतापूर्वक घूमने पर वे सब जोर से तूर्यनाद करते थे, जिससे मृग घबड़ा कर अपनी रक्षा के लिये इधर-उधर भाग कर राजा के समीप पहुँचते थे और तब राजा अपने सामने आये हुए पथभ्रष्ट मृगों को मारता था—

गच्छन्ति लुब्धकाः पश्चाज्जल्पन्तोमार्गणा इव।
मृगयूथपरिभ्रान्त्यै कुर्युस्ते नादमुच्चकैः॥
ततो मृगाः परिभ्रष्टा वायोः सम्मुखगामिनः।
त्वरया परिधावन्ति यत्र राजा व्यवस्थितः॥
पुरोगामिनमुत्सृज्य शेषान्विध्येन्मृगान्नृपः॥[२]

इसी प्रकार दामिनी, कोपजा, यामजा, ध्वनिजा, मदविकारजा, तुषारजा, पाशजा, जालजा तथा व्याघ्रजा प्रकार की मृगया का विस्तृत वर्णन मानसोल्लास में हुआ है।

मृगया अत्यन्त प्राचीन काल से अधिकांशतः सभी राजाओं के विनोद का साधन रहा है। इस विनोद के समय वन की श्री, पशुओं के भयभीत मुख के हाव भाव आदि देखने का अवसर प्राप्त होता है। शरीर का प्रत्येक अवयव सगठित हो जाता है। इसी कारण मृगया के समान आनन्द देनेवाला अन्य विनोद नहीं है ऐसा कालिदास का कथन है—

मेदच्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्साहयोग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिद्ध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः॥[३]

१ वही ४।१५।१६७४-८१। २. वही ४।१५।१६८६-८८।
३. अभि० शाकुन्तल २।५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मृगया विशेष रूप से राजा का ही सर्वप्रिय विनोद होता था। भारतीय कथा साहित्य में मृगया के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। राजा लोग सदा से ही धनुर्विद्या के प्रेमी रहे हैं और यह मृगया अपने निश्चित लक्ष्य को बेधने का उत्तम साधन है। इसी कारण राजा लोग इस विनोद के बड़े ही प्रेमी रहे हैं। दौड़ते हुए मृगों का अनुसरण करते हुए उन्हें मारना यही मृगया का प्रमुख उद्देश्य है। सम्भवतः मृग से हो सम्बन्धित होने के कारण इसका मृगया नाम पड़ा, किन्तु मृगों के अतिरिक्त अन्य प्राणियों का भी शिकार होता था।

श्रीमद्भागवत पुराण में मृगया द्वारा मनोरञ्जन करने का सुन्दर वर्णन हुआ है—

चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः।
विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः॥[1]

इस प्रसंग से यह विदित होता है कि पुराण काल में राजा अकेले ही मृगया करने जाते थे, उनकी महाराज्ञियां साथ न जाती थी। मृग के अतिरिक्त पुराण कालीन राजा शश, वराह, महिष, गो, रुरु तथा शल्यादि पशुओं का शिकार भी करते थे—

शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान्।
मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममभ्यगात्॥[2]

ये सभी पशु उस समय मारने योग्य समझे जाते थे[3] और बाणों को चलाकर ही मृगया विनोद किया जाता था।[4] राजा घोड़े पर चढ़कर वन में जाता था और मेध्य पशुओं को मारता था—

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम्।
घ्नतं ततः पशून् मेध्यान् परीतं यदुपुंगवैः॥[5]

वात्स्यायन के समय में भी नागरक मृगया का बड़ा प्रेमी था और मृगया कर्म में चतुर व्यक्ति बड़ा ही योग्य समझा जाता था—

प्रीतिः साभ्यासिकी ज्ञेया मृगयादिषु कर्मसु।[6]

बुद्धकाल में भी मृगया समाज में प्रिय विनोद माना जाता था। अजन्ता की १७ वीं गुहा में मृगया विहार का सुन्दर चित्र बना है जिसमें राजा घोड़े पर चढ़ा दौड़ रहा है और अन्य व्यक्ति छत्र लिये उसके पीछे हैं। स्त्रियां भी

१. श्रीमद् ४।२६।४। २. श्रीमद् पु० ३।२६।१०।
३ वही ४।२६।६। ४. वही ४।२६।८९।
५. वही ४।२६। ६. कामसूत्र सू० २।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राजा के साथ हैं जो घोड़े पर चढ़ी हैं। आगे दौड़ते हुए कुत्ते चित्रित हैं। इससे विदित होता है कि स्त्रियाँ भी उस समय में मृगया विहार के समय साथ रहती थीं।

संस्कृत साहित्य के कालिदासादि महाकवियों ने मृगया का सुन्दर वर्णन किया है। रघुवंश में राजा दशरथ की मृगया का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है।[1] मृगया के लिये जाते हुए राजा के घोड़े के पैरों से उठी हुई धूलि ने आकाश में भी वितान तान दिया—

मृगवनोपगमक्षमवेषभृद्विपुलकण्ठनिषक्तशरासनः ।
गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिर्नृसविता स वितानमिवाकरोत् ॥[2]

मृगों को देखकर मृग के पीछे दौड़ते हुए राजा दशरथ अपने चल लक्ष्य पर बाण छोड़ते थे—

परिचयं चललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिंगितबोधनम् ।
श्रमजयात्प्रगुणां च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमतः सचिवैर्ययौ ॥[3]

मृगया वास्तव में चल लक्ष्य को वेधने का सुन्दर मनोरञ्जन है। यद्यपि यह प्राणियों की हत्या करनेवाला है किन्तु फिर भी मृगया में राजा प्रारम्भ ही से आनन्द प्राप्त करते रहे हैं। सोमेश्वर ने मानसोल्लास में इकतीस प्रकार की मृगया का वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि उस समय में राजा अनेक प्रकार से मृगया खेलकर अपना समय व्यतीत करता था।

गीतिविनोद

मृगया विनोद के पश्चात् सोमेश्वर ने गीत-विनोद का वर्णन किया है। सोमेश्वर स्वयं संगीताचार्य थे। इस कारण उन्होंने 'गीतविनोद' के अन्तर्गत गायकों के भेद, गाने का नियम तथा अनेक प्रकार के रागों का वर्णन किया है। इस प्रकरण के प्रारम्भ में सोमेश्वर ने उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकार के गायकों का उल्लेख किया है। सोमेश्वर ने तृप्त तथा हृष्ट-पुष्ट मन से गीत विनोद करने का आदेश दिया है—

तृप्तो हृष्टमनागीते विनोदे कर्तुमर्हति ।[4]

योग्य गायक को गुणज्ञ, पक्षपातरहित, परिवाद से पराङ्मुख, प्रौढ़, प्रियंवद, वाग्मी, मेधावी, इंगितज्ञ, मर्मवेदी, विवेकी, कीर्तिलंपट, गीत-वाद्य का ज्ञाता नाट्यताल विचक्षण, रसिक, देशीमार्ग विचारज्ञ, वक्ता, रागद्वेष विवर्जित, भावज्ञ,

१. रघुवंश ९।४९।
२. वही ९।५०।
३. वही ९।४९।
४. मानसो० ४।१६।१७६३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हृदयज्ञ, धर्मात्मा, प्रतिभावान्, सत्यवादी तथा काव्यनाटक का ज्ञाता होना आवश्यक है[१] और इसी प्रकार के शुभ लक्षणों से युक्त व्यक्तियों को गीतविनोद के लिये प्रयुक्त करना चाहिये—

सत्या एवं विधाशस्ता वाद्देवाऽपि विनोदने।[२]

महाराज सोमेश्वर ने स्वर, ताल, पदबन्ध आदि में प्रवीण गायक को उत्तमोत्तम गायक बतलाया है।[३] किन्तु कुछ गुणों से हीन होने पर भी यदि धानुमानु में विचक्षण गायक होता है तो वह उत्तम प्रकार का गायक होता है तो वह उत्तम प्रकार का गायक होता है।[४] इसके पश्चात् सोमेश्वर ने निन्दित गायकों का वर्णन किया है। जो गायक भूतिहीन, स्थान भ्रष्ट स्वर करके गाता है वह निन्दित गायक होता है। इसके अतिरिक्त निन्दित गायक राग का नाशक होता है।[५]

अधम गायक अनेक प्रकार के हैं। नाक के द्वार से गानेवाला गायक कपिल,[६] तुंबाकार मुख बनाकर गानेवाला तम्बुका[७], काकस्वर के सदृश गानेवाला काकी,[८] उल्टी पदावली गानेवाला सुदुष्ट,[९] व्यवस्थित गीत को अव्यवस्थित कर देने वाला अवस्वित,[१०] फूत्कार करके गानेवाला फूत्कारी[११], ग्रीवाचालन द्वारा शिरोजाल को प्रदर्शित कर गानेवाला जम्बुक[१२] गायक होता है। ये सभी अधम प्रकार के गायक हैं।

सोमेश्वरदेव ने धानुमानु के अनुसार अनेक प्रकार के उत्तम, मध्यम तथा अधम गायकों का वर्णन किया है—

अधमा मानुकारस्यान्मध्यमो धानुकारकः।
धानुमानुक्रियाकारी प्रवरः परिकीर्तितः॥[१३]

गीत के लिये धानु तथा मानु अत्यन्त आवश्यक अंग है। जो धानुमानु के प्रकार को नहीं जानता वह गायक अधम तथा मूढ होता है।[१४] जो गायक

१. वही ४।१६।१७६४-१७८८। २. वही ४।१६।१७८६।
५. वही ४।१६।१७९०-९६। ४. वही ४।१६।१७९७।
५. वही ४।१६।१७९६।
६. 'नासाद्वारगतीनोदौर्यस्तंगायति गायकः।
कपिलः सोऽपि विज्ञेयो सोऽपि कष्टतमो मतः॥ वही ४।१६।१२१२।
७. वही ४।१६।१७७०। ८. वही ४।१६।१७७१।
९. वही ४।१६।१७७२। १०. वही ४।१६।१७७३।
११. वही ४।१६।१७८७। १२. वही ४।१६।१७८८।
१३. वही ४।१६।१७९७। १४. वही ४।१६।१७९९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समगति से नहीं गाता वह वक्री[1], कराल ध्वनि से गानेवाला गायक कराली[2], नेत्र बन्द करके गानेवाला गायक विनिमीलित[3], ऊँट की तरह ग्रीवा उठाकर गानेवाला गायक उष्ट्रग्रीव[4], हाथ-पैर फैलाकर गानेवाला गायक प्रसारी[5] होता है।

गायक के लिये गमक आदि का जानना भी आवश्यक है। इसके ज्ञान के अनुसार भी कम्पित,[6] हीन,[7] तथा उत्कृष्ट[8] नामक अधम गायक होते हैं।

गान विद्या में कीर्ति प्राप्त करना बहुत कुछ शरीर पर निर्भर है। शारीर की परिभाषा सोमेश्वर ने निम्न प्रकार से दी है—

अभ्यासेन विना यस्तु रागाणां व्यक्तिकारकम्।
शरीरेण सहोत्पन्नं शारीरं तत्प्रचक्षते ॥[9]

शारीर के अनुसार भी उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकार के गायक होते हैं। शारीर मध्मम गायक का सोमेश्वर ने विशेष रूप से वर्णन किया है—

शारीरः सहजाधीतो गायकः स हि मध्यमः ॥
शारीरं शोभनं यस्य प्राञ्जलं गीयते भृशम्।
विषमे नैव गातव्यं मध्यमः सोपि कीर्तितः ॥
काव्यं च गमकं यस्तु ह्रस्वं दोषविवर्जितम्।
युनक्ति प्राञ्जले गीते गायको मध्यमःस्मृतः ॥
बृहत्प्रबन्धनिर्माणसहानंगक्रियायुतान् ।
प्रकर्त्तुं न विजानाति स शारीरोपि मध्यमः ॥[10]

शारीर गायक में गान विद्या का लक्षण उसके शरीर में उसी प्रकार विद्यमान रहता है जिस प्रकार चम्पापुष्प में गन्ध-इक्षु दण्ड में माधुर्य स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है।[11] इसको गायक पूर्व जन्म के पुण्यों द्वारा ही प्राप्त करता है—

अन्यजन्मकृताभ्यासां ज्ञानाद्योगाच्छिवार्चनात्।
शारीरं पाच्यते पुण्यैरपापेनैव लभ्यते ॥[12]

---

१. वही ४।१६।१८१९। २. वही ४।१६।१८२०।
३. वही ४।१६।१८२१। ४. वही ४।१६।१८२२।
५. वही ४।१६।१८२३। ६. वही ४।१६।१८२५।
७. वही ४।१६।१८२६। ८. वही ४।१६।१८२७।
९. वही ४।१६। १८३२। १०. वही ४।१६।१६२८-३२।
११. वही ४।१६।१८३३। १२. वही ४।१६।१८३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शारीर के लक्षण के अनुसार सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के गायकों का वर्णन किया है—

एकलो गायकः स स्याद्यो वेद्यमलकः स्मृतः ॥
मिलित्वा बहुभिर्यस्तु गीतं गायति गायकः ।
स वृन्दो गायकस्तेषां पूर्वपूर्वो भवेद्वरः ॥
शिक्षको भावकश्चैव रञ्जको रसिकस्तथा ।
अपरः कूटकाराख्यः पञ्चमो गदितो बुधैः ॥[१]

इसी प्रकार शिक्षाकार,[२] भावक,[३] रसिक, भावों के अनुसार गाने वाला, रञ्जक[४] श्रोताओं के हृदय को जानकर गाने वाला, रसिक[५] पुलकित अंग होकर गानेवाला,[६] कुटिकार अन्य के गान को सुनकर उसी प्रकार गाने में दक्ष, समर्थ[७] (स्थानत्रय के प्रयोग में कुशल), प्रगल्भ[८] (स्वर.विन्यास में कुशल), आदि गायक होते हैं ।

सोमेश्वर ने गमक का उचितरूप से प्रयोग करने वाले गायक को निपुण तथा श्रेष्ठ बतलाया है और गमक की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है—

'गमकं सप्तधा भिन्नं प्रयोक्तुं निपुणो वरः ।
नाभ्यादिस्थानिष्पन्नैर्ध्वनिभिः संयुतं तु यः ॥
द्वितीयां श्रुतिमाक्रम्य पुनरावर्त्तते मुहुः ।
दत्तत्रिगुणितावेगात्पूरितं गमकं विदुः ॥"[९]

यह गमक अनेक प्रकार के होते हैं । ये भिन्न-भिन्न प्रकार से गीतों में प्रयुक्त होते हैं । सोमेश्वर ने कम्पित, जीन, आन्दोलित, तिरिप, आदन, त्रिभिन्न, नाभिस्थ, देहस्थ, कण्ठस्थ, मुद्रक, आदि गमकों का वर्णन किया है ।[१०] इस प्रकार के गमकों से युक्त धारा प्रवाह रूप से गाने वाला गायक उत्तम होता है ।[११] श्वास को देर तक रोक कर अपने बल के द्वारा गाने वाला गायक भी उत्तम प्रकार का होता है ।[१२] लय, ताल की कला में दक्ष तथा वाद्य-सन्धि को प्रदर्शित

१. मानसो० ४।१६।१८३५,३७ । २. वही ४।१६।१८३८ ।
३. वही ४।१६।१८३९ । ४. वही ४।१६।१८४० ।
५. वही ४।१६।१८४१ । ६. वही ४।१६।१८४२ ।
७. वही ४।१६।१८४३ । ८. वही ४।१६।१८४४ ।
९. वही ४।१६।१८४६-१८४७ । १०. वही ४।१६।१८४८-१८५५ ।
११. वही ४।१६।१८५६-१८५७ ।
१२. 'श्वासं निरुध्य सुचिरं यो हि गायति विश्रतम् ।
उत्तमो गायकः ख्यातो गेये निजबलान्वितः ।' वही ४।१६।१८५८ ।

२७ मा०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कर यति पर अपना शिर रोकने वाला गायक कुगोवर,[१] स्वर, वर्ण ताल को व्यक्त करके शोभन ध्वनि से युक्त गाने वाला गायक स्नुघट[२] तथा शास्त्र-प्रयोग के अनुसार जो दोष-शून्य गान गाता है वह क्रियापरक[३] गायक होता है।

ध्वनि के ज्ञान के बिना कोई भी गायक सफल गायक नहीं हो सकता। सोमेश्वर ने ध्वनि की परिभाषा के साथ ही साथ मधुर, स्निग्ध, घन, श्रायक, स्वानक पांच ध्वनियों का वर्णन किया है—

वेणुवीणासमो नादो युक्तोसौ ध्वनिरिष्यते।
कोकिलास्वनसंकाशो मधुरध्वनिरुच्यते ॥
उच्चस्वानेपि यः श्राव्यः स्निग्धध्वनिरसौ मतः।
अत्तसो निविडो यस्तु घनोसौ ध्वनिरीरितः॥
दूरस्थः श्रयते यस्तु चन्द्रमध्यस्थितोपि वा।
माधुर्यादिगुणोपेतो श्रायको ध्वनिरीरितः॥
उच्चस्वनेपि यः श्राव्यः शोभनो लक्षणान्वितः।
ध्वनीनामुत्तमः प्रोक्तो ध्वनिस्वानकशोभनः॥[४]

सोमेश्वर ने गायक के लिये सात महागुणों का होना आवश्यक बतलाया है—

'शरीरं च ध्वनिं मेध्यो प्रौढिर्गमककौशलम्।
तालज्ञता निर्भयता गातुः सप्त महागुणाः॥'[५]

इस प्रकार सातों गुणों से युक्त गायक को सोमेश्वर ने सर्वश्रेष्ठ गायक माना है। स्वर, पद तथा ताल से युक्त स्वर लहरी को ही गीत माना है—

'स्वराणां च पदानां च तालानाञ्च समन्वयः।
गीत इत्युच्यते तालः पदहीना यतिर्भवेत्॥'[६]

सोमेश्वर ने विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की रुचि के अनुसार विभिन्न प्रकार के गीतों का वर्णन किया है। आचार्य गण सम गीत, पण्डित गण व्यक्त, स्त्रीजन मधुर, शूरवीर उत्साहपूर्ण गीत, विरहातुर जन करुण गीत, विटगण परिहासपूर्ण, योगिनियां आध्यात्मिक गीत, भक्त गण भक्ति पूर्ण गीत पसन्द करते हैं।[७] पक्ष तथा ताल में समान समगीत आचार्यगण पसन्द करते है। सन्धि-दोष से

---

१. वही ४।१६।१८५९।
२. वही ४।१६।१८६०।
३. वही ४।१६।१८६१।
४. वही ४।१६।१८६२-१८६५।
५. वही ४।१६।१८६८।
६. वही ४।१६।१८७५-७७।
७. वही ४।१६।१८७७ ७९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विवर्जित व्यक्त स्वरों से युक्त गान पण्डित गण, ललित अक्षरों से युक्त, श्रृंगारादि से पूर्ण मधुर गान प्रमदा जनों को प्रिय है। अत्यन्त उच्च स्वरों के बाहुल्य वाला गान अन्य जनों को प्रिय है—

'पञ्चतालैः समं गीतं सममाचार्यवल्लभम् ।
क्रियाकारकसंयुक्तं व्यक्तं पण्डितसम्मतम् ॥
ललितैरक्षरैर्युक्तं श्रृंगाररसरञ्जितम् ।
श्राव्यं नादसमोपेतं मधुरं प्रमदाप्रियम् ॥
स्वरैरुच्चतरैर्युक्तं प्रयोगैर्बहुलीकृतम् ।
विमृष्टं नाम तद्गीतमितरेषां मनोहरम् ॥'[1]

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने अवसर के अनुसार गाये जाने वाले गीतों का वर्णन किया है। विवाह के समय मंगलपूर्णगीत, भक्तों के समक्ष श्रद्धोत्पादक गीत गाने का आदेश दिया है।[2] इसी प्रकार प्रौढ़ जनों के प्रिय गीत का उल्लेख हुआ है।[3] तत्पश्चात् स्थायी, अन्तरा, आरोह तथा अवरोह का वर्णन किया है[4]। इसी प्रकार के अनेक स्वरों, गमक, नाद तथा अनेक प्रकार के अक्षर, राग तथा ताल से पूर्ण गीत सुनने का राजा के लिए आदेश दिया है—

नाना प्रवरचित्तं नानारागविनिर्मितम् ।
नाना तालसमायुक्तं गीतमाकर्णयेन्नृपः ॥[5]

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने अनेक प्रकार की भाषाओं तथा अनेक देशों

---

१. वही ४।१६।१८८१-८७।

२. 'पदैर्नियोजितं गीतं शुद्धपञ्चविनिर्मितम् ।
विवाहाद्युत्सवे गेयं मंगलं महिमाग्रतम् ॥
देवतास्तुतिसंयुक्तं तत्प्रभावप्रबोधकम् ।
आस्तिक्योत्पादनं गीतं स्तोत्रं भक्तजनप्रियम् ॥'
वही ४।१६।१८८-८९।

३. अत्युच्चस्थानकं गीतं तालपातैररक्षितम् ।
प्रयोगबहुलं रूक्ष विषसंवादिवल्लभम् ॥
सुस्थाने सरलं श्राव्यं शुद्धं काकुविराजितम् ।
सुप्रमाणं क्रमेणोक्तं गीतं प्रौढजनप्रियम् ॥
वही ४।१६।१८९०,९२।

४. वही २।१६।१८९३। ५. वही ४।१६।१८९४,९५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से उत्पन्न हुए रागों का वर्णन किया है और विनोद के लिए प्रयुक्त होने वाले रागों का वर्णन किया है[१]। सोमेश्वर ने पांच प्रकार के कैशिक, पांच प्रकार के कौशिक, तीन प्रकार के गौड कौशिक, सोमराग, मालव कौशिक, हिंदोलक, देशिहिन्दोलक, भैरवी, मल्लार आदि रागों का वर्णन किया है[२]। इसके अतिरिक्त पौराख्या, शवणी, छिति, दुल्लीत, तूरी, तुल्ली, वंधी, खंभार, कामोद, कामोदासी, देशांक, दन्नीमी, डांब, तुण्ड आदि अनेक देशी (दक्षिण में प्रचलित) रागों का वर्णन किया है।[३]

इसी गीत विनोद के प्रकरण में सोमेश्वर ने सभी प्रकार के छन्दों की परिभाषाओं एवं उनके लक्षणों का वर्णन किया है। इन छन्दों का लक्षण सोमेश्वर ने गीत विद्या की शिक्षा के कारण ही दिया है—

वृत्तं वृत्तस्य लक्ष्मेदं दर्शितं लक्ष्यसंयुतम् ।
सोमभूपेन शिक्षार्थं गीतविद्यावतां नृणाम् ॥[४]

छन्दों के लक्षण के पश्चात् सोमेश्वर देव ने गद्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—

पदानां नियमो नास्ति छन्दो यत्र न विद्यते ।
समासपदभूयिष्ठं तत्तु 'गद्यं निगद्यते ॥[६]

गद्य के अनेक उदाहरण भी दिये हैं। सोमेश्वर ने इस प्रकरण में महाराष्ट्र देश में अनेक अवसरों पर गाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के रागों का वर्णन किया है—

उत्सवे मंगले गेया शूर्या योषिज्जनैस्तथा ।
महाराष्ट्रेषु योषिद्भिरोवी गेया तु कंडने ॥
हीला केचवरी गेया राहडी वीरवर्णने ।
दत्ती गोपालकैर्वादे गातव्या निजभाषया ॥[७]

इस प्रकार के अनेक शुभ लक्षणों से, स्वरों, अक्षरों, आदि से युक्त रम्य गीत विनोद के समय गाये जाते थे। गीत विनोद के समय राजा के साथ कुमार, महाराज्ञी, युवराज आदि सभी जन रहते थे। इस सभा में गायक लोग विशेष प्रकार से बैठते थे। सबसे आगे गायकार बैठता था उसके दोनों ओर

---

१. वही ४।१६।१९०३ । २. वही ४।१६।१९२०-५० ।
३ वही ४।१६।१९५५-८१ । ४. वही ४।१६।१९९०-२०३३ ।
५. वही ४।१६।२०३४ । ६. वही ४।१६।२०३५ ।
७. वही ४।१६।२०५२-५४ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्य गवैये बैठते थे और उनके पीछे अन्य लोग रहते थे। इन सब के बैठने के पश्चात् गीत आरम्भ होता था—

पुरो वा गायकारः स्यात्पक्षयोर्गायकावराः।
तेषां पश्चात्समीपस्था वांशिका लक्षणान्विताः॥
तेषां पश्चान्निवेश्यास्युर्गायिन्यो मधुरस्वराः।
सर्वदोषविनिर्मुक्ता रूपयौवनसंयुताः।
सर्वेषां पृष्ठतः कुर्याच्छिन्नापाटविकादिकाः॥
एवं सर्वान्निवेश्याथ ततो गीतं प्रवर्त्तते।[1]

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने देशी रागों का विस्तृत वर्णन किया है[2]।

केवल धन के लोभ से गाने वाले गायक को सोमेश्वर ने निन्दित बतलाया है—

यस्तु गायति लोभेन प्राकृतान्गुणवर्जितान्।
स निंद्यः स्यात्सतां मध्येऽसत् सहास्थापनं महत्॥[3]

सोमेश्वर गीत को मुक्ति का साधन मानते हैं। क्योंकि जो भक्ति से देवताओं की स्तुति करता है उसकी मुक्ति हो जाती है इसी प्रकार जो गायक राजा को आनन्दित करने के लिये हृदय से गाता है उसकी भी मुक्ति हो जाती है[4]।

सोमेश्वर ने गीत विनोद का अत्यन्त विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि सोमेश्वर एक सफल राजा होने के साथ ही साथ एक योग्य तथा सुशिक्षित संगीताचार्य था। उसे प्रत्येक प्रकार के राग एवं उसके लक्षणों का पूर्ण ज्ञान था। सोमेश्वर की संगीत विषयक विद्वत्ता का प्रसंग संगीत-रत्नाकर में भी प्राप्त होता है—

रुद्रटो नान्यभूपाल भोजभूवल्लभस्तथा।
परमर्दी च सोमेशो जगदेकमहीपतिः॥[5]

एक अन्य स्थान पर भी महाराज सोमेश्वर को संगीताचार्य कहा गया है—

भाण्डीकभाषयोद्दिष्टा भोजसोमेश्वरादिभिः।
गेयलक्षणतः केचिद् वक्ष्यन्ते लक्ष्यसम्भवाः॥[6]

वास्तव में सोमेश्वर के राज्य में संगीत का प्रत्येक स्थान पर अधिक प्रयोग होता था इससे विदित होता है कि उनका जीवन ही संगीतमय था।

---

१. वही ४।१६।२०७२-७५। २. वही ४।१६।२२७५-२३८१।
३. वही ४।१६।२४६५। ४. वही ४।१६।२४६६।
५. संगीतरत्नाकर १।१८। ६. संगीतसमयसार २।१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भारतीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से मानी गई है—

जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च॥[1]

संगीतमकरन्द में भी सामवेद द्वारा भारतीय संगीत की उत्पत्ति बतलाई गई है—

'सामवेदादिदं गीतं संजग्राह पितामहः।
तद्गीतं नारदायैव तेन लोकेषु वर्णितम्॥'[2]

सामवेद के सूक्त अत्यन्त मधुर, गाये जाने योग्य, उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों से पूर्ण होते थे।[3] यही इन तीनों स्वरों की परिभाषा में शनैः शनैः परिवर्तन होता गया और उदात्त, निषाद तथा गान्धार के लिये, अनुदात्त ऋषभ तथा धैवत के लिये तथा स्वरित, षड्ज, मध्यम तथा पञ्चम स्वर के लिये प्रयोग में लाये जाने लगे। इस प्रकार उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित इन तीन स्वरों से षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद इन सात स्वरों का सृजन हुआ जिन पर सम्पूर्ण भारतीय संगीत की उच्च अट्टालिका आधारित है।

रागों में भी संगीत के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में कृष्ण का ग्वाल बालों के साथ गाने,[4] गोपियों के गाना गाने[5] तथा कृष्ण की लीला गाने का प्रसंग प्राप्त होता है।[6] हरिवंश पुराण[7] में भीम के उत्तराधिकारियों की स्त्रियों द्वारा अनेक प्रकार के गीत गाये जाने का उल्लेख हुआ है।

वात्स्यायन ने भी गीत आदि का अभ्यास करने के लिये संगीत गोष्ठी का उल्लेख किया है। इसमें सभी नागरक आकर अन्य कलाओं के साथ ही साथ संगीत का अभ्यास करते थे।[8]

बौद्ध साहित्य में गीत से सम्बन्धित अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं।[9] ललित

---

१. नाटयशास्त्र १।१७। २. संगीत मकरन्द १।१८।

३. पाणिनि ४।२।२९,३०, तथा ३२।
'उच्चैरुदात्तः नीचैरनुदात्तः समाहारः स्वरितः'।

४. श्रीमद्० पु० १०।१८।१३।

५. 'उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः'।
श्रीमद्० पु० १०।२९।४४,१०।३४।२१।

६. 'एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीलानुगायतीः''।
श्रीमद्० पु० १०।३५।२६।

७. हरिवंश पुराण ८९।८२। ८. कामसूत्र पृ० ३२।

९. ए० वेंकट सूब्बिया दिकलाज सूची १।
समवाय सुत्त तथा सूची २, ललितविस्तर पृ० १७८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विस्तर में गीतों के सुचारु रूप से पढ़ने का उल्लेख हुआ है। कादम्बरी में नारद द्वारा संगीत की शिक्षा दिये जाने का प्रसंग प्राप्त होता है। इसको गन्धर्वशास्त्र माना गया है।[1]

वाद्य-विनोद

संगीत के साथ ही साथ सोमेश्वर ने वाद्य विनोद का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। विनोद के लिये चार प्रकार के वाद्यों का प्रयोग करने का आदेश दिया है—

'पृथग्वाद्यं भवेदेकं द्वितीयं गतिसंगतम्।
वृत्तानुगं तृतीयं च तुरीयं गीतनृत्तगम्॥
एवं चतुर्विधं वाद्यं विनोदार्थं महीपतिः।
सभ्यैः सह समासीनः शृणुयात्तु समाहितः॥"[2]

इन सभी वाद्यों को सब सभ्यों के साथ एकत्र होकर राजा को सुनना चाहिये। गीत तथा नृत्य का वाद्य के बिना कुछ भी अस्तित्व नहीं रह जाता। वाद्य से पूर्ण नृत्य तथा संगीत की शोभा बढ़ जाती है और इसी कारण नृत्य तथा संगीत में वाद्य की ही प्रधानता है—

वाद्येन राजते गीतं न नृत्यं वाद्यवर्जितम्।
तस्माद्वाद्यं प्रधानं स्याद् गीतनृत्तक्रियाविधौ॥[3]

तन्त्री तथा क्रिया के भेद से वीणा आदि वाद्य अनेक प्रकार के होते हैं।[4] क्रिया के भेद से सोमेश्वर ने पटह, हुटका, ढक्का तथा घडस चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन किया है।[5] यह वाद्य एक हस्त वाले, द्विहस्त वाले, गोमलानन, धाराघर्षण, फूत्कारजनित आदि अनेक प्रकार के वाद्य वादन के तथा आकार के भेद से होते है।[6] इन वाद्यों का प्रयोग युद्ध, उत्सव, गीत, नृत्य तथा अन्य शुभ अवसरों के समय करना चाहिये—

---

१. नारदीयप्रभृतयो गन्धर्ववाद्यविशेषाः।
गन्धर्वशास्त्राणि, कादम्बरी पैरा ७५।

२. वही ४।१७।२४६८-६९। ३. वही ४।१७।२४७०।

४. 'तंत्रीभेदैः क्रियाभेदैर्वीणावाद्यमनेकधा।
वही ४।१७।२४७२।

५. 'पटहो च हुटका च ढक्के द्वे घडसं तथा।
चतुर्विधस्य वाद्यस्य क्रियाभेदोथ कथ्यते॥"
वही ४।१७।२४७३,७७।

६. मानसो० ४।१७।२४७७-७९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आहवे चोत्सवे चेति तद्वदन्येषु कर्मसु।
गीतनृत्यैर्विना यस्तु भोगार्थं वाद्यते तदा॥[1]

ये वाद्य प्रयोग के अनुसार चार प्रकार के होते हैं। गीत का अनुसरण कर उसके साथ बजने वाले वाद्य गीतानुग, नृत्य के समय उसके अनुसार बजने वाले वाद्य नृत्यानुग, गीत के साथ ही साथ पात्र का अनुसरण करने वाले वाद्य पात्रानुग तथा गीत और नृत्य दोनों के साथ बजने वाले वाद्य गीतनृत्यानुग होते हैं।[2] ये चारों प्रकार के वाद्य हर्ष देने वाले होते हैं—

एवं चतुर्विधं वाद्यं कथितं हर्षदायकम्"[3]

सोमेश्वर ने अनेक प्रकार के वाद्यों का वर्णन किया है। खादिर की लकड़ी का बना हुआ, सुवृत्त, द्वादश अंगुल का, छः वितस्त के गर्भरन्ध्र के अतिरिक्त अन्य तीन रन्ध्र से युक्त पत्रिका नामक वाद्य तथा दो दण्डों से युक्त, सुवृत्त, चार अंगुल का रन्ध्रों से पूर्ण खादिर का कुकुभ नामक वाद्य अत्यन्त मनोहर होता है।[4] इसी प्रकार तुम्बुक, वीणा, सुमुख नाम के वाद्यों का भी प्रयोग गीतों के समय होता था।[5]

इसी प्रकार उस समय कला, एकतंत्री आदि कुछ ऐसे वाद्यों का प्रयोग होता था जो बहुत ही रम्य होते थे। एकतंत्री वीणा के दण्ड को शम्भु, तंत्री को उमा, कुकुभ को जनार्दन, पत्रिका को कमला, दोरक को वासुकि माना है और इन्हें ब्रह्महत्या का नाश करने वाला माना है—

एतल्लक्षणयुक्तेयमेकतंत्री विराजते।
दण्डः शंभुरुमा तन्त्री कुकुभश्च जनार्दनः॥
पत्रिका कमला तुम्बं ब्रह्मा नाभिः सरस्वती।
दोरको वासुकिः प्रोक्तो जीवायां तु सुधाकरः॥
दोरिकायां स्थितः सूर्यस्तस्माद्देषा हि पावनी।
दोरिकायास्तलोद्देशं वामे स्कन्धे विधाय च॥[6]

वीणा को बजाने की विधि का भी विस्तार पूर्वक उल्लेख सोमेश्वर ने किया है। इसमें अधिकांशतः तर्जनी का ही प्रयोग होता है। तर्जनी के अनेक स्थानों के द्वारा होने वाले अनेक प्रकार के आघात होते हैं—

---

१. वही ४।१७।२४८१।
२. वही ४।१७।२४८२-८३।
३. वही ४।१७।२४८४।
४. वही ४।१७।२४८५-९१।
५. वही ४।१७।२४९२-२५००।
६. वही ४।१७।२५०७,११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तर्जन्या सानुविख्याता पूती नाम विचक्षणैः।
सपात इति विज्ञेयस्तर्जन्यैवयवाहति ॥
तर्जन्ययातः प्रहरणं तल्लेखः परिकीर्तितः।
अन्तर्मध्यगया घात उल्लेख इति कीर्त्तितः॥
मध्ये यो वाद्यते घातः स तु स्यादवलेह्यकः।
तर्जन्या पार्श्वतो हन्याद्धम्येते वाशयावति ॥[१]

इसी प्रकार तन्त्री, सप्रसार,[२] हस्त,[३] कुहर,[४] धाराख्य,[५] कुट्टी,[६] कंकाल, वस्तु,[८] गजलील,[९] पक्षरुत दस प्रकार के सुन्दर वाद्यों का उल्लेख किया है। इन सभी के वाहन में दक्ष व्यक्ति शारीर कहलाता था—

उपयोगोस्य शिक्षाया विवादो नोपयुज्यते।
वीणावादनसिद्ध्यर्थं निर्मितं शंकरेण हि ॥
दृढासनस्थिरमनाः प्रगल्भश्च जितेन्द्रियः ।
गात्रसौष्ठवसंयुक्तो हस्तयोर्द्विजितश्रमः ॥
आभीरस्तु सशारीरो रागरागांगकोविदः।
वीणावादनविद्यायां वीणाकारो वरो भवेत् ॥[१०]

ये पूर्वोक्त सभी प्रकार के वाद्य एकतन्त्री वाले हैं[११]। सोमेश्वर ने सकल्प तथा निष्कल दो प्रकार के और वाद्यों का उल्लेख किया है—

जीवालग्ना प्रकर्तव्या यथा नादोभिजायते।
स्थूलध्वनिर्भवेद्यत्र वाद्यं तत्सकलं भवेत् ॥
कलाहीना प्रकर्त्तव्या छन्दोरूपादहेतवे ।
तर्जनी मूलसंलग्ना तन्त्री तु निष्कलं भवेत् ॥[१२]

इसके अतिरिक्त तीन प्रकार के तुम्बक होते हैं—लघु तुम्ब, पृथुतुम्ब तथा

---

१. मानसो० ४।१७।२५२२-२५२४। २. वही ४।१७।२५३९।
३. वही ४।१७।२५४१। ४. वही ४।१७।२५४२।
५. वही ४।१७।२५४३। ६. वही ४।१७।२५४४।
७. वही ४।१७।२५४५। ८. वही ४।१७।२५४९।
९ वही ४।१७।२५४८। १०. वही ४।१७। २५५१-२५५३।
११. सकलं निष्कलं चेति द्विविधं वाद्यमीरितम्।
एकतन्त्र्यास्त्रयं भेदः कथितः शंभुना पुरा ॥ ४।१७।२५५४।
१२. वही ४।१७।२५५५,२५५६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किन्नरी[१] तुम्ब्र। सोमेश्वर ने किन्नरी तुम्ब्रक के विषय में लिखा है—

वितस्त्यबधिकायामा परिणाहे गुणाधिका।
स्नायुतन्त्रीसमायुक्ता तुंबकत्रयसंयुता ॥[२]

इसी प्रकार मृदंग, मख्रुण, वलय, लोहपत्रिका आदि वाद्यों की ध्वनि भी अत्यन्त कोमल होती थी और उनका प्रयोग स्त्रियों के नृत्य के समय होता था[३]। सोमेश्वर ने टवर्ग तथा तवर्ग को पाटवर्ण माना है—

टवर्गश्च तवर्गश्च पाटवर्णाः प्रकीर्त्तिताः ॥[४]

ढक्का नामक वाद्य में भी बजने वाले पाटवर्णों का वर्णन किया है—

घटश्चैव तटश्चैव डगिश्चैव ङ्गुपोद्भवाः।
पाटवर्णा इमे सर्वे ढक्कायां परिकीर्तिताः ॥[५]

इसी प्रकार ढक्का के अन्य वर्णों का भी उल्लेख किया है[६]। इसका प्रयोग विशेष रूप से शक्ति तथा देवपूजा में होता था—

शक्तिदेवतपूजायां चर्यायानविधौ तथा।
वादनीया प्रयत्नेन मंडी ढक्का विचक्षणैः ॥[७]

त्रिवली नामक वाद्य से 'दं द दों' आदि पद निस्सृत होते थे और मधुपान से प्रमत्त हुई स्त्रियों के लास्य नृत्य के समय इसका प्रयोग होता था—

दं दं दोमक्षरैः पादैर्वादनीया विचक्षणैः।
मधुपानप्रमत्तानां योषितां लास्यनर्तने ॥[८]

करटा नामक वाद्य का वादन उत्सव, विवाह आदि अवसरों पर होता था अन्य कार्यों के अवसर पर भी करटा का वादन होता था—

---

१. प्रथमं लघुतुंबं स्याद् द्वितीयं पृथुतुम्बकम्।
कथिता किन्नरी लघ्वी तुम्बकत्रयभूषिता ॥
४।१७।२५५७७.७८।

२. ४।१७।२५७९, २५८०। ३. वही ४।१७।२५९५,२६०९।
एवं लक्षणसंयुक्तः पटहस्थानकाभिधः।
स्त्रीनृत्यस्योपयुक्तोयं कथितः सोमभूभुजा ॥

४. वही ४।१७।२६१०। ५. वही ४।१७।२६३५।

६. पाटाक्षरं अडुक्कावन्मंडी ढक्वास्तु कल्पितम्।
मंडली मध्यरङ्गाख्य वामहस्तेन पीडयेत् ॥ ४।१७।२६३८।

७. वही ४।१७।२६३९,४०। ८. वही४।१७।२६४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्सवे च विवाहे च यात्रायां नृपमन्दिरे ।
इत्यादिसर्वकार्येषु करटा विनियुज्यते ॥[1]

इसके अतिरिक्त ढकुली,[2] डमरु,[3] ढक्का,[4] भेरी,[5] दुंदुभि,[6] आदि वाद्यों का भी वादन होता था। इन वाद्यों से होने वाले निसार[7] टंवकी,[8] रुलित,[9] आदि महानादों का वर्णन किया है। मान तथा वाद के भेद से सोमेश्वर ने करपाट, गाढबंध, घोटवाद, परिश्रवणक, दण्डहस्त, दुर्दर आदि वाद्यों का उल्लेख किया है।[10]

सोमेश्वर ने वाद्यों में प्रयुक्त होनेवाले प्रबन्ध का भी वर्णन किया है—

कथिताः साम्प्रतं वक्ष्ये प्रबन्धान्वाद्यसंगतान् ।
कालच्छंदः प्रबन्धो यो विरामो यो निरन्तरः ॥
यतिर्निगद्यते सा तु प्रबन्धैर्वाद्यकर्तृभिः ।
तालल्लातसमानैर्या पाटवर्णः प्रकल्पितः ॥[11]

उत्तान, अवच्छेद, मलय, निवड, खंडक, खंडच्छेद, पुनरुद्ग्राह, ध्रुवक तथा सर आदि अनेक प्रकार के प्रबन्ध होते हैं।[12] इनका प्रयोग गीत तथा नृत्य के समय किया जाता था—

एवं प्रबन्धा विविधा गीतनृत्तोपयोगिनः ।[13]

इन सभी प्रबन्धों के लक्षणों का वर्णन मानसोल्लास में हुआ है।

वाद्यों के वादन में भी ताल की आवश्यकता पड़ती है। सोमेश्वर ने ताल की परिभाषा निम्नप्रकार से दी है—

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रितयं येन लभ्यते ।
तेन ताल इति ख्यातः सोमेश्वरमहीभुजा ॥[14]

ताल के बिना न तो गति तथा नृत्य सुन्दर लगता है और न वाद्य ही सुनने में

---

१. वही ४।१७।२६६४,६५ । २. वही ४।१७।२६६९ ।
३. वही ४।१७।२६७३ । ४. वही ४।१०।२६७३ ।
५. वही ४।१७।२६७४। ६. वही ४।१७।२६७६ ।
७. वही ४।१७।२६७८ । ८. वही ४।१७।२६७९ ।
९. वही ४।१७।२६८१ । १०. वही ४।१७।२६८६-२७०१ ।
११. वही ४।१७।२७०२,२७०३ । १२. वही ४।१७।२७०३-२७१९ ।
१३. वही ४।१७।२७१० । १४. वही ४।१७।२७३०-३१ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मनोहर लगता है।[१] चतुर्ताल, त्रिताल, मिश्रताल तथा खण्ड ताल ये चार प्रकार के ताल होते हैं। इन्हें तंत्री भी कहते हैं—

एवं चतुर्विधास्तालास्ते तन्त्री परिकीर्तिताः।[२]

इन चारों ही तालों के लक्षणों का भी वर्णन किया है—

चत्वारो गुरवो यत्र गुरुद्वितयवर्द्धिताः।
हीना वा गुरुयुग्मेन तालास्ते चतुरस्रकाः॥
गुरुत्रयं भवेद्यस्मिन् षड्भिः षड्भि विवर्धितः।
त्र्यस्रः स तालो विज्ञेयः प्रस्तारेषु बहुष्वपि।
चतुरस्रो गुरुर्यत्र स्यादसौ गुरुयुग्मकम्।
प्रवेश्यते स बोद्धव्यस्तालो मिश्रसमाख्यया॥
त्र्यस्रैर्वा चतुरस्रैर्वा भज्यते वासवैर्गुरू।
यत्र तालः स विज्ञेयः खण्डनामाङ्कितो बुधैः॥[३]

इन सभी तालों की गति एवं काल का भी उल्लेख किया गया है।[४] ताल के पतन से वार्तिक, दक्षिण, चित्र तथा चित्रतर इन चार प्रकार के मानों का वर्णन किया है—

कदाचिच्छीघ्रतां याति विलयं याति कर्हिचित्।
वार्त्तिकं दक्षिणं चित्रं तुर्यं चित्रतरं तथा॥
एवं चतुर्विधं मानं तालपाते प्रकीर्तितम्॥[५]

निज मान प्रवर्तन को वार्त्तिक, विलम्बित मान को दक्षिण, शीघ्र मान को चित्र तथा अतिशीघ्र मान को चित्रतर मान बतलाया गया है।[६] लघु तथा गुरु के

---

१. न तालेन विना गीतं न वाद्यं तालवर्जितम्।
न नृत्यं तालहीनं स्यादतस्तत्तालोऽत्र कारणम्॥
मानसो० ४।१७।२७२९.३०।

२. मानसो० ४।१७।२७३१.३२। ३. वही ४।१७।२७३२.३६।

४. वही ४।१७।२७३७.४१। ५. वही ४।१७।२७४२.४३।

६. यद्वर्त्तते निजं मानं वार्त्तिकं तत्प्रकीर्त्तितः॥
विलम्बितेन मानेन दक्षिणं परिकीर्तितः।
शीघ्रमानेन चित्रं स्याद्अतिशीघ्रं तदेव चेत्॥
प्राहुश्चित्रतरं मानमिति मानविनिर्णयः।
अतिमानं लघुर्योसावेकपात नियोजितः॥ ४।१७।२७४३.४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनुसार सम, विषम, कंकाल तथा तुर्य चार प्रकार के तालों के पात होते हैं।[1] चतुष्क, षट्क, पूर्णक, गुरुगि चार प्रकार के पातों का और उल्लेख हुआ है।[2] इसके अतिरिक्त कल्पित, यति, कुद्रक, तृतीयक, जय, राज, लोचन, तुरगलील तथा कीर्ति आदि तालों का उल्लेख किया है।[3] पाट वर्ण के विचार से पटवाद्यक,[4] क्रमा,[5] शुक्ति[6] आदि वाद्य होते हैं।

इन सभी वाद्यों के अतिरिक्त वंशी का भी वर्णन किया है। सर्वप्रथम सोमेश्वर ने वंशी के उपयुक्त अनेक प्रकार के बांसों का उल्लेख किया है। पांच अंगुल का सोलह अंगुल का आयत में वंश होना चाहिये।[7] वंशी के गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[8]

पाव नामक वाद्य को अत्यन्त मनोहर तथा कर्णों को सुख देनेवाला बताया है—

स्वल्पध्वनिविशिष्टोऽयं पावः कर्णसुखावहः।[9]

इसी प्रकार दीर्घ दण्ड से युक्त काहल नामक वाद्य भी अत्यन्त मनोहर स्वर वाला होता है।[10] अन्त में शृङ्ग तथा माहिष नामक वाद्यों को सोमेश्वर ने सभी दोषों से शून्य बताया है—

शृंगं च माहिषं श्लक्ष्णं सर्वदोषविवर्जितम्।[11]

इन सभी प्रकार के वाद्यों द्वारा राजा को उत्सव तथा उद्यान विहार के अवसर पर विनोद कराना चाहिये।[12]

संगीत की ही भांति वाद्यों का भी इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भेरी

---

१. मानसो० ४।१७।२७४९.५२।

२. आदौ तु यच्चतुष्कं स्याद्गुरुरंते ततो लघुः।
षट्कं भवेद्यत्रताले पूर्णकं कालसंज्ञकम्॥
द्रुतत्रयं लघुश्चैकस्ताले गुरुगिसंज्ञिते।
पाताश्चत्वार एते स्युर्निर्णीताः सोमभूभुजा॥"
मानसो० ४।१७।२७५४।

३. वही ४।१७।२७५५-२७७६।
४. वही ४।१७।२७९३।
५ वही ४।१७।२७९४।
६. वही ४।१७।२७९९।
७. वही ४।१७।२८०१,२८०२।
८. वही ४।१७।२८११-२८१५।
९. वही ४।१७।२८२५-२८२७।
१०. वही ४।१७।२८२९-३३।
११. वही ४।१७।२८३४-३६।
१२. "तानुद्धूय महीपालः ससन्तुष्टप्रियावृतः।
उत्सवे च तथोद्याने कुर्याद्वाद्यविनोदनम्॥" वही ४।१७।२८३७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दुंदुभि, भूमिदुंदभि आदि अनेक वाद्यों की तथा वीणा, काण्ड वीणा आदि यन्त्रों की उत्पत्ति वैदिक युग में ही हो चुकी थी।

रामायण तथा महाभारत में भी अनेक वाद्ययन्त्रों का उल्लेख हुआ है।

पुराणकाल में भेरी तथा दुंदुभि आदि वाद्यों का वादन होता था—

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः।[१]

किन्तु वेणु (बांसुरी) का प्रयोग सब वाद्यों से अधिक होता था। कृष्ण भगवान् यमुना के तट पर आकर गोप-गोपियों के मध्य अपनी बांसुरी बजाते थे।[२] वीणा का भी प्रयोग भारतवर्ष में प्राचीन काल से होता रहा है।[३] वीणा के विषय में चारुदत्त कहता है—

उत्कंठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या संकेतके चिरयति प्रवरो विनोदः।
संस्थापना प्रियतमा विरहातुराणां रक्तस्य रागपरिवृद्धिकरः प्रमोदः॥[४]

अर्थात् वीणा उत्कण्ठित व्यक्ति की संगिनी है, व्याकुल व्यक्ति का विनोद है, विरही का धैर्य, और प्रेमी जनों के राग की वृद्धि करनेवाली है। वीणा को व्यक्ति सदैव अपनी प्रिया की ही भांति अंक में धारण करता है। कालिदास ने विलासी अग्निवेश के प्रसंग में इस प्रकार लिखा है—

अंकमंकपरिवर्तनोचिते तस्यनिन्यतुरशून्यताशुभे।
वल्लकी च हृदयङ्गमस्वना वल्गुवागपि च वामलोचना॥[५]

कहने का तात्पर्य यह है कि अग्निवेश की गोद को उसकी वीणा तथा प्रिया सदैव अशून्य बनाये रहती थी।

वात्स्यायन ने वाद्य के अभ्यास के लिये अनेक प्रकार की गन्धर्व शालाओं का उल्लेख किया है। उस समय नागरक के प्रत्येक लड़के को वीणा, वंशी तथा डमरू ये तीन वाद्य सीखने पड़ते थे। इसके साथ ही साथ गीत, नृत्य तथा आलेख्य की शिक्षा भी प्राप्त करनी पड़ती थी।[६] वीणा के साथ गाई जाने वाली गाथाओं ने भगवान् बुद्ध के मन को भी पिघला दिया था।[७] इसी कारण गीत, वाद्य आदि का प्रयोग बौद्ध भिक्षु के लिये वर्जित था—

---

१. श्रीमद्भा० पु० १०।३३।५। २. वही १०।३५।२२ १०।७०।२०।
३. वही १०।७०।२०, ललितविस्तर पृ० १७८…एo वें०…दिकलाज सूची २।
४. मृच्छकटिक ३।४। ५. रघुवंश १९।१३।
६. कामसूत्र पृ० ३२.३३, वीणाडमरुकवाद्यानि।
७. दीघनिकाय ब्रह्मजाल सुत्त सू० १० पृ० ५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गीतवादित, विसूक दस्सना पटिविरतो समणो गोतमो

मृदंग भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से संसार का सर्वोत्तम वैज्ञानिक वाद्य माना गया है।[1] मलयागिरि ने ५८ प्रकार के वाद्यों के नाम दिये हैं जो शंख, शृंग, शृंगिक आदि हैं।[2] दीघनिकाय में भी अनेक वाद्यों के नामों का उल्लेख हुआ है—

ममं वा भिक्खवे परे वण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा वण्णं भासेय्युं, संखस्स वा वण्णं······अम्हेसूति ॥[3]

कादम्बरी में वीणा के साथ ही साथ और अनेक वाद्यों के नाम आये हैं—

वीणामुरजकांस्यतालदर्दुरपुटप्रभृतीनि वाद्यानि।[4]

इस प्रकार भारतीय आदि काल से ही वाद्य के प्रेमी रहे हैं। इन सभी वाद्यों का प्रयोग वर्तमान युग में शास्त्रीय तथा सरल दोनों ही संगीतों के साथ होता है।

नृत्यविनोद

प्राचीन काल में नृत्य अधिकांशतः व्यक्तियों के मनोरंजन का साधन था। नृत्य का महाराज सोमेश्वर को पूर्ण ज्ञान था इसी कारण इन्होंने नृत्य के अवसरों, हावभाव, अंग, अपांग तथा प्रत्यंगों, दृष्टि एवं अनेक प्रकार से संकेतों का वर्णन किया है। सोमेश्वर ने उत्सव, जय, हर्ष, काम, त्याग, विलास, विवाद तथा परीक्षा आठ अवसरों पर नृत्य कराने का आदेश किया है—

उत्सवेऽपि जये हर्षे कामे त्यागे विलासके।
विवादेऽथ परीक्षायां कार्यं नृत्यं विनोदने ॥[5]

इन सभी की परिभाषायें सोमेश्वर ने बड़ी ही सुन्दरता से दी है। विवाह, पुत्रजन्म, वसंत तथा मनुष्यों के एकत्रीकरण को सोमेश्वर ने उत्सव, दूर पर हाथियों द्वारा जय प्राप्ति आदि के समय को हर्ष, चित्त को उद्दीप्त करनेवाला कार्य काम, नर्तकी सम्बन्धी उपभोग विलास, आमर्ष से युक्त कार्य विवाद तथा

---

२. श्रीमद्भा० पु० १०।७०।२०।
३. राज० (मलयागिरि की टीका) पृ० ८२.८४।
४. दीघनिकाय ब्रह्मजाल सूत्त सू० ६ पृ० ३।
५. ए० वें०···दि कलाज सूची ४, कादम्बरी पैरा ७५।
१. मानसो० ४।१८।२८४०,४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विद्यागत प्रवीणता को परीक्षा माना है।[१] इसी प्रकार त्याग की परिभाषा भी दी गई है—

नानादेशसमायाता याचकाश्चारणादयः।
तेषां दानार्थमालोक्य त्याग इत्यभिधीयते॥[२]

सोमेश्वर ने नाट्य, लास्य, ताण्डव, लाघव, विषम तथा विकट इन छः प्रकार के नृत्यों का वर्णन किया है—

नाट्यं लास्यं तांडवं च लाघवं विषमं तथा।
विकटं चेति निर्दिष्टं नर्तकं षट्प्रकारकम्॥[३]

अभिनयों से युक्त नृत्य नाट्य, नम्र एवं ललित नृत्य लास्य, चलचित्र से शून्य दृढ़ नृत्य ताण्डव, कौतूहल तथा उल्लासपूर्ण नृत्य लघु, भ्रमण, आक्षेप तथा विक्षेप पूर्ण नृत्य विषम, विकृत मुख, हस्त तथा विकृत रूपों से पूर्ण नृत्य विकट होता है।[४] इन नृत्यों में लास्य नृत्य स्त्रियों के उपयुक्त है और ताण्डव नृत्य विशेषतः पुरुषों द्वारा ही किया जानेवाला नृत्य है।[५]

छः प्रकार के नृत्यों की ही भांतिक नर्तक भी छः प्रकार के होते हैं—नर्तकी, नट, नर्तक, वैतालिक, चारण तथा लटिका।[६] इस सभी लक्षणों का अलग-अलग वर्णन 'मानसोल्लास' में हुआ है। सुरूपा, तरुणी, श्यामा, तन्वी तथा सुन्दर पयोधरवाली नर्तकी, श्रेष्ठ होती है। इसी प्रकार अनेक भाषाओं के ज्ञाता तथा पाठ करने वाले नट, पदपाठ तथा हस्तपाठ में निपुण नर्तक, अनेक भाषाओं के प्रयोग में प्रगल्भ वैतालिक, हास्यवाक्य के प्रयोग में

---

१. विवाहपुत्रजन्मादिभूतमातृवसंतकम् ।
एवमादिनिमित्तोत्थो जनैरुत्सवसंज्ञिभिः॥
जयश्च प्राप्यते यत्र द्यूतद्वयरणादिषु ।
संतोषजनकः सम्यग्विजयः परिकीर्त्तितः।
वृत्तं विद्यागतः सम्यक्प्रावीण्यं विद्यते न वा।
प्रियो लोको हितस्यैतत्परीक्षा सा प्रकीर्त्तिता॥
वही ४।१८।२८४१.२८४८

२. वही ४।१८।२८४८.४९। ३. वही ४।१८।२८४९,५०।
४. वही ४।१८।२८५१,२८५६। ५. वही ४।१८।२८५२,५३।
६. नर्तकाः षट्प्रकाराः स्युर्नर्तकी नटनर्तकौ।
वैतालिकाश्चारणाश्च तथा च लटिकाऽपि च।
मानसो० ४।१८।२८५८,५९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चतुर चारण, अंग-प्रत्यंग का मृदुता से परिवर्तन करने वाले लटिक श्रेष्ठ होते हैं।[1]

सभी प्रकार के नृत्यों में अपांग, अंग तथा प्रत्यंगों का प्रयोग होता है। इसी कारण सोमेश्वर ने शिर, स्कन्ध, वक्ष, जठर, पार्श्वयुग्म, दंत तथा जिह्वा इन आठ अपांगों, दो बाहु, मणिबन्ध, दो करशाख तथा कटि इन छः अंगों तथा भ्रू, नेत्र, नासिका, कपोल, ओष्ठ, हनु, जानु आदि प्रत्यंगों का वर्णन किया है और इन सभी के द्वारा किये जाने वाले हाव-भावों का वर्णन किया है।[2]

नृत्य के समय उत्थित[3] प्रवालित,[4] लोल,[5] सम[6] तथा स्रस्त[7] पांच प्रकार के स्कन्धों का प्रयोग होता है। वक्ष भी पांच प्रकार के होते हैं—

आभुग्नं वा निर्भुग्नं वा व्याकम्पितमथापि वा।
उत्प्रसारि समं वेति वक्षः पञ्चविधं स्मृतम् ॥[8]

इनके लक्षणों का भी वर्णन सोमेश्वर ने किया है। विषाद, मूर्च्छा तथा शोक में

---

१. सुरूपा तरुणी तन्वी श्यामा चारुपयोधरा।
प्रगल्भा सरसा विज्ञैर्नर्तकी सा प्रशस्यते ॥
पाठको बहुभाषासु बहुभावविशारदः।
रसाभिनयविज्ञानान्नटो वापि नटी वरा ॥
साभ्यस्तः पदपाठेषु हस्तपाठविलक्षणः।
शिक्षको नृत्यविद्यायां सुरेको नर्त्तको वचः।
बहुभाषाप्रगल्भो यः परिहासविचक्षणः ॥
परवादपरो नृत्ये सम्यग्वैतालिको वरः।
किंकिणीचालने दक्षो गीतवारणकोविदः ॥
हास्यवाक्यप्रगल्भश्च सुस्वरश्चारणो वरः।
क्षुरिका वंचयत्यंगे मृद्वंगो परिवर्तते ॥
लघुटलवो भारसहो नृत्यको लतिको वरः।
नर्तकाः कथितास्त्वेवं नृत्यभेदोभिधीयते ॥"
मानसो० ४।१८।२८५९-६३।

२. 'अंगान्यपांगयुक्तानि प्रत्यंगसहितानि च।
क्रियास्तेषां प्रवक्ष्यामि विनियोगेन संयुताः ॥'
वही ४।१८।२८६७,६७।

३. वही ४।१८।२८८७-९०। ४. वही ४।१८।२८८८।
५. वही ४।१८।२८८९। ६. वही ४।१८।२८८९।
७. वही ४।१८।२८९०। ८. वही ४।१८।२८९१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उन्नत पृष्ठ करने पर आग्न, निम्न पृष्ठ करने पर निर्भुग्न, कंपित होने पर व्याकंपित, दीर्घ निश्वास छोड़ने पर उत्प्रसारित तथा सौष्ठव कर्मों में सम वक्ष का अभिनय होता है।[1]

वक्ष के पश्चात् क्षाम, लक्ष, पूर्ण, रिक्तपूर चार प्रकार के जठरों का उल्लेख हुआ है—

क्षामं लक्षं तथा पूर्णं रिक्तपूरं तथैव च।
एवं चतुर्विधं प्रोक्तं जठरं नादवेदिभिः॥[2]

इनमें जृंभण तथा क्षुधा के प्रदर्शन में क्षाम, तुन्दिल तथा गर्म श्वास निरोध जलोदर एवं अन्नाशन के प्रदर्शन में पूर्णजठर, चंडी, वेताल प्रेतादि के अभिनय में लक्ष तथा उदान, विकृत कोप, श्वास में रिक्तपूर जठर का प्रदर्शन होता है।[3] जठर की ही भांति पांच प्रकार के पार्श्व भी होते हैं—नत, समुन्नत, प्रसारित, विवर्तन, तथा अपस्कृत।[4] त्रास के अवसर पर नत, पार्श्व कंडूयन तथा गात्र संस्पर्श में समुन्नत, ऊंचे स्थान में जाने, बाहुकर्षण तथा जलावतरण में प्रसारित, पार्श्व, परिवृत्त तथा मोटन में विवर्त्तित तथा अपसार में अपस्कृत पार्श्व मुद्रा का प्रदर्शन होता है।[5]

---

१. आभुग्नमुन्नते पृष्ठे निर्भुग्नं निम्नपृष्ठके।
कंपेन हि समायुक्तं व्याकम्पितमुदीरितम्॥
....
दीर्घोच्छ्वासे चंक्रमे च तुंगवस्तुविलोकने।
उत्प्रसारितकं कार्यं समं सौष्ठवकर्मणि॥"
वही ४।१८।२८९२-९५।

२. वही ४।१८।२८९६।

३. वही ४।१८।२८९७-२९००।

४. 'नतं समुन्नतं चैव प्रसारित-विवर्तने॥
तथापस्कृतमित्येवं पञ्चधा पार्श्वमुच्यते।"

५. 'त्रासे च विनियोक्तव्यं नतं पार्श्वप्रयोक्तृभिः॥
ऊर्ध्वं व्यधोग्रिताये च पार्श्वकंडूयने तथा।
प्रियगात्रोपसंस्पर्शे पार्श्वं योज्यं समुन्नतम्॥
ऊर्ध्वस्थानां पदार्थानां कर्षणे बाहुयुग्मतः।
जलावतरणे पार्श्वं कर्त्तव्यं स्यात् प्रसारितम्॥
परिवृत्ताश्चांगमोटे च विवर्त्तितमुदाहृतम्।
परिवृत्यापेपसारे च कुर्यादपस्कृतं बुधैः॥"
वही ४।१८।२९०३-२९०६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सुन्दर नृत्य का एकाकी आधार कटि है। यह भी छिन्न, विवृत, रेचित, आंदोलित, उद्वाहित पांच प्रकार की कटि होती हैं—

छिन्ना विवृत्ता च तथा रेचितांदोलितापि च।
उद्वाहिता चेति कटि पंचधा परिकीर्त्तिता ॥[1]

तिर्यक् चालन में छिन्न, चलने में विवृत, प्रकम्पन क्रिया में रेचित, धीरे तथा तिरछे चलने में आंदोलित तथा क्रम से उत्क्षिप्त करने में उद्वाहिता कटि का प्रदर्शन होता है—

तिर्यग्विनिर्गता च्छिन्ना विवृत्ता चालिता भवेत्।
प्रकम्पन-क्रियायुक्ता रेचिता परिकीर्तिता ॥
शनैस्तिर्यक् च चलिता भवेदांदोलिता कटिः।
क्रमात्पक्षद्वयोत्क्षिप्ता कटिरुद्वाहिता मता ॥[2]

इन कटियों के विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न प्रकार के चालनों का वर्णन किया है। वक्र अभिनय में छिन्न, पीछे झुक कर देखने पर विवृत्त, नृत्य में रेचित, कुब्ज, वाम तथा खंजादि के अभिनय में आन्दोलित तथा स्थूलागमन में उद्वाहिता कटि का प्रदर्शन होता है।[3] इस प्रकार के हावों-भावों का प्रदर्शन अंगों एवं उपांगों द्वारा होता है।

अनेक प्रकार के हाव-भाव नृत्य के समय भृकुटी के चालन द्वारा दिखलाये जाते हैं। यह भृकुटी चतुरा, वक्रता, कुञ्चिता, कंपा, स्फुटिता तथा सहजा आदि नामों से अनेक प्रकार की होती है।[4] नृत्य के उपयुक्त ३६ प्रकार की दृष्टियों का वर्णन मानसोल्लास में हुआ है।[5] नृत्य के समय छः प्रकार के नासिकासम्बन्धी हाव-भाव होते हैं। इन सभी प्रकार की नासिकाओं के लक्षणों का विस्तार-

१. वही ४।१७।२९०७।
२. मानसो० ४।१८।२९०८,२९०९।
३. "वक्रस्याभिनये छिन्ना विकारे च नियुज्यते।
उद्वाहिता प्रयोक्तव्या कटिर्नाट्यविशारदैः ॥"
मानसो० ४।१८।२९९१-२९९२।
४. मानसो० ४।१८।२९१६,१८।
५. षट्त्रिंशा दृष्टयः प्रोक्ताः सोपयोगाः सुलक्षणाः।
भूलोकमल्लदेवेन सार्वभौमेन धीमता ॥"
मानसो० ४।१८।२९६७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूर्वक वर्णन हुआ है।[1] इन हावभावों के प्रदर्शनों के अवसर का भी वर्णन हुआ है।[2] इसी प्रकार चूर्णित, संदष्ट, निष्क्रान्त आदि आठ प्रकार के मुकुलों का वर्णन किया है।[3]

नृत्य के समय हनु द्वारा भी हाव-भाव प्रदर्शित किये जाते हैं। यह हनु भी आठ प्रकार की है—शिथिल, तिर्यक्, स्तम्भ, चल, प्रबल, विकोच, हत तथा आहत।[4] इसके साथ ही साथ दलना, खण्डना, कर्त्तना, धारणा तथा निकर्षणा इन पाँच प्रकार के दाँतों का वर्णन किया है—

दलनाः खण्डनाश्चैव कर्त्तना धारणास्तथा।
निकर्षणाश्च विज्ञेया दन्ताः पंचविधा बुधैः॥[5]

पाँच प्रकार की जिह्वाओं का वर्णन सोमेश्वर ने किया है जो क्रमशः ऋज्वी, वक्रा, नता, लोला तथा प्रोन्नता है।[6]

इस प्रकार अङ्ग उपाङ्गों के हावभावों के वर्णन के पश्चात् प्रत्यंगों के हाव-भावों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसके अन्तर्गत सरल, प्रोन्नत, कुंचित ललित, लोलित, चलित, परावृत्त इन आठ प्रकार के बाहुओं के लक्षणों का विस्तारपूर्वन वर्णन किया है[7]—

सरलः प्रोन्नतोन्यश्च कुंचितो ललितस्तथा।
लोलितश्चलितो बाहुः परावृत्तस्तथाष्टमः॥[8]

चार प्रकार के मणिबन्धों का भी प्रदर्शन नृत्य में होता है—

आकुञ्चितो निकुं॰श्च भ्रामितश्च श्रमस्तथा।
चतुर्धा-मणिबंधोथ नामतः कथितो मया॥[9]

---

१. वही ४।१८।२९६८-७३। २. वही ४।१८।२९७६-७७।
३ वही ४।१८।२९७९-८५। ४. वही ४।१८।२९८८-९३।
५. वही ४।१८।२९९४-९६।
६ ऋज्वी वक्रा नता लोला प्रोन्नता वेति पंचधा।
जिह्वा प्रोक्ता प्रवक्ष्यामि तस्यालक्ष्यमयागतम्॥
निष्क्रांतदीर्घादृज्वी स्याज्जिह्वा साधुषु युज्यते।
नता जिह्वा समाख्याता बुधैश्चिबुकचुंबिनी।
... ...
प्रोन्नता कथिता जिह्वा नासिकाभिमुखैर्बुधैः।
वही ४।१८।२९९७-३००२।
७. वही ४।१८।३००८-१६। ८. वही ४।१८।३००८।
९. वही ४।१८।३०१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन चारों प्रकार के मणिबन्धों के प्रयोग का भी वर्णन हुआ है।[1] इनके सबके साथ ही साथ अनेक प्रकार के हस्त, पताका तथा चार प्रकार के कर्णों का भी वर्णन किया है।[2] असंहत, संहत, वृत्त के अन्तर्गत भ्रमर, संदंश, ताम्रचूड मुष्टि, कपिच्छ, खटिका, सूचीमुख आदि चौबीस प्रकार[3] के, अञ्जलि, कपोवि, कर्कट, स्वस्ति, उत्संग, गजदन्त, दोलपुष्प तथा मकर आदि तेरह प्रकार[4] के संहत हस्तों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त कुर, नृत्त हस्त आदि अन्य प्रकार के हस्तों का भी वर्णन हुआ है।[5] इस प्रकार नृत्य के लिये छः प्रकार के हस्तों का प्रयोग किया जाता है—

'चतुःषष्टिः कराः प्रोक्ता नृत्यस्याभिनयं प्रति'[6]

संहतांगुल[7], विरलांगुलि[8], चलितांगुलि[9], हंसपक्ष[10], हंसक्षोभ[11], चतुरकर[12], आदि पताकाओं का वर्णन हुआ है। फण अधोमुख तथा ऊर्ध्वमुख दो प्रकार के होते हैं।[13]

इन सभी लक्षणों के पश्चात् सोमेश्वर ने मृगशिर[14] अधोमृगशिर[15], पादलक्त[16], पद्मकोश[17], मराल[18], अराल[19], कपर्दक[20], शुकतुण्ड[21], वक्र[22], मुकुल[23], धंस[24], भ्रमर[25], सन्देश[26] तथा मुखसन्दंश[27] आदि अनेक प्रकार के करों का वर्णन करने के साथ ही साथ उनके लक्षणों का भी वर्णन किया है।

नृत्य का प्रचार भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रारम्भ हो गया था। नृत्य में किये जाने वाले अभिनय की उत्पत्ति यजुर्वेद से हुई। क्योंकि नाटक का सृजन करते समय ब्रह्मा ने यजुर्वेद से ही अभिनय को ग्रहण

१. वही ४।१८।३०१८,१९।
२. वही ४।१८।३०२०।
३. वही ४।१८।३०२१-३०२४।
४. वही ४।१८।३०२५,३०२७।
५. वही ४।१८।३०२९-३०३३।
६ वही ४।१८।३०३४।
७. वही ४।१८।३०३६।
८. वही ४।१८।३०३७।
९. वही ४।१८।३०३८।
१०. वही ४।१८।३०३९।
११. वही ४।१८।३०४०।
१२. वही ४।१८।३०४१।
१३. वही ४।१८।३०४३,३०४७।
१४. वही ४।१८।३०४८,४९।
१५. वही ४।१८।३०५०।
१६. वही ४।१८।३०५०।
१७. वही ४।१८।३०५१।
१८. वही ४।१८।३०५४।
१९. वही ४।१८।३०५५।
२०. वही ४।१८।३०५६।
२१. वही ४।१८।३०५६।
२२. वही ४।१८।३०५७।
२३. वही ४।१८।३०६३-६४।
२४. वही ४।१८।६०६५।
२५. वही ४।१८।३०६६।
२६. वही ४।१८।३०६७।
२७. वही ४।१८।३०६८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया था ।[१] नाट्य शास्त्र में नर्तकी के अभिनय तथा नृत्य भंगी का वर्णन हुआ है । नर्तकी रंगस्थल पर नृत्य भंगी में आकर पुष्पोपहार रखती थी और फिर देवताओं को नमस्कार कर अभिनय करती थी । गीत तथा वाद्य दोनों के साथ नृत्य करती थी । जब गीत के साथ नृत्य करती थी तो वाद्य बन्द रहते थे और वाद्यों के साथ नृत्य करने पर गाना बन्द कर दिया जाता था ।[२]

पुराणों में भी नृत्य-सम्बन्धी अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं । श्री कृष्ण भगवान ग्वालबालों के साथ क्रीडा करते तथा परस्पर मिलकर नृत्यादि करते थे :

"क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम्"[३] इसके अतिरिक्त गोपियों के साथ भी कृष्ण भगवान् रासलीला करते समय नृत्य करते थे :

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्डं गण्डे सन्दधत्या 'आदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥
नृत्यन्ती गायती काचित् कूजन्नूपुरमेखला ।
पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताधात् स्तनयोः शिवम् ॥[४]

वात्स्यायन ने भी नागरक के लिए गीत, वाद्य, नृत्य तथा आलेख्य इन चार कलाओं को विशेष रूप से आवश्यक बतलाया है ।[५]

बौद्ध साहित्य में नृत्य के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं और नृत्यादि को देखना बौद्ध भिक्षु के लिये वर्जित बतलाया गया है "नच्च गीत वादित विसूक दसूसना पटिविरतो समणों गौतमो ।[६] इस प्रकार अन्य स्थल पर भी नृत्य आदि के निषेध के प्रसंग प्राप्त होते हैं ।[७]

धर्म-ग्रन्थों के अनुसार भी नृत्य करने वाली स्त्रियों को समाज में उच्चस्थान नहीं प्रदान किया गया है । मनु ने चारणादि से दण्ड लेने का आदेश दिया है यदि वे अपनी स्त्रियों के सौन्दर्य को छिपकर अन्य व्यक्तियों को अर्पित करें[८] ।

---

१. नाट्यशास्त्र १।१७ । २. वही ४।२६९ २७७ ।
३. श्रीमद्० पु० १०।१८।१३ । ४. वही १०।३३।१३-१४ ।
५. 'गीतम् , वाद्यम् , नृत्यम् . आलेख्यं ....पीडयोजनम्' । कामसूत्र पृ० ७२ ।
६. दीघनिकाय ब्रह्मजालसुत्त सू० १० पृ० ५ ।
७. सेय्यथीदं, नच्चं गीतं वादितं पेक्ख ....एवरूपाविसूक दस्सनापटिविरतो समणो गोतमोति ॥' दीघनिकायब्रह्मजालसुत्त सू० १३ पृ० ७ ।
८. मनु० ८।३६२ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अभिनय करनेवाले व्यक्तियों को साक्षी बनाने का भी निषेध किया है।[1]

याज्ञवल्क्य ने भी इनके द्वारा दी हुई गवाही को झूठा माना है।[2] किन्तु फिर भी नृत्य को तथा नृत्य करने वाले व्यक्तियों का सदा से भारत में बड़ा सम्मान प्रदान किया गया है।

नाट्यशास्त्र में ताण्डव तथा लास्य इन दो प्रकार के नृत्यों का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ। ताण्डव नृत्त को अत्यन्त शोभावर्धक एवं मंगलकारी बताया गया है। इसके प्रवर्तक शिवजी हैं और यह विशेष रूप से विवाह, जन्म, प्रमोद, अभ्युदय आदि उत्सवों के समय विशेष रूप से विनोद उत्पन्न करने वाला होता है।[3] इससे विदित होता है कि उस समय में विवाहादि उत्सवों के अवसर पर ताण्डव नृत्त का ही अभिनय होता होगा। इस नृत्त के विषय में नाट्य शास्त्र में इस प्रकार की कथा प्राप्त होती है।

एक बार ब्रह्मा जी के कहने पर शिवजी ने हिमालय पर्वत पर नाचना प्रारम्भ किया। इस नृत्त की विधि, १०८ प्रकार के करण, नृत्तमातृका संघात, ३२ प्रकार के अंगहार तथा पाद, कटि, कर तथा कंठ इन चार रेचकों के विषय में तण्डु मुनि ने शिव को उपदेश दिया था इसी कारण यह ताण्डव कहलाया। जब शिव जी अपने पूर्ण लय तथा हाव भाव के साथ नाच रहे थे उसी समय आनन्द से विह्वल होकर पार्वती जी भी नाच उठी। उनका वह नाचना नृत्त तो न था। इसी का लास्य नाम पड़ा। दक्ष के यज्ञ विध्वंस के समय मृदंग, भेरी, पटह, माण्ड, डिंडिम, गोमुख, दर्दुर आदि आतोद्य वाद्यों के बजने पर अचानक संध्या समय शिवजी नाचे थे। उसी समय से यह नृत्त मंगलकारी माना जाता है और विशेष शुभ एवं मंगलकारी अवसरों पर किया जाता है।

ताण्डव नृत्त के अनेक प्रसंग पुराणों में प्राप्त होते हैं।[4] वात्स्यायन ने ताण्डव तथा लास्य दोनों नृत्यों का वर्णन किया है किन्तु उनका सुनृत्त, ताण्डव, अनृत्त, लास्य, नाम दिया है।[5] समवाय सुत्त[6] तथा दीघनिकाय[7] में भी नृत्य का उल्लेख हुआ है। कादम्बरी में भरत द्वारा प्रणीत नृत्त, ताण्डव, का प्रसंग प्राप्त होता है।[8]

---

१. मनु० ८।६५।   २. याज्ञ० २।७०।

३. नाट्यशास्त्र (चौखम्बा) ४।२६०.३।

४. श्रीमद्० पु० १०।७०।१९।

५. कामसूत्र सू० १.७।   ६. ए० के० दिकलाज़ सूची १।

७. दीघनिकाय ब्रह्मजालिसुत्त सू० ६।

८. भरतादिप्रणीतानि नृत्तशास्त्राणि ए० के० दिकलाज सूची ४ कादम्बरी पैरा ७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कथा-विनोद

सोमेश्वर के समय में कथा द्वारा भी राजा का विनोद होता था। सोमेश्वर ने तीन प्रकार की कथाओं का उल्लेख किया है। १, द्विवक्त्रा, २, चतुर्मुखी, ३. बहुपुरुषा। दो व्यक्तियों के मध्य कही जानेवाली कथा द्विवक्त्रा कही होती है।[1] चार व्यक्तियों के मध्य गाई जानेवाली कथा चतुर्मुखी तथा बहुत व्यक्तियों के द्वारा गाई जानेवाली कथा बहुपुरुषा होता है।[2]

इन कथाओं को कहनेवाले पौराणिक[3], वाचक[4] तथा सूतादि[5] होते थे। शब्दशास्त्र का ज्ञाता, लोक-व्यापार को जाननेवाला, वाग्मी, मधुरभाषी तथा सुननेवाले के अभिप्राय को समझनेवाला, चतुर, वेद के तत्त्व को जाननेवाला, साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने में परिश्रम करनेवाला व्यक्ति पौराणिक होता है।[6] गीत के तत्त्व को समझनेवाला, ज्ञानी, पदों से पूर्ण श्लोक को सुन्दर ढंग से कहनेवाला व्यक्ति वाचक होता है।[7] इन्हीं दोनों व्यक्तियों के द्वारा जब पुराणादि से सम्बन्धित कथा कही जाती है तब वह द्विवक्त्रा कथा होती है।[8]

ताल तथा राग से पूर्ण प्राकृत भाषा में सूत के द्वारा कही जाने वाली तथा मध्य-मध्य में विशेष प्रकार की गायिकाओं तथा नर्तकियों द्वारा गाए जाने वाले सुन्दर मनोहर गीतों से पूर्ण कथा चतुर्मुखी होती है।[9]

कर्णाट भाषा में छः पदों से युक्त, उदार ध्वनि से पूर्ण, गायिका के द्वारा बिना ताल आदि से सुन्दर स्वर में गाई जानेवाली तथा अनेक कवियों द्वारा मधुरता से गाई जानेवाली कथा बहुपुरुषा होती है।[10] इस प्रकार से गाथा को गाने के लिए अनेक व्यक्ति होते थे।

ये तीनों प्रकार की कथायें रौद्र, भय, उत्साह, करुण, श्रृङ्गार, प्रेम संभोग, विप्रलम्भ से युक्त अनेक प्रकार की सुन्दर एव दुर्घटनाओं, ईर्ष्या, मद, मत्सर, मोह आदि भावों तथा राजाओं के अनेक प्रकार के ओजस्वी चरित्रों से युक्त होती थीं।[11] कथा के ये विषय तत्कालीन समाज पर बहुत कुछ प्रकाश डालते है। उस समय समाज में व्यक्ति इसी प्रकार के विषयों के प्रेमी थे। अनेक ऐश्वर्यशाली राजाओं के चरित्र को राजा को गा-गा कर सुनाया जाता था

---

१. मानसो० ४।१६।२३७५। २. वही ४।१९।३२७५,७६।
३. वही ४।१९।३२८०। ४. वही ४।१९।३२८१।
५. वही ४।१९।३२८३। ६. वही ४।१९।३२७८-८०।
७. वही ४।१९।३२८१। ८. वही ४।१९।३२८२।
९. वही ४।१८।३२८३-८४। १०. वही ४।१९।३२८५,८९।
११. वही ४।१९।३२९०-३२९१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्योंकि इस प्रकार की सुन्दर दिव्य, भव्य, मनोहर एवं सुनने योग्य कथाओं को राजा ध्यानपूर्वक सुनता था। इसके अतिरिक्त अपनी प्रेयसी के प्रेम की वृद्धि करने के लिए राजा स्वयं प्रेमपूर्ण वृत्तों की अपनी प्रेयसी को सुनाता था।[१] इस प्रकार के कथा सभी व्यक्तियों के विनोद का साधन थी।[२]

सोमेश्वर के कथाविनोद को पढ़कर ऐसा विदित होता है कि सोमेश्वर के समय में कथा पद्यबद्ध थीं और अनेक वाद्यों के साथ गाई जाती थीं, जिसे अनेक प्रकार की योग्य नर्तकियाँ, कवि, सूत आदि गाते थे। सम्भवतः यह सभी लोग राजा को कथा सुनाने के लिए उसके दरबार में आते थे। यह कथा राजा के लौकिक जीवन से सम्बन्धित थी, किन्तु जो कथा राजा अपनी प्रेयसियों से स्वयं कहता था वह कथा उसके व्यक्तिगत जीवन तक ही सम्बन्धित थी। इस प्रकार सोमेश्वर के समय में दो प्रकार की कथायें थीं—

१. राजा के लौकिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली द्विवक्त्रा, चतुर्मुखी, बहुपुरुषा आदि कथायें।

२, राजा के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली कथा जिसे राजा की प्रेयसियां ही सुनती थीं और वे ही परस्पर आनन्द उठाते थे। ये सभी प्रकार की कथायें पद्यबद्ध थीं।

भारतीय साहित्य के अन्तर्गत पद्य बद्ध कथाओं का अत्यन्त प्राचीन इतिहास है। पुराणों में कथा सम्बन्धी प्रसंग प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में परिहास कथा का प्रसंग प्राप्त होता है। जो भगवान् श्रीकृष्ण ने दूत से कही थी—

उवाच दूतं भगवान् परिहासकथामनु।
उत्सद्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे॥[3]

राजा का स्वयं अपनी प्रिया से हास्य कथा कहे जाने का प्रसंग भी पुराणों से प्राप्त होता है—

हसन्तं हास्यकथया कदाचित् प्रियया गृहे।[४]

संभवतः यह सोमेश्वर के द्वारा कही हुई द्विवक्त्रा कथा का ही प्राचीन रूप होगा। इसी प्रकार मृदंग, वीणा, वेणु आदि के ताल पर गाई जाने वाली कथाओं का भी पुराणों में उल्लेख हुआ है जिसे सूत तथा मागध आदि गाते थे—

मृदंगवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवन्दिनः॥

---

१. वही ४।१९।३२९२। २. वही ४।१९।३२९३।
३. श्रीमद्० पु० १०।६।७८ ४. वही १०।६९।२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः।
पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन् कथाः ॥[१]

यह भी संभवत: एक प्रकार की बहुपुरुषा कथा ही थी, किन्तु इसमें गायिकाओं द्वारा बीच में गाये जाने का प्रसग नहीं प्राप्त होता। पुराण-काल में कथायें अधिकांशतः राजाओं के निर्णय चरित्र मे पूर्ण रहती थीं जो किसी उत्सव के समय राजा को गाकर सुनाई जाती थी।

वात्स्यायन के समय में भी कथा कहने का अधिक मात्रा में प्रचार था। कथा कहने वाले चतुर, शिक्षित तथा सज्जन व्यक्ति का विद्वानों की सभा में आदर होता था—

ब्रुवन्नप्यन्यशास्त्राणि चतुःषष्टिविवर्जितः।
विद्वत्संसदि नात्यर्थं कथासु परिपूज्यते ॥
वर्जितोऽप्यन्यविज्ञानैरेतया यस्त्वलंकृतः।
स गोष्ठ्यां नरनारीणां कथास्वग्रं विगाहते ॥[२]

नागरिक यदि अधिक संस्कृत तथा अधिक शिक्षित न होता था तो भी यदि वह गोष्ठी में कथा को सुन्दर ढंग से कह लेता था तो वह प्रसिद्ध हो जाता था।[३]

दीर्घ निकाय में कथा का तो उल्लेख हुआ ही है किन्तु साथ ही अन्तर्कथा का भी प्रसंग प्राप्त होता है—

.........एतरहि कथाय सन्निसिन्ना सन्निपतिता, का च पन वो अन्तरा-कथा विप्पकता–ति ?[४]

इस प्रकार से बौद्ध काल की कथाओं में प्राचीनकाल के राजाओं का चरित्र ही अन्तर्कथा के रूप में विद्यमान रहता था। कादम्बरी में भी कथा का प्रसंग प्राप्त होता है।[५]

प्रसिद्ध आलंकारिक रुद्रट का ऐसा कथन है कि संस्कृत में कथायें गद्य में ही लिखी जानी चाहिए, किन्तु प्राकृत आदि, भाषाओं में कथायें गाथा बद्ध

---

१. वही १०।७०।२०-२१। २. कामसूत्र सू० ५०.५१, पृ० १८२।
३. नात्यन्तं संस्कृतेनैव नात्यन्तं देशभाषया।
कथां गोष्ठीषु कथयंल्लोके बहुमतो भवेत् ॥
कामसूत्र सू० ५०, पृ० ५८।
४. दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त सू० ४. पृ० २।
५. ए० वेंकटसूबिया दि कलाज सूची कादम्बरी पैरा ७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होती हैं ।[१] किन्तु यह उनका मत निर्मूल विदित होता है । पद्य कथाओं का भारत में प्राचीन काल से ही गायन होता रहा है । हां प्राकृत भाषा में गाथा बद्ध कथा उनके समय में अवश्य प्रारम्भ हो गई थी ऐसा विदित होता है और वे सोमेश्वर के समय तक भी प्रचलित थीं, क्योंकि सोमेश्वर ने प्राकृत भाषा की कथाओं को सूत द्वारा गाए जाने का आदेश दिया है ।[२] इन प्राकृत की गाथाओं की भाषा अत्यन्त चटुल चपल तथा वर्णन अत्यन्त सुन्दर होते थे । बीच-बीच में गद्य का अंश भी रहता था । उदाहरणार्थ यदि कवि को कहना है कि प्रतिष्ठानपुर एक नगर था जहां बहुत शोभा थी । तो वह इस प्रकार प्रारम्भ करेगा...जहां सुन्दरियों के चरणनुपूर के शब्दों का अनुसरण करने वाले राज-हंस अपनी चोंचों से, किसलय त्याग करके प्रतिराव मुखर हो उठते हैं, जहां की यज्ञाग्नि से निकले धुए से आकाश ऐसा काला हो उठता है कि उन्हें देख-कर क्रीड़ा मयूर चंद्रकांत मणियों के शिला तल पर नाच उठते हैं, जहां...... इत्यादि इत्यादि और तब वह अंत में कहेगा कि यह प्रतिष्ठानपुर है ।[३] इस प्रकार की पद्यबद्ध गाथाओं का प्रचार भी देश में अधिक समय तक रहा ।

चमत्कृत विनोद

चमत्कृत विनोद में राजा ने अनेक प्रकार के चमत्कार एवं कुतूहल को प्रकट करने वाले अनेक प्रकार के उपायों का वर्णन किया है । इन उपायों को करके व्यक्ति की दृष्टि भ्रमित हो जाती थी । सोमेश्वर ने इस चमत्कृत विनोद को बड़ा ही अद्भुत एवं आश्चर्य प्रधान तथा व्यक्तियों को मोहित कर देने वाला बतलाया है ।[४]

मरे हुए मनुष्य की खोपड़ी में मिट्टी भरकर उसमें कटुका के बीज बोए । जब वे उग आवे तो उसकी जड़ को निकाल कर उसके अलग अलग गुटके बना ले तब पन्नोब की गुटिका में मिलाकर उसका मस्तक पर तिलक लगाए । इस तिलक के लगा देने पर कड़ुई वस्तु खाने पर भी वह कटु नहीं लगती ।[५] यह उपाय संभवतः इन्द्रियों की चेतना पर आवरण डाल देती थी जिससे जिह्वा को स्वाद का ज्ञान न हो पाता था ।

कुत्ते के कपाल में मिट्टी भर कर उसमें बीजों को बोदे । अंकुर निकल आने पर उसमें सर्प की केचुल छोड़ दे तब उसके मूल को उखाड़कर उससे रुई के

१. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १३४ ।

२. मानसो० ४।१९।३२८३ ।

३ प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० १३४ ।

४. मानसो० ४।२०।३२९४ । ५. वही ४।२०।३२९५-९६ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साथ लाख आदि मिला कर वर्तिका बनावे और उससे दीपक जलावे। उस दीपक के जलने से जो प्रकाश होगा उसमें अन्य व्यक्तियों को सर्प ही सर्प सब ओर दिखाई देंगे[१], किन्तु आँखों में मधु लगा देने से उनके नेत्र स्वच्छ हो जाते थे और उन्हें ठीक दिखने लगता था।[२] संभवत: इस उपाय द्वारा व्यक्तियों की दृष्टि बांधकर उस पर आवरण पड़ जाता होगा और सबको वही दिखाई पड़ता होगा जो ऐन्द्रजालिक दिखलाता होगा।

नित्य वेत्र के दंड में अंकोल के तेल का लेप कर एक मास तक भात के मध्य में रखे। एक मास पश्चात् उस दंड के ज्योति में छुआने पर वह दंड सर्प की भांति दिखलाई पड़ेगा।[३] यह भी व्यक्तियों को भ्रम में डालने तथा डराने का अद्भुत उपाय था।

चतुर्दशी के दिन श्मशान भूमि में कृष्ण तथा कपिल वर्ण की रस्सी को भूमि में गाड़ दे। वर्षा हो जाने पर उसी दिन उसे रात्रि में खोद ले। तब वह रस्सी जिस वस्तु के बांधी जायगी वही मनुष्य रूप हो जायगा जिसे देखकर सभी व्यक्ति असमंजस में पड़ जायंगे।[४] इसी प्रकार के एक अन्य प्रकार से एक दंड को तैयार कर गहरे जल के मध्य जा सकता था।[५]

वेर की सूक्ष्म गुठली का चूर्ण बनाकर उसमें अन्य वस्तुयें मिलाकर गुटिका बना ले तब वृश्चिक में मिलाकर सिद्ध के तेल के साथ हाथ में लेप करे। तब हाथ में हरीतकी रखने पर वह सुपारी दिखाई देगी, पत्ता रखने पर ताम्बूल, अरहर रखने पर हरिमंथ, हरिमंथ रखने पर माष (उरद) आदि दिखाई पड़ेगा।[६] इस प्रकार यह उपाय व्यक्तियों के कौतूहल का वर्द्धक था।

इसी प्रकार से सोमेश्वर ने हाथ पर आग जलाने पर हाथ न जलने के[७] गहरे जल में रहने के[८], शृगाल, कुक्कुट, तित्तिर[९] आदि बनाने के तथा अपने को लुप्त कर देने के उपायों[१०] का वर्णन किया है।

---

१. वही ४।२०।३२९७,९८।

२. अभ्यज्य मधुना नेत्रे जना निर्मलचक्षुषा।
पश्यन्ति तत्त्वात्सर्वं तु वस्तुजातं पुरे स्थितम्॥
वही ४।२०।३२९९।

३. वही ४।२०।३३००.३३०१।

४. वही ४।२०।३३०२.३३०३।

५. वही ४।२०।३३०४.३३०५।

६. वही ४।२०।३३०६.३३१०।

७. वही ४।२०।३३१३-३३१६।

८. वही ४।२०।३३१८-२०

९. वही ४।२०।३३३३-४०।

१०. वही ४।२०।३३४०-४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह उत्सव राजा के प्रांगण-प्रसाद के खुले स्थान में होता था। इसे देखने के लिए सभी अपने तथा अन्य देश के व्यक्ति, प्रेयसियाँ, कुमार तथा कुमारियाँ मंत्री, महन्त, मंडलाधीश, अमात्य, सचिवादि आते थे और इस माया से पूर्ण चमत्कार को देखकर अपना मनोरंजन करते थे। इन सभी के बैठने का उचित रूप से प्रबन्ध किया जाता था।[1] यह सम्पूर्ण लोक को मनोहर लगने वाला मनोरंजन था—

चमत्कारविनोदोऽयं सर्वलोकमनोहरः[2]

सोमेश्वर ने इन्द्रजाल के लिए ही संभवतः चमत्कृत शब्द का प्रयोग किया है। इन्द्रजाल शब्द का अर्थ ही इन्द्रियों पर जाल अथवा आवरण पड़ जाना है। इस विद्या द्वारा मनुष्य भ्रमित हो जाता है। भारतवर्ष में इन्द्रजाल कीं विद्या अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। सम्बर या शवर नामक असुर तथा इंद्र इस विद्या के आचार्य थे। कालिका पुराण में एक प्रकार के 'शाबरोत्सव' के मनाए जाने का प्रसंग प्राप्त होता है। इसे सभी नर्तकियाँ, वेश्यायें तथा रागवती स्त्रियाँ मिलकर करती थीं। यह उत्सव श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की दशमी को मनाया जाता था और एक दूसरे को सभी अश्लील शब्द कहती थीं।[3] रत्नावली में भी इन्द्र तथा सम्बर इस विद्या के आचार्य माने गए हैं। ये पृथ्वी पर ही चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता दिखा देते थे। इसके अतिरिक्त जो कोई जिस वस्तु को देखने की इच्छा करता था उसे वे वहीं वस्तु दिखाते थे। रत्नावली में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि राजा की आज्ञा से उन्होंने कमलासन ब्रह्मा, शशिशेखर भगवान् शंकर तथा विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति तथा ऐरावत पर चढ़े हुए इन्द्र को साक्षात् दिखलाया था।[4] इसी प्रकार उन्होंने, आग की लपटों को तथा झुलसे हुए पत्तों को प्रदर्शित कर अन्तःपुर में आग लग जाने की शंका को उत्पन्न कर दिया था।[5]

तंत्र के ग्रंथों में इन्द्रजाल की ऐसी विधियाँ बतलाई गई हैं जिनसे मनुष्य

---

१. वही ४।२०।३३४९-३३५२। २. वही ४।२०।३३५३।

३, कालिका पुराण, उत्तर तंत्र, अध्याय ६०।

४. एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शंकरोऽयं
दोर्भिर्दैत्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैश्चतुर्भिः
एषोऽप्यैरावतस्थस्त्रिदशपतिरमी देवि देवास्तथान्ये
नृत्यन्ति व्योम्नि चैताश्चलचरणरणन्नूपुरा दिव्यनार्यः ॥
रत्नावली ४।७४।

५. रत्नावली ४।७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कबूतर, मोर तथा अन्य प्रकार का पक्षी बन कर उड़ भी सकता है। अनेक प्रकार के मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन सम्बन्धी सिद्धि तथा अपने को अदृष्ट कर अन्य सबको देखने के उपाय का भी वर्णन हुआ है।[१] हिंसक जन्तुओं को मारना, आग को बाँध देना आदि कार्यों की सिद्धि का वर्णन भी इन्द्रजाल विद्या के अन्तर्गत ही हुआ है।[२] इसके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को प्रसन्न करने के लिए तथा दुःखी करने के लिए अनेक प्रकार के मायापूर्ण उपकरणों का प्रयोग किया जाता था। यह भी क्रिया इन्द्रजाल से ही संबंधित थी। इसके लिए 'सौभागकरम्'[३] अथवा 'सौभाग्यकरणम्' तथा 'दोभाग करम'[४] अर्थात् 'दुग्यानप्रकरणम्' अथवा 'दुर्भाग्यकरणम्' का प्रयोग हुआ है। सोमेश्वर ने अपने चमत्कृत विनोद में इन सभी प्रकार के उपायों का वर्णन किया है।

ललित विस्तर में इन्द्रजाल विद्या को माया अथवा धोखा कहा गया है। वास्तव में यह कुछ भी नहीं है। इसी कारण इसके लिए मायाकृतम्[६] का प्रयोग किया है। इसी प्रकार ललितविस्तर में 'आश्चर्य' नाम की विद्या का भी उल्लेख हुआ है जिसके अन्तर्गत अनेक प्रकार के आश्चर्योत्पादक दृश्य दिखाए जाते थे।[५] संभवतः यह भी इन्द्रजाल से ही संबंधित विद्या थी। ललितविस्तर ने इसे आसुर विद्या[७] माना है।

वात्स्यायन के कामसूत्र में भी ऐन्द्रजालयोगाः का प्रसंग प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि इन्द्रजाल विद्या का उस समय भी बड़ा महत्त्व था। इसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की धोखा देने वाली वस्तुयें दिखाई जाती थी उदाहरणार्थ देवता, सर्प तथा सेना आदि[८] इसी प्रकार का प्रसंग दशकुमारचरित में भी प्राप्त होता है।[९] बाण के समय में भी इन्द्रजाल विद्या का समाज में काफी प्रचलन था। कादम्बरी में ऐन्द्रजालिक के प्रसंग प्राप्त होता है।[१०]

इस प्रकार ऐन्द्रजालिकों को सदा से ही समाज में तथा राजा के दरबार में विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है। प्राचीन काल में भारत में होने वाली इन्द्र-

---

१. दत्तात्रेय तंत्र पटल ११। २. इन्द्रजाल तंत्र संग्रह, पृ० ३२।
३. समवाय सुत्त २.२ २७, दीघनिकाय ब्र० जाल सु० २६, वृ० अध्याय ७५; इन्द्रजाल तंत्र संग्रह पृ० ३७। ४. वही।
५. ए० वेंकटसूविया दि कलाज सूची नं० २।
६, वही। ७. वही।
८. ए० वेंकटसूबिया दि कलाज सूची ३।
९. दशकुमारचरित १।३१।
१०. ए० वेंकट सूबिया दि कलाज सूची ४ कादम्बरी परा ७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जाल की अद्भुत विद्या का चमत्कार सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध था ! आजकल भी नट लोग यत्र तत्र इसी प्रकार के जादू से भरे हुए कृत्य दिखाकर अपनी जीविका चलाते हैं। इसे देखने के लिए आज भी अधिक मात्रा में भीड़ एकत्र हो जाती है।

भूधर क्रीड़ा

भूजर क्रीड़ा राजा के प्रासाद के अन्दर ही खेली जाती थी। इस क्रीड़ा के लिए महल के एक ओर चित्र विचित्र वृक्षों से पूर्ण वन बनाया जाता था और उसके मध्य एक ऊचा श्रृंगों से पूर्ण क्रीड़ा पर्वत बनता था—

तत्र चित्रद्रुमोपेतं वनं कुर्यात् समन्ततः।
तन्मध्ये रुचिरं रम्यं क्रीडाहेतोर्मनोहरम्॥
कारयेत्पर्वतं राजा तुंगश्रृंगविराजितम्।
नानावृक्षसमाकीर्णं सुविशालशिलातलम्॥[1]

वन के सभी मासों में लगने वाले फलों के वृक्ष, तात्कालिक फलों को उत्पन्न करने वाले तथा अनेक प्रकार के क्षीर वृक्ष बोए जाते थे।[2] सोमेश्वर ने उन वृक्षों के बीजों को बोने का उचित रूप से उपाय बतलाया है। वृक्षों के बीजों को दो प्रकार से बोया जाता था—

१—स्वभाव से ही पक जाने वाले फलों के बीजों को पांच दिन गोबर में रखने के पश्चात् उन्हें निकालकर विडंग तथा घृत को जला कर उसके धूम्र द्वारा उन्हें धुपाया जाता था। इस प्रकार से सभी वृक्षों के बीज बोए जाते थे।[3]

२—इस विधि के अनुसार बीजों को दस दिन तक दुग्ध में रखा जाता था। दस दिन के पश्चात् उन्हें निकाल कर छाया में सुखाकर उनमें व्याघ्री, यव तथा गेहूँ की भस्म मिलाकर गोबर द्वारा साना जाता था।

१, मानसोल्लास ५।१।२.३ (भांडारकर ओ० रि० इंस्टी० की हस्तलिपि)।

२. मानसोल्लास ५।१।५.६ (भां० ओ० रि० इंस्टी०)।

३. स्वभावपक्वफलितं निर्दोषं शुकमानयेत्।
फलबीजं समालिप्तं गोमये दिनपंचकम्॥
विडंगघृतधूपेन धूपितं कारयेन्भवां।
सर्वेषामेत्र वृक्षाणामेव बीजविधिः स्मृतः॥
वही ५।१।७.९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह विधि विशेष रूप से सभी क्षीर के वृक्षों को बोने में काम आती थी।[1]

इन बीजों को स्वादिष्ट जल से पूर्ण, पत्थरों से शून्य, स्निग्ध तथा समतल भूमि में बोया जाता था।[2] इस कारण जहाँ की भूमि तिल, मूँग, मास तथा पुष्पादि के उगने के लिए उपयुक्त हो वहीं पर चारों ओर क्रीड़ा पर्वत का उपवन बनना चाहिए—

तिलान्मुद्‌गाँस्तथा माषान् दृष्ट्वा पुष्पकलोलितान्।
तस्मिन्नुपवनं कुर्यात्क्रीडाशैले समन्ततः ॥[3]

उस उपवन में बोये हुए प्रत्येक वृक्ष के मध्य सोलह, ग्यारह, आठ अथवा चौदह हाथ का अन्तर वृक्षों की वृद्धि के अनुसार रखा जाता था।[4] इसके अतिरिक्त वृक्ष को शोभायुक्त बनाने के लिए चार हाथ गहरा थाला खोदकर उसमें बालू, मिट्टी, अस्थि, करीष, अजा का मांस तथा चर्बी भरकर पानी डाल दिया जाता था। इस प्रकार से वृक्ष शोभा को प्राप्त करता था।[5] बीजों को बोने के अतिरिक्त समूल छोटे-छोटे वृक्ष भी भूमि खोदकर गाड़ दिए जाते थे। इस प्रकार से भी वृक्षों का आरोपण होता था।[6]

उस क्रीडा शैल के उपवन में सर्वप्रथम अशोक, निम्ब, पुन्नाग, बकुल, नागकेसर, शिरीष, तिलक आदि वृक्ष लगाये जाते थे, क्योंकि ये सभी वृक्ष आरोग्य, यश तथा विजय की वृद्धि करने वाले हैं—

अशोक-निम्ब-पुन्नाग-बकुलो नागकेशरः।
शिरीषस्तिलकश्चैव मुख्यं ते प्रथमं वने ॥
सुखारोग्यं यशोवृद्धि-लक्ष्मं विजयवृद्धये।
सौभाग्यार्थमिव वृक्षाः कर्तव्या भूभृता वने ॥[7]

---

१. गोक्षीरभावितं बीजं दशरात्रं निरंतरम्।
छायाशुष्कं च मिलितं च व्याघ्रीसंकुलभस्मना ॥
यवगोधूममिलितं गोमयेन प्रलेपितम्।
स्थापयेत्क्षीरवृक्षाणां द्विविधं बीजसंस्मृती ॥
मानसोल्लास ५।१।९-१०।

२. मानसोल्लास ५।१।११ (भां० ओ० रि० इंस्टी०)।

३. वही ५।१।१२।

४. षोडशैकादशाष्टौ वास्तथा हस्ता श्चतुर्दश।
कर्तव्यं रोप्यमाणानामन्तरालं महीरुहम् ॥ वही ५।१।१३।

५. वही ५।१।१४.१६

६. वही ५।१।१७।

७. वही ५।१।१८.१९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस उपवन में पलाश, कचनार, अर्जुन, करञ्ज आदि वृक्षों को नहीं लगाना चाहिए।[1]

हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में एक दिन के अन्तर से इन वृक्षों को सींचना चाहिए।[2] वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में इन पेड़ों में प्रतिदिन प्रातःकाल जल दिया जाता था किन्तु वर्षा तथा शरद् ऋतु में भूमि के सूख जाने पर वृक्षों में जल दिया जाता था।[3] इन वृक्षों में एक वर्ष तक के वृक्ष को एक घड़े द्वारा सींचा जाता था और जैसे-जैसे इनकी आयु की वृद्धि होती जाती थी वैसे वैसे बीस वर्ष तक प्रतिवर्ष जल के घड़ों की भी वृद्धिकर दी जाती थी :

विजानायात्ममारच्य कुम्भेनेकेन सेचयेत्।
यावद्वर्षं तत् कुम्भं प्रतिवर्षं विवर्द्धयेत्॥[4]

यदि सींचने वाला जल भूमि में चला नहीं जाता था तो उस भूमि को इस प्रकार से खोद दिया जाता था जिससे जल वृक्ष की मूल में चला जाय।[5] इस प्रकार से वृक्षों की अजीर्णता समाप्त हो जाती थी।[6] इन वृक्षों की वृद्धि के लिए उसके समीप की लतायें तथा अन्य झाड़ियों को हटा देना चाहिए[7] और भालातक तथा भैंसे की सींघ को बराबर हिस्से में लेकर उनका चूर्ण बनाकर वृक्ष के मूल में डाल कर कीड़ों से वृक्ष की रक्षा करनी चाहिए:

विडंगीसिंगुसंधूरमारिचारति विषावचा।
भालातकं तथा श्रृंगं माहिषं समभागतः॥
एतैर्विरचितौ भूमौ निहन्य कृमिकीटकम्।
उद्याने पादपानां तु सर्वव्याधिविनाशनम्॥[8]

इन सब उपायों के अतिरिक्त सोमेश्वर ने उपवन में लगाये जाने वाले सभी फल एवं पुष्पों के वृक्ष के लिए विशेष प्रकार की खाद डालने एवं उसको बोने का उपाय बतलाया है, जिससे वे वृक्ष अधिक से अधिक सुन्दर तथा बड़े फल प्रदान कर सकें। उदाहरणार्थ सभी वृक्षों को शफरी मछली, घृत, सिद्धार्थ तथा कदली दल को मिलाकर उसका धुंआ देने से वे अधिक मधुर एवं अधिक

---

१. मानसोल्लास ५।१।२०।
२. हैमन्ते शिशिरे देयं तोयमेकान्तरे दिने। वही ५।१।२१।
३ वही ५।१।२१,२२।
४. वही ५।१।३३।
५. वही ५।१।२३,२४।
६. वही ५।१।२५।
७. वही ५।१।२५,२६।
८. वही ५।१।३१,३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मात्रा में फल उत्पन्न कर सकते हैं।[१] इसके अतिरिक्त घृत, तोता तथा कुरंग की चर्बी को अंकोल तेल में मिलाकर सींचने से वृक्ष सदैव फल से लदे रह सकते हैं।[२] सभी क्षीर वृक्षों को विडंग, मधु तथा घृत मिश्रित दूध से सींच कर नत तथा कुष्ट को जलाकर धुआं देने से वे वृक्ष शोभायुक्त फलों को उत्पन्न कर सकते हैं :

विडंगे मधुसर्पिर्भ्यां क्षीरेण कृतसेचना ॥
धूपिता नतकुष्टाभ्यां क्षीरवृक्षाः सदाफलाः।[३]

इसी प्रकार गौ के दुग्ध की चर्बी तथा अगर को जल में मिलाकर, सींचकर उन्हें वृश्चिक, कंटक, घृत, तोता तथा चूहे की चर्बी को जलाकर धूप देने से सभी लतायें सदा फल से पूर्ण रहती हैं।[४] मुर्गे की करीष तथा अश्व के मांस की मज्जा की खाद देने से अंगूर की बेल, सारंग, गज, मार्जार तथा जंगली सुअर के मांस की मज्जा को दूध में मिलाकर उसकी खाद डालने से दाडिम के फल स्वादपूर्ण एवं मधुर होते हैं तथा मधु, जंगली सुअर की वसा को अंकोल के तेल में मिलाकर उसकी खाद देने से आम का वृक्ष सदा फल से पूर्ण रहता है।[५] पानी में मधु, घृत, गुड़ तथा दुग्ध मिलाकर खाद देने से कपित्थ तथा श्रीद्रुम वृक्ष के फल स्वादुपूर्ण पुष्प आने के कुमार के कांटे से खरोंच कर उस स्थान पर मधु तथा घृत मिला हुआ तिल चूर्ण का लेप करने से आमलक वृक्ष के फल मधुर तथा बड़े होते हैं।[६] जहां पर फल निकलने वाले हों वहाँ पर कांटे से खरोंच कर सुअर और घोड़े की लीद का लेप करने से केले के वृक्षों में अधिक फल, तथा सुवर्ण की शलाका द्वारा उस स्थान को खरोंच कर हाथी दाँत के चूर्ण का लेप करने से केले के फल हाथी दांत की ही भाँति मोटे तथा बड़े होते हैं।[७] विडग, माष, मधूक के चूर्ण को मदिरा से सानकर उसमें नमक मिलामर लेप करने से नारियल के वृक्ष फल अधिक देते हैं।[८] इसी प्रकार नारंगी, चंपक, अशोक, जयकुसुम, बीजपूर, मकरंद, तिलक, कर्दम तथा केशर आदि वृक्षों के फलों एवं पुष्पों की मात्रा अधिक करने के लिए तथा फलों को बड़ा करने के लिए विशेष प्रकार की खादों का उल्लेख किया है।

---

१. वही ५।१।३४,३५।
२. वही ५।१।३६,३७।
३. वही ५।१।३८,३९।
४. वही ५।१।३९-४१।
५. वही ५।१।४१ ४५।
६. वही ५।१।४६-४९।
७. वही ५।१।४९ ५०; ५४.५५।
८. वही ५।१।५१,५२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार के उपायों द्वारा उत्तमोत्तम प्रकार की खाद को डालकर अत्यन्त सुन्दर एवं मधुर फलों से पूर्ण वृक्षों को क्रीड़ा पर्वत के समीप स्थित उपवन में लगवाना चाहिए—

ईदृग्विधं वनस्पतिं कृतशैले मनोहरे ॥[1]

उसी क्रीड़ा पर्वत के समीप सुगन्धित जल तथा कमलादि पुष्पों से पूर्ण, हंसादि पक्षियों से गुंजायमान कृत्रिम जलाशय बनवाया जाता था—

कृत्रिमां रचयेत् वृत्तांत् सरांसि सरितस्तथा।
... ...
सुगन्धिपुष्पस्तवकीन्सुधास्वादुत्पलान्वितः।
साक्षान् निर्मितहंसाद्य निर्मलोदकधूपितम्॥
... ...
दिग्धधुदर्पणाकारं गिरौ कुर्यात् सरोवरम्॥[2]

सरोवर के साथ ही साथ मुक्ता के सदृश कणों से युक्त बालुका का उसी के समीप तट बना होता था। कुंकुम मिश्रित जल से पूर्ण कुल्या का निर्माण उसी क्रीड़ा पर्वत के समीप कराया जाता था।[3]

इतने सुंदर क्रीड़ा पर्वत के निर्मित हो जाने पर राजा श्रृंगार करके प्रसन्न करने वाले विटों, अपनी प्रेयसियों तथा पंडितों के साथ श्रेष्ठ वाहनों पर सबको चढ़वा कर तथा स्वयं हेम किंकिणियों से युक्त श्रेष्ठ गज के ऊपर चढ़कर चामर रूपी व्यजन से सुशोभित होता हुआ क्रीड़ा पर्वत पर लीला पूर्वक आता था।[4] उन प्रेयसियों से घिरा हुआ राजा उसी प्रकार सुशोभित होता था जैसे अप्सराओं के मध्य इन्द्र सुशोभित होते हैं।[5] क्रीड़ा पर्वत के समीप पहुँच कर राजा उस पर्वत पर चढ़ता हुआ पुष्पक विमान पर चढ़ते हुए श्रीरामचन्द्र जी की भांति सुशोभित होता था।[6] उस पर्वत पर अपनी कामिनियों तथा परिजनों

---

१. वही ५।१।९९। २. वही ५।१।१००,१०३।

३. सूक्ष्ममुक्ताफलैर्विलिप्तं बालुकापुलिनस्थलम्।
कुंकुमोदक तुपणचिःकुल्यां कुत्रापि कारयेत्॥
... ...
विधायेवंविधं शैलं ततासादमुदान्वितः॥
वही ५।१।१०४,१०५।

४. वही ५।१।१०६-११०। ५. वही ५।१।१०९।

६. दर्शयन्करिणं क्षीणं परंमंडलिकामपि।
समारोहे ततः शैले पुष्पके राघवो यथा॥ वही ५।१।१११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के साथ घिरा हुआ राजा अनेक प्रकार के कंद, मूल, फलों का भक्षण करता था।[१] तत्पश्चात् अपने परिजनों को वस्त्र कांचनादि दान कर विसर्जित कर देता था[२] और स्वयं अपनी कामिनियों के साथ राजा कभी वृक्ष के नीचे, कभी सरिता के समीप, कभी जलाशय के तट पर क्रीड़ा करता था। क्रीड़ा करते समय कभी वे तरुणियां मधुर गाना गाती थीं, कभी नृत्य करती थीं। इस प्रकार की क्रीड़ाओं द्वारा राजा अत्यन्त आनन्द प्राप्त करता था—

राजते पृथ्वीनाथः शक्रो वाप्सरसांगणैः।
कदाचित्पादपच्छाये कदाचित्सरितातटे॥
कदाचित्सरसीतीरे क्रीडति क्षितिवल्लभः।
गाययेत्कलकं गीतं वर्तयेल्ललनांगना॥
हासयस्तरुणीर्वृंदमानंदं परमाप्नुयात्॥[३]

संध्या के समय राजा क्रीड़ा को समाप्त कर पर्वत के अग्र भाग से श्रेष्ठ गज पर चढ़कर अपनी प्रेयसियों समेत राजमंदिर को लौट आता था।

यह भूधर क्रीड़ा महल के अन्दर ही राजा के मनोरंजन का साधन था। इस क्रीड़ा के प्रसंग स्मृतियों में भी प्राप्त होते हैं। विष्णु स्मृति[४] में क्रीड़ापर्वत के समीप बने हुए समुद्रगृहों के प्रसंग प्राप्त होते हैं। रघुवंश में क्रीड़ापर्वत का वर्णन हुआ है। उस पर अनेक वापी एवं दीर्घिकाये बनी होती थीं। बकुल, शिरीष आदि अनेक मांगल्य वृक्ष लगाए जाते थे। उस क्रीड़ा पर्वत की बावलियों को हंस गण अपनी मधुर ध्वनि से गुंजायमान करते रहते थे। उस पर अनेक पक्षी एवं मयूर फिरा करते थे और वे मेघ के गर्जन को देखकर नाच उठते थे--

अंसलंबिकुटजार्जुनस्रजस्तस्य नीपरजसांगरागिणः।
प्रावृषि प्रमदबार्हिणेष्वभूत कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रमः॥[५]

रघुवंश का यह प्रसंग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देता है कि ये क्रीड़ा पर्वत कृत्रिम होते थे और वर्षा ऋतु में राजा के विहार के हेतु निर्मित किए जाते थे। सोमेश्वर ने भी कृत्रिम भूधर का ही वर्णन किया है।[६] मेघदूत में मरकत मणियों से जटित सीढ़ियों से युक्त वापी का प्रसंग प्राप्त होता है। उसमें वैदूर्यमणि के नालों पर स्वर्ण के कृत्रिम कमल बने थे और उसी के समीप ही

१. वही ५।१।११४.१२०। २. वही ५।१२१,१२२।
३. वही ५।१।१२३,१२४। ४. वि० स्मृति ५।११७।
५. रघुवंश १९।३७। ६. वही ५।१।१००।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्रीड़ा पर्वत था।[1] उस क्रीड़ा पर्वत पर बनी हुई दीर्घिकाओं के हंस चूड़ियों की झंकार सुनकर नाच उठते थे। इससे विदित होता है कि ये पक्षी बड़े ही सीधे तथा भोले होते थे।[2] सांची के तोरण में प्राप्त हुई प्रतिकृतियों में भी वन्य वृक्ष की छाया के नीचे कृत्रिम क्रीड़ापर्वतों के प्रसंग प्राप्त होते हैं, जिनके समीप भवन दीर्घिकायें होती थी तथा प्रेमी प्रेमिकायें परस्पर क्रीड़ा करते थे। यह तोरण ईसवी पूर्व दूसरी शताब्दी का है।[3] इन प्रसंगों से इस क्रीड़ा की प्राचीनता का अनुमान होता है।

वनक्रीड़ा

भूधर क्रीड़ा के पश्चात् सोमेश्वर ने वन क्रीड़ा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। शिशिर ऋतु के व्यतीत हो जाने पर राजा वन क्रीड़ा करने के हेतु वन में जाता था।[4] सुस्पर्श सुगन्धित पुष्पों की गन्ध से युक्त तथा मनोहर नागकेसर, पुन्नाग की रेणु से पूर्ण वायु के बहने पर, स्त्रियों से हृदय में उल्लास होने पर, कोकिल के कूजने पर, पुष्प युक्त चंपक वृक्षों से पूर्ण जंबीर पुष्प की गन्ध से युक्त माधवी लता से सुशोभित, सुन्दर क्रमुक पंक्ति, नीरंग फल, कंटकयुक्तपनस वृक्ष, कदली खंड, जम्बु वृक्ष, दाड़िम, लवंग, खजूर, मालिका, हरिद्र, शृंग, केतकी वृक्ष, सीरिका ताल आदि वृक्षों तथा कुल्या, तड़ाग तथा कूप से पूर्ण द्राक्षा लता द्वारा निर्मित मण्डप से सुशोभित नन्दन वन के सदृश सुन्दर वन में राजा वन क्रीड़ा करने के लिए जाता था।[5]

वन क्रीड़ा करने के लिए जाते समय राजा के साथ उसकी प्रेयसियां भी रहती थीं।[6] वे प्रेयसियां नीलकमल के सदृश नेत्रों वाली, दाड़िम के सदृश दन्त पंक्तिवाली, शिरीष पुष्प के सदृश मृदु बाहु वाली, पल्लव के सदृश हाथ वाली तथा मराल के सदृश गतिवाली होती थीं।[7] इनके अतिरिक्त राजा के साथ प्रसाद के अन्य पात्र, परिहास करने में कुशल, गीत वाद्य में निपुण विदूषक, विट आदि रहते थे—

अन्यैः प्रसादपात्रैश्च परिहासमुखोचितैः।
गीतवाद्यविनोदज्ञैः-विटविदूषकैः॥[8]

---

१. मेघदूत २।८०। २. वही २।८७।
३. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ० ४३।
४. व्यतीते शिशिरे राजा क्रीडां कुर्याद्वनाश्रयाम्
मानसोल्लास ५।२।१२८।
५. वही ५।२।१२९,४९। ६. वही ५।२।१५२।
७. वही ५।२।१५०,५२। ८. वही ५।२।१५४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वन क्रीड़ा के समय राजा सुन्दर अश्व पर चढ़कर जाता था और सभी जन उसके पीछे रहते थे ।[१] वनभूमि में प्रवेश करने पर राजा प्रेयसियों तथा अन्य जनों को दिव्य वन दिखलाता था । राजा अपनी प्रेयसियों के साथ एक आश्रम मण्डप में बैठता था, जो अत्यन्त रम्य भूमि में बना होता था । उसमें अनेक प्रकार के फल एवं पुष्पादि रहते थे ।[२] अपनी बहुत-सी प्रेयसियों से घिरा हुआ वह राजा निविड तथा गहन गुप्त स्थान में उन स्त्रियों की दृष्टि छिपाकर इधर-उधर वृक्षों के पीछे छिपकर दौड़ता था ।[३] इस प्रकार से परस्पर लुक-छिपकर भ्रमण कर राजा आनन्दित होता था । तत्पश्चात् सब प्रेयसियों के साथ राजा तालाब के शीतल जल द्वारा मुख तथा पाद प्रक्षालन करता था । वे सभी स्त्रियां कदली दलों द्वारा राजा का श्रम दूर करने के हेतु व्यजन डुलाती थीं—

प्रक्षाल्य वक्त्रं पादौ च कदलीदलवीजनैः ।
वीजयन्ति नृपं कांताः कामिन्यः कामवर्धिकाः ॥[४]

श्रम दूर हो जाने पर राजा सभी परिजनों के साथ वन के अत्यन्त रम्यस्थल में प्रवेश कर बैठता था और अनेक प्रकार के मूल फलादि का आस्वादन कर नारिकेल फल के मधुर जल का पान करता था ।[५] सोमेश्वर दक्षिण प्रदेश का राजा था । दक्षिण में नारियल के जल का पान अधिकांशतः प्रचलित है, क्योंकि दक्षिण में नारियल अधिक उत्पन्न होता है । इस प्रसंग में नारियल के जल के पान का प्रसंग अपनी स्थानीय विशेषता को प्रगट करता है ।

इसके पश्चात् सभी जन यथास्थान पर बैठ जाते थे और राजा पुंगीफल से पूर्ण मधुर एवं सुस्वादपूर्ण ताम्बूल प्रेयसियों को देकर स्वयं ग्रहण करता था—

पुंगीफलानि स्वाहृत्य नागवल्लीदलानि च ।
दद्याद्यथोचितं ताभ्यः स्वयमास्वादयेत्ततः ॥[६]

ताम्बूल चर्वण के पश्चात् राजा चंदन के गोंद तथा कर्पूर मिश्रित लेप अपने शरीर पर करवाता था ।[६] इस प्रकार के शृङ्गार कर लेने पर राजा पुनः अपनी प्रेयसियों के साथ इधर-उधर वन में पुष्पों के मध्य में विहार करता था

---

६. वही ५।२।१५५ ।
१. वही ५।२।१५६,५७ ।
२. वही ५।२।१५८-६० ।
३. वही ५।२।१६२,६३ ।
४. वही ५।२।१६५ ।
५. वही ५।२।१६६ ।
६. चन्दनद्रुमनिर्यासैः कर्पूररजमिश्रितैः ।
आलिप्तांगानि सर्वाणि स्वगात्रे विलेपयेत् ॥
वही ५।२।१६७ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और अपनी प्रेयसियों को प्रसन्न करने के लिए वह सिर पर पुष्प निर्मित शेखर धारण करता था।[१] दक्षिण में सिर पर पुष्प तथा जूड़ा बनाकर उसे पुष्प माल्य द्वारा बांधना अत्यन्त आवश्यक शृंगार माना जाता है। आज भी गरबा नृत्य में जो स्त्री पुरुष भाग लेते हैं वे सिर पर पुष्प-माला धारण करते हैं। राजा इस प्रकार से अपनी प्रेयसियों तथा अन्य जनों के साथ वन विहार करके अपने प्रासाद को लौट आता था।

भारतवर्ष विशाल मैदान और हरित उद्यानों से पूर्ण देश है। यहां के निवासी प्रारम्भ से ही प्रकृति के प्रेमी रहे हैं। अतः प्राचीनकाल से ही यह क्रीड़ा भारत में प्रचलित है। पुराणों में इस क्रीड़ा के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। कृष्ण भगवान तथा बलदेव गोपियों के साथ यमुना के समीप स्थित उपवन में रमण किया करते थे। वे सभी परस्पर मिलकर इधर-उधर वन में घूमते थे। गोपिकायें गाना गाती थीं। प्रेम से विह्वल होकर इधर-उधर घूमती थीं। उन गोपियों के साथ वे कन्दमूलादि खाते थे।[२] स्कन्दपुराण के अवन्ती खंड में उद्यान यात्रा एवं विहार का बड़ा ही सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन हुआ है। महाराज शुद्धोदन ने भी कुमार सिद्धार्थ के मन बहलाने के लिए एक रमणीय वाटिका बनवाई थी जिसमें वे जाते थे।[३]

वात्स्यायन के काम सूत्र में भी इस क्रीड़ा का वर्णन हुआ है किन्तु उन्होंने इसका नाम 'उद्यानयात्रा' दिया है।[४] यह क्रीड़ा केवल राजा ही नहीं वरन् नगर के अन्य जन भी करते थे। किसी भी निश्चित दिन नागरिकगण सजधज कर घोड़ों पर चढ़कर दूर स्थित उद्यान में वनक्रीड़ा के लिए जाते थे। उनके पीछे स्त्रियां भी पालकियों पर चढ़कर जाती थीं। वहीं पर कुक्कुट मेषादि का युद्ध होता था और सभी परस्पर आनन्दपूर्वक रमण करते थे।[५]

सोमेश्वर ने वनक्रीडा के अन्तर्गत इन पक्षियों के युद्धों का वर्णन नहीं किया। उनके समय में वनक्रीडा करने के लिए राजा अपनी प्रेयसियों के साथ उद्यान में जाकर आनन्दपूर्वक उनके साथ विहार एवं खान-पान कर लौट आता था।[६] सोमेश्वर ने जो राजा के इधर-उधर छिपने का प्रसंग दिया है

---

१. वही ५।२।१६८,१७०।

२. श्रीमद्भागवतपुराण १०।६५।१८-२१।

३. ललितविस्तर १४।१८३.१९१।

४. घटानिबन्धनं···उद्यानगम···क्रीडाश्च प्रवर्त्तयेत्॥
कामसूत्र, सू० २६।

५. कामसूत्र, पृष्ठ ५३,५४।

६. मानसोल्लास ५।२।१५९ १६०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वह सम्भवतः 'निलयन क्रीड़ा' का ही और रूप है। इस निलयन क्रीड़ा का प्रसंग भी श्रीमद्भागवत पुराण में प्राप्त होता है[1] किन्तु इस क्रीड़ा को भगवान ने गोपों के साथ की थी।

संस्कृत के महाकाव्यों में प्राप्त प्रसंगों से विदित होता है कि प्राचीन काल में राजा गण वन क्रीड़ा के प्रेमी थे। मनोरंजन एवं आनन्द के साथ ही साथ विरह वेदना से संतप्त होकर भी राजागण अपना मन बहलाने के हेतु उद्यान में जाते थे। नैषध में दमयन्ती के विरह में सन्तप्त राजा नल का मन बहलाने के लिए वन विहार करने का प्रसंग प्राप्त होता है।[2] रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने इन्दुमती के मन को बहलाने का एक मात्र साधन क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित उद्यानों को ही बतलाया है—

अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरुकाच्चिन्मनसो रुचिस्ते।
सिप्रातरंगानिलकम्पितासु विहन्तुमुद्यानपरम्परासु ॥[3]

इस प्रकार से वन तथा उद्यान का सुन्दर एवं सरस वातावरण शीघ्र ही व्यक्ति के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था।

आन्दोलन क्रीड़ा

आन्दोलन अथवा प्रेंखा क्रीड़ा भी सोमेश्वरकालीन समाज में अधिकांशतः प्रचलित थी। इस क्रीड़ा द्वारा वैसे तो सभी जन मनोरञ्जन करते थे, किन्तु विशेष रूप से यह स्त्रियों के मनोरञ्जन का ही साधन थी। यह क्रीडा अत्यन्त मनोहर वसन्तऋतु के आ जाने पर ही खेली जाती थी—

ऋतुराजे परिप्राप्ते वसन्तेति मनोहरे।
आन्दोलने प्रकुर्वीत् पृथुसंबद्धयान्विताम् ॥[4]

वसन्त ऋतु के आ जाने पर झूले का निर्माण कराया जाता था। तत्पश्चात् पौर्णमासी की रात्रि को चन्द्रोदय हो जाने पर राजा पूर्ण रूप से अपना शृंगार कर सुन्दर प्रेयसियों के साथ उस झूले पर झूलता था। उसके झूलने के पूर्व तूर्यनाद होता था, वंदीगण वन्दना करते थे, ब्राह्मण लोग आशीर्वाद देते थे। तब राजा अपनी प्रेयसियों के साथ झूले पर चढ़ता था—

---

१. चक्रुर्निलयनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥
श्रीमद्० पु० १०।३७।२७।

२. नैषधीयचरितम् १।५५। ३. रघुवंश ६।३५।

४. मानसोल्लास ५।३।१७५।

५. वही ५।३।१८३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महता तूर्यघोषेण वंदीवंदेन वंदितः।
गीतवाद्यविनोदेन विप्राशीर्भिरभिष्टुतः॥
आरोहेच्चतमान्दोलं प्रेयसीभिः समन्वितः॥[1]

राजा के झूले पर चढ़ जाने पर सभी जन अंजलिबद्ध करों द्वारा उसके जय एवं ऐश्वर्य का वर्णन करते थे। उन सबको राजा वस्त्राभूषणादि द्वारा सन्तुष्ट कर तथा विदा कर अपनी प्रेयसियों के साथ आन्दोलन क्रीड़ा द्वारा अपना मनोरञ्जन करता था। इसी प्रकार से राजा की शोभा बिल्कुल अप्सराओं से घिरे हुए देवराज इन्द्र के सदृश हो जाती थी—

स्तूयमान्वस्तदा राजा राजते देवराजवत्।
संतर्प्य प्रियै·········वस्त्रविभूषणैः ॥
ब्राह्मणान्गायकादींश्चैतत् सर्वान्विसर्जितः।
ततः कांताजनैः सार्धं क्रीड़ादांदोलकैर्नृपः॥[2]

झूले पर राजा अपनी प्रेयसियों के समीप पटरे के मध्य में बैठता था। उसी झूले पर बैठ बैठ राजा कभी कभी अपनी भुजाओं को फैलाकर, कभी हाथों को प्रेयसियों की भुजाओं में फंसाकर बैठता था।[3] इस प्रकार वह अनेक प्रकार से झूले पर बैठकर झूलता था। राजा झूलते समय अपनी जंघाओं एवं हाथों से जोर लगाकर झूले को ऊपर नीचे ले जाता था। उसकी प्रेयसियां कोकिल के सदृश स्वरमें श्रृंगार रस से पूर्ण गीत गाती थीं और राजा के नाम को लेकर गाती हुई उसे धीरे धीरे झुलाती थीं।[4] इस प्रकार से राजा एक

---

१. वही ५।३।१८४-१८५। २. वही ५।३।१८६-८७।

३. पीठमध्ये स्वयं तिष्ठेत् सुखासीना प्रियान्वितः।
मंत्रवारण संसक्त वृत्तायतभुजो नृपः॥
... ...
... ...
उपगूहनसंभूत हर्षरोमांचकंचुकः।
... ...
मानसोल्लास ५।३।१८८,१९०:

४. कांताश्चतस्रो गायेयुश्चतुर्दिक्षु समाश्रिताः।
कोकिलध्वनिसंस्पर्द्धि कलनादं समन्वितम्॥
सुस्वरं मधुरं गीतं श्रृंगाररसगर्जितम्।
नृपनामसमोपेतं दोलयन्त्याः शनैः शनैः।
... ... वही ५।३।१९४-१९६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दूसरे की ओर मुदित होकर देखता हुआ अपनी प्रेयसियों के साथ आनन्द का अनुभव करता था।

प्राचीन काल में वर्षा ऋतु का मनमोहक विनोद झूला झूलना रहा है। वर्षा काल के आगमन पर सभी तरुणियों एवं पुरुषों का हृदय उल्लास से उमड़ उठता है और मेघ निस्वन तथा काली घटाओं से निसृत रिमझिम के साथ वे अपने हृदय के उद्‌गारों को दोला विलास द्वारा निकालते हैं। सोमेश्वर ने वसन्त काल में इस दोला विलास की प्रथा का वर्णन किया है। स्कन्द पुराण में श्रीकृष्ण भगवान् के लिए फाल्गुन मास में 'दोलारोहण उत्सव' किए जाने का प्रसंग प्राप्त होता है। इस उत्सव पर विष्णु की गोविन्द नाम से प्रतिमा तैयार करवाकर मन्दिर के आगे सोलह खंभों से युक्त ऊंचा मंडप तैयार किया जाता था। वह चौकोर होता था। और उसमें चार कपाट होते थे, बीच में ऊंची वेदिका होती थी। वहीं पर झूला डालकर भगवान को उसी में बैठा कर लीलापूर्वक उन्हें हिंडोला झुलाया जाता था और इस प्रकार चार पांच दिन तक फाल्गुनोत्सव मनाया जाता था।[1] श्रीमद्‌भागवत पुराण में भी श्रीकृष्ण तथा गोपों की क्रीडा के प्रसंग में आन्दोलन क्रिड़ा ("कदाचित् स्पन्दोलिकया......)[2] का वर्णन हुआ है। इससे विदित होता है कि श्रीकृष्ण भगवान गोपों के साथ दोलाविलास करते थे।

वात्स्यायन के कामसूत्र में भी दोलाविलास का वर्णन इस प्रकार हुआ है :

स्वास्तीर्णा प्रेंखादोला वृक्षवाटिकायां सप्रच्छाया।
स्थंडिलपीठिका च सुकुसुमेति भवनविन्यासः ॥[3]

अर्थात् वाटिका के वृक्षों की सघन छाया में प्रेंखादोला अथवा झूला पड़ता था और छायादार वृक्षों के नीचे बैठने के आसन अथवा स्थंडिल बनाए जाते थे जिन पर पुष्प बिछे रहते थे। यह प्रसंग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देता है कि वात्स्यायन के समय के नागरक जन दोला विलास के प्रेमी थे।

प्राचीन काल में दोलाविलास का आनन्द स्त्री तथा पुरुष दोनों ही उठाते थे, जैसा जल्हण की निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट है :

उन्नम्य दूरं मुहुरानमन्त्यः कान्ताः स्थलीभूतनितम्बबिम्बाः।
दोलाविलासेन जितश्रमत्वात्प्रकर्षमापुः पुरुषायितेषु ॥[4]

---

१. स्कन्द पु० वैष्णव खंड उत्कल खंड।

२. श्रीमद्० पु० १०।१८।१५।

३. कामसूत्र सू० १५ पृ० ४५।

४. जल्हण सूक्तिमुक्तावली ६५।२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्त्री तथा पुरुष दोनों ही झूले पर चढ़कर अपने पैरों को प्रसारितकर भूले को खूब बढ़ाते थे उस समय उनके अंशुक हवा में उड़ते थे :

प्रसार्य पादौ विहितस्थितीनां दोलासु लोलांशुकपल्लवानाम् ।
मनोरथानामपि यन्नगम्यं तद्द्रष्टुमापुः सुदृशां युवानः ॥[1]

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि बिल्हण ने भी दोला पर चढ़ी हुई उमंग से पूर्ण स्त्रियों के अंशुक उड़ने का वर्णन किया है और उन्होंने इस प्रथा को वर्षा ऋतु का न मानकर विशेष रूप से वसन्त ऋतु का विलास माना है।[2] सोमेश्वर के समय में भी यह प्रथा वसन्त ऋतु के प्रारम्भ होने पर ही अपने विलासमय आकर्षक रूप को धारण करती थी और स्त्री तथा पुरुष दोनों ही दोलाविलास करते थे।[3]

यह प्राचीन काल से चली आती हुई क्रीड़ा आज भी स्त्री-पुरुषों के हृदय को चंचल कर देती है। वर्षा के आगमन पर स्त्री तथा पुरुष आज भी अपने उल्लास से पूर्ण हृदयों को लेकर झूले पर चढ़ जाते हैं और मेघ के रिमझिम शब्द के साथ स्त्रियाँ अपने मधुर गानों के स्वरों को मिलाती हैं, किन्तु यह प्रथा वर्तमान काल में विशेष रूप से वर्षा काल में ही प्रचलित है।

सेचन-क्रीड़ा

सोमेश्वर ने वसन्तोत्सव, विवाह, जय आदि के अवसर पर सेचन-क्रीड़ा करने का आदेश दिया है—

वसन्तस्योत्सवे वाद्यविवाहाद्युत्सवेषु च ।
जये चासेचनक्रीडां कुर्याद्राजा मुदान्वितः ॥[4]

भोजन करने के पश्चात् दिन को दो प्रहरों को व्यतीत कर राजा प्रतीहार द्वारा कुमार, मंडलाधीश, सामन्त, पुरोहित, अमात्य, सचिव, मंत्री, भट, कवि-गण, गायक, वैतालिक, सूत, मागध तथा श्वेत वस्त्रों एवं पुष्प माल्यों से सुशोभित तथा चन्दन के तिलक को धारण किए हुए अन्य आए हुए व्यक्तियों को यथा स्थान बैठाता था। ये सभी व्यक्ति थोड़ी देर तक एक मंडप में बैठते थे।[5] तत्पश्चात् शृंगार रस की मूर्त्ति वारि विलासिनियां, तरुणी, चंचललोचना, मराल के सदृश गति वाली, सित कंचुक धारण किए हुए, हार, तिलक, ताटक,

---

१. शारंगधरपद्धति ३८७८० ।
२. विक्रमांक० सर्ग ६ ।
३. मानसोल्लास ५।३।१७१ ।
४. वही ५।४।२०१-२०२ ।
५. वही ५।४।२०३-२०८ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नूपुर आदि से सुशोभित स्त्रियां नृप के मंदिर में प्रवेश करती थीं।[१]

नृप मंदिर में प्रवेश करने के पश्चात् वे वारिविलासिनियां श्रीखंड कल्क, कर्पूर, सोरभ से सुगंधित जल को सुवर्ण के गडुओं द्वारा राजा के शरीर पर डालती थीं।[२] वे वारविलासिनियां श्वेत वस्त्र तथा शिर पर मल्लिका पुष्प धारण किए रहती थीं। इस प्रकार से गडुओं द्वारा वे प्रमदायें राजा के शरीर को किंचित् क्षीण जलधारा द्वारा आर्द्र करती थीं—

... ... जलयंत्राणिनड्डुकान् ।
सिंचन्ति प्रमदाः कान्ताः राजानं प्रति मानसाः ॥[3]

तत्पश्चात् राजा कस्तूरी, हरिद्रा, श्रीखंड तथा कुंकुम से धवलित एवं सुगन्धिपूर्ण जल द्वारा अपने सेवकों का सिंचन करता था और प्रसन्न होकर उनके मस्तक पर पुष्प डालता था। इस प्रकार वह उदार चरित वाला राजा कल्पवृक्ष की भांति सुशोभित होता था।[४]

इसी समय वारविलासिनियां कंटुक वृक्ष की डालों को एक सूत्र द्वारा बांधकर उससे राजा की ओर जल उछालती थीं और इस प्रकार से वे स्त्रियां चारों ओर से पुष्पायुध के सदृश जल प्रहार करती थीं।[५] दिन के कुछ ढल जाने पर और सूर्य के कुछ मंद पड़ जाने पर राजा क्रीडा के आर्द्र वस्त्रों को उतारकर श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण करता था। तब वह रत्नजटित सिंहासन पर बैठता था और अपने सभी सेवकों तथा सेविकाओं को विसर्जित कर देता था।[६]

---

१. ततो वारविलासिन्यः शृंगाररसमूर्त्तयः ।
अंतःपुरपुरन्ध्रीश्च तथा शुद्धान्तयोषितः ।।
... ...
... ...
एवं वितर्क्यमाणास्ताः प्रविशेयुर्नृपालयम् ।
परिचार्य नृपं सर्वास्ताः मखालोकनोद्यताः ॥ —
वही ५।४।२०९-२१८ ।

२. सौवर्णगडुकांश्चैव दद्याद्धस्तेन योषितः ।
वही ५।४।२२५ ।

३. वही ५।४।२२९ ।

४. पुष्पाणि विकिरेत्तेषां मस्तके मुदान्वितः ।
उदारचरितो राजा राजते कल्पवृक्षवत् ॥
वही ५।४।२३२ ।

५. वही ५।४।२३३-२३६ । ६. वही ५।४।२३७-२३९ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपर्युक्त प्रसंग से यह विदित होता है यह सेचन क्रीड़ा-स्नान से ही संबंधित थी और विशेष रूप से राजा एवं धनी पुरुषों से संबंधित थी। यह एक विशेष प्रकार की क्रीड़ा थी, जो अधिक समय तक विशेष अवसरों एवं उत्सवों के समय की जाती थी।[1] श्रीमद्भागवत पुराण में भी इस प्रकार की क्रीड़ा का वर्णन हुआ है जिसमें श्रीकृष्ण तथा ग्वालबाल परस्पर एक दूसरे को घृत, दधि तथा दूध से भिगोते थे—

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः।
आसिंचन्तो विलिंपन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः॥[2]

यह उत्सव गोवर्धन पूजा के उत्सव के समय मनाया जाता था। इस उत्सव पर गायों को तैल तथा हरिद्राचूर्ण का लेप करवाया जाता था और उन्हें सजाकर अलंकार पहनाए जाते ये। सभी परस्पर आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते थे और सुन्दर वस्त्रों को धारण करते थे। अनेक वाद्य बजते थे, वंदी मागध आदि राजा नंद का यश गान करते थे।[3] संभवतः यह सेचन क्रीड़ा पुराण काल में इसी प्रकार खेली जाती थी।

वात्स्यायन ने भी अपने कामसूत्र में इस क्रीड़ा का वर्णन किया है, किन्तु उनके द्वारा वर्णित प्रसंग से विदित होता है कि यह क्रीड़ा उस समय में राजा एवं धनिक नागरिक के स्नान के समय नित्य की जाने वाली क्रिया थी। उस समय में मध्याह्न के कुछ पूर्व उठकर नागरिक अपने मित्रों के साथ थोड़ा व्यायाम करता था। तत्पश्चात् स्नान करने के लिए स्नानागार में जाता था। वहां पर साधारणतः संगमरमर की चौकी पर वह बैठता था। उसके परिचारक अथवा परिचारिकायें धीरे धीरे उसके शरीर पर तैलमर्दन तथा सिर पर पिसा हुआ आमलक का चूर्ण मलती थीं। इसके पश्चात् वह जलद्रोणी में बैठता था और फिर उसमें से निकलने पर वे स्त्रियां उसके सिर पर से जलधारायें डालने लगती थीं।[4]

बाण ने कादम्बरी में राजा शूद्रक को वारिविलासिनियों के द्वारा गडुओं के सुगन्धित जल से नहलाए जाने का वर्णन किया है।[5] अजन्ता की गुफाओं में भी एक गुफा के चित्र में गौतम के स्फटिक की चौकी पर बैठने तथा दो उष्णीष बांधे हुए परिचारकों द्वारा उन्हें स्नान कराए जाने का चित्र बना है। स्नानागार के समीप वाले मार्ग में एक परिचारक सिर पर घट रखे संभवतः सुगन्धित जल लिए जा रहा है।

१, ५।४।२०१,२। २. श्रीमद्० पु० १०।५।१४।
३. श्रीमद्० पु० १०।५।७,१७। ४. वात्स्यायन कामसूत्र १७.१८।
५. कादम्बरी कथामुख भाग।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन सभी प्रसंगों से विदित होता है कि सेचन क्रीड़ा-स्नान क्रिया का ही अन्य रूप थी, किन्तु सोमेश्वर के द्वारा दिए हुए प्रसंग से विदित होता है कि सेचन क्रीड़ा उनके समय में विशेष अवसरों पर खेली जाती थी। और यह एक विशेष प्रकार की क्रीड़ा थी। उन्होंने यद्यपि इसे स्नान से ही संबंधित माना है, किन्तु नित्य के स्नान से सम्बन्धित नहीं बतलाया, क्योंकि इस क्रीड़ा को उन्होंने भोजन के पश्चात् दिन के दो प्रहरों के व्यतीत हो जाने पर करने का आदेश दिया है। अतः यह बसन्तादि के उत्सव के समय पर खेली जाने वाली क्रीड़ा थी और इसमें वारिविलासिनियां ही राजा को नहलाती थीं। वर्तमान काल में भी इस क्रीड़ा का रूप लुप्त नहीं हुआ। आज कल भी व्यक्ति स्नानागारों में बने हुए जलयंत्रों अथवा फवारो के नीचे बैठकर स्नान (shower bath) करते हैं जो सेचन क्रीड़ा का ही प्रतिरूप है।

सलिल क्रीड़ा

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के अत्यन्त तीव्र होने पर तथा अत्यन्त प्रचण्ड एवं उष्ण वायु के चलने पर राजा जलक्रीड़ा करता था।[1] इस क्रीडा को राजा नदी, पुष्करिणी अथवा कण्ठ तक के निर्मल जल से पूर्ण सोपान से सुशोभित जलाशय में करता था—

नद्यां वा पुष्करिण्यां वा कण्ठदघ्नामलांभसि।
चतुरस्रा सुवृत्ता या रम्या सोपानभूषिता ॥[2]

वहीं पर कलश, चर्मभांड आदि में जल भरकर मराल चक्रवाक आदि बैठाये जाते थे। वह जल क्रीड़ा का स्थल एक प्रकार के प्राकार द्वारा घिरा रहता था और चूने द्वारा साफ किया रहता था।[3]

राजा स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करता था। वे तरुणियाँ जलक्रीड़ा के समय

---

१. निदाघे समनुप्राप्ते चंडे मार्त्तंडमंडले।
... ...
... ...
... ...
... ...
... ...
कुर्वन्ति सलिलक्रीडा क्रीडावाप्या महीपति. ॥
मानसोल्लास ५।५।२४१-४४

२. वही ५।५।२४५। ३. ५।५।२४६-४९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

श्वेत वस्त्र धारण करती थीं और कुंकुमादि का लेप किए रहती थीं।[१] स्त्रियों के साथ जब राजा जलक्रीड़ा स्थल में आता था उसके पूर्व ही वहाँ पर कर्पूर तथा पुष्पादि फैला दिए जाते थे—

पुष्पाणि विकरेत्तत्र कर्पूरसकलानि च।[२]

जलक्रीड़ा करते समय सभी की श्वेत वेशभूषा रहती थी और सब सुवर्ण भूषणों

श्वेताम्बर परीधानान् बुधाचारनयान्वितान्।

... ...

कृत्वा च मंडनं शुभ्रं हेमभूषणभूषिताः॥[३]

राजा अपनी उन कांताओं में से किसी को खींचकर, किसी को पकड़ कर, किसी का कंधा पकड़कर, किसी का हाथ पकड़ कर, किसी को प्रेमपूर्वक तथा किसी के साथ मधुर भाषण करते हुए वापी के शीतल जल में क्रीड़ा करने के लिए प्रवेश करता था। कर्पूर से सुगन्धित जल में उतर कर वे सभी एक दूसरे को पकड़ लेते थे—

ततो वारिस्थितं सर्वं कर्पूरसकलं बहु।
अहं पूर्वकयपूर्वे गृहणानि सलिलस्थिताः॥[५]

राजा जल में शुद्ध सुवर्ण, निष्क अथवा अनेक रत्न उनके समक्ष जल में डालता था और वे बार-बार उन्हें पकड़ने के हेतु जल में डुबकी लगाती थीं।[६] इस प्रकार से उनमें उत्सुकता तथा श्रम के लक्षणों को देखकर और उनके रत्नों के प्राप्त कर लेने पर राजा हँस कर उनकी ओर जल उछाल कर प्रसन्न होता था। जिस प्रकार से सिंधु के साथ सरिता, हस्ती के साथ हस्तिनी, शक्र के साथ अप्सरागण, गोपों के साथ कृष्ण, चन्द्रमा के साथ तारागण सुशोभित होते हैं उसी प्रकार वह राजा भी जलक्रीड़ा के समय अपनी कमल के सदृश

---

१. वही ५।५।२५०,५२। २. वही ५।५।२५४,५५।

३. वही ५।५।२५३,२५४।

४. आकृष्टानीयकात्कांश्चित्कांश्चिदालिंग्य कामिनी।
कांश्चित्कन्धं समारोप्य काश्चिदंशुक कर्षणात्॥

... ...

प्रवेशयेन्महीपालः क्रीडां वापिषु शीतलाम्।

... ...

वही ५।५।२५५-२५८।

५. वही ५।५।२५९। ६. वही ५।५।२५९-२६१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुखवाली कांताओं के सहित सुशोभित होता था।[1] राजा अपनी प्रियाओं के साथ कण्ठ तक के जल में जाकर क्रीड़ा करता था।[2] जल के मध्य में राजा अपनी प्रियाओं को मुक्ता की शंका उत्पन्न कर देनेवाले जलकणों तथा पुष्पों द्वारा प्रहार करता था और जल के मध्य में ही उनका गुप्त रूप से आलिंगनादि कर सुख को प्राप्त करता था।[3] इस प्रकार के अनेक हाव-भाव एवं क्रियाओं द्वारा राजा जल क्रीड़ा करता था।

थोड़ा दिवस अवशिष्ट रह जाने पर राजा जल क्रीड़ा समाप्त कर अपनी प्रियाओं के साथ पुष्करी के जल से निकलता था—

नद्यां वा पुष्करिण्यां वा जलकेलिप्रवृत्तये।
निर्वृत्य सलिलक्रीड़ा किंचिदवशिष्टे च वासरे।[4]

तत्पश्चात् राजा श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण कर, शरीर पर कुंकुम तथा चन्दनादि का लेप कर स्थूल मुक्ता के हार को कण्ठ में धारण कर आंगन में अपनी प्रियाओं के साथ उत्तम शय्या पर बैठता था।[5] इस श्रृंगारपूर्ण जल क्रीड़ा द्वारा राजा अपना मनोरंजन करता था।

यह सलिल क्रीड़ा के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण[6] में कृष्ण गोपियों के साथ अनेक स्थलों पर जल क्रीड़ा करने का प्रसंग प्राप्त होता है। वात्स्यायन[7] ने जल क्रीड़ा को स्पष्ट रूप से ग्रीष्मकाल की ही क्रीड़ा स्वीकार की है। संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि कालिदास ने भी ग्रीष्मऋतु में

---

१. राजते सह भूपेन सिंधुना सरिता यथा।
करिण्योदिग्गजानेव शक्रेणवाप्सरोमगणाः॥
गोप्यो वा वसुदेवेन यथा चंद्रेण तारकाः।
तोयमध्यस्थिताः कांताः पद्मिन्यीव जंगमः॥
वही ५।५।२६४.२६५।

२ मुखपद्मेनशोभन्ते कंटदघ्ने जले शुभे।
वही ५।५।२६७।

३. वही ५।५।२६८-२८०। ४. वही ५।५।२८१।

५. पही ५।५।२८२२-८४।

६. श्रीमद्० पु० १०।६५।२०, १०।६९।२७।

७. एतेन रचितोद्ग्रहोदकानांग्रीष्मेजल कीड़ागमनं व्याख्यातम्।
कामसूत्र सू० ४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दीर्घिकाओं में क्रीड़ा करती हुई स्त्रियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[1] विलासिनी स्त्रियाँ मुक्ता के सदृश जलबिन्दुओं को उछालती हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके हृदय का हार टूट जाने के कारण उसकी मुक्तायें बिखर गई हों—

आसां जलस्फालनतत्पराणां मुक्ताफलस्पर्धिषु शीकरेषु।
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संलक्ष्यते न च्छिदुरोऽपि हारः॥[2]

विलासिनियों के शिरीष कर्णावतंस क्रीडा करते समय जलाशय में गिर जाते थे और वे मछलियों के हृदय में शैवाल जाल का भ्रम उत्पन्न कर देते थे—

अमी शिरीषप्रसवावतंसाः प्रभ्रंशिनो वारिविहारिणीनाम्।
पारिप्लवाः केलिसरोवरेषु शैवाललोलाश्छलयन्ति मीनान्॥[3]

महाकवि भारवि ने भी स्त्रियों की जलकेलि का सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन किया है।[4] ग्रीष्म के प्रकोप से पीड़ित होकर सुन्दरी स्त्रियां जलकेलि करने के लिए क्रीड़ा सरोवर में आकर कमलदलों को मलती हैं—

प्रशान्तघर्माभिभवः शनैर्विवान्विलासिनीभ्यः परिमृष्टपंकजः।
ददौ भुजालम्बमिवात्तशीकरस्तरंगमालान्तरगोचरोऽनिलः॥[5]

जल में स्थित कामिनियों के स्तनयुगल से टकरा कर तरंगें भी शब्द करने लगती हैं।[6] शिशुपालवध के रचयिता महाकवि माघ ने भी क्रीड़ा-सरोवरों में जलकेलि करती हुई तरुणियों का स्वाभाविक चित्रण किया है।[7] जल के मध्य में कमल के सदृश मुख वाली सुन्दरी स्त्रियों का मुख सुशोभित होता है—

किं तावत्सरसि सरोजमेतदारादाहोस्विन्मुखमवभासते तरुण्याः।
संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चिद्विब्बोकैर्बकसहवासिनां परोक्षैः॥[8]

अमरु कवि ने भी अपने अमरुशतक में स्त्रियों की जलकेलि का वर्णन इस प्रकार किया है—

ललितसुरसा तरन्ती तरलतरंगौघचालितनितम्बा।
विपरीतरतासक्ता किमदृश्यत सरसि या सख्या॥[9]

---

१. रघुवंश १६।६१-६७।
२. रघुवंश १६।३२।
३. वही १६।६१।
४. किरातार्जुनीय ८।३०-५३।
५. किरात ८।३१।
६. वही।
७. शिशुपालवध ८।१८-५०।
८. वही ८।२६।
९. अमरुशतक १३१।

३० मा०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शारंगधरपद्धति में भी जलकेलि करती हुई स्त्रियों के अंगराग के तिलक के जल में धुल जाने का प्रसंग प्राप्त होता है—

हृतोऽङ्गरागस्तिलकं विमृष्टं लब्धान्तरैरेभिरतीव मत्वा ।
सुसंहितेनेति तदा जलानामदायि मध्यं न कुचद्वयेन ॥[1]

इन सभी ग्रन्थों में स्त्रियों के ही जलकेलि का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि पूर्व में यह क्रीडा केवल स्त्रियाँ ही परस्पर मिलकर करती थीं। किन्तु शनैः शनैः इसका रूप और परिष्कृत होता गया और स्त्री तथा पुरुष दोनों मिलकर साथ-साथ इस जल क्रीडा को करने लगे। कवि बिल्हण ने विक्रमांकदेवचरित में महाराज विक्रमादित्य के अपनी प्रेयसियों के साथ जलकेलि करने का वर्णन किया।[2] सोमेश्वर के द्वारा कथित प्रसंग से विदित होता है कि उनके समय में भी स्त्री तथा पुरुष दोनों साथ मिलकर इस क्रीडा को करते थे। जिस समय एक ओर सम्पूर्ण पृथ्वी का जल ग्रीष्म के प्रकोप से शुष्क हो जाता था उस समय जलकेलि करने के लिए कृत्रिम क्रीडा सरोवरों का निर्माण होता था।

शाद्वल क्रीडा

सुन्दर घास से परिपूर्ण स्थान में जब राजा अपनी प्रियाओं के साथ मनोरंजन करने के लिए जाता था वही शाद्वल क्रीडा कहलाती थी। यह शाद्वलस्थली अंजन के सदृश कृष्ण वर्ण वाले हाथियों से, पुष्पों, चित्र विचित्र प्रकार के वृक्षों, केतकी की गंध तथा मराल वृन्दों से पूर्ण होती थी। इस प्रकार की सुन्दर शाद्वलस्थली में पश्चिमी वायु के चलने पर राजा क्रीडा करने के लिए अपनी प्रियाओं के साथ जाता था।[3] जिस वन में राजा शाद्वल क्रीडा करने के लिए जाता था उसमें पूर्व ही से कुसुम्भ रंग से रंजित वस्त्र का कांडपट लगा दिया जाता था और स्थान-स्थान पर वैणिकों को स्थापित कर दिया जाता था:

कौसुम्भरंजितैर्वस्त्रैः तत्कांडपटैः शुभैः ।
वेष्टयेत्स्थंडिले देशे समन्तादूर्ध्वसंस्थितैः ॥[4]

इस प्रकार से वन के तैयार हो जाने पर राजा दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर पूर्वाह्न क्रिया को करके अपनी प्रेयसियों समेत श्रृंगार करता था।[5]

---

१. शा० प० ३८४९ । २. विक्रमांक० सर्ग ११ ।
३. मानसोल्लास ५।६।२८८-२९८ । ४. वही ५।६।२९८ ।
५. प्रभाते च समुत्थाय कृतपूर्वाह्निकक्रियः ।
ततः संभृतश्रृंगारः प्रेयसीजनसंवृतः ॥
वही ५।६।३०१ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और सुवर्णघंटाओं से सुशोभित मस्तक पर सिन्दूर तिलक धारण किए हुए हस्तिनियों को तथा मनोहर एव ललित गति वाले हेमपर्याण से युक्त अश्वों को बुलवाता था। हस्तिनी पर राजा स्वयं चढ़ता था और अपने समीप उसी हस्तिनी पर अपनी प्रिया को चढाता था। अन्य अन्तःपुर की स्त्रियां, वारिविलासिनियां, गायिकायें, नर्तकियां तथा वारांगनायें अश्वों पर चढ़ती थीं। तब सब लोग शनैः शनै एक दूसरे के पीछे हो कर शाद्वल की ओर आते थे और उसी में थोड़ी देर विश्राम करते थे।[1]

शाद्वल स्थल में सर्वप्रथम राजा उतर कर तब अपनी प्रिया तथा शुद्धान्त-योषिताओं को उतारता था। तत्पश्चात् राजा वैणिकों को यथास्थान स्थापित कर विलासिनियों को प्रेयसियों के समीप भेज देता था।[2] इस प्रसंग में वार विलासिनियों का दृष्टांत इस बात को पूर्णरूपेण स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर के समय में वारविलासिनियों को राजा के वैनोदिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वे क्रीडा क्षेत्र में राजा के साथ जाती थीं और राजा की प्रेयसियों का विशेष रूप से ध्यान रखती थीं।

उस शाद्वस्थली में उचित रूप से सबके बैठ जाने पर राजा तथा अन्य सभी जन अनेक प्रकार के आसव, भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ तथा ताम्बूलादि का सेवन करते थे। तब राजा अपने प्रेम के अनुसार यथायोग्य सबको वस्त्र, आभूषण, धन भोजन तथा प्रसादादि देकर सबको प्रसन्न करता था।[3] भोजन से निवृत्त होकर पवित्र स्थान में प्रवेश कर राजा अपने शरीर का शृंगार करता था, कर्पूर मिश्रित चंदन का अपने शरीर पर लेप करता था, श्रेष्ठ वस्त्रों एवं मुक्ताभूषणों को पहनकर मस्तक पर कस्तूरी-मिश्रित चंदन का तिलक धारण करता था तथा सिर पर केतकी पुष्प का आभूषण धारण करता था।[4] तत्पश्चात् वह अपनी प्रियाओं को बुलवाता था जो मस्तक पर सिंदूर, लाक्षारस से रंजित वस्त्र, मुक्ता तथा सुवर्ण के ताटंक, मुकुल आदि आभूषण धारण किए तथा शरीर पर कुंकुम का लेप किए रहती थीं। उन स्त्रियों को बुलवाकर सम्मानपूर्वक अपने समीप बैठाता था।[5] तत्पश्चात् सबके एकत्र होने पर दूर पर स्थित गायकगण राजा के यश का गान करते थे और मनोहर तूर्यनाद होता था। नृत्य में निपुण नर्तकियाँ वहीं पर नृत्य करती थीं और बाद में राजा उन्हें तथा गायक वृन्दों को वस्त्र, कांचनादि देकर संतुष्ट करता था।[6]

---

१. वही ५।६।३०२-३०६।
२. वही ५।६।३०७-३०९।
३. मानसोल्लास ५।६।३०९-३१२।
४. वही ५।६।३१३ ३१५।
५. वही ५।६।३१३-३१९।
६. वही ५।६।३२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसके बाद राजा उठ कर सुवर्ण की घंटियों से युक्त कुसुम्भ वर्ण के छत्र तथा वीर कक्ष से सुशोभित, हरिद्रा मिश्रित शालिपिष्ट से सिंचित किए हुए मुख वाले, मस्तक पर तैल तथा सिंदूर लगाए हुए हाथी पर चढ़ता था और अपनी कांताओं को अन्य हस्तिनियों पर चढ़ाता था।[1] तब राजा हाथी को प्रेरित करता हुआ अपने मन्दिर को लौट आता था।

शाद्वल क्रीड़ा का इतना विस्तृत वर्णन किसी भी ग्रंथ में नहीं प्राप्त होता, किन्तु, फिर भी प्राप्त प्रसंगों से यही स्पष्ट होता है कि यह क्रीड़ा भारतवर्ष में प्राचीन काल से प्रचलित है। भारतवर्ष की हरित शाद्वल से पूर्ण भूमि को देखकर सभी का हृदय उसमें बैठकर आनन्द प्राप्त करने के लिए उछल उठता है। इसी कारण इस हरित भूमि में क्रीड़ा करना सदा से ही इस देश में एक साधारण सी बात रही है। श्रीमद्भागवत पुराण में एक स्थल पर ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है—

शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान्।
तृप्तान् वृषान् वत्सतरान् गाश्च स्वोधोभरश्रमाः॥[2]

इस हरित शाद्वल पर गाय, बैल तथा गायों के बछड़े आदि आनन्द से तृण चर्वण करते थे और उनके साथ गोपादि भी परस्पर क्रीड़ा करते थे। इस प्रसंग में प्राप्त हुआ शाद्वल शब्द संभवतः शाद्वल क्रीड़ा की ओर ही संकेत करता है। इसका वर्णन मेघागम उत्सव के प्रसंग में हुआ है।[3] अतः यह क्रीड़ा वर्षाकाल में मेघों के छा जाने पर ही की जाती थी। काले-काले मेघों के छा जाने पर गो तथा ग्वालों से घिरे हुए कृष्ण इस क्रीड़ा को करते थे—

एवं वनं वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत्।
गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः॥[4]

सभी प्रसन्न होकर परस्पर दधि, ओदन, कन्द, मूल, फलादि खाकर परस्पर गाना

---

१. भूषणानि विचित्राणि ताम्बूलं च मुखस्थितम्।
समुत्थाय ततो राजा मंदरश्मौ दिवाकरे॥
... ...
आरुह्यैकासनं राजा कान्तास्तारोपयेद्वशाः॥
मानसोल्लास ५।६।३२४-३२८।

२. श्रीमद्भागवत पुराण १०।२०।३०।

३. मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दिछखंडिनः॥
श्रीमद्० पु० १०।२०।२०।

४. श्रीमद्० पु० १०।२०।२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गाते थे। कभी हरित वनस्पति में बैठते थे, कभी लेटते थे तथा कभी दौड़ते थे। इस प्रकार वे सभी वर्षाकालीन श्री को देखकर प्रफुल्ल मन से क्रीड़ा कर आनन्द प्राप्त करते थे।[1] सोमेश्वर ने भी इसी प्रकार की क्रीड़ा का शाद्वल क्रीड़ा नाम दिया है, किन्तु उनके समय में यह क्रीड़ा विशेष रूप से खेली जाती थी और उसके लिए विशेष प्रकार का प्रबन्ध पूर्व से ही किया जाता था। इसके अतिरिक्त स्त्री तथा पुरुष दोनों ही इस क्रीड़ा को करने के लिए जाते थे।

वर्तमान काल में भी यह क्रीड़ा लुप्त नहीं हुई है। आज भी व्यक्ति किसी भी सुन्दर दिन को अत्यन्त रमणीय स्थान में जाकर परस्पर मनोविनोद खेल-कूद तथा वार्तालाप करते हुए आनन्द पूर्वक वहीं पर भोजनादि करते हैं। इस प्रकार से वे सभी उस दिन विशेष प्रकार से अपना मनोरंजन करते हैं, जो पिकनिक (Picnic) के नाम से प्रसिद्ध है।

बालुका क्रीड़ा

सोमेश्वर के समय में बालुका क्रीड़ा भी अधिकांशतः प्रचलित थी और राजा भी इस क्रीड़ा द्वारा अपना मनोरंजन करता था। यह क्रीड़ा घने मेघों के होने पर, हंस मातंग से पूर्ण, मुक्ताजाल के सदृश जल से पूर्ण जलाशय अथवा नदी के तट पर पश्चिमी सुगन्धित वायु के चलने पर की जाती थी।[2] सोमेश्वर ने राजा को चक्रवाक, बकुलादि से पूर्ण तथा नलिनी, तिलक आदि से पूर्ण नदी अथवा तालाब के समीप बालुका क्रीड़ा करने का आदेश दिया है।[3] इसके अतिरिक्त धूप तथा पिपासा का हरण करने वाले जल के समीप जो बालुका हो और मुक्ता तथा सुवर्ण की भांति चमकती हो, इस प्रकार के बालुका स्थल में क्रीड़ा करनी चाहिए—

सलिले सुखसंस्पर्शे पिपासाघर्महारिणि।
सूक्ष्ममुक्ताफला···हेमरेणुसमप्रभे ॥
नानामणिगणप्रख्यसुश्लक्ष्णसिकताचये।
मनोहरे समुद्देशे शीतकांडे पटावृते॥[4]

राजा बालुका क्रीड़ा के लिए जाते समय अपनी कांताओं को भी साथ ले जाता था और वह श्वेत वस्त्रों तथा आभूषणों को धारण कर करिणियों पर चढ़कर उस स्थल को जाता था।[5] उस स्थल पर सबके पहुँच जाने पर सभी चार-चार की संख्या में अलग-अलग गोला बनाकर बैठती थीं और राजा सभी

---

१. श्रीमद्० पु० १०।२०।२७-३१। २. मानसोल्लास ५।७।३३१-३३४।
३. वही ५।७।३३४। ४. वही ५।७।३३६-३३८।
५. परिधाय सितं वस्त्रमन्तःपुरजनैः सह॥ वही ५।७।३३९-३४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के समीप जाकर सबको आनन्दित करता था।[१] सर्वप्रथम राजा उस समीप की नदी अथवा जलाशय में जाकर अपनी हस्तांजलि द्वारा जल को उछालता था। यह क्रिया वह तब तक किए जाता था जब तक जल पूर्ण रूप से शुद्ध न हो जाता था—

प्रसृतिक्षेपणात्तोय मृदुवक्षःपुनः पुनः ।
यावन्निर्मलतां याति नीरंतावद्बहिः क्षिपेत् ॥
संजाते निर्मले तोये जलवासंस्ततः क्षिपेत् ॥[२]

जल के शुद्ध हो जाने पर राजा वहां से हटकर कमल आदि की गन्ध से पूर्ण सोपान युक्त बालुका पुंज का देव मंदिर की भांति देवागार बनता था। उसके चारों ओर एक परिखा बनाई जाती थी जिसमें जल भर दिया जाता था। उसके पान स्थल पर राजा अपने अधर पल्लव को छुआता था और शीत के व्याज से दांतों को पीसकर अपने हाथों में बालू लेता था। इस प्रकार की प्रेमपूर्ण लीला द्वारा राजा अपनी प्रियाओं को प्रसन्न करता था।[३] तत्पश्चात् बालुका पुंज के कन्दुक के आकार के दो बड़े गोले बनाकर उन्हें राजा परस्पर एक दूसरे से लड़ाता था। जिसका गोला टूट जाता था वह पराजित हो जाता था और जीता हुआ व्यक्ति उसकी पीठ पर बैठता था तथा उसके कान खींचता था—

कुर्कुटन्वं समारोप्य योधयेयुः परस्परम् ।
... ...
जितस्य पृष्ठमारोहेत्कर्णौ धृत्वा विकर्षयेत् ॥[४]

इसके अतिरिक्त यदि पराजित हुआ व्यक्ति भागता था तो जीता हुआ व्यक्ति उसका पीछा कर बालुका में उसे गिराकर उसके मुख पर खूब जल डालता था।[५] राजा भी जीत जाने पर यही सब करता था। यह क्रिया सम्भवतः परस्पर पुरुषों में ही की जाती थी।

---

१. वही ५।७।३४१-३४२। २. मानसोल्लास ५।७।३४२-४३।
३. उत्पलं कमलं चैव शतपत्रसुसौरभम् ।
... ...
प्राकारदेवतागारं बालुकापुंजनिर्मितम् ।
कुर्याद्रम्यं सुसोपानं परिखाजलपूरितम् ॥
वही ५।७।३४४-३४८।
४. वही ५।७।३४९-३५०।
५. पलायने वानुधावे सूक्ष्मसैकतभूतले ।
पातयेद्वालुकामध्ये.................

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार क्रीड़ा करने के पश्चात् राजा विचित्र वस्त्र, रत्नादि जटित दिव्य आभूषणों एवं लेपों द्वारा अपना श्रृंगार करवा कर हस्तिनी पर चढ़ता था और अनेक प्रकार के शब्दों के प्रयोग द्वारा हस्तिनी से बालुका पर चंक्रमण करवाता था। इस प्रकार वह अपनी प्रेयसियों के चित्त को प्रसन्न करता था।[1] अन्त में श्रेष्ठ गतिवाले अश्वों एवं हस्तिनियों पर सबको चढ़ा कर अपनी प्रेयसियों के साथ अपने मन्दिर को लौट आता था।

यह बालुका क्रीड़ा वर्तमान काल में विशेषतः बालकों के ही मनोरञ्जन का साधन रह गई है, किन्तु सोमेश्वर के समय में यह क्रीड़ा विशेष महत्त्व रखती थी और यह विशेष रूप से अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनाई जाती थी। यह बालुका-क्रीड़ा सभी व्यक्तियों के मनोरंजन का साधन रही होगी।

श्रीमद्भागवत पुराण में भी बालुका में क्रीड़ा करने का प्रसंग प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण भगवान् अपनी बाल्यावस्था में यमुना नदी के तट पर आकर वहाँ की हिम के सदृश शीतल बालुका में रमण करते थे :

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमबालुकम्।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥[2]

गोपियों से घिरे हुए कृष्ण उनके साथ नृत्य करते थे। गोपियां मधुर गीत गाती थीं, प्रफुल्लित होकर कृष्ण को वैजयन्ती माला पहनाती थीं और स्वयं भी धारण कर हर्षपूर्वक विचरण करती थीं।

सोमेश्वर के समय में इस क्रीडा को खेलने का विभिन्न रूप था। राजा अन्य जनों के साथ बालुका निर्मित कन्दुक एवं कुर्कट लड़ाकर क्रीड़ा करता था और जीतने वाला व्यक्ति हारने वाले व्यक्ति के स्कन्ध पर बैठकर चलता था।[3] सोमेश्वर का यह प्रसंग स्पष्ट रूप से वाह्यवाहक क्रीड़ा की ओर संकेत करता है। इससे विदित होता है कि यह क्रीड़ा भी सोमेश्वर के समय में प्रचलित थी और बालुका क्रीड़ा के मध्य में ही की जाती थी। इस वाह्यवाहक क्रीड़ा का प्रसंग श्रीमद्भागवत पुराण में प्राप्त होता है। इसमें भी पराजित व्यक्ति को अपने ऊपर चढ़ाकर दौड़ता था :

ततः किंचित्समाक्रांतसिंचन्नन्योन्यमम्बुभिः।
एवं क्रीडां नृपः कृत्वा ततः श्रृंगारमाचरेत् ॥
वही ५।७।३५०-३५२।

१ मानसोल्लास ५।७।३५५।
२. श्रीमद्० पु० १०।२९।४५। ३. वही १०।२९।४३-४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥[1]

इस क्रीड़ा को कृष्ण तथा बलराम गोपों के साथ करते थे ।

इस क्रीड़ा का महत्त्व आज भी लुप्त नहीं हुआ है । नदी के किनारे अथवा क्रीड़ा स्थल में स्थित बालुका में खेलते हुए तथा बालू के घरौंदे बनाते हुए छोटे छोटे बच्चे आज भी उस बालुका क्रीड़ा की याद दिलाते हैं ।

ज्योत्स्ना-क्रीड़ा

यह क्रीड़ा अत्यन्त हर्षदायिनी है । राजा विशेष रूप से आश्विन, कार्तिक वसन्त अथवा ग्रीष्म ऋतु में ज्योत्स्ना क्रीड़ा करता था ।[2] दुग्ध प्रवाह, शक्ति, चन्दन, कर्पूर रेणु के सदृश, चकोरों के लिए आनन्ददायिनी कुमुदनियों के विकास की हेतु, दिवस की सम्पदा को जीतकर अन्धकार के उत्साह को नष्ट कर देनेवाली ज्योत्स्ना के रात्रि में छिटक जाने पर राजा ज्योत्स्ना क्रीड़ा करता था ।[3] यह ज्योत्स्ना क्रीड़ा राजा ज्योत्स्ना से पूर्ण अपने विशाल प्रांगण में करता था ।[4] इस समय राजा श्वेत, चिकने वस्त्र तथा घुटनों तक लटकनेवाली दृढ़ वीर कच्छा को धारण करता था और अपने सम्पूर्ण शरीर में कस्तूरी आदि का लेप कर मालती पुष्प की माला धारण करता था ।[5] इसी प्रकार स्त्रियां तथा अन्य जन भी सुन्दर वस्त्र एवं वेशभूषा द्वारा अपने को सुशोभित करते थे । इस क्रीड़ा में बालक, वृद्ध, स्थूलकाय, रोगी आदि व्यक्ति भाग नहीं ले सकते थे । समवयस्क तथा चतुर व्यक्ति ही क्रीड़ा में सम्मिलित होते थे ।[6] यह ज्योत्स्ना क्रीड़ा तीन प्रकार से खेली जाती थी ।

सर्व प्रथम जितने व्यक्ति होते थे वे दो पक्ष में पाँच, सात, आठ, नौ, तथा दस की संख्या में विभक्त हो जाते थे । दोनों ओर समान संख्या में व्यक्ति

१. श्रीमद् पु० १०।१८।२१ ।

२. मानसोल्लास ५।८।३५७,५८ । ३. वही ५।८।३५८-३६२ ।

४. विशाले प्राङ्गणे रम्ये दृषद्गर्त्तविवर्जिता ॥
मानसोल्लास ५।८।३६२ ।

५. घनं श्लक्ष्णं सितं वस्त्रं जानुमात्रावलम्बितम् ।
परिधाय दृढां कच्छां कल्पयेत्तत्प्रमाणिकाम् ।
... ...
चन्दनालिप्तसर्वाङ्गकस्तूरीतिलकोचितम् ।
मानसोल्लास ५।८।३६३-३६५ ।

६. मानसोल्लास ५।८।३७१-३७२ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रहते थे।[१] इन दोनों ही पक्षों के मध्य एक रेखा खींच दी जाती थी और पाँच धनुष के अन्तर पर दो विजय चिह्न बना दिए जाते थे।[२] उस विजय चिह्न को छूने के लिए सभी दौड़ते थे और जिस पक्ष के अधिक व्यक्ति उसे सर्वप्रथम छू लेते थे वही पक्ष जीत जाता था।[३] इस क्रीड़ा में पुरुष ही भाग लेते थे। इस क्रीड़ा नाम हरिशशी[४] था। यह क्रीड़ा पूर्व में गोप रूप में श्रीकृष्ण भगवान् द्वारा चंद्र ज्योत्स्ना में खेली गयी थी इसी कारण इसका नाम हरिशशी क्रीड़ा है :

हरिणा निर्मिता क्रीडा गोपवेषभृता पुरा।
शशिप्रभायां या तस्मात्प्रोक्ता हरिशशीत्यसौ॥[५]

दूसरी क्रीड़ा काष्ठा थी। इसे भी श्रीकृष्ण भगवान् ने पूर्व में खेला था :

काष्ठक्रीडेयमाख्याता गोविन्देन पुरा कृता।[६]

इस क्रीड़ा में पाँच अथवा सात काष्ठ फल के द्वारा चार चार हाथ के कोष्ठ बनाये जाते थे और उनके समीप ही से वर्तिका नाम की एक ऋजु रेखा खींची जाती थी। एक पक्ष की ओर की गई रेखा के अन्दर दूसरे पक्ष का व्यक्ति प्रवेश कर सब कोष्ठों को लांघता हुआ मध्य के कोष्ठ में पहुँच कर पुनः इस प्रकार से उस कोष्ठ को लांघता था कि वह रेखा छूने न पाती थीं। इस प्रकार से तीन बार लांघकर बाहर आने पर उसको विजय समझी जाती थी। किन्तु रेखा के पैर से छू जाने पर उस व्यक्ति की पराजय समझी जाती थी।[७] यही काष्ठ फलकों द्वारा खेली जाने वाली क्रीड़ा काष्ठ क्रीड़ा कहलाती थी।

इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की क्रीड़ा भी ज्योत्स्ना में की जाती थी जिसमें विशेष रूप से स्त्रियां ही भाग लेती थीं। इस क्रीड़ा को भी श्रीकृष्ण भगवान ने गोपिकाओं के साथ किया था। संभवतः यह रास क्रीड़ा का ही

---

१. वही ५।८।३७०,३७१। २. वही ५।८।३७२.७४।

३. मानसोल्लास ५।८।३७५-३७६।

४. शशिप्रभायां या तस्मात्प्रोक्ता हरिशशीत्यसौ।
मानसोल्लास ५।८।३६८।

५. मानसोल्लास ५।८।३७७-७८। ६. वही ५।८।३८६।

७. तदाजयोबहिष्ठानां स्पृष्टे तेषां पराजयः।
... ...
वारत्रयं बहिष्ठाश्चेद्विजयन्ति निरंतरम्॥
मानसोल्लास ५।८।३७८ ३८५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्य रूप था। इसमें सभी स्त्रियाँ एक गोला बनाकर चंक्रमण करती थीं। कुछ स्त्रियाँ गोले के बाहर तथा कुछ भीतर रहती थीं। स्त्रियाँ अपने हाथ में केसर का बना हुआ दंड लेती थीं और पुष्प निर्मित कन्दुक को दंड द्वारा परस्पर फेंकती हुई उसी दंड से पुष्प निर्मित शृंखला एवं माला द्वारा राजा पर प्रहार करती जाती थीं।

दुर्गं चंक्रमणं कृत्वा कंदैर्वच्त्रप्रमाणकैः।
भवेयुः काश्चिदन्तस्थाः काश्चित्तत्र बहिःस्थिताः।
कंदुकैः पुष्पसंभूतैः दण्डैश्चानग्रणी भवेत् ॥
तथा संभ्रमसंयुक्ताः संहरंन्त्यः परस्पर।
ताडयन्ति नृपं पुष्पैः कन्दुकाकारदामभिः ॥
मालाभिश्च मनोज्ञाभिर्दण्डैः केशरकल्पितैः॥[१]

इस प्रकार राजा उस चक्र के मध्य में खड़ा होकर पुष्प-कंदुक के प्रहार द्वारा आनन्द को प्राप्त करता था।

यह अंतिम क्रीड़ा रास का ही रूप प्रतीत होता है जिसके प्रसंग पुराणों में प्राप्त होते हैं। सभी गोपियां परस्पर बाहुओं को बाँध कर मंडल बनाती थीं। श्री कृष्ण भगवान् अपनी माया को प्रकट कर दो-दो के मध्य में अपना रूप प्रकट करते थे :

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥
रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमंडलमंडितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥[२]

वे गोपियाँ नृत्य करती थीं, गाती थीं और कृष्ण पर प्रसन्न होकर पुष्प डालती जाती थीं। रास से परिश्रान्त होकर वे परस्पर एक दूसरे के स्कन्ध का आश्रय लेकर खड़ी हो जाती थी।[३] इस क्रीड़ा को कृष्ण शरत् कालीन चंद्र ज्योत्स्ना में यमुना तट पर करते थे।[४] सोमेश्वर ने इसी का ज्योत्स्ना क्रीड़ा नाम दिया है। सोमेश्वर के समय में यद्यपि स्त्री तथा पुरुष दोनों ही मिलकर इस क्रीड़ा को करते थे किन्तु कन्दुकैः पुष्पसंभूतैः प्रसंग से यह विदित होता है कि राजा अपनी प्रियाओं के साथ पुष्पनिर्मित कन्दुक से क्रीड़ा करता था। प्राचीन काल से ही युवतियों का हेमन्त काल का सुन्दर विनोद कन्दुक क्रीड़ा रहा है। कन्दुक

---

१. मानसोल्लास ५।८।३८७-३९०। २. श्रीमद्० पु० १०।३६।२-३।
३. वही १०।३३।८-१८। ४. वही १०।३२।१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उछालने से टकराती हुई चूड़ियों की झंकार तथा चंचल मेखला की बजती हुई कड़ों कड़ा बा ही सुन्दर वर्णन हुआ है :

अमन्द-मणिनूपुरक्वणनचारुचारिक्रमं,
झणज्झणितमेखलातरलतारहारच्छटम् ।
इदं तरलकंकणावलिविशेषवाचालितं
मनो हरति सुभ्रुवः किमपि कन्दुकक्रीडितम् ॥

वात्स्यायन ने भी कंदुक क्रीड़ा का वर्णन किया है।[१] इसके अतिरिक्त शरद ऋतु के उत्सवों में कौमुदी महोत्सव, रात्रि जागरण तथा द्यूत आदि विशेष प्रकार के उत्सव माने गए हैं। इनमें से संभवतः सोमेश्वर से समय में रात्रि जागरण नामक उत्सव को ही ज्योत्स्ना क्रीड़ा कहते थे।

सुवसन्तक नामक उत्सव का प्रसंग सितबेंग गुप्त के शिलालेख (Sitabenga Cave Inscriptin) में प्राप्त होता है किन्तु इसका नाम दुले वसंतिया (Dule vasamtiya) प्राप्त होता है। यह क्रीड़ा भी पूर्ण चंद्र की चंद्र ज्योत्स्ना में रात्रि के समय ही होती थी।[2] वात्स्यायन ने भी कौमुदी जागर, सुवसन्तक तथा अष्टमी चंद्रक आदि ऐसे उत्सवों के प्रसंग दिए हैं जिसमें नगर की अन्य स्त्रियां राजा के प्रासाद में आकर अन्तः पुर की स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करती थीं[3], किन्तु वात्स्यायन ने इसके अतिरिक्त हल्लीसक नाम की एक देसी अन्य क्रीड़ा का प्रसंग दिया है जो रास के ही समान थी और स्त्री पुरुष दोनों करते थे।[४] इसी प्रकार की ज्योत्स्ना में खेली जाने वाली अनेक क्रीड़ाओं के प्रसंग संस्कृत-साहित्य में भी मिलते हैं किन्तु उनके नाम विभिन्न प्रकार के हैं। इसका भास ने चारुदत्त में 'कामदेवानुयानः'[५] तथा भवभूति ने 'मदनोद्यान यात्रा'[६] नाम दिया है। इन सभी प्रसंगों से विदित होता है कि भारतीय सदा से ही स्वच्छ ज्योत्स्ना में क्रीड़ा करने के प्रेमी रहे हैं।

---

१. कामसूत्र, सू० १३ ।
२. Dr. T. T. Bloch, Ramgarh Cave Inscription,
Report of the Arch. Sur. of India (1903–1904),
pp. 124–25
३. कामसूत्र सू० ४२ तथा सू० ११ ।
ईस्ट एण्ड वेस्ट १, पृ० ७४८ । मई, १९०२ ।
५. भास : चारुदत्त, अंक १ ।
६. मालतीमाधव, अङ्क १ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सस्य क्रीड़ा

यह क्रीड़ा सस्य क्षेत्र में की जाती थी। मातंगों को उन्मत्त कर देने वाली, कमल के उल्लास को नष्ट कर देने वाली, हरिणों को व्याकुल तथा मयूरों को पिच्छशून्य कर देने वाली, व्यक्तियों को व्याकुलता के कारण कंपित कर देने वाली, सब अंगों में रोमांच उत्पन्न करने वाली, बिना प्रेम के ही दम्पतियों में रति उत्पन्न कर देने वाली, कर्पूर सुगन्धि से पूर्ण हेमन्त ऋतु के आने पर किसी रमणीय सस्य क्षेत्र में राजा इस क्रीड़ा को खेलता था।[1] राजा यह क्रीड़ा करने के लिए अत्यन्त मनोहर, हरे-भरे, पुष्पों से पूर्ण, कीचड़ से रहित, विचित्र फलों से पूर्ण क्षेत्र में जाता था।[2]

इस प्रकार के रम्य क्षेत्र की राजा अपने विश्वसनीय भृत्यों द्वारा रक्षा करवाता था।[3] राजा जब उस क्षेत्र में क्रीड़ा करने के लिए जाता था उसके पूर्व ही उस क्षेत्र में दध्योदन, गोधूमखलक, पुआ, पूड़ी, शक्कर मिश्रित खीर, मद्य, तक्र, फल, मूल, कंद, राजिका, लवण, पुष्ट शूकर, मेष आदि पूर्व से ही पहुँचा दिए जाते थे।[4] इन वस्तुओं द्वारा क्षेत्र में ही नाना प्रकार के भोजन बनते थे, इस कारण सूपकार भी उन वस्तुओं के साथ ही जाता था।[5] सब वस्तुओं के स्थापित हो जाने तथा अन्य सभी व्यक्तियों के पहुँच जाने पर अपनी प्रिया, प्रेयसियों तथा तरुणियों से सेवित राजा ब्राह्मण, विट गायक आदि के साथ उत्सुकता पूर्वक उस क्षेत्र में पहुँचता था।[6] वहां पर पहुँच जाने पर राजा पूर्व से ही कुछ सस्य के पौधों को उखाड़ कर इधर-उधर ऊँचाई से रखकर बनाए

१. मानसोल्लास ५।९।३९१-३९६।

२. क्षेत्रे हरितशोभाढ्ये रम्ये दृष्टिमनोहरे ॥

... ...

निष्पापेन कलापेन कलितेन विचित्रिते ॥

मानसोल्लास ५।९।३९८-४०५।

३. एवंविधानि रम्याणि वीक्ष्य क्षेत्राणि··· ।

कुर्वीत रक्षणं तेषामाप्तैः परिजनैर्नृपः ॥

मानसोल्लास ५।९।४०६।

४. मानसोल्लास ५।९।४०७-४०९। ५. वही ५।९।४१०।

६ ततः स्वयं प्रियायुक्तस्तरुणीजनसेवितम् ॥

... ...

... ...

सस्यदेशसमुद्देशं सम्प्राप्य पृथिवीश्वरः ।

मानसोल्लास ५।९।४१०-१२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुए प्रवेश द्वारा से क्षेत्र के अन्दर वाद्य बजाते हुए व्यक्तियों के साथ प्रवेश करता था। प्रवेश करते समय अन्य जन उसके साथ नहीं रहते थे।[1]

राजा के क्षेत्र में प्रवेश करने के पश्चात् सभी यथास्थान बैठ जाते थे। तत्पश्चात् राजा चणक फलों (बूट), निष्पाव, गोधूम कणिश, कर्कटिकादि फल तथा सुस्वादु पूर्ण भोजन अपने सभी विप्रों, भृत्यों तथा प्रेयसियों को अलग अलग देता था—

अन्यानि बहुभिर्भृत्यैः कर्कटानि फलानि च।
विप्राणां प्रेयसीनां च दद्याद्राजा पृथक् पृथक्॥[2]

सब को भोजन दे चुकने के पश्चात् राजा अपने पुत्र तथा बंधुओं के साथ भोजन करता था।[3]

भोजन के साथ ही साथ अन्य प्रकार के हलके भोज्य पदार्थों का निर्माण वहीं क्षेत्र में किया जाता था। चने के वृक्ष के कोमल अग्रभाग के पल्लवों को तोड़ कर उसमें हींग, सेंधा नमक, जीरा, मिर्च आदि मिला कर उन्हें मलकर थोड़ा तेल डालकर पत्तों के बनाए हुए थाली के आकार के पत्तल में बन्द कर जलते हुए कंडों तथा पत्तों के बीच में रखकर पकाया जाता था। पक जाने पर उसे खाया जाता था।[4] इसके अतिरिक्त पानी में नमक डालकर उनको उबाल कर भी खाया जाता था।[5]

चने के पौदे के कोमल अग्रभाग के अतिरिक्त चने के फलपूर्ण पौदों को भी अग्नि में भूनकर फिर अग्नि से निकालकर उनकी भूसी अलग कर चनों को राजा को खाने के लिए दिया जाता था।[6] ये सभी वस्तुयें राजा अपने परिजनों के सहित प्रीतिपूर्वक खाता था--

... ...
भक्षयेन्नृपतिः प्रीत्या पुत्रमित्रजनैर्वृतः॥[7]

इसको भक्षण करने के पश्चात् राजा मधुर मदिरा का पान करता था।[8]

इन भोजनों के अतिरिक्त दही भात के खलक में ककड़ी मिलाकर बृहती तथा कपास के कोमल फलों तथा कुसुम्भ के पल्लवों, लाल गाजर तथा कौशीतकी फल में राई, लवण, कन्द मूल फल तथा वराह एवं मेष का मांस

---

१. मानसोल्लास ५।९।४१२-४१३। २. वही ५।९।४१६,४१७।
३. वही ५।९।४१७-१९। ४. वही ५।९।४१९-२२।
५. वही ५।९।४२३-२४। ६. वही ५।९।४२४-२५।
७. वही ५।९।४२६-४२७। ८. वही ५।९।४२८-२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मिलाकर उसे भूनकर तैयार किया हुआ भोजन राजा करता था।[1] भोजन से निवृत्त होकर राजा अपने शरीर का वहीं पर श्रृङ्गार कराता था और सुवर्ण के आभूषण तथा घण्टियों को धारण करनेवाले श्रेष्ठ घोडों पर चढ़कर स्त्रियों के साथ अपने मन्दिर को लौट आता था।[2]

उपर्युक्त प्रसंग से विदित होता है कि सस्य क्षेत्र क्रीडा करने के लिए राजा किसी ग्राम के खेतों अथवा अपनी राजधानी के समीप में स्थित खेतों में मनोरञ्जन करने के लिए जाता था। इस क्रीड़ा द्वारा सम्भवतः हेमन्त ऋतु (माघ तथा फाल्गुन मास) में ही मनोरञ्जन किया जाता था क्योंकि उस समय खेत चने, मटर की नई फसल से पूर्ण होते थे। सोमेश्वर ने अपनी इस क्रीड़ा में साग, ककडी तथा फलादि खाने तथा चने की फली (बूट) को भूनने (होला) का प्रसंग दिया है।

इस क्रीड़ा का विस्तृत एवं स्पष्ट प्रसंग किसी भी ग्रंथ में नहीं प्राप्त होता। हां, कुछ सस्य क्षेत्र में मनोरञ्जन करने से सम्बन्धित प्रसंग अवश्य प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में एक स्थल पर ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है :

क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।[3]

इस पंक्ति का प्रयोग कृष्ण, बलराम तथा ग्वाल-बालों की क्रीड़ा के प्रसङ्ग में हुआ है। इससे विदित होता है कि कृष्ण भगवान् ग्वालों के साथ व्रज में स्थित सस्य से सम्पन्न क्षेत्रों में जाकर आनन्दपूर्वक क्रीड़ा कर उनके साथ भोजन करते थे।[4]

आजकल भी विशेष रूप से ग्रामों में यह क्रीड़ा प्रचलित है। नवीन सस्य से क्षेत्रों को पूर्ण होने पर सब लोग किसी दिन जाकर वहीं भोजन करते हैं तथा उस अन्न तथा शाकादि को खाते हैं।

मधुपान-क्रीड़ा

यह क्रीड़ा राजा विशेष रूप से अपनी काम प्रवृत्ति को शांत करने के लिए करता था। इसी कारण इस क्रीड़ा में स्त्रियां ही भाग लेती थीं। इस क्रीड़ा को राजा वन, घास से पूर्ण स्थल, नदी के तट, बालुकास्थल, फल तथा पुष्पों से पूर्ण उद्यान अथवा गृह में स्त्रीजनों को करवाता था :

---

१. वही ५।१४३०-३३। २. वही ५।१।५३५-३७।

३. श्रीमद्भा० पु० १०।२०।१२।

४. संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः।

श्रीमद्० पु० १०।२०।२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अटव्यां शाद्वले देशे नद्या वा बालुकास्थले।
उद्याने फलपुष्पाढ्ये गृहे वा सुविचित्रिते।
मधुपानोद्भवां क्रीडां स्त्रीजनैः कारयेन्नृपः॥[१]

इस क्रीड़ा द्वारा स्त्रीजन तथा राजा दोनों को ही आनन्द प्राप्त होता था।

इस क्रीड़ा को करने के लिये गुड़ तथा गन्ने के रस की बनी हुई मदिरा[२], माध्वी[३], पैष्टी[४] आदि सुरायें, द्राक्षारस[५] का बना हुआ द्राक्षासव, मधुकासव[६] पनसासव[७], सिंदुनासव[८] आदि आसव तथा ताल मदिरा[९] आदि सुराओं को एकत्र किया जाता था। इन सभी मदिराओं एवं आसवों को बनाने की विधि का भी विस्तार पूर्वक उल्लेख सोमेश्वर ने किया है।[१०] उदाहरणार्थ गुड़ तथा गन्ने के साथ धातकी फल के रस को मिलाकर उसे बहुत दिनों तक रखकर गोरी सुरा, शालि तथा गोधूम से पैष्टी आदि सुराओं का निर्माण होता था।[११] इसी प्रकार द्राक्षाफल के रस से द्राक्षासव, नारियल के रस से नारिकेलासव मधूक वृक्ष के पुष्पों को उबालकर मधुकासव, पनसफल से पनसासव तथा आम्र के रस से सिंदुनासव बनाया जाता था।[१२] इसके अतिरिक्त ताल वृक्ष के वल्कल को छीलकर उसमें कुंभ लटका कर उसे ताल मदिरा निकाली जाती थी।[१३] यह आजकल ताडी के नाम से प्रसिद्ध है और उसका निम्नवर्ग के ही व्यक्ति प्रयोग करते हैं।

इस मदिरा के साथ खाने के लिए अनेक प्रकार के खट्टे, चटपटे, नमकीन, पदार्थ बनते थे जिनके बनाने में विशेष रूप से मूली, अदरख, गाजर, नीबू, प्याज, मिर्च, नमक, तेल, हींग, केशर, तथा अनेक प्रकार के रसों का प्रयोग होता था, नाना प्रकार के मांसों को को अग्नि में पका कर उससे सुगन्धित रज, राई, लवण, केसर लवंग आदि मिलाकर हींग से छौंककर अनेक प्रकार के मांस के भक्ष्य पदार्थ बनाए जाते थे।[१४] नींबू के रस, अदरख तथा मूली के फलों के कटे हुए टुकडों के साथ मिलाकर खाने का पदार्थ तैयार किया जाता

---

१. मानसोल्लास ५।१०।४४०४-४१। २. वही ५।१०।४४२।
३. वही ५।१०।४४६। ४. वही ५।१०।४५२।
५. वही ५।१०।४५८। ६. वही ५।१०।४६०।
७. वही ५।१०।४६१। ८. वही ५।१०।४६२।
९. वही ५।१०।४६४। १०. वही ५।१०।४४२-४६५।
११. वही ५।१०।४४२-४५२। १२. वही ५।१०।४५६-४६२।
१३. वही ५।१०।४६३-४६४। १४. वही ५।१०।४६६-६८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था।[१] मूली, अदरख में नमक, राई तथा नींबू मिलाकर खट्टी आम्लिका (चटनी) बनाई जाती थी।[२] इसके अतिरिक्त चने में हींग, नींबू आदि मिलाकर पूरण नामक भक्ष्य तैयार किया जाता था :

पूरणं नाम तद् भक्ष्यं मृदमिष्टं सुगन्धि च ॥[३]

इन सभी भक्ष्य पदार्थों एवं मदिराओं को पान स्थान में रखा जाता था और साथ ही वहाँ पर इंद्रनीलमणि की प्रभा, गोमेद की कांति तथा स्फटिक मणि के सदृश श्वेत कांति वाले अनेक प्रकार के चषक रखे जाते थे।[४] पान स्थान राजा की आज्ञा द्वारा बालुका स्थल घास पूर्ण मैदान, उपवन अथवा पेड़ की छाया के नीचे कनाते (कांडपट) लगाकर बनाया जाता था :

....

उद्यानेषु द्रुमच्छाये गृहस्योपवनेषु च।
तिरोहिते कांडपटै नार्ना वर्णमनोहरे ॥[५]

इन सभी वस्तुओं के तैयार हो जाने पर राजा स्वयं शृंगार कर, हृदय का हरण करने वाली सुन्दर तरुणी स्त्रियों को बुलवाता था।[६] तब वे स्त्रियाँ सम्मान-पूर्वक उस कांडपट के अन्दर लाकर पंक्ति में बैठायी जाती थीं।[७] उन सबके बैठ जाने पर राजा स्वयं उनके समक्ष सुन्दर पत्र तथा थालियाँ रखता था :

तासामग्रे न्यसेद्राजा पत्राणि रुचिराणि च ॥[८]

तत्पश्चात् सब प्रेयसियों के समक्ष, यथायोग्य चषक रखता था और पात्रों में अनेक प्रकार के उपदंश (काट कर खाये जाने वाले) पदार्थों को रखता था :

उपदंशान् बहुविधान् पात्रेषु परिवेषयेत्।[९]

कांताओं को परोसते समय राजा के साथ सूपकार भी रहता था और वह प्रत्येक वस्तु की प्रशंसा करता हुआ राजा को देता जाता था।[१०] सब वस्तुयें सबको परसवा चुकने के पश्चात् राजा के सभी परिचर चले जाते थे और राजा अपने हाथों से मदिरा उडेल कर चषकों में भरकर सभी स्त्रियों को देता जाता था और स्वयं भी पीता जाता था।[११] सभी स्त्रियाँ

---

१. वही ५।१०।४६८।
२. वही ५।१०।४७१।
३. वही ५।१०।४७८-४७९।
४. वही ५।१०।४८१-४८३।
५. वही ५।१०।४८७-८८।
६. वही ५।१०।४८५-८६।
७. वही ५।१०।४८८।
८. वही ५।१०।४८९।
९. वही ५।१०।४९१।
१०. वही ५।१०।४९२।
११. वही ५।१०।४९३-९५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परस्पर सब वस्तुयें खाती जाती थीं और सभी वस्तुओं के कटु, तिक्त आदि स्वाद का परस्पर प्रशंसा करती जाती थीं।[1] मदिरा पीते समय भी वे परस्पर मदिरा की प्रशंसा करती जाती थीं।[2]

मदिरा के अत्यधिक पान से प्रमत्त होकर कोई स्त्री गाती थी, कोई दूसरे का चषक खींच लेती थी, कोई चषक में अपनी मूर्ति देखकर उसका चुम्बन करती थी कोई कविता कहती थी।[3] मदिरा का नशा अधिक बढ़ने पर उनके नेत्र तथा कपोल कुछ लाल हो जाते थे और वे अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण करती थी। कोई एक दूसरे से हाथ मिलाती थीं कोई सम्भाषण करती थीं, कोई गाती थीं, कोई आनन्दित होकर कोकिल की भाँति स्वर करती थीं, कोई रोती थीं कोई खिन्न मनवाली होकर, दुखित होती थी, कोई मूर्च्छित सी हो जाती थी, किसी को आशीर्वाद देती थीं, कोई गाली देती थी, कोई मदिरा के मद से विह्वल होकर राजा की ओर देखती थी और आलिंगन करने की चेष्टा करती थी, कोई किसी की का अंचल पकड़ कर उसके कपोलों का चुंबन करती थी।[4] इस प्रकार से उन स्त्रियों की मदावस्था की चेष्टाओं एवं कार्यों का सोमेश्वर ने सुन्दरता-पूर्वक वर्णन किया है।

सभी स्त्रियों की मदावस्था को देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होता था और उसका मनोरंजन होता था।[5] स्त्रियों के बीच में क्रीड़ा करता हुआ वह राजा उसी प्रकार से सुशोभित होता था जिस प्रकार से अनेक हथिनियों के बीच में एक हाथी तथा अनेक गोपिकाओं के मध्य में कृष्ण शोभित होते थे—

एक एवं स्थितो राजा वशामध्ये यथा द्विपः।
शोभते सुखसंस्पर्शाल्लालितो ललनाजनैः॥

---

१. वही ५।१०।४९९-५००।
२. वही ५।१०।५०२। ३. वही ५।१०।५०३-५११।
४. काचिद् गायति सानंदवर्षाकोकिलनिस्वनैः।
विकलैः पदसंचारैः काचिन्नृत्यति हर्षितैः॥
... ...
... ...
काचिदालोक्य भूपालं मदिरामदविह्वला॥
... ...
समाह्वयति कामेन गालिदानं परस्परम्॥
मानसो० ५।१०।५१७-५२४।
५. आकुलीक्रियमाणोथ प्रमोदं भजते नृपः। वही ५।१०।५१६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्रीडन्नेवं कियत्कालं कृष्णो गोपिजनैरिव ॥[1]

इस प्रकार से राजा प्रसन्न होता हुआ अपनी प्रेयसियों के साथ मधुपान-क्रीड़ा करता था।

इस प्रकरण के अन्तर्गत सोमेश्वर ने अनेक प्रकार की मदिराओं के स्वाद एवं वर्णों का उल्लेख किया है।[2] इसके अतिरिक्त मदिरा पान को विचित्र राग के सागर को उत्पन्न करने वाला, बंधु के सदृश शोक का नाश करने वाला मित्र के सदृश प्रेम की वृद्धि करने वाला, मोह के सदृश स्मृति का नाश करने वाला बतलाया है।[3] मदिरा पान करते समय गाना, रोना, हंसना आदि क्रियायें नहीं करनी चाहिए। ऐसा सोमेश्वर ने आदेश दिया है।[4]

सुरा-पान की प्रथा भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। वैदिक काल में आर्य लोग सोम-रस की यज्ञ में आहुति देते थे तथा उसका पान करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की मदिरा का भी सेवन वैदिक युग में होता था।

पुराणों में भी मदिरा पान के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। कुबेर के पुत्रों ने रुद्र का अनुचर होकर कैलास पर्वत के उपवन में स्त्रियों के साथ वारुणी मदिरा का पान कर रमण किया था—

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ।
कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ॥
वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ।
स्त्रीजनैरनुगायाद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने॥[5]

उन स्त्रियों के मध्य में मदोन्मत्त राजा क्रीड़ा करता हुआ हस्तिनियों के मध्य गज की भांति सुशोभित होता था—

... ...
चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः॥[6]

---

१. वही ५।१०।५२७-२८। २. वही ५।१०।४९६-९७।
३. अहो विचित्र कस्याश्चिद्वर्तितो रागसागरः।
तदाभून्मदिरापानं बन्धुवत्शोकनाशनम्॥
... ... मित्रवत्प्रेमवर्द्धनम्।
... ... मोहवत्स्मृतिनाशनम्॥
वही ५।१०।५१२,५१३।
४. वही ५।१०।५०१। ५ श्रीमद० पु० १०।१०।२,३।
६. वही १०।१०।४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस दृश्य को देखकर नारद जी ने उसे शाप दिया था।[१] यह प्रसंग बहुत कुछ सोमेश्वर की मधु पान क्रीड़ा से मिलता-जुलता है, किन्तु उस समय यह कार्य वर्जित माना जाता था। पुराण में वारुणी मदिरापान के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं।[२] इसके अतिरिक्त स्त्रियों के साथ एक अन्य स्थल पर बलराम के मधुपान करने का प्रसंग प्राप्त होता है—

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ॥
उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः।
वनेषु व्यचरत् क्षीबो मदविह्वललोचनः॥[३]

मनु ने गुड़, पिष्ठी तथा महुवे से बनी हुई तीन प्रकार की गौड़ी, पिष्टी तथा माध्वी सुराओं का वर्णन किया है और इसका पान द्विजों के लिए वर्जित बतलाया है—

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः॥[४]

इसके अतिरिक्त अन्न मद्य, सुरा तथा आसव को यक्ष तथा पिशाचों का भक्ष्य माना है।[५] इससे विदित होता है कि समाज में उस समय यह सभी प्रकार की मदिरायें प्रचलित थीं। वात्स्यायन ने मदिरा-पान की गोष्ठियों का प्रसंग दिया है।[६]

सोमेश्वर का मधुपान क्रीड़ा का प्रसंग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है कि उनके समय में मदिरा का स्त्री तथा पुरुष दोनों ही अधिक मात्रा में प्रयोग करते थे। अनेक प्रकार की मदिराओं का प्रयोग होता था और राजा संभवतः अपनी काम-वासना की शान्ति अनेक स्त्रियों के साथ मदिरा पान करके करता था।

प्रहेलिका क्रीड़ा

प्रहेलिका क्रीड़ा भी तत्कालीन समाज में मनोरंजन का साधन थी। राजा धर्मार्थ के कार्यों से निवृत्त होकर, पुष्ट एवं स्वादपूर्ण भोजन कर संतुष्ट हृदय

---

१. वही १०।१०।६,७।
२. वही १०।१०।१९।
३. वही १०।१०।२०,२१।
४. मनु० ११।९४।
५. मनु० ११।९५।
६. ... ... समपानकम् ... ... क्रीडाश्च प्रवर्तयेत॥
कामसूत्र सू० २६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाला होकर तथा निद्रा से उत्थित आलस्य के हट जाने पर प्रहेलिका क्रीड़ा द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करता था।[१] इस क्रीड़ा को करने के लिए राजा अनेक चतुर, ज्ञानी, विद्वान् तथा साहित्य के ज्ञाताओं को बुलवाता था और उन्हीं के बीच में सम्मिलित होकर वह प्रहेलिका क्रीड़ा करता था।[२] प्रहेलिका क्रीड़ा में एक व्यक्ति प्रहेलिका पूछता था और दूसरा उसका उत्तर बतलाता था, किन्तु ठीक उत्तर न बता पाने पर उसकी पराजय समझी जाती थीं :

पृच्छत्येको वदत्येको तत्राज्ञाने पराजयः।[३]

इसी कारण प्रहेलिका प्रश्न के उत्तर का निर्णय करने के लिए राजा प्रहेलिका के अर्थ को जानने वाले विद्वान् व्यक्ति को नियुक्त करता था।[४] इस प्रकार प्रश्नोत्तरों द्वारा सब व्यक्तियों के हृदय में कुतूहल के साथ ही साथ मनोरंजन भी होता था।[५]

ये प्रहेलिकायें अनेक प्रकार की होती हैं। सोमेश्वर ने स्वरूप प्रश्ना, हेतु प्रश्ना, व्यस्ता, उत्तरत्ता, अनेकार्थपदोत्तरा, अक्षरसार्थका तथा गूढार्थका आदि अनेक प्रकार की प्रहेलिकाओं का बर्णन किया है।[६] स्वरूप प्रश्ना प्रहेलिका के अन्तर्गत किसी के स्वरूप को तथा हेतु प्रश्ना में किसी वस्तु के हेतु को पूछा जाता था। अक्षर सार्थक, पद सार्थक प्रहेलिका का उत्तर अधिकांशतः अक्षरों एवं पदों के[७] अर्थ द्वारा ही निकाला जाता था। इसमें मध्य, अंत तथा प्रारम्भ का अक्षर या पद छोड़ दिया जाता था। इसी प्रकार अन्य प्रहेलिकायें भी थीं।

इन अनेक प्रकार की प्रहेलिकाओं के अन्तर्गत अनेक के प्रश्न पूछे जाते थे। सोमेश्वर ने प्रहेलिका क्रीड़ा के अन्तर्गत अनेक प्रकार की प्रहेलिकाओं का वर्णन किया है।[८] उदाहरणार्थ एक डर कर भागता है दूसरा उसको तेज

१. मानसोल्लास ५।११।५३१,५३३।

धर्मकामार्थकार्याणि निवृत्य पृथिवीपतिः॥

... ...

कुर्यात् प्रहेलिकाक्रीडां तथा प्रज्ञाविवर्धये।

२. मानसोल्लास ५।११।५३४। ३. वही ५।११।५३५।

४. वही ५।११।५३४। ५. वही ५।११।५३५-३६।

६. स्वरूपप्रश्नाः काश्चिद्धेतुप्रश्नास्तथापराः॥

... ...

उत्तरोत्तरास्तथाकाश्चित्काश्चिद्गूढार्थकाः।

मानसोल्लास ५।११।५३६ ५३८।

८. वही ५।११।५३९. ५४८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से ढके हुए आवर्त की भाँति प्रकाशित कर देता है।[१] दो पैर वाला चक्र बिना वाहन के चलता है फिर भी वह एक भी पद नहीं जा पाता।[२]

अत्यन्त भारी भार को नित्य वहन करता है और आठ पैरों से चलता है और कभी-कभी दो पैरों से चलता है उसका नाम क्या है।[३] जिसके ऊपर की मूल, शाखा, पुष्प फल अथवा पत्र कुछ भी नहीं मिल सकता वहाँ कहाँ रहता है?[४] बिना हाथ का होने पर भी शिलाओं को तोड़ डालती हैं, बिना पैर के चलती है, बिना मुख के गर्जन करती है बताओ क्या है? :

अहस्तोपि शिलामत्ति बिना पादैश्च धावति।
गर्जत्यास्यं विना नारी कासौ नाम्मानिरूपिता॥[५]

इसी प्रकार के प्रश्न किए जाने पर अन्य व्यक्ति उत्तर देते थे, जैसे ऊपर की अन्तिम प्रहेलिका का उत्तर वायु है। उत्तर ठीक है या नहीं इसका निर्णय वही राजा द्वारा निश्चित किया हुआ व्यक्ति करता था।

इसके अतिरिक्त इसी प्रहेलिका क्रीड़ा के समय एक अक्षर पद आदि छोड़ कर भी प्रहेलिका पूछी जाती थी :

क्षिप्यैकमरं त्वादौ वृत्तं वृत्ताभिधीयते।
... ...
... ...
मध्यक्षिप्तेन वर्णेन संगतं सुपंडितः
प्राणार्थे च त्रपार्थे च रसार्थे संगतं कुरु॥[६]

इस प्रकार की प्रहेलिकायें जिनमें मात्रा आदि छुटी होती थीं 'च्युतामात्रा' कहलाती थीं।

इस प्रकार से अनेक प्रकार के ज्ञानपूर्ण प्रश्न प्रहेलिका रूप में अन्य

---

१. वही ५।११।५३९।

२. एकं चक्रं द्विपाद्यं वा विनावाहैः प्रवर्तते।
न गच्छति पदं चैकं किंतद्वस्त्वभिधीयताम्॥
वही ५।११।५४०।

३. महाभारसहो नित्यमष्टभिश्चरणैर्व्रजेत्।
द्वाभ्यां चलति यो यत्र तस्य नाम निरूपितम्॥
वही ५।११।५४१।

४. वही ५।११।५५०। ५. वही ५।११।५५२।

६. वही ५।११।५८५-५८७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यक्तियों से पूछे जाते थे। राजा भी इनमें सक्रिय भाग लेता था और प्रहेलिकाओं का उत्तर देता हुआ तथा सबका मनोरंजन करता हुआ स्वयं भी आनन्दित होता था।

प्रहेलिका कहने की प्रथा भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। वात्स्यायन के समय में प्रहेलिका का अधिक प्रचार था[१]। प्रहेलिकाओं के अतिरिक्त प्रतिमाला नामक एक ऐसा विनोद होता था जो वर्तमान काल की अन्त्याक्षरी के सदृश था[२]। प्रहेलिका का एक प्रकार मानसी भी था। इसी खेल में कोई श्लोक बिन्दुओं तथा अनुस्वारों के साथ छोड़ छोड़ कर लिखा जाता था। वह ऐसा होता था जो दूसरे व्यक्ति को विदित न होता था। लिखने के पश्चात् दूसरे व्यक्ति से वह पूरा कराया जाता था[३]। सोमेश्वर ने इसी प्रकार की प्रहेलिका को च्युतमात्रा कहा है।

कादम्बरी में भी राजा शूद्रक के दरबार में विद्वानों द्वारा अनेक प्रकार की प्रहेलिकायें पूछी जाती थीं। कुछ मात्रा से हीन, कुछ अक्षर से हीन तथा कुछ बिन्दुपूर्ण होती थीं। ये क्रमशः मात्राच्युतक, अक्षर च्युतक तथा बिन्दुमती कहलाती थीं[४]।

प्रहेलिकाओं के प्रसंग अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं—

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पंडितः।
अमुखः स्फुटवक्ता च यो जानाति स पंडितः॥[५]

इसी प्रकार से और भी प्रहेलिकायें प्राप्त होती हैं[६]। मात्राच्युतक प्रहेलिकाओं के अन्तर्गत मात्राच्युतक, बिन्दुच्युतक, विसर्गच्युतक, अक्षरच्युतक, स्थानच्युतक, व्यंजनच्युतक तथा च्युतदत्ताक्षर आदि अनेक प्रकार की प्रहेलिकायें होती हैं। संस्कृत साहित्य में ये सभी अधिक मात्रा में प्राप्त होती हैं[७]। समवाय सुत्त में 'अज्जपहेलियम्'[८] का प्रसंग प्राप्त होता है। इससे विदित होता है कि उस समय में भी प्रहेलिका कहने की प्रथा थी।

---

१. ए० वेंकटसूबिया दि कलाज सूची ३।
वात्स्यायन कामसूत्र, पृ० ३२-३३। २. वही।
३. वही, मानसी काव्य क्रिया......।
४. कादम्बरी कथामुखभाग।
५, शा० प० ५१४। ६. शां० प० ५१५-५१७।
७. सुभाषितरत्नभांडागारम् मात्राच्युतकादयः, पृ० १९५ ९६।
८. ए० वेंकटसूबिया दि कलाज सूची १।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन प्रहेलिकाओं का वर्तमान काल में भी प्रयोग होता है जिन्हें Puzzles कहते हैं।

चतुरंग-क्रीड़ा

चतुरंग क्रीड़ा प्रारम्भ ही से राजाओं की प्रिय क्रीड़ा रही है। सोमेश्वर-देव ने चतुरंग क्रीड़ा का मानसोल्लास में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। यह प्रकरण इस बात को पूर्णरूप से स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर चतुरंग क्रीड़ा में अधिक रुचि रखते थे। इस प्रकरण के अन्तर्गत सोमेश्वर ने चतुरंग क्रीड़ा के मुख्य अंग, उन अंगों की फलक पर स्थापना करने का क्रम, खेलने की विधि, पण, विजय तथा पराजय का वर्णन किया है।

यह क्रीड़ा आजकल की भांति एक चौकोर फलक पर खेली जाती थी जिसमें अनेक चौकोर कोष्ठ बनाये जाते थे। इस खेल के राजा, मंत्री, गज घोड़ा रथ तथा पैदल यह छ अंग थे। आदि के दो कोणों में दो रथों को तथा उसके पश्चात् अंदर के कोष्ठों में दो घोड़ों को स्थापित किया जाता था। उसी के बाद दो हाथियों को रखा जाता था। हाथियों के मध्य में राजा तथा मंत्री रहते थे। उनके आगे एक पंक्ति के कोष्ठों में पदाति सैनिक स्थापित किए जाते थे। इस प्रकार से राजा अपने समक्ष अपने बल को स्थापित करता था। इसी प्रकार से दूसरे पक्ष का व्यक्ति भी अपने आगे के कोष्ठों में इन सभी अंगों की स्थापना करता था[1]।

इसके पश्चात् सोमेश्वर ने इनकी चालों का उल्लेख किया है। रथ कोने से एक-एक पद के अन्तर से चलता है। चारों कोनों के समीप से तुरंग चलता है। घोड़े के चलने के बाद हाथी भी उसी प्रकार चलता है। इन सबके द्वारा प्रेरित होकर मंत्री निकट के चारों कोठों में एक अथवा दो पद जाता है[2]। राजा समीप के सब कोठों में होकर चारों ओर जाता है और दो पदों से अकेला चलता हुआ दो कोठों का नाश करता है[3]।

मंत्री के समीप चौथे पद पर यदि रथ, राजा, अश्व तथा पैदल द्विकोणस्थ हों और वे सामने आवें तो वह मार डालता है। खेल में वही हाथी बलवान् माना जाता है जिससे सैनिकों की रक्षा होती है। दूसरे कोठे में हाथी के चरण रखने पर परम बलवान् अंग भी जघन्य हो जाता है[4]। कोष्ठ का पदान्तर रथ का एक पद कहा जाता है किन्तु तीसरी तथा पांचवीं पंक्ति में जाकर लौटने पर दूसरे मार्ग से जाते समय सातवीं पंक्ति में दो पद होते हैं। समीप की

१. वही ५।१२।६२०.६२२। २. वही ५।१२।६२३.६२५।
३. वही ५।१२।६२६। ४. वही ५।१२।६२७.६२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पंक्ति में प्रवेश करने पर रथ दो पग पहुँचता है। इस प्रकार इस खेल में रथ के पदों का विन्यास होता है।[१]

कोण के समीप में स्थित होने पर घोड़े के तीन पद और कोठे के समीप दोनों ओर चार पद होते हैं। द्वितीय वलय कोण में घोड़े के चार पद अन्यत्र पद षड्ग कहा जाता है।[२] बीच में सोलह श्वेत कोठों में घोड़े के स्थित होने पर घोड़े का अष्टक पद कहा जाता है।[३] इस प्रकार यत्र तत्र स्वयं स्थित चौदह पदों में घोड़ों की स्थिति होती है।

खेल में मंत्री का बाहर के कोठे में स्थित एक पद, प्रान्त भाग में स्थित दो पद तथा अन्यत्र चार पद होते हैं।[४] तदन्तर बहुत सी पंक्तियों में स्थित राजा के पद कोठे में तीन पद होते हैं तथा अन्यत्र आठ पद माने जाते हैं। इन्हीं को चतुरंग के जानने वाले त्रिपद नाम से कहते हैं। इस प्रकार से सभी अंगों के पदों की संख्या खेल में निर्धारित की गई है।[५]

जिस प्रकार से युद्ध में राजा की सेना विजय प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के व्यूहों का सृजन करती है उसी प्रकार चतुरंग खेल में भी सीमा, सुमेरु तथा गोमूत्र इन तीन प्रकार के व्यूहों का प्रयोग होता है।[६] ये सभी व्यूह यथा रुचि प्रयोग में लाए जाते हैं। एक ही पंक्ति में सभी अंग स्थित होकर जब व्यूह बनाने के लिए प्रवृत्त होते हैं उसे सीमाख्य अथवा सीमा निर्धारण व्यूह कहते हैं।[७] जिस समय खिलाड़ियों द्वारा सभी अंगों का जमघट सुमेरु के शिखर की भाँति ऊंचा बना दिया जाता है तब उसे सुमेरु व्यूह करते हैं।[८] सैनिक लोग जब खेलने में गोमूत्र के समान प्रवृत्त होते हैं तब वह व्यूह गोमूत्र व्यूह कहा जाता है। यह व्यूह राजा के समीप रथ, हाथी, मंत्री, घोड़े आदि को स्थापित कर दोनों ओर ही विजय प्राप्त करने के हेतु खिलाड़ियों द्वारा बनाया जाता है। दोनों ओर के खिलाड़ी राजा द्वारा अपने मंत्री, गज आदि की रक्षा करवाते हैं।[९]

इन व्यूहों के साथ ही साथ खिलाड़ी लोग अपनी चालों से सभी अंगों को इस प्रकार चलाते हैं जो बंध बन जाते हैं। राजा का, पांचवीं पंक्ति में, मंत्री का छठी पंक्ति में तथा रथ का सातवां पंक्ति में पद आने पर वज्र बंध

---

१. वही ५।१२।६३०-६३३।
२. वही ५।१२।६३३-३४।
३. वही ५।१२।६३४-३५।
४. वही ५।१२।५३६-३७।
५. वही ५।१२।६३७-३९।
६. वही ५।१२।६४०।
७. वही ५।१२।६४१।
८. वही ५।१२।६४२।
९. वही ५।१२।६४३-४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होता है ।[१] जिस समय परस्पर रक्षा की दृष्टि लिए हुए मंत्री तथा योद्धा छठी पंक्ति में स्थित हों तब पांचवीं पंक्ति का दृढ़ बन्ध हो जाता है।[२] अर्थात् पीछे के अंगों की पूर्ण रूपेण रक्षा रहती है। जिस समय चतुर सैनिक परस्पर एक दूसरे के हितैषी हो और अंग रक्षा के निमित्त युद्ध में आवरण स्वरूप हो तब वह आहव बन्ध होता है।[3] इन्हीं तीन बंधों का आश्रय ग्रहण कर खिलाड़ी अपने अंगों की प्रतिपक्षी के अंगों से रक्षा करवाता है। चौथी पंक्ति में स्थित सैनिकों तथा अन्य अगों द्वारा दूसरे की सेना का निरोध करवाकर उसे नष्ट करवाकर खिलाड़ी सैनिक को दूसरे के क्षेत्र में विजय की इच्छा से प्रवेश कराता है[४] क्योंकि चार चार पंक्तियाँ ही एक एक पक्ष की ओर होती हैं। जब सैनिक दूसरे के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाय तो उनके द्वारा राजोचित स्थान का निर्माण करवा कर राजा को उस सुरक्षित कोठे में बैठा दे और उसकी रक्षा के लिए सम्मुख वाले कोठे में मंत्री को बैठा दे और मंत्री की रक्षा करने के लिए अश्व तथा रथ को स्थापित कर दे। इस प्रकार से अन्य क्षेत्र में अपने अंग भी स्थापना कर देने वाला खिलाड़ी शीघ्र ही विजय प्राप्त कर लेता है।[५]

इस प्रकार से चाल की स्थापना कर लेने पर खिलाड़ी को सर्वप्रथम रथ को आगे चलाना चाहिए किन्तु चलाने के पूर्व वह उस मार्ग की भली प्रकार परीक्षा कर ले कि उसमें रथ के लिए कोई भय तो नहीं है।[६] जिस समय अन्य पक्ष के अंग आघात के लिए उन्मुख हों उस समय सभी अंगों को राजा की रक्षा करनी चाहिए जिससे राजा का कभी भी किसी प्रकार नाश न हो सके।[७] यदि इस समय खिलाड़ी प्रतिकूल चाल चल देगा तो उसका राजा अन्य पक्ष के द्वारा बँध जायगा। जिस समय अन्य अंगों को छोड़कर केवल राजा बध्य (मारे अथवा बांधे जाने योग्य हो) वहां पर खेलने वाले को अत्यन्त सावधानी से खेलना चाहिए और उसे राजा तथा हाथी की सर्वप्रथम रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार से राजा तथा अश्व दोनों की रक्षा हो जाती है।[८]

इस प्रकार के दावों के उपस्थित होने पर अन्य खिलाड़ी अनेक प्रकार के घातों का प्रयोग कर अपने अंग की रक्षा करता है। जो तत्पर होकर राजा से युद्ध कर उसे मारने का प्रयत्न करता है वह गज घात है।[९] यत्न के द्वारा

---

१. वही ५।१२।६४५.४६। २. वही ५।१२।६४७।
३. वही ५।१२।६४८। ४. वही ५।१२।६४९।
५. वही ५।१३।६५०,५१। ६. वही ५।१२।६५२।
७. वही ५।१२।६५३,५४। ८. वही ५।१२।६५५-५७।
९. वही ५।१२।६५८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विद्वान् खिलाड़ी राजा की गति को रोक कर चारों ओर से उसे घेरने का प्रबन्ध कर देता है। पुनः किसी के द्वारा बध्य राजा का निदेश करता है और तब उसकी गति अवरुद्ध हो जाने पर वही विजयी होता है।[१] इसमें सुरक्षित सैनिक नष्ट हुए रथ, हाथी, अश्व तथा मंत्री को राजा का गतिरोध के लिए यथा स्थान नियुक्त रखे।[२] तब किसी दूसरे अंग के द्वारा राजा का वध कराये। अन्य के द्वारा वध किए जाने पर राजा की पराजय होती है। यदि बलशाली अंगों के द्वारा राजा का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और वह घिर जाता है तब भी उसी की हार होती है। इस प्रकार से तीन प्रकार की चालों के आ जाने से उस राजा की हार हो जाती है।[३]

इसके अतिरिक्त एक जगह बल का विन्यास कर खिलाड़ी अन्यत्र केवल राजा को रखता है। वह राजा गज रथ, अश्व मंत्री तथा भटों के समान अकेले ही अपने पदों को चलाता है और दूसरे के क्षेत्र में अंगों को मारता तथा बांधता है और स्वयं भी बांधा तथा मारा जाता है। उसके मार्ग को विद्वान् खिलाड़ी गज, अश्व, मंत्री, रथ तथा भटों के द्वारा रोकता है, किन्तु राजा सदैव सभी प्रकार के पद चला कर अपने अंग की रक्षा करे और रथ में सुरक्षित रहे। इस प्रकार अत्यन्त कठिन परिस्थिति हो जाने पर भी विजय प्राप्त हो सकती है[४]।

गोमूत्र व्यूह नियम के द्वारा ही चतुरंग का क्रम होता है। राजा की सेना के द्वारा संचालित मंत्रि पंचक को दाय कहते हैं। इस दाय के अन्तर्गत चौथी पंक्ति से गज, तीसरी पंक्ति से अश्व, दूसरी पंक्ति से रथ चलता है। इस प्रकार यह पंक्ति-क्रम है जो खेल में प्रयुक्त होता है[५]।

इस खेल में जहां पर चार खिलाड़ियों द्वारा व्यूह की रचना होती है वहां पर एक एक के अन्तर से पीला तथा लाल वर्ण का कोष्ठ बनाया जाता है। इसमें रथ के कोठे के दक्षिण की ओर अश्व, के दक्षिण पार्श्व में गज तथा उसके समीप चार राजाओं की स्थापना होती है। ऐसे समय में राजा जघन्य नहीं होता, क्योंकि उसके मारने का कोई नियम नहीं है[६]। इन चारों के संस्कारों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के पात होते हैं[७]। जिस समय किसी भी पक्ष में एक अंग रह जाता है और वह बीच में होता है उस समय संस्थाओं की गणना होती है और विजय होती है[८]।

---

१. वही ५।१२।६५९-६० । २ वही ५।१२।६६१ ।
३. वही ५।१२।६६४ । ४. वही ५।१२।६६५-७० ।
५. वही ५।१२।६७१-६७३ । ६. वही ५।१२।६७५-६७७ ।
७. वही ५।१२।६७८ । ८. वही ५।१२।६७९ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

खेल में संख्या को लिखने के लिए लेखक रहते हैं जो दोनों पक्षों की संख्या को लिखते हैं। ये संख्यायें विभिन्न अंगों के लिये निश्चित हैं। पैदल सैनिक की एक, रथ की दो, घोड़े की तीन, हाथी की चार तथा राजा की छः संख्या गिनी जाती हैं। पूर्व से लगे हुए पण पर इसी प्रकार की संख्याओं की गणना होकर, विजय का निर्धारण होता है, क्योंकि अपने बल के अधिक होने पर विजय तथा न्यून होने पर पराजय होती है।[१]

सोमेश्वर ने अत्यन्त विस्तार के साथ चतुरंग के दांव पेंचों, चालों आदि का वर्णन किया है। इससे विदित होता है कि महाराज सोमेश्वर चतुरंग क्रीड़ा के बड़े ही प्रेमी थे। सोमेश्वर के समय में खेली जाने वाली क्रीड़ा का आधार वैदिक काल का चतुरंग फलक ही था क्योंकि वैदिक युग में भी राजा, मंत्री, गज, अश्व, रथ तथा पैदल यही छः अंग होते थे। इनकी स्थापना भी चतुरंग फलक पर उसी प्रकार होती थी।

चतुरंग का यह क्रम बहुत समय तक प्रचलित रहा, किन्तु वर्तमान काल में खेले जाने वाले शतरंज खेल में उनके समय से अंगों में कुछ परिवर्तन आ गए हैं और फलक पर उनके स्थापन की विधि भी भिन्न प्रकार की हो गई है। वर्तमान काल में रथ के स्थान पर ऊँट शतरंज खेल का अंग बन गया है। और यद्यपि आजकल भी खेल का फलक ६४ कोठों वाला ही होता है किन्तु सबसे कोने के कोठों में हाथी, उसके दक्षिणपार्श्व में घोडा, घोंड़े के दक्षिण कोठे में ऊंट, तब मंत्री तथा राजा स्थापित किये जाते हैं। आगे के दूसरी पंक्ति के कोठों में आठ सैनिकों की स्थापना विधि समान ही है। इसी प्रकार खेलने का क्रम भी भिन्न हो गया। सोमेश्वर के समय में फलक के कोठों को लाल तथा पीले रंग से रंगा जाता था

चतुरंग क्रीडा का बडा ही पुरातन इतिहास है। यह क्रीड़ा वैदिक काल में भी खेली जाती थी और उसे चतुरंग कहते थे[२]। यह युद्ध से सम्बन्धित खेल था और प्रत्येक खेल में एक राजा, एक मंत्री, दो हाथी, दो घोड़े, दो रथ तथा आठ पैदल सैनिक रहते थे। खेल के प्रमुख राजा मंत्री आदि अंग पीछे तथा उनके आगे पदाति सैनिक रहते थे। यह खेल एक चौकोर फलक पर खेला जाता था जिसमें ६४ चौकोर कोष्ठ होते थे। टेलर[३] महोदय का मत है कि यह खेल किसी हिन्दू का आविष्कार है जो युद्ध के क्षेत्र को ध्यान में रख कर बनाया गया है और अष्टापद (आठ कोष्ठ लम्बाई में आठ कोष्ठ चौड़ाई

---

१. वही ५।१२।६८०-८२।

२. वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार 'वार इन ऐंशियन्ट इंडिया" पृ० १५४।

३. टेलर..."एन्थ्रोपोलौजी" १८९२, पृ० ३०७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में) फलक पर खेला जाता है। इस खेल के ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में अनेक ऐसे प्रसंग प्राप्त होते हैं जिससे विदित होता है कि तत्कालीन समाज का यह प्रिय मनोरंजन था[१]। इस खेल में अपने आगे की दो पंक्तियों के कोष्ठों में राजा, मंत्री, अश्वों, हाथियों तथा रथों को स्थापित किया जाता था। किनारे के दोनों कोष्ठों में रथ, उसके समीप वाले कोष्ठ में दोनों ओर अश्व, अश्व के समीप गज तथा बीच के दो कोष्ठों में राजा तथा मंत्री रहते थे। आगे के आठों कोष्ठों में आठ पैदल सैनिक स्थापित किए जाते थे[२]।

फारसी भाषा में इस क्रीड़ा का चतुरंग तथा अरबी भाषा में शतरंज नाम दिया है। जो संस्कृत के चतुरंग शब्द के ही रूप हैं।[3] इससे विदित होता है कि इस चतुरंग क्रीड़ा की उत्पत्ति भारत में ही हुई जिसको अन्य देशवासियों ने सीखा।

बौद्ध साहित्य के समवाय सुत्त में एक 'अट्ठावयम्' नाम की क्रीड़ा का उल्लेख हुआ है जो ६४ चौकोर कोष्ठों में खेली जाती थी।[४] यह वैदिक काल में खेली जाने वाली चतुरंग क्रीड़ा का ही रूप है। कादम्बरी में एक स्थल पर ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है :

अभ्यस्यता अष्टापद व्यापाराणि......॥[५]

अर्थात् अष्टापद खेल का अभ्यास करते थे यह अष्टापद वही चतुरंग खेल है। हर्षचरित में भी बाण ने क्रोध के कारण तनी हुई भौहों से दुर्वासा के मस्तक पर छायी हुई कालिमा को शतरंज के फलक के काले कोष्ठों की भाँति बतलाया है।[६] यह प्रसंग तत्कालीन समाज में खेले जाने वाले चतुरंग खेल की ओर संकेत करता है। यह चतुरंग खेल भारत ही से विदेशों में पहुँचा। पहलवी भाषा की "मादीगान-ए-शतरंज" में दीवासारम् नामक हिन्दू राजा द्वारा खुसेरु नौशेरवाँ की सभा के विद्वानों की परीक्षा करने के लिए बत्तीस मोहरों वाला शतरंज का खेल ईरान भेजने का प्रसंग प्राप्त होता है।[७] इस प्रकार

१. वी० आर० रामचंद्र दीक्षितार "वार इन ऐंशियन्ट इंडिया" पृ० १५४।
२. वी० आर० रामचन्द्र दिक्षितार-"वारइन ऐंशियन्ट इन्डिया", पृ० १५४
३. शूलपाणि-"चतुरंग दीपिका" (कलकत्ता संस्कृत सिरीज़ २१)।
४. ए० वेंकटसूब्रिया दि कलाज़ सूची ?।
५. कादम्बरी : कथामुख भाग, पै० ८८।
६. अन्धकारित ललाटपट्टाष्टपदा.........।
हर्षचरित १।९।
७. वासुदेव शरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विदेशों के कोने-कोने में फैला हुआ शतरंज खेल भारत में बढ़ता ही गया। मुसलमानों के समय में इस खेल ने बड़ा जोर बाँधा। उस समय के व्यक्ति अपना कामधाम त्याग कर इस खेल के पीछे पड़े थे जैसा कि प्रेमचंद की "शतरंज के खिलाड़ी" नामक कहानी से प्रकट होता है। यह खेल आज भी भारत में कुछ अंश तक प्रचलित है।

इस खेल में विशेष रूप से दो राजाओं की सेना का पारस्परिक युद्ध होता है और अनेक प्रकार के दांव पेंचों एवं व्यूहों का प्रयोग जीतने लिए किया जाता है। दोनों पक्ष के व्यक्ति अपनी ओर के सभी अंगों को बचाने की चेष्टा करते रहते हैं। इस प्रकार युद्ध ही इस खेल का प्रधान विषय है। इसी कारण यह राजाओं की प्रिय क्रीड़ा रही है।

अक्ष अथवा पाशक क्रीडा

इस क्रीड़ा में २० अंगुर के विस्तार का श्रेष्ठ दारु लकड़ी का फलक बनाया जाता था जो चार विस्तृत दीर्घ तथा बीस अंगुल ऊंचा होता था।[१] इसमें चार अंगुल विस्तार के तथा नव अंगुल दीर्घ २४ गृह बनाये जाते थे और दो पदकों से सुशोभित दो वृत्ताकार पंक्तियाँ बनाई जाती थीं जिसमें एक अंगुल का अन्तर रहता था।[२] इसके अतिरिक्त इस क्रीड़ा में ढाई अंगुर विस्तार के हाथी दाँत के तीस पाशकों अथवा सारिकों का प्रयोग होता था जिसमें पन्द्रह श्वेत तथा पन्द्रह चित्रित पासे होते थे :

सार्धद्व्यङ्गुलविस्ताराः दंतिदंतै समुद्भवाः ॥
दशपंचसितास्तत्र दश पंच विचित्रता।
त्रिंशद्देताः समाख्याता.........पाशककेलिषु ॥[3]

इन पाशकों के रखने में सोमेश्वर ने 'चतुःसारीक' तथा 'पंचसारीक' विधियों का वर्णन किया है। दो शिर पर, छठे गृह के बाहर के गृह तथा चतुर्थ गृह में चार-चार, तथा पांच शीर्ष पर श्वेत सारिकायें रखी जाती थीं। इस विधि को 'चुतुस्सारीक' विधि कहते थे।[४] इसी प्रकार पाँच शिरोभाग पर, पाँच

१. मानसोल्लास ५।१३।७०१। २. वही ५।१३।७०२-७०३।
३. वही ५।१३।७०४.७०५।
४. द्वे द्वे शिरसि संयोज्ये........।
......दशोभागे षष्ठे गेहे विचित्रिता।
चतस्रस्थापनीयास्ता.....भूगृहेषु च।
चतुर्थे......शीर्षेत्तु पंचता।
सिताश्च तत्र कर्तव्याश्चतुःसारीष्ठ.यं विधिः ॥
वही ५।१३।७०६.७०८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बारहवें गृह में तथा पाँच छठे गृह में चित्रित सारिकायें रखने की विधि को पाँच सारीक विधि कहते थे।[१] इसमें सभी स्थानों में पाँच-पाँच रखने के कारण ही विधि का नाम पंच सारीक है। इन सारीकों को अन्य भी अनेक प्रकार से फलक पर स्थापित किया जाता था।[२] इन सभी का सोमेश्वर ने उल्लेख किया है।

इस क्रीड़ा में दो हाथी दांत के बने हुए तर्जनी मात्र के चौकोर, सम तथा चिकने पाशे बनते थे[३]। उनके चारों ओर काले तिलकाकार बिन्दु बनाये जाते थे जिन्हें दाय कहते थे[४]। इन दायों के अनेक स्थान होते थे। चार बिन्दुओं के मध्य में बिन्दु होने पर पंचक, पर्यन्त प्रदेश में दो बिन्दुओं वाला द्विक, पचक के बीच में समीर के प्रान्त भाग के बिन्दुओं को हटा कर त्रिक, द्विक के मध्य में दो और बिन्दु बनाने से चतुष्क दाय कहलाता था[५]। दो, दो दो, दो, तीन तीन, दो, चार चार, दो, पांच पांच वाले सम दाय कहलाते थे[६]। इसी प्रकार इन्हीं संख्याओं से सम्बन्धित दस प्रकार के दाय थे[७]।

ये पाशे एक चौकोर वर्तुलाकार आकृति के गोलक में डाल-डाल कर खेले जाते थे। इस गोलक पर अनेक प्रकार के बिन्दु बने रहते थे जिनकी संख्या एक से छः तक होती थीं[८]। इसी में डाल डाल कर यह अक्ष अथवा पाशे फेंके जाते थे, जिससे किसी प्रकार का पक्षपात न होने पाता था[९]।

अक्ष खेल में सारिकाओं के खेलने एवं उनकी गति के चार प्रकार थे। अत्यन्त शीघ्र चलने वाली सारीक गम, इधर-उधर हटाकर चलने वाली सारीक चर, गतिरोध कर चलने वाली बंध तथा अन्य का मार्ग बांध कर चलने वाली सारीक गति प्रतिबन्ध कहलाती थी[१०]। इन सभी सारीकों की गति द्वारा जीतने तथा अपनी सारीकों को बचाने के दाव पेंचों का सोमेश्वर ने विस्तार पूर्वक खेलने के क्रम में वर्णन किया है[११]।

खेलने वाले को चाहिए कि अपनी सारीकों के मध्य में प्रतिबन्ध गति चले और सब ओर से अन्य सारीकों का निबन्ध कर गम, चर, बंध आदि

---

१. वही ५।१३।७०८-७१०।
२. वही ५।१३।७११-७२०।
३. वही ५।१३।७२१।
४. वही ५।१३।७२२।
५. वही ५।१३।७२३ २५।
६. वही ५।१३।७२६।
७. वही ५।१३।७२७,२८।
८. वही ५।१३।७३०।
९. वही ५।१३।७३१।
१०. वही ५।१३। ३२-३४।
११. वही ५।१३।७३५-५१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गतियों को नष्ट कर दें। किन्तु यदि प्रतिबन्ध गति भी अन्य के द्वारा नष्ट कर दी जाय तो सहिष्णुता से जय अथवा पराजय में साहस गति चलें[2]।

खेलते समय किसी की वस्तु की शर्त होती है जिसे पण कहते हैं। अपना पल्ला भारी देखकर अथवा अन्य की सारीकें अपने गृह में आने पर वह पण दुगुना भी कर दिया जाता था[3]। किन्तु खिलाड़ी निश्चय रूप से अपनी ही विजय देखकर पण को तिगुना भी कर सकता था[4]।

अक्ष क्रीड़ा में विजय के निर्धारण के लिए अनेक नियम प्रचलित थे। अपनी विजय होने पर अपने तथा दूसरे दोनों के पांच-पांच दाय द्यूत में समान कर दिए जाते थे[5]। और दूसरे के बहुत से दुगुने, तिगुने दायों के संचित हो जाने पर विद्वानों द्वारा एक भाग घटा दिया जाता था। यह नियम केवल द्यूत के समय के लिए ही था। इसे 'चतुस्सारिनिबन्ध' कहते थे[6]।

खेल में खिलाड़ी लोग सर्वप्रथम गम दांव ही चलते हैं। गम के दुर्भाग्य से नष्ट हो जाने पर चर तथा बंध चलते थे और सदैव दाय को दुगुना कर देने का प्रयत्न करते थे[7]। सर्वप्रथम पुंजक ही दाय गिराता था और पांच दाय तीन बार गिरने पर पुंज पक्ष की पराजय मानी जावी थी और द्विक दाय दो बार गिरने पर पुंज पक्ष की विजय होती थी[8]। इसी प्रकार और अन्य चालों का भी वर्णन हुआ है[9]।

अक्ष क्रीड़ा का प्रसंग इस बात को स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर महाराज अक्ष क्रीड़ा को द्यूत के साथ ही मनोरंजन का भी साधन मानते थे क्योंकि द्यूत में प्रयुक्त होने वाले नियमों का उन्होंने विशेष रूप से वर्णन किया हैं। इसके साथ ही साथ सोमेश्वर ने इस व्यसन को नाश का कारण माना है, क्योंकि उन्होंने

---

१. मानसोल्लास ५।१३।७५३। २. वही ५।१३।७५४।
३. वही ५।१३।७५६.७६१।
४. त्रिगुणास्तत्र कर्त्तव्यं स्वजयोऽस्यते यदि

वही ५।१३।७६२।

५. स्वजयेपंचदायाश्च पंचदायाः परस्य वा ॥
समं तत्र प्रवर्त्व्यं द्यूने द्यूतविशारदैः।

वही ५।१३।७६२.६३।

६. वही ५।१३.७६४। ७. वही ५।१३।७६५।६७।
८. वही ५।१३।७६८.७६९। ९. वही ५।१३।७७०.७७३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुष्कर द्वारा राजा नल को इस क्रीड़ा द्वारा जीते जाने का उल्लेख किया है।[1] इसके अतिरिक्त अक्ष को वे मन तथा बुद्धि का नाशक बतलाते हैं और व्यसन का उत्पादन करने के कारण इसमें आसक्ति न रखने का आदेश देते हैं।[2] राजा को जहाँ तक हो सके प्रयत्नपूर्वक इसका निवारण करना चाहिए।[3] फिर भी यदि राजा की इच्छा हो तो वह अपनी प्रेयसियों के साथ अत्यन्त हास्यप्रद एवं विलासपूर्ण पण की स्थापना कर इस पाशक क्रीड़ा को खेले। यद्यपि यह क्रीड़ा दुरन्त है फिर भी सोमेश्वर ने इसे क्रीड़ा के अन्तर्गत मानकर मनोरंजन का साधन माना है और साथ ही अपनी प्रेयसियों के साथ खेलने की ऐसी विधि का आदेश दिया है जो वास्तव में इस पाशक के खेल को आनन्दपूर्ण बना देती है। इसी प्रकार खेलने से राजा का मनोरंजन भी हो जाता था और उसके ऐश्वर्य को भी धक्का न लगता था। मनु ने हंसी में भी द्यूत को खेलने का निषेध किया है।[4]

यह क्रीड़ा भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित है। वेदों के समय में भी यह क्रीड़ा खेली जाती थी। क्योंकि ऋग्वेद[5] के दसवें मंडल में इस क्रीड़ा के प्रसंग प्राप्त होते हैं! इस प्रसंग में बहेरे का फल अक्ष के रूप में व्यवहृत होता था और जिस फलक पर यह क्रीड़ा खेली जाती थी उस शारि फलक को 'इरिण' कहते थे और इस क्रीड़ा का भी 'शारि क्रीड़ा' नाम था। ऋग्वेद के एक स्थल पर 'त्रिपंचाशः क्रीडति प्रातः[6] प्रसंग से प्राप्त होता है इससे विदित होता है कि उस समय में अक्ष के तिरपन संघ थे जो शारिफल पर क्रीडा करते थे। इस प्रकार वैदिक युग में इस क्रीड़ा का विशेष महत्व था किन्तु इस क्रीड़ा की प्रशंसा कहीं नहीं प्राप्त होती क्योंकि यह दुरन्त व्यसन है।

पुराण कालीन समय में भी इस क्रीड़ा का विशेष व्यवहार होता था। श्रीमद्भागवत पुराण में एक स्थल पर अक्ष की क्रीड़ा करने वाली अक्ष सभाओं का प्रसंग प्राप्त होता है :

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः।[7]

---

१. व्यसने नलो राजा पुष्करेण जितः पुरा।
मानसोल्लास ५।१३।७७६

२. वही ५।१३।७७८.७७८।

३. वही ५।१३।७७८।

४. मनु० ९।२२७।

५. ऋग्वेद १०।३४।१.१०।

६. ऋग्वेद १०।३४।८।

७. श्रीमद्भागवत पु० १०।६६।३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसी प्रकार और स्थलों पर भी अक्ष का प्रसंग प्राप्त होता है :

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः।
अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥[१]

उस समय भी अक्ष क्रीडा में पण लगाया जाता था :

अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत्।
इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥
शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम्।
तं तु रुक्म्यजयत् तत्र कालिङ्गः प्राहसद् बलम् ॥[२]

महाभारत[३] में इस क्रीडा के दुष्परिणाम का वर्णन हुआ है। शकुनि ने कपट-पूर्वक पांडवों को हराकर उनका राज्य छीनकर उन्हें निर्वासित कर दिया।

मनु ने दस प्रकार के कामज तथा आठ प्रकार के क्रोधज व्यसनों का वर्णन किया है और अक्ष क्रीडा को कामज व्यसनों के अन्तर्गत माना है।[४] मनु ने इस द्यूत को राजा के लिए निषिद्ध माना है।[५] याज्ञवल्क्य ने भी निर्जीव पाशादि से खेली जाने वाली क्रीडा को द्यूत कहा है और उस द्यूत के द्वारा जीते हुए धन में राजा का भी भाग होता था :

स सम्यक् पालितो दद्याद्राज्ञे भागं यथा कृतम्।[६]

याज्ञवल्क्य के समय में सभिक (फड़वाला) पाँच रूपए प्रतिशत लेता था और अधिक जीतने पर धन का दसवाँ भाग लिया जाता था।[७] उस समय में इस द्यूत क्रीड़ा का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था और जो कपटपूर्वक, धोखा देकर अथवा औषधि की सहायता से द्यूत खेलते थे उन्हें राजा श्वपद चिह्नों से दगवा कर राज्य से निकलवा देता था :

प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धं धूर्तमंडले।
जितं ससभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥
द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि।
राज्ञा सचिह्नं निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः ॥[८]

वात्स्यायन ने इस क्रीड़ा का 'आकर्ष' नाम दिया है और फलक को आकर्षफलक कहते थे—

---

१. वही १०।६१।३५।
२. वही १०।६१।२८,२९।
३. महाभारत : सभापर्व।
४. मनु० ७।४५-४७।
५. मनु० ९।२२१।
६. याज्ञ० २।२०४।
७. वही २।२०३।
८. वही २।२०५,२०६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आकर्षफलकं द्यूतफलकं च ॥[१]

विश्वभारती पत्रिका में भी श्री हरि चरण वन्द्योपाध्याय ने इस अक्ष क्रीड़ा के विषय में एक अच्छा लेख लिखा है ।[२]

ललितविस्तर में भी अक्ष क्रीड़ा का प्रसंग प्राप्त होता है ।[3] कादम्बरी में एक स्थान पर 'सर्वाः द्यूतकलाः' का प्रयोग हुआ है ।[४] इससे विदित होता है कि उस समय में व्यक्ति सभी प्रकार के द्यूतों में निपुण थे । अतः उन्हें अवश्य ही अक्ष क्रीड़ा का ज्ञान होगा । समवाय सुत्त में 'जूयम्' (द्यूतम्) का प्रयोग हुआ है ।[५] यह जूयम् शब्द संभवतः अक्ष क्रीडा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है । दीर्घ निकाय में भी अक्ष (अक्ख) क्रीड़ा का उल्लेख हुआ है और द्यूत को प्रमाद (जूत पमाद) माना है ।[६] आजकल जो अनेक प्रकार के खेल प्रचलित हैं वे पासे द्वारा ही खेले जाते हैं । संभवतः ये खेल अक्ष क्रीड़ा के ही अन्य रूप हैं ।

वराटक क्रीड़ा

वराटिका क्रीड़ा द्वारा राजा विशेष रूप से आश्विन मास में कृष्ण पक्ष की अमावस्या तथा चतुर्दशी को मनोरंजन करता था—

अमावस्यां चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे विनोदयेत् ॥[७]

इस क्रीड़ा को चतुर्दशी से लेकर शुक्ल पक्ष की पंचमी तक खेलने का आदेश सोमेश्वर ने दिया है—

आरभेत् ततो द्यूतं यावदायाति पंचमी ॥[८]

चतुर्दशी के दिन राजा स्नान कर देव की पूजा करके, दीर्घ तूर्य नाद से पूर्ण ब्राह्मणों के अभिनन्दन से अभिनन्दित होकर, अंतःपुर की स्त्रियों द्वारा नीराजना करवा चुकने पर अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, बांधवों, मित्रों तथा भृत्यों को बुलवाकर सबके साथ आनन्द पूर्वक भोजन करता था ।[९] भोजनादि से निवृत्त हो

१. कामसूत्र सू० १३, पृ० ४५ ।
२. विश्वभारती पत्रिका खंड, ३, अंक २ ।
३. ए० वेकटसूबिया दि कलाज़ सूची २ ।
४. वही सूची ४, कादम्बरी पैरा ७५ ।
५. ए० वे० दि कलाज सूची १ ।
६. दीर्घानिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त, सू० १४ ।
७. मानसो० ५।१४।७८१ । ८. वही ५।१४।७८५ ।
९. स्नात्वा च देवमभ्यर्च्य कृत्वा चणवतर्पणम् ।
... ...

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चुकने पर राजा द्यूत को जानने वाले चतुर व्यक्तियों को बुलाकर द्यूत क्रीड़ा प्रारम्भ करता था।[१]

कौड़ियों द्वारा खेला जाने वाला द्यूत अनेक प्रकार का होता था जिनमें अलग-अलग संख्या में कौड़ियों की आवश्यकता पड़ती थी। यह पाँच कौड़ियों द्वारा, चार कौड़ियों द्वारा तथा तीस कौड़ियों द्वारा खेल होता था।[२] इसमें चार कौड़ियों द्वाला खेले जाने वाले खेल को पुंजिका कहते थे।[३] यह खेल एक गोलाकार मंडल में खेला जाता था। इसे नंदि रेखा कहते थे और यह तीन अंगुल विस्तार का वृत्ताकार बनाया जाता था।[६]

कौड़ी के द्यूत में नंदि, द्विवक, त्रिक तथा पूर्ण यह चार प्रकार के दाय होते थे जो एक, दो, तीन तथा चार वराटिकाओं द्वारा ही निश्चित किए जाते थे।[४] इस दाय को स्वीकार करने वाले चार लेखक रहते थे।[५] तथा एक गणितज्ञ होता था जो अत्यन्त सावधानी से वराटिकाओं की गणना करता था। लेखक मध्य में बैठता था और जो जय तथा पराजय को लिखते थे, यही चार लेखक थे।[७] ये चारों अत्यन्त सावधानी से द्यूत का निरीक्षण करते थे। पूर्ण दाय के हो जाने पर मुट्ठी में बराटिका भर कर फेंकी जाती थी।[८] इन कौड़ियों के फेंके जाने पर प्रत्येक चाल को ध्यानपूर्वक देखा जाता था और प्रत्येक के भाग में चार-चार के हिसाब के कौड़ियों की गणना होती थी। जिसके भाग में चार चार की गणना से अधिक कौड़ी बचती थी वही विजयी समझा जाता था। यह कार्य गणक करता था।[९]

द्यूत खेलने में दोनों ओर के पक्षों द्वारा पण की स्थापना होती थी। दोनों पक्ष के व्यक्ति एक दूसरे के पण को शिथिल कर अपने पण को पुष्ट करने का प्रयत्न करते थे।[१०] जिसके दाय के उत्पन्न होने पर पण की प्राप्ति न होती थी उसको पण की प्राप्ति न होती थी अर्थात् उसकी संख्या की गणना नहीं

ततः पुत्रप्रपौत्रांश्च समाहूयाथ बान्धवान् ॥
मित्रैर्भृत्यैः समायुक्तः कृताहारो यथोचितम् ।
वही ५।१४।७८२ ७८४

१. वही ५।१४।७८४ ।
२. वही ५।१४।७८६-७८८ ।
३. वही ५।१४।७८७ ।
४. वही ५।१४।७९०-९१ ।
५. वही ५।१४।७८८-९० ।
६. वही ५।१४।७९४,९५ ।
७. वही ५।१४।७९७,९८ ।
८. वही ५।१४।७९९ ।
९. वही ५।१४।८००-८०२ ।
१०. वही ५।१४।८०४-८०८ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होती थी।[१] दूसरे के पण के समान कर देने पर पण में एक संख्या को छोड़ कर उसे दो भाग की प्राप्ति होती थी।[२]

वराटिका की चालें चलने पर अनेक प्रकार के हस्तलाघव द्वारा कार्य किया जाता था। यदि खिलाड़ी प्रवीण होता था तो अपनी विजय की इच्छा से कौड़ियों को छिपा भी लेता था और पण प्राप्ति के बाद मिला देता था। इस प्रकार अपनी ओर अधिक पण की संख्या बढ़ाने की चेष्टा प्रत्येक खिलाड़ी करता था।[३] दूसरे के द्वारा अधिक पण ले लेने पर उसे लग्न कहते थे।[४]

खेल में विजयी होने पर व्यक्ति द्यूत छोड़ देने का प्रयत्न करता था किन्तु हारा हुआ व्यक्ति विजय की इच्छा से द्यूत के व्यसन को नहीं त्यागता था और और यत्नपूर्वक अपनी हार तथा जीत देखता था।[५]
इसके अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार से भी खेल खेला जाता था जिसमें अनेक प्रकार के वर्णों की वराटिकायें होती थीं और उनके वर्णों के आधार पर ही नाम रखे जाते थे।[६] यह भी वराटिकाओं को फेंक-फेंक कर अनेक चाले चलकर खेला जाता था जिसे पातन कहते थे।[७] वर्ण के आधार पर ही विजय का निर्धारण होता था। इसका सोमेश्वर ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[८] इसके अन्तर्गत भी खेलने के क्रम[९] अनेक प्रकार की चालों[१०] द्वारा हार जीत का निरूपण किया गया है।[११] इस प्रकार तत्कालीन समाज में वराटिका क्रीड़ा अधिकांश समाज के व्यक्तियों को प्रिय थी और खेलने वालों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति जो इसका प्रबन्ध करते थे वे भी द्यूतकारक ही होते थे।

भारत में कौड़ी द्वारा खेले जाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। मनु ने निर्जीव वस्तुओं, पाशा तथा कौड़ी द्वारा खेले जाने वाले खेल को द्यूत माना जाता है :

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते[१२]

मनु ने इस प्रकार के द्यूत को वैर बढ़ाने वाला तथा नाश का कारण माना है इसी कारण उन्होंने हास्यार्थ भी द्यूत खेलने का विधान नहीं दिया है।[१३]

१. वही ५।१४।८०९-१०।
२. वही ५।१४।८११,८१२।
३. वही ५।१४।८१४-१६।
४. वही ५।१४।८१७-१९।
५. वही ५।१४।८२१-२६।
६. वही ५।१४।८२९-३१।
७. वही ५।१४।८३३-३५।
८. वही ५।१४।८३६-६३।
९. वही ५।१४।८३७-४७।
१०. वही ५।१४।८४८-५८।
११. वही ५।१४।८५९-६२।
१२. मनु० ९।२२३।
१३. द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥ मनु० ९।२२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

याज्ञवल्क्य ने इसका बिल्कुल निषेध नहीं बतलाया है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है उनके समय में द्यूत में जीते गए धन का दसवाँ भाग राजा ग्रहण करता था।[1]

बौद्ध साहित्य में द्यूत का अक्ष से भिन्न प्रसंग प्राप्त होता है और द्यूत को 'जूतप्पमादट्ठान'[2] (द्यूतप्रमादस्थान) माना है। इससे विदित होता है कि अक्ष के साथ ही साथ अन्य प्रकार के द्यूत भी समाज में प्रचलित थे, जिनमें संभवत: कौड़ी द्वारा भी द्यूत होता होगा। इसी प्रकार का द्यूत का प्रसंग समवाय सुत्त में भी प्राप्त होता है।[3]

वात्स्यायन ने भी आकर्ष क्रीड़ा के अतिरिक्त अन्य प्रकार के द्यूतों का भी उल्लेख किया है। सम्भवतः उनके समय में भी इस प्रकार की क्रीड़ा द्वारा द्यूत होता था।[4]

इस प्रकार उपर्युक्त प्रसंगों से ऐसी झलक प्राप्त होती है कि वराटिका द्वारा भी द्यूत खेला जाता था, यद्यपि इसका प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख नहीं हुआ है। वर्तमान काल में भी कौड़ी का द्यूत समाज में प्रचलित है किन्तु दीपावली के अवसर पर यह द्यूत अपना उग्र रूप धारण कर लेता है, जो कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तथा अमावस्या को होती है किन्तु सोमेश्वर के समय में यह द्यूत आश्विन मास कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी से लेकर पञ्चमी तक होता था, यद्यपि तिथि दोनों की ही समान है किन्तु आश्विन मास का यह प्रसङ्ग कुछ न्यायसंगत नहीं विदित होता। इससे यह विदित होता है कि या तो इस मास में उनके समय में विशेष कोई उत्सव होता था जिसमें राजा स्नान-पूजा से निवृत्त होकर चतुर्दशी आदि तिथियों को द्यूत का प्रारम्भ करता होगा अथवा 'आश्विन' के स्थान पर 'कार्तिक' होगा जो अशुद्ध हस्तलिपि की त्रुटि हो सकती है।

फणीन्द्र-क्रीड़ा

फणीन्द्र क्रीड़ा को प्रदर्शित कर राजा सबके हृदय में कुतूहल उत्पन्न करता था। राजा एकाग्र मन में अपना सब कार्य समाप्त कर, भोजनादि से निवृत्त होकर अपना शृङ्गार कर, अपनी प्रेयसियों, प्रसाद करने वाले विटों, गीत वाद्य विशारदों, सेवा को जानने वाले सेवकों, विद्वानों, मल्लों, वंदियों, द्यूतज्ञों,

---

१. याज्ञ० २।२०३-२०४।

२. दीघनिकाय, ब्रह्मजालसुत्त सू० १४, पृ० ७।

३. ए० वेंकटसूबिया, दि कलाज सूची १।

४. ए० वेंकटसूबिया, दि कलाज़ सूची ३।

वात्स्यायन कामसूत्र, पृ० ३२,३३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

फणिदों के आ जाने पर उनसे घिरा हुआ अपने दृढ़ मुष्टि बल की शिक्षा तथा हस्त लाघव के प्रयोगों को अस्त्र शस्त्रों द्वारा बहाने से प्रदर्शित करता था।[१] किंतवादियों के कौशल को, हस्तलाघव को देखने के लिए तथा अपना मनोरंजन करने के लिए यह फणीन्द्र क्रीड़ा करता था।[२] इस क्रीड़ा द्वारा बन्दियों का मनोरञ्जन होता था तथा स्त्रियों के हृदय में राजा के प्रति अनुराग की वृद्धि होती थी।[३] इस क्रीड़ा में अनेक फणिद रहते थे[४] और उनकी अनेक प्रकार की गुण आदि से सम्बन्धित परीक्षायें होती थीं।[५]

इस क्रीड़ा को करते समय सर्वप्रथम सभी दिशाओं में कांडकबांध दिए जाते थे जिसके अन्दर खेलने के लिए बीस, तीस चालीस अथवा पचास वरंडक होते थे—

विंशत्या त्रिंशतावापि स्याच्चत्वारिंशतापि वा।
पञ्चाशतापि वा कांडे क्रीडनेऽसौ वरंडकः॥[६]

यह वरंडक तलवार, खड्ग अथवा असिधेनु द्वारा बनाये जाते थे।[७] इनके द्वारा राजा एक ही प्रहार करके अपने बल को प्रदर्शित करता था।[८] इसी प्रकार छुरिका की धारा को पृथ्वी पर रखकर निश्छल होकर राजा अपना हस्तलाघव प्रदर्शित करता था।[९] कभी वामहस्त में छुरिका को लेकर उसे दक्षिण हाथ में बदल कर, मुष्टिका से उसे पकड़ कर वेग से उसे चलाता था। इस प्रकार से राजा अनेक प्रकार से अपने बल एवं शौर्य को प्रदर्शित करता था।

फणीन्द्र क्रीड़ा का प्रसंग अन्य किसी भी स्थल पर नहीं प्राप्त होता, किन्तु उपर्युक्त प्रसंग से ऐसा प्रकट होता है कि जिस प्रकार से सर्प अत्यन्त शीघ्रता एवं कौशल के साथ अपने फण को हिलाता है उसी प्रकार अपने हस्तलाघव को अन्य व्यक्तियों को दिखलाकर उन्हें प्रसन्न करना यही इस क्रीड़ा का प्रधान

---

१. मानसोल्लास ५।१५।८६५-६८।
२. मुदमर्थमात्मनश्चापि क्रीडामेतां समाचरेत्॥
वही ५।१५।८६८।
३. वही ५।१५।८६९।
४. वही ५।१५।८७० फणिदा बहवोत्र स्युः।
५. वही ५।१५।८७०,८७१। ६. वही ५।१५।८७२।
७. असिना असिधेन्वा च तत्र कुर्याद्वरण्डकः। वही ५.१५।८७३।
८. एकेनेव प्रहारेण स्वबलं दर्शयेन्नृपः। वही ५।१५।८७४।
९. वही ५।१५।८७५,८७६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उद्देश्य था। हाथों की क्रिया से सम्बन्धित प्रत्येक हाव-भाव हस्तलाघव के अन्तर्गत आ जाता है। ललितविस्तर में मुष्टि बन्ध, बाहुव्यायाम तथा स्फालन आदि अनेक कलाओं का उल्लेख हुआ है, जिनके द्वारा व्यक्ति उस समय में अपने हस्तलाघव को प्रदर्शित करता था।[1]

वात्स्यायन ने हस्तलाघव को भी एक कला मानी है और इस हस्त लाघव को प्रदर्शित करने एवं सीखने के लिए अनेक प्रकार की गोष्ठी एवं सभायें होती थीं।[2] इसी प्रकार से प्राचीन काल में खेली जानेवाली गदा क्रीड़ा तथा धनु क्रीड़ा आदि के प्रसंग प्राप्त होते हैं। इनमें हाथों के हावभावों को प्रदर्शित कर दिखावटी युद्ध होता था।[3] आजकल भी नगरों में अनेक ऐसी संस्थायें हैं जहां व्यक्तियों एवं बालकों को हस्त सम्बन्धी अनेक प्रकार की कलाओं की शिक्षा दी जाती है।

पञ्जिका क्रीड़ा

फणीन्द्र क्रीड़ा के पश्चात् राजा के द्वारा की जाने वाली पञ्जिका क्रीड़ा का वर्णन मानसोल्लास में हुआ है। इस क्रीड़ा में राजा को चाहिए कि पुरुषों के साथ ही साथ स्त्रियों को भी लगावे।

> स्त्रिया योज्याः विशेषेण न योज्याः केवलं नराः[4]

इस कारण स्त्रियां विशेष रूप से इस क्रीड़ा में भाग लेती थीं। राजा रूप संपन्न प्रेम भाव से पूर्ण, विलास विभ्रम से युक्त, परिहास रस को प्रसारित करने वाली चतुर तरुणियों को बुलाकर उन स्त्रियों के साथ पंजिका क्रीड़ा करता था।

> तरुणी रूपसंपन्ना प्रेमभावसमन्विता।
> विलासविभ्रमे युक्ता परिहासरसप्रिया॥
> आहूय चतुराःकांताः पञ्जीक्रीडाविशारदाः।
> ताभिः सह महीपालः पंजिक्रीडां समाचरेत्॥[5]

इस क्रीड़ा में सात, छः, आठ अथवा दस व्यक्ति लगाए जाते थे[6]। पूर्व में इस क्रीड़ा को श्रीकृष्ण भगवान् ने गोपिकाओं के साथ की थी इसी कारण

---

१. ए० वेंकटसूबिया, दि कलाज़ सूची २ ललितविस्तर, पृ० १७८।

२. ए० वेंकटसूबिया, दि कलाज़ सूची ३ वात्स्यायन कामसूत्र पृ० ३२,३३।

३. हिंदू संस्कृति अंक, पृ० ७२५।

४. मानसोल्लास ५।१६।८८६। ५. वही ५।१६।८८५ ८८६।

६. खेलकार्ये च सप्तापि षडष्टौ दश नियोज्याः।
पंजिकायां तु स्त्रियो वापि यद्वापि च मानवाः॥
वही ५।१६।८८७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राजा को भी चाहिए कि वह विशेष रूप से स्त्रियों के साथ ही उनके मन को आनन्दित करने के लिए क्रीड़ा करे[१]। इस क्रीडा को करते समय राजा को स्त्रियों के हाव भाव को विशेष रूप से देखना चाहिए[२]।

इस क्रीड़ा को खेलने के लिए विशेष प्रकार के पंजिका मंडल का सायंकाल के समय निर्माण होता था।

पञ्जिकालेखनं कुर्यात्सायं काले निशामुखे[३]।

अठारह अंगुल का एक चौकोर मंडल बनाकर उसके चारों ओर भसिका बनाई जाती थी और तीन अंगुल के अन्तर से एक एक रेखा चारों ओर खींची जाती थी इस प्रकार सभी रेखाओं का विस्तार प्रमाण में तीन अंगुल हो जाता था। तब अर्धचन्द्राकार के पंजिका के कोष्ठ बनाए जाते थे। वे कोष्ठ मिल कर कमल पत्र के आकार के हो जाते थे[४]। इस प्रकार के मंडल के तैयार हो जाने पर उसके कोष्ठों में पीत, हरित, लाल, पाटल, बर्बुर, पांडु, सारंग व्याघ्र के समान वर्ण, कुंकुम, रासभ के सदृश वर्ण, सर्प के उदर के सदृश वर्ण, घृत क्षीर, तथा भल्लातक फल के समान वर्ण भरे जाते थे[५]। श्वेत वर्ण से पूर्ण कोष्ठ को नकुल के सदृश वर्ण वाले कोष्ठ को गोमायु, कलाय बीज की शंका को उत्पन्न करने वाले वर्ण से पूर्ण कोष्ठ को तंडुल कहते थे। इसी प्रकार से वर्णों के अनुसार इन संख्यों (इन्हीं कोष्ठों को संख्य कहते थे) इनके अनेक सुन्दर नाम रखे जाते थे[६]। इन सभी में समान वर्ण एवं आकार वाले पांच-पांच कोष्ठों को मिलाकर धामा, सात समान वर्ण एवं आकार वाले सप्तक को वराटका आदि के नाम से विभूषित करते थे[७]। जो पंजिका के संख्य अधोमुखी बनाए जाते थे इन्हें सप्तक तथा जो गोमुख के आकार के ऊर्ध्व मुख वाले संख्य वराट कहलाते थे[८]। इसी प्रकार ऊर्ध्व तथा अधोमुख वाले सख्य बनाकर दायों का निर्माण होता था।

इन संख्याओं के चार प्रकार के दायों का वर्णन सोमेश्वर ने किया है जो

---

१. कृष्णेनेयं कृता क्रीडा गोपीचित्तप्रमोदिता।
तस्मादत्र स्त्रियो मुख्यास्ताभिः क्रीडेत्समं नृपः।
वही ५।१६।८८९।

२. वही ५।१६।८८९-८९४।
३. वही ५।१६।८९४।
४. वही ५।१६।८९५-८९८।
५. वही ५।१६।८९९-९०१।
६. वही ५।१६।९०१-९०२।
७. वही ५।१६।९०४-९०५।
८. वही ५।१६।९०७-९०८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्रमशः चतुख्य (जिसमें तीन ऊर्ध्व मुखी तथा चार अधोमुखी हो), त्रिक (जब चार संख्यक ऊर्ध्वमुखी तथा तीन अधोमुखी हो) द्विक (जब पांच ऊर्ध्व मुखी तथा दो अधोमुखी हों), तथा बिंदु (जिसमें छः ऊर्ध्वमुखी तथा एक अधोमुखी हों) हैं[1]। इसी प्रकार से अन्य दायों का भी निर्माण होता था। पंजिका क्रीड़ा में जब संख्य का निर्माण होता था तो दो संखयों का ऊर्ध्वमुखी तथा पांच संख्यों को अधोमुखी बनाया जाता था। पांच संख्यों के अधोमुखी होने के कारण ही इस क्रीड़ा का नाम पंजिका पड़ा[2]।

इस क्रीडा का अन्यत्र प्रसंग नहीं प्राप्त होता और न इस प्रकार की खेली जाने वाली किसी क्रीडा का ही प्रसंग प्राप्त होता है। संभवतः यह उनके समय की खेली जाने वाली विशेष प्रकार की क्रीडा थी।

तिमिर क्रीड़ा

तिमिर क्रीड़ा को राजा मनोरंजन-राग की वृद्धि तथा स्त्रियों के चित्त को मुग्ध करने के लिए करता था।[3] इस क्रीड़ा को राजा केवल अपनी प्रेयसियों के साथ ही करता था।[4] इसे वह भू-गृह अथवा गर्भ गृहों के अन्दर करता था।[5] सर्वप्रथम गृह अथवा भू-गृह के रंध्रों तथा गवाक्षों को यत्नपूर्वक ढक दिया जाता था। द्वारों को बंद करके बाहर से उसमें परदा डाल दिया जाता था जिससे सूर्य की रश्मियां एवं प्रकाश किसी ओर से भी भू-गृह के अन्दर प्रवेश न कर सके।[6] इस प्रकार से उनके अन्दर ऐसा अंधेरा कर दिया जाता था कि कुछ भी दिखाई नही पड़े—

तथाविधं तमः कुर्याद्यत्र किंचिन्न लक्ष्यते।[7]

इस भू गृह को चारों ओर से ढककर कोयल पिच्छ, तमाल पत्र, भ्रमर, कोयला, कस्तूरी अथवा कौए के वर्ण के समान अथवा चंद्र-हीन रात्रि के समान अन्धकार पूर्ण बनाया जाता था[8] जिससे राजा के मंत्री आदि कोई भी उसमें होने वाली क्रीड़ा को किसी प्रकार न देख सके।[9]

---

१. वही ५।१६।९१०-९१४। २. वही ५।१६।९१०।
३. वही ५।१७।९३२। ४. वही ५।१७।९३३।
५. भूगृहेणाथगेहे वा भूमत्या गर्भवेश्मसनि। वही ५।१७।९३३।
६. वही ५।१७।१३४-३५। ७. वही ५।१७।९३५।
८. कोकिलापिच्छसंकाशं तमालदलसन्निभम्।
... ...
चन्द्रहीना निशा कांतं कस्तूरीकाकमेचकम्।
... ... वही ५।१७।९३९-४३।
९. वही ५।१७।९३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार भू-गृह के तैयार हो जाने पर राजा सब को हटा कर, चरण चापों को छिपाता हुआ तथा पदस्खलन को रोकता हुआ उस गृह में चला जाता था और तब उसकी आज्ञा से अठारह वर्षीया, हृदय को आनन्द देने वाली सुन्दर श्यामा तरुणियां उस गृह में अलक्षित रूप से प्रवेश कराई जाती थीं।[१] उनके उस तिमिर गृह में प्रवेश कर लेने पर राजा चुपचाप शनैः शनैः उन बालाओं के समीप जाकर किसी को पकड़ लेता था, किसी के केश खींचता था, किसी के शिर पर ताड़न करता था, किसी की टांग खींचता था, किसी के अंग पर खुजली करता था।[२] इस प्रकार से सर्वप्रथम वह चुपचाप चतुरता से सभी बालाओं को तंग करता था।[३]

इसके अतिरिक्त उस तिमिर गृह में पूर्व से ही राजा कुछ रमणियों को स्थापित कर देता था जो राजा के कथन एवं शिक्षा के अनुसार कहीं पर शब्द करती थी तथा क्रीड़ा के लिए आई हुई बालाओं में से किसी को अंधेरे में मारती थीं, किसी को धक्का देती थीं, किसी को बिना नाम से गाली देती थीं[४] जिससे वे क्रुद्ध हो जाती थीं, कोई गाली देती थीं तथा कोई एक दूसरे के केश तथा कंठ पकड़ कर लड़ने लगती थीं।[५] इस प्रकार से उस तिमिर गृह में उत्पन्न हुए कोलाहल को सुनकर शृंगार तथा हास्य रस का पोषक राजा उनके समीप आकर उन्हें हटाता था और प्रसन्न होकर हास्य करता था।[६] उसको हँसता हुआ देखकर वे स्त्रियां अत्यन्त क्रुद्ध होकर व्याकुल हो उठती थीं और राजा को गालीं देने लगती थीं।[७] तब राजा हठ पूर्वक उन कांताओं में से किसी के बालों को खींचता था, किसी के पयोधरों का स्पर्श करता था, किसी को दृढता से पकड़ कर हँसता था।[८] इस प्रकार की क्रिया द्वारा स्मर मंत्रों का प्रयोग उन्हें प्रसन्न करने के हेतु करता था।[९] किन्तु उसके इस हास्य को सुनकर वे स्त्रियां

१. अपसार्य ततस्सर्वान् पदस्खलनवारणम् ।
रामाः श्यामा इव श्यामाः समाहूय महीपतिः ॥
... ...
वही ५।१७ ९४४ ।

२. कासाञ्चित्कुन्तलाकर्षं कासांचिन्मूर्ध्नि ताडनं ॥
... ...
कासांचिद्गण्डकण्डूयं कासांचिदपि तर्जनम् ॥ वही ५।१७।९४६.९४८ ।

३. वही ५।१७।९५० ।
४. वही ५।१७।९५०-५२ ।
५. वही ५।१७।९५३-५५ ।
६. वही ५।१७।९५६-९५७ ।
७. वही ५।१७।९५८ ।
८. वही ५।१७।९५८-५९ ।
९. वही ५।१७।९६० ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और अधिक कोप से मूर्च्छित हो जाती थीं और उसकी इस कामपूर्ण क्रिया से क्रुद्ध होकर पुनः उसे गाली देती थी।[१] ये स्त्रियां बार बार राजा के लिए गाली का प्रयोग करती थी। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलों पर गाली देने का उल्लेख हुआ है। इससे विदित होता है कि महाराज सोमेश्वर के राज्य में स्त्री तथा पुरुष सभी गाली का एक दूसरे के प्रति प्रयोग करते थे, यह संभवतः द्रविड़ परिवार का प्रभाव था।

इस प्रकार के तरुणियों के क्रोध को देखकर राजा पुनः उनके कोप को शान्त करने के लिए तथा उनमें काम की जागृति करने के लिए पृथक्-पृथक् सभी रमणियों का सरलता से स्पर्श करता था।[२] किसी को पकड़कर सहारे खींचता था किसी के कपोलों पर प्रसन्नतापूर्वक अपने हस्त पल्लवों को रखता था।[३] इसके अतिरिक्त किसी की सुवर्ण कांति से विभूषित जघाओं का, किसी के मुक्ताहार से सुशोभित कंठ प्रदेश का, किसी के पक्व बिम्बा फल के सदृश लाल ओष्ठों का, किसी की क्षीण कटि का तथा किसी की नाभि प्रदेश का सरल एवं गम्भीर स्पर्श करता था इस प्रकार कीं सरल एवं काम प्रधान क्रियाओं द्वारा वे कांताये प्रसन्न होती थीं और वे राजा के साथ काम क्रीड़ा करना प्रारम्भ कर देती थी।[४] उन स्त्रियों में से कोई राजा के कंट में हाथ डालती थीं, कोई उसके चरणों को पकड़ती थी तथा कोई उसके समक्ष स्थापित होकर उसे भुजापाश द्वारा बांधती थीं।[६] कोई स्त्री राजा के अंशुक को खींचकर भागने का प्रयत्न करती थी तब राजा उसके केश पकड़ कर प्रेमपूर्वक खींचता था।[७] तत्पश्चात् स्त्रियों को काम से मोहित हुई जानकर राजा उनका आलिंगन करता था।[८]

इसके अतिरिक्त राजा उन स्त्रियों से हट कर तिमिर गृह में यत्र-तत्र ध्वनि करता था और सभी स्त्रियाँ उसी ध्वनि का अनुसरण करती हुई उसे पकड़ने का प्रयत्न करती थीं।[९] कोई स्तम्भ पकड़ती थीं। कोई चारों ओर दौड़ती थी।[१०] इस प्रकार सभी राजा को खोजने का प्रयत्न करती थीं। इसी समय राजा तुरन्त उनमें से किसी के कंठ को पीछे से पकड़ कर उनके हाथों

---

१. वही ५।१७।९६१-९२।   २. वही ५।१७।९६२।
३. वही ५।१७।९६२-९६४।   ४. वही ५।१७।९६५-९६।
५. वही ५।१७।९६७-९६८।   ६. वही ५।१७।९६८-९७१।
७. वही ५।१७।९७२-९७३।   ८. वही ५।१७।९७५-९७६।
९. वही ५।१७।९७७-७८।   १०. वही ५।१७।९७८-९७९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को पकड़ कर मुख को स्पर्श करता था।[१] इस प्रकार क्रीडा समाप्त कर राजा निकलता था।

अन्य किसी ग्रन्थ में इस तिमिर-क्रीड़ा का प्रसंग नहीं प्राप्त होता है, किन्तु इस क्रीड़ा में किए जाने वाले कृत्य प्राचीन भारत में खेली जाने वाली दृङ् मीलन तथा निलयन क्रीड़ा से मिलते जुलते हैं। निलयन क्रीड़ा में सब बालक छुपते थे और एक बालक चोर बनता था वह सबको ढूंढ़ता था। यह क्रीड़ा कृष्ण भगवान सब ग्वाल वालों के साथ मिलकर करते थे। इसका प्रसंग पुराणों में प्राप्त होता है :

एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु।
चक्रुर्निलयनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥[२]

इस क्रीड़ा में ढूढने (निलयन) का कार्य ही विशेष रूप से होता था।

इसी प्रकार दृङ् मीलन क्रीड़ा में भी स्त्रियां परस्पर अचानक एक दूसरे के नेत्रों को बन्द कर क्रीड़ा करती थीं। इसके अनेक सुन्दर प्रसंग प्राप्त होते हैं। शारंगधर पद्धति में इस क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन हुआ है :

नैतस्याः प्रसृतिद्वयेन सरले शक्यये पिधातुं दृशौ
सर्वत्रैव विलोक्यते सुखशशिज्योत्स्नावितानैरितम्।
इत्थं बालतया सखीभिरसकृद्दृङ्मीलनाकेलिषु
व्याषिद्धा रजनीमुखे च नयने स्वे गर्हते कन्यका ॥[३]

सूक्तिमुक्तावली में उस दृङ् मीलन क्रीड़ा का हो निमील क्रीड़ा नाम दिया है :

न पाणिप्रच्छाद्यं नयनयुगमत्यायतमिदं
नितम्बस्यौदार्यत्वरितगतियोगोऽप्यसुलभः।
अतिस्वल्पौ पाणी स्तनभरनिरोधान्नमिलितौ
निमीलक्रीडायां कलुषयसि मुग्धे किमिति नः ॥[४]

सोमेश्वर के समय में खेली जाने वाली क्रीड़ा राजा स्त्रियों के साथ एक स्थान में करता था।

दृङ्मीलन क्रीड़ा में आँख बन्द की जाती थी, किन्तु तिमिर क्रीड़ा अन्धकार पूर्ण स्थान में की जाती थी जहाँ दृङ्मीलन की आवश्यकता न होती थी। इस प्रकार तिमिर क्रीड़ा दृङ् मीलन, निलयन आदि क्रीड़ाओं का मिश्रित रूप

१. वही ५।१७।९८०। २. श्रीमद्० पु० १०।३८।२७।
३. शा० प० ३६४२। ४. सूक्ति० ६६।१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रतीत होता है जिसे राजा अपनी इच्छानुसार स्त्रियों के साथ करता था।

वीर क्रीड़ा

वीर क्रीड़ा का सम्बन्ध विशेषतः प्रेत विद्या एवं सिद्धादि से सम्बन्धित है क्योंकि इस क्रीड़ा के प्रारम्भ में ही सिद्धि प्राप्ति का वर्णन किया है :

सिद्धिकार्ये नरैः पूर्वं क्रीडयन् प्रकटीकृता[1]

जैसा कि क्रीड़ा के नाम से ही स्पष्ट है, यह क्रीड़ा वीर पुरुषों के लिए ही उचित बताई गई है।

तेनासौ वीरपुरुषैः कर्तव्या नेतरैर्नृपैः।[2]

इस क्रीड़ा में बड़े साहस की आवश्यकता है क्योंकि बिना साहस के व्यक्ति की मृत्यु का भी भय इस क्रीड़ा में रहता है। सोमेश्वर एक वीर राजा था और इस कारण वह इतने भयानक कृत्यों में भी मनोरंजन का अनुभव करता था इसी कारण सोमेश्वर ने इन कृत्यों को भी क्रीड़ा के अन्तर्गत बताया है इसी क्रीड़ा को पूर्व में अत्यन्त साहसी विक्रमादित्य शालिवाहन आदि राजाओं तथा कालिदास आदि कवियों ने किया है।[3]

इस क्रीड़ा को करने वाले सभी व्यक्तियों ने महती सिद्धि की प्राप्ति की है :

सिद्धिं च महतीं प्राप्तास्ते सर्वे क्रीडयानया[4]

सोमेश्वर ने इस वीर क्रीड़ा द्वारा प्राप्त हुई अठारह प्रकार की सिद्धियों[5] का वर्णन किया है जो इस प्रकार है :

---

१. मानसोल्लास ५।१८।९८३। २. वही ५।१८।९८४।

३. विक्रमादित्यरूपेण महासाहसिकेन सा।
कृता मुद्गेन कविना वीराणां प्रवरेण च।
दर्शिता वीरनाथेन शालिवाहनभूभृता॥
.........कालिदासेन सेविता।
अन्यैश्च बहुभिर्वीरैः खेलिता पृथिवीतले॥
वही ५।१८।९८४-८६।

४. वही ५।१८।९८७।

५. खड्गो बाणो गदा पात्रं यष्टिर्मुष्टिःपटंखटी॥
योजनेपादुके रक्तं वेझालो मणिग्स······
निधिर्वराटिकाक्षो वागित्यष्टादश सिद्धयः॥
मानसोल्लास ५।१८।९८७.९८८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१. खड्ग—आस्तेय के कर का खड्ग जिसको प्राप्त करने के पश्चात् संग्राम में स्वयं विजय प्राप्त हो जाती है।

२. बाणल—लक्ष्य को वेधकर बाण पुनः हाथ में लौट आवे।

३. हस्तिग अथवा गदा—गदा हाथ में स्थित होते हुए ही वार कर दे।

४. पात्र—हाथ में पात्र लेकर वांछित वस्तु की इच्छा करने पर ही उस वस्तु से पात्र तुरन्त भर जाय।

५. यष्टि—हाथ में छड़ी लेकर किसी वस्तु में छुआ कर मनोवांछित वस्तु बना देना।

६. मुष्टि—जिस वस्तु को मुट्ठी में रखे वही सोना हो जाय।

७. पट—पट द्वारा व्यक्ति को ढक कर उसे लुप्त कर देना।

८. खटी—किसी प्राणी का नाम भूमि पर लिख कर उसी के समान रूप बना देना।

९. योजन—आँखों में अञ्जन लगाकर जिसकी ओर जहाँ तक देखे वही भस्म हो जाय।

१०. पादुका—पैरों में पादुका पहन कर जहाँ चाहे चला जाय।

११. रक्त—हाथ में जो वस्तु पकड़े वही लाल हो जाय।

१२. वेताल—जिसका कार्य बेताल सेवक की भांति करे।

१३. मणि—अपने आप मणि हाथ में आ जाय।

१४. रस—जिससे वृद्धावस्था के चिह्न पके बाल झुर्रियां आदि दूर हो जायँ।

१५. निधि—भूमि के अन्दर के द्रव्य को देख ले।

१६. वराटिका—जिससे सदैव द्यूत में विजय प्राप्त हो।

१७. अक्ष—जिससे द्यूत में वांछित दांव को जान ले।

१८. वाक्—जो निश्चितपूर्वक कह दे वही हो जाय।[1]

इन अनेक प्रकार की सिद्धियों में जो व्यक्ति जिस वस्तु की इच्छा करता था उसीसे सम्बन्धित सिद्धि को प्राप्त करने का प्रयत्न करता था।

इन सिद्धियों को प्राप्त करने का उपाय अत्यन्त कठिन है। इसी कारण सोमेश्वर ने सिद्धि प्राप्ति के उपायों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सिद्धि को प्राप्त करने के लिए साहसी व्यक्ति को शस्त्र, मन्त्र धारण कर धीर एवं पवित्र मन से भूतों के नायक भूतनाथ शंकर का ध्यान कर तथा चण्डीदेवी को अपने हृदय में स्थापित कर डेढ प्रहर रात्रि के व्यतीत हो जाने पर तथा नगर

---

१. मानसोल्लास ५।१८।९८९-१००७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में चारों ओर व्यक्तियों के संचार के रुक जाने पर प्रस्थान करना चाहिए।[1] अपने घर से निकलने पर सावधानी से चौराहों, तिराहों, मन्दिर, विशाल वट तथा पीपल के वृक्ष के नीचे, पुष्करी, सरिता के मध्य से होकर जाय।

चत्वरं त्रिपथं वापि तथा जिनसुरालयम्।
विशालं वटवृक्षं च पिप्पलं च सुविस्तृतम्॥
यथा पुष्करिणीतीरं··· ··· ···
सरितश्च प्रान्तमध्ये च गच्छेन्महामनाः॥[2]

मार्ग में जाते हुए उसे पिशाच, यक्ष, वेताल, राक्षस, प्रेत आदि मिलते थे।[3] उनमें से कोई महाकाय वाला, कोई अंगार के सदृश नेत्र वाला, कोई मुडा, कोई जटिल केश वाला, कोई वक्र, ह्रस्व अथवा दीर्घ मुखवाला, कोई अस्थि, मांस-मज्जा से पूर्ण भयंकर मुखवाला, कोई दीर्घ दाँतों वाला, कोई बड़े उदरवाला, कोई तीन पैरवाला, कोई एक पैरवाला, कोई धूल से पूर्ण, कोई लाल रक्त से सना हुआ, कोई कीचड़ से लिपटा, कोई आंतों की माला धारण किए हुए, कोई लम्बे दांत, कान तथा नाकवाला तथा कोई अत्यन्त विकराल आकृतिवाला होता था।[4] इन सभी को देखकर वह व्यक्ति अत्यन्त प्रसन्न होता था और उनमें से लोभी को दान, द्वारा भूखों को मांस द्वारा, भीषण जीवों को गर्जन द्वारा, दीनों को आश्वासन द्वारा वह उदार व्यक्ति तृप्त करता था।[5] मांस से तृप्त हुआ कोई उसका किंकर बन जाता था, आश्वासन दिया

---

१. शस्त्रमन्त्रविदा कार्या धीरेण शुचिना मता।
सार्द्धयामे गते रात्रेः परे संचारवर्जिते॥
स्मरन् स्मरहरं देवं निशेषग्रहघातकं।
चंडिकां हृदये धृत्वा सर्वपापविनाशिनीम्॥
मानसोल्लास ५।१८।१००८-१०१०।

२. वही ५।१८।१०१२-१०१३। ३. वही ५।१८।१०१४-१०१५।

४. जालामुखान्महाकायान्नंगाराकारलोचनान्॥
··· ··· ···
दीर्घदंष्ट्रान्करालाक्षान्महाजिह्वान्महोदरान्॥
त्रिपादान्नैकपादांश्च तथा दीर्घशिरोधरान्।
··· ··· ···
ईदृग्विधान्विरूपांस्तान्दृष्ट्वा नरो मुदान्वितः॥
मानसोल्लास ५।१८।१०१५-१०२१।

५. वही ५।१८।१०२१-१०२२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुआ उसकी भृत्यता को स्वीकार कर लेता था।[१] इस प्रकार राजा अपने शौर्य एवं साहस द्वारा उन प्रेत, बैतालादिकों को वश में करता था।

इसके पश्चात् वह साहसपूर्वक और आगे बढ़ता था। मार्ग में उसे योगिनियां मिलती थीं। उनकी भी वह आराधना करता था।[२] सोमेश्वर ने क्षेत्रजा, सहजा, समयोद्भूता आदि योगिनियों के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है।[3] ये सभी योगिनियाँ गुप्त तथा प्रकट के भेद से दो प्रकार की होती हैं—

> पिटला क्षेत्रजा वापि सहजा समयोद्भवा ।
> गुप्तप्रकटभेदेन द्विविधास्ता निरूपिताः ॥[४]

गुप्ता योगिनियां पांच प्रकार की होती हैं भार्या, दासी, वेश्या, विधवा तथा तपस्विनी। यह पांचों अपने अपने कर्मों के कारण इस अलक्षित योनि को प्राप्त करती हैं[५]। इनका अस्तित्व सदैव अलक्षित रहता है किन्तु प्रकटा योगिनियां अपने प्रभाव को प्रदर्शित करती हुई चारों ओर घूमती हैं और यह योगमातायें कहलाती हैं[६]। ये योगमातायें डाकिनी, पूतना, शाकिनी तथा रूपिका आदि अनेक प्रकार की होती हैं और अन्य योगिनियों से घिरी हुई अपना अमानुषी रूप प्रदर्शित करती हैं[७]। ये सुवर्ण के सदृश शोभा वाली देवता योगिनियां छत्र चामर से सुशोभित होती हुई सिंहासन पर बैठी हुई राजा को दिखलाई पड़ती थीं[८]। तब राजा उनको अत्यधिक मांस तथा रुधिरादि प्रदान कर उन्हें भक्ति से प्रणाम कर निर्भर होकर मंत्रों द्वारा उनकी स्तुति करता था।

---

१. वही ५।१८।१०२३-१०२४।

२. वही ५।१८।१०२४-१०२५।

३. योगिन्यस्तत्र बहुधा स्यान्निजाक्षेत्रजाभवाः ॥
सहजाः समयोद्भूता गुप्ताश्च प्रगटाऽपि वा ।
वही ५।१८।१०२५-१०२६।

४. वही ५।१८।१०३३।

५. भार्या दासी च वेश्या च विधवा च तपस्विनी ।
स्वकर्मभिरलक्ष्यास्ता गुप्ताः पंचविधाः स्मृताः ॥
वही ५।१८।१०३४।

६. ... ... योगिन्यो योगमातरः। वही ५।१८।१०३५।

७. डाकिन्यः पूतनाश्चैव शाकिन्यो रूपिकास्तथा ।
वही ५।१८।१०३६।

८. वही ५।१८।१०३७-१०३९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पिशितं रुधिरं भूरि देवीनां प्रकल्पयेत्।
भक्त्या प्रणम्य निर्भीतस्तत्तन्मंत्रैर्प्रयुञ्जयेत्॥[1]

इस प्रकार की भक्ति एवं श्रद्धा को देखकर और उसके शौर्य से प्रसन्न होकर देवियां मनोवांछित सिद्धि प्रदान करती थीं[2]। इस प्रकार से योगमाताओं द्वारा अत्यन्त कठिनाई से ईप्सित सिद्धि को प्राप्त कर राजा अपने मन्दिर को लौट आता था और प्रातःकाल उठकर सब कार्यों से निवृत्त होकर अपनी प्राप्त सिद्धि के चमत्कार को अन्य व्यक्तियों के समक्ष दिखाकर प्रसन्न होता था[3]।

सोमेश्वर की वीर क्रीड़ा-प्रेत-विद्या से सम्बन्धित है। इस क्रीड़ा में राजा ने योगिनियों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने का वर्णन किया है। प्राचीन काल से ही यह सिद्धि प्राप्ति की विद्या भारतवर्ष में प्रचलित है और शालिवाहन, विक्रमादित्य आदि राजाओं तथा कालिदास आदि कवियों ने इस सिद्धि को प्राप्त किया था। कालिदास ने काली देवी की उपासना कर विद्या-सम्बन्धी सिद्धि अर्थात् वाक् सिद्धि को प्राप्त किया था। विक्रमादित्य तथा बेतालों के सम्बन्ध में बहुत-सी किंवदन्तियां प्रसिद्ध हैं। उन्हें वेताल सिद्धि प्राप्त थी। इन विक्रमादित्य का अस्तित्व, काल, आदि विवादास्पद है।

यह सिद्धि प्राप्ति की विधि यद्यपि अत्यन्त भयंकर है फिर भी सोमेश्वर ने इसे क्रीड़ा मानकर इसे वीर क्रीड़ा नाम दिया है और इसे साहसी व्यक्ति द्वारा किए जाने का आदेश दिया है क्योंकि निर्बल एवं डरपोक व्यक्ति के करने पर उसके प्राणों के चले जाने का भय रहता था। सोमेश्वर ने इस क्रीड़ा का इतना स्वाभाविक चित्रण किया है, इसके विदित होता है कि उन्हें इन भयभीत एवं घृणित कृत्यों को करने में भी क्रीड़ा करने से उत्पन्न आनन्द के समान ही आनन्द प्राप्त होता था। इसी कारण संभवतः उन्होंने इसे क्रीड़ा के अन्तर्गत माना है।

प्रेम-क्रीड़ा

इस क्रीड़ा को राजा शुद्धान्तःकरण वाली स्त्री के साथ करता था। प्रेम

---

१. वही ५।१८।१०४०।

२ वितरन्ति ततो देव्यः सिद्धिं शौर्येण तोषिताः।
वही ५।१८।१०४१।

३. एवं सिद्धिं समासाद्य नृपो यायात्स्वमंदिरम्।
जनानां दर्शयेत्प्रातः सिद्धिलाभं मुदान्वितः॥
वही ५।१८।१०४२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को सोमेश्वर ने पूर्व जन्म के किए गए पुण्यों का फल माना है[१]। इस विषय में सोमेश्वर ने अनेक प्रसंग दिए हैं। उदाहरणार्थ अभ्यास से विद्या, योग से ज्ञान, पराक्रम से ओज, साहस से सिद्धि, रसायन से आयु, क्षमा से सेवा, मित्र से प्रियवाक्य, विवाह से स्त्री, स्त्री से पुत्र, दीप से प्रकाश, आभूषण से शोभा, अग्नि से भोजन, खान से मणि, सस्य से धान्य तथा उद्यान से फलों की प्राप्ति होती है किन्तु किसी का शुद्ध प्रेम किसी भी उपाय द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता।[२] इसी कारण पुण्यहीन व्यक्ति शुद्ध प्रेम को नहीं प्राप्त कर सकते :

पुण्यहीना नराः ये तु प्रेम किं प्राप्नुवन्ति ते।
विना सुकृतसंबंधं निधानं केन लभ्यते॥[३]

इसी प्रकरण में सोमेश्वर ने आभिमानिका, अभ्यासिका, पालिका तथा वैषयिका प्रीतियों का वर्णन किया है।[४] पुत्र, मित्र, भृत्यादि के साथ होनेवाली प्रीति अभिमानिका, कलत्र की प्रीति को अभ्यासिका, स्त्रियों से एकदेशीया प्रीति को प्रत्यपालिका तथा रूप-दर्शन मात्र से ही उत्पन्न हो जाने वाली प्रीति को वैषयिकी प्रीति कहते हैं।[५] प्रीति के उत्पन्न हो जाने पर जब रस का प्रादुर्भाव होता है तो ऐसी प्रीति वास्तविक प्रेम कहलाता है :

प्रीतौ विषयजातायां किं रसा यत्र जायते।
सर्वोत्कर्षवती तस्मात्सा प्रीतिः प्रेम कथ्यते॥[६]

अन्य श्रेष्ठ स्त्रियों से शुद्ध प्रेम महापुण्य एवं पूर्व जन्म के किए गए शुभ संचित कर्मों के द्वारा होता है।[७]

---

१. विना पुराकृतैः पुण्यैः प्रेमान्यान्न लभ्यते।
वही ५।१९।१०५४।

२. अभ्यासाल्लभते विद्यां ज्ञानं योगेन लभ्यते।
व्यवसायेन धनं लभ्यं धर्मो लभ्यो दयादिषु॥
... ...
... ...
वही ५।१८।१०४४-१०५४।

३. वही ५।१९।१०८९।

४. वही ५।१६।१०५५।

५. वही ५।१९।१०५६-१०६२।

६. वही ५।१९।१०६३।

७. वही ५।१६।१०६५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह प्रसंग इस बात को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है कि सोमेश्वर कर्म-सिद्धान्त के पक्षपाती हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने कर्म-सिद्धान्त के विषय में ऐसा कहा है :

दुर्निवारः कर्मविपाकस्तत्संयोगी वित्तजः।
अयोगेपि यदादत्ते प्रेमाणं दग्धमन्मथः॥[1]

इस स्वाभाविक प्रेम के विषय में सोमेश्वर ने अनेक प्रसंग देकर प्रेम को पूर्व-जन्म का पुण्य माना है। सर्प यद्यपि अत्यन्त भयंकर होता है किन्तु उसके मस्तक पर मणि रहती है। सब को सुख देने वाली ज्योत्स्ना कमल को नहीं रुचती उसी प्रकार प्रेम भी पूर्व जन्म के अनुसार सबके साथ नहीं होता।[2] चिर परिचिता स्त्री जो किसी व्यक्ति को नहीं अच्छी लगती वह पूर्व के कर्मों के अनुसार किसी लग्न के योग से प्राणवल्लभा बन जाती है।[3] यह उत्पन्न हुआ प्रेम ईर्ष्या तथा मुक्ति इन दो प्रकार के उपायों से प्राप्त होता है।[4]

प्रेम उत्पन्न हो जाने पर वह निर्मल चंद्र, दक्षिण मलयानिल, भूषण, रत्न चित्र विचित्र वस्त्र, माल्यों की सुगन्धि, दिव्य गंध विलेपन, कर्पूर-मिश्रित ताम्बूल, उद्यान, क्रीड़ा, मनोहर वाद्य, सुन्दर स्वच्छ पुता हुआ श्वेत गृह, सुखदायिनी शय्या, रम्य भोजन, मधुर गीत, वीणा, वेणु विनोद, श्रृंगार पूर्ण काव्य, संतोष एवं काम को उत्पन्न करने वाली इष्ट कथा, नाना हास्यों से पूर्ण करने वाली गोष्ठी, विशाल तथा सुन्दर भ्रू वाली तथा रूपसंपन्ना तरुणी तथा कौशल आदि उपकरणों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है।[5] सोमेश्वर ईर्ष्या काम,

---

१. वही ५।१९।१०६६।

२. वही ५।१९।१०६७-१०७३।

३. चिरा परिचिता कान्ता यस्मै पूर्वं न रोचते।
केनापि लग्नयोगेन सैव स्यात्प्राणवल्लभा॥ वही ५।१९।१०७४।

४. वही ५।१९।१०७६,१०७७।

५. वसते निर्मलश्चन्द्रो दक्षिणो मलयानिलः।
भूषणानि सुरत्नानि विचित्राण्यम्बराणि च॥

... ...

एते सुखावहाः सर्वे पदार्थाः परमार्थतः।
प्रेमप्रकरणायैव निर्मिताः परमेष्ठिना॥

मानसोल्लास १०७९ १०८६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अभिलाषा आदि प्रेम-प्राप्ति के उपाय बतलाए हैं। इन्हीं में से किसी आधार पर प्रेम उत्पन्न होता है।[1]

जिस प्रकार से भूखे को भोजन, तृषित को जल, ग्रीष्म में शीतल तथा शीत में उष्ण जल रुचिकर होता है और व्यक्ति को सन्तोष प्रदान करता है उसी प्रकार प्रेम से भूखे व्यक्ति को तृप्त करने के लिए श्रृंगार एवं प्रेम के अनेक वाक्य, उपकरण तथा उपायादि की शिक्षा लेनी चाहिए।[2] अन्तःपुर की जितेन्द्रिय अध्यक्षा को बुलाकर राजा उससे प्रेम-वृद्धि के उपाय पूछता था :

दक्षांतःपुराध्यक्षा सावधाना जितेन्द्रिया।
आहूय शिक्षयेद्भूभृदुपायाः प्रेमवृद्धये ॥[3]

प्रेम वर्धक उपायों की शिक्षा ग्रहण करने पर राजा अपनी प्रेयसी के गृह जाता था प्रेयसी के द्वार पर स्थिति अवरोधनाध्यक्ष को राजा अनेक भूषण वस्त्र आदि देकर अत्यधिक धन देता था और अनेक चाटु वाक्य कहता था। इस प्रकार राजा पिशुन की शिक्षा प्राप्त करता था।[4]

अपनी प्रेयसी के समक्ष पहुँच कर राजा उससे अनेक प्रेम भरे चाटु वाक्य कहने का अभ्यास करता था उदाहरणार्थ तुम्हारे ऐसी सुन्दरी एवं गुणसंपन्ना स्त्री को पाकर मुझे कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह गया। तुम सदैव मेरे हृदय में विद्यमान रहती हो। तुम्हें यदि कुछ हो जायेगा तो मैं जीवित नहीं रह सकता आदि।[5]

अन्त में राजा ताम्बूलधारिका तथा अन्य स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में जाता था और स्त्रियों को प्रिय लगने वाले अनेक प्रकार के वचनों द्वारा वहाँ की स्त्रियों को संतुष्ट कर[6] राजा अपनी वल्लभा के घर जाता था :

एवमादिभिरन्यैश्च चारुवाक्यैर्मनोहरैः।
कामिनीं सांत्वयित्वा तां वल्लभाया गृहं व्रजेत् ॥[7]

---

१. वही ५।१९।१०९०-९२।
२. वही ५।१९।१०९३-१०९५।
३. वही ५।१९।१०९६, १०९७।
४. पिशुनं शिक्षयेदेवं यदत्रंतु महीभुजा।
वही ५।१९।११००।
५. वही ५।१९।११०७, १११०।
६. वही ५।१९।११११-११२२।
७. वही ५।१९।११२४-११२५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वहां पर वल्लभा की दूती उस स्त्री के विरह का दुःखद वर्णन करती थी जिसको सुनकर राजा शीघ्र ही अपनी वल्लभा से मिल कर उसके साथ मनोवांछित क्रीड़ा कर उसे संतुष्ट करता था[1]। अपनी वल्लभा को संतुष्ट करके उसको वहीं स्थापित कर राजा पुनः अपनी प्रिया के घर जाता था :

तां प्रस्थाप्य ततो गेहं प्रियासद्मं समाविशेत्।[2]

वह प्रिया आखों में अश्रु भरे राजा के आने की प्रतीक्षा गवाक्ष के समीप बैठकर करती रहती थी[3]। अपने नेत्रों से मुक्ता के सदृश अश्रु बहाती थी जिससे उसका कज्जल कपोलों पर आ जाता था।

मुंचति वाष्पसलिलं मुक्ताफलसमप्रभम्।[4]

... ...

विरह व्यथा से संतप्त होने के कारण कदली दल का पंखा उसके ऊपर ताप नाश करने के लिए चलाया जाता था[5]। इस प्रकार की उसकी संताप पूर्ण दशा को सुनकर उसकी सखी उससे कारण पूछती थी तब वह इस प्रकार कहती थी :

न मेपराधलेशोस्ति वल्लभः कुपितो मृषा।

... ...

अर्थात् मेरा तो कुछ भी अपराध नहीं फिर भी देव अप्रसन्न हो गए। अपनी देवी को दुःखी देखकर सखी अथवा दूती राजा के समक्ष जाकर उसकी अवस्था का वर्णन करती थी[7]। उसको सुनकर राजा शीघ्र ही आने का वचन देता था। वहां से आकर प्रसन्न मन वाली होकर वह अपनी देवी को समझाती थी कि तुम मत रो तुम्हारे प्राणवल्लभ शीघ्र ही आवेंगे[8]। राजा भी शीघ्र ही अपने विरह से व्याकुल प्रिया से, मिलने जाता था और उसके सामने पहुँच कर राजा अपनी प्रिया से प्रेम पूर्वक मिलता था[9]। अपनी प्रिया के नेत्र जल से सिंचित राजा राज्यभिषेक के समय के जल से सिंचित हुए के सदृश उस काम-साम्राज्य में सुशोभित होता था।

---

१. वही ५।१९।११२५-३६।
२. वही ५।१९।११३९।
३. वही ५।१९।११३९,११४०।
४. वही ५।१९।११४१।
५. वही ५।१९।११४७।
६. वही ५।१९।११५४।
७. वही ५।१९।११५१-११८९।
८. वही ५।१९।११९०।
९. वही ५।१९।११९९,१२००।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रेयसीनेत्रतोयेन सिक्ताङ्गो महीपतिः ॥
अभिषिक्त इवाभाति कामसाम्राज्यसंसदि ।
भुजाभ्यां पीडनाद्राजा प्रेयसीचित्तरंजकः ॥[1]

तत्पश्चात् वह अपनी प्रिया के साथ प्रेम-पूर्ण वार्तालाप तथा क्रीड़ा करके दिव्य वस्त्राभूषण से, उसे सुसज्जित करवाकर अपने मंदिर को आ जाता था।

इस प्रेम क्रीड़ा के अन्तर्गत सोमेश्वर ने राजा का अपनी प्रेयसी के प्रति प्रेम का प्रदर्शन किया है। किस प्रकार से राजा की प्रेयसी प्रेमी में विह्वल रहती है, उसकी दूती आकर राजा से उसकी विरह-व्यथा का वर्णन करती है। तब राजा उसके समीप प्रेम-क्रीड़ा के निमित्त जाता है।

नायक के प्रति नायिका की सखी तथा दूती के वचनों के कथन का वर्णन भारतीय साहित्य में अधिकांशतः प्राप्त होता है। जलदावली को घिरा हुआ देखकर नायिका अपनी सखी से कहती है :

आयाता जलदावली सरभसं विद्युत्समालिंगिता
शैलानां परितः सशब्दमहियुक्श्रेणी नरीनृत्यति ।
एवं सत्यपि हंत संप्रति पतिर्देशान्तरं प्रस्थित-
स्तद्दुःखं विनिवेद्यतां सखि कथं कस्याधुनाग्रे मया ॥[2]

इसके अतिरिक्त नायक के विरह से व्याकुल होकर नायिका अपनी सखी को नायक के प्रति निम्न प्रकार के वचनों को कहलाकर भेजती है :

मा याहीत्यपमंगलं व्रज किल स्नेहेन शून्यं वच-
स्तिष्ठेति प्रभुता यथारुचिकुरुष्वैषाप्युदासीनता ।
नो जीवामि विना त्वयेति वचनं संभाव्यते वा न वा
तन्मां शिक्षय नाथ यत्समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते ॥[3]

रति-क्रीड़ा

रति क्रीड़ा के अन्तर्गत सोमेश्वर ने विशेष रूप से राजा की गणिका सम्बन्धी रति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। राजा नगर की श्रेष्ठ वेश्याओं द्वारा भी अपने हृदय के कामोद्गार को शान्त करता था।[4] इस प्रकरण में राजा

---

१. वही ५।१९।१२०१-१२०२।
२. सुभाषितरत्नभांडारम् ३३०।२।
३. सुभाषितावलि १०४९।
४. मानसोल्लास ५।२०।१२०६-१२१३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के द्वारा गणिका पसन्द किये जाने, उसके गृह जाने तथा उसके साथ रति करने आदि विषयों का वर्णन हुआ है।

जब राजा रति की इच्छा करता था तो दिन में श्रेष्ठ हाथी पर चढ़कर वेश्याओं के स्थान में जाता था। उस समय राजा के साथ अनेक शस्त्रों को के धारण करने वाले सेवक, मार्ग के व्यक्तियों से 'हटो हटो' कहने वाले अनेक व्यक्ति तथा अनेक वाद्यों को धारण किए हुए व्यक्ति रहते थे। इसके साथ ही साथ अनेक व्यक्ति राजा के पीछे तथा आगे चलते थे। राजा का प्रतिहारी भी जनवारण कर्म करता हुआ आगे चलता था।[1] वेश्याओं के निश्चित स्थान पर राजा के पहुँचने पर उन सब व्यक्तियों तथा प्रतिहारियों के कोलाहल तथा गज घंटा, शंख, काहल आदि वाद्यों को सुनकर कुवेर से भी स्पर्धा करने वाले ऐश्वर्यवान् राजा के दर्शन करने के लिए विकसित पद्म के सदृश मुख, नीले कमल के सदृश नेत्र, शिरीष पुष्प के सदृश मृदु बाहु वाली सुन्दर श्रृंगार से सुशोभित वारिविलासिनियां बाहर निकलती थीं और राजा को देखकर स्मरातुर हो जाती थीं।[1] उन वारिविलासिनियों में कोई अर्धचंद्र के सदृश तिलक, कोई चरणों में कांचन नूपुर, कोई वाम हस्त में पाश तथा दक्षिण हाथ में माला धारण किए रहती थीं। इन सभी स्वागत के चिह्नों को धारण किए हुए निर्निमेष लोचनों द्वारा वे राजा का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती थीं।[2]

राजा उन सुधा–रश्मि के सदृश मुख कांति, दाडिम बीज के सदृश दंत पंक्ति, मृग के सदृश चंचल नेत्रों, कामदेव के बाण के सदृश भ्रूलता, रंभा स्तम्भ के सदृश जघनस्थल, कोकनद की छाया के सदृश सुन्दर पदयुग्म से सुशोभित अनेक युवतियों को देखता था।[3] उन वारिविलासियों में राजा जिसको चाहता था उसके समीप अपने सचिवों को भेज देता था और स्वयं अपने राजमंदिर में लौट आता था।[4] उसी दिन सूर्य के अस्त हो जाने पर संध्या समय राजा प्रफुल्ल मन होकर अपने प्रकृत जनों को बुलाकर सुगन्धिपूर्ण जल द्वारा

---

१. वही ५।२०।१२१४-१२१९।

२. वही ६।२०।१२२०-१२२५।

३. काचित्पूर्णसुधारश्मिबिंबकांतिमुखद्युतिः।
दाडिमबीजसंकाशंदंतपंक्तिविराजिता ॥
... ...
काचित्कोकनदाभा[illegible]शोभमाना पदद्वया ॥
वही ५।२०।१२२६-१२२९।

४. वही ५।२०।१२३०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपना शरीर धुलवा कर अनेक प्रकार के सुगन्धित चूर्ण से बने हुए लेपों को अपने शरीर पर मलवाता था।[१] तत्पश्चात् वह माष चूर्ण का बना हुआ पदार्थ, सैंधव नमक इलायची आदि से युक्त गोधूम चूर्ण की रोटी, घृत, लवणादि मिश्रित पकाया हुआ मत्स्य, वराह आदि का मांस, दुग्ध में बना हुआ कूष्मांड फल का मीठा शर्करा युक्त पदार्थ (हलुवा) तथा दुग्ध में पकाया हुआ धात्री फल, आदि पौष्टिक पदार्थों का भक्षण करता था।[२] भोजन के पश्चात् स्वाद युक्त स्निग्ध तथा मधुर भैंस के दुग्ध को घृत तथा शक्कर मिला कर काम की वृद्धि करने के हेतु पीता था[३] और शुंडी चूर्ण से अपने दांतों को साफ करता था और सुगन्धित जल से हाथ धोकर हाथों में चन्दन का लेप करता था।[४]

अपने इन कृत्यों को समाप्त कर लेने पर राजा अपने उन मंत्रियों को बुलाकर पूछता था जिनको उसने वेश्या के पास भेजा था।[५] वे आकर बतलाते थे कि वह राजा की प्रतीक्षा में रत है[६] अपने मंत्रियों के 'तथापि मन्मथाक्रान्ता श्रृंगारं कर्तुमुद्यता'[७] इन वचनों को सुनकर राजा भांडागारिक को बुलवा कर श्रृंगार सम्बन्धी प्रसाधनों को उपस्थित करने का आदेश देता था। राजा अपने सभी अंगों में कस्तूरी चंदन आदि का सुगन्धित लेप कर ललाट, बाहुशिखर, स्कन्ध तथा वक्षस्थल पर नाना प्रकार के सुन्दर तिलकों को बना कर विचित्र दिव्य वस्त्रों को पहनकर, सुन्दर चमकते हुए सोने के आभूषणों को धारण कर ताम्बूल चर्वण कर, कर्पूर से शरीर को सुगन्धित कर, पुष्प मालाओं को धारण कर यत्न पूर्वक अपना श्रृंगार करता था।[८] श्रृगार करने के पश्चात राजा काल के उपयुक्त भृत्यों, खड्गचर्मधारी, स्वामिभक्त, कृतज्ञ, विश्वासपात्र भट, वस्त्र

---

१. वहीं ५।२०।१२३०-१२३२।

२. वही ५।२०।१२३६-१६४१।

३. माहिषं च तथा दुग्धं शर्कराघृतसंयुतम्।
आनुपानं पिबेद्राजा कामं वीर्यविवृद्धये॥
वही ५।२०।१२४५।

४. वही ५।२०।१२४६,१३४८।

५. प्रेषितान्नर्मसचिवान्पृच्छदाहूयभुपतिः॥
वही ५।२०।१२४९।

६. मया संभाविता कांता नृपागमनमिच्छति।
वहीं ५।२०।१२५१।

७. वही ५।२०।१२५३।

८. वही ५।२०।१२५५-१२६०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ग्राहिक (जो पीछे राजा का वस्त्र पकड़ कर चलता था), स्वर्णग्राही, ताम्बूल-धारक, परिहास में चतुर व्यक्तियों को साथ लेकर वेश्या के गृह की ओर जाता था और अपने अनेक रक्षकों को यत्र-तत्र नियुक्त कर देता था।[1]

तत्पश्चात् राजा अत्यन्त सुसज्जित, गोपुर तथा अटारियों से युक्त धुले हुए धूप से सुगंधित, नाना प्रकार के भव्य-तुंग श्रृंगों से युक्त गृह की ओर देखता हुआ लीलापूर्वक जाता था[2] और अनेक प्रकार के हाव भाव, नृत्य, गीत आदि गाती हुई, तिलक लगाती हुई, राजा की प्रतीक्षा करती हुई राजा के नाम से अंकित गाथा को पुनः पुनः गाती हुई मनोवांछित नायिका के गृह के समीप पहुँचता था[3] और शशि-प्रभा के समान उज्जवल तोरण युक्त, सुन्दर वेश्या के वाट में राजा प्रवेश करता था[4]। वेश्या वाट के आगे वेश्या के अनेक सेवक, क्षुरिका, असिधेनु, बाण, भाला, दंड, शंख आदि धारण किए हुए रक्षा के लिए नियुक्त रहते थे[5]। इसके अतिरिक्त कोई सुभट हेम की श्रृंखला धारण किए, कोई तलवार बांधे, कोई घोड़े पर चढ़कर, कोई आभूषणों से सुसज्जित होकर घूमते थे[6]। इस प्रकार से वेश्या के वाट में सात आठ सेवक उसके गृह की रक्षा के हेतु घूमते थे[7]।

इन सेवकों के अतिरिक्त ऊँची ग्रीवा वाले, दर्पयुक्त कर्णाट देश के युवा, श्रीखंड का तिलक लगाए द्रविड़ देश का विट, सुन्दर असिधेनु को धारण किये, कुकुंम तिलक लगाए लाट देश का, आजानुलम्बी कुंचुक को धारण किए हुए महाराष्ट्र देश का विट, मंजिष्ठ वसन पहने हुए गुर्जर देश के विट वेश्या के गृह के द्वार पर नियुक्त रहते थे[8]। इन सभी देशों के विटों की सुन्दर वेश भूषा का विस्तारपूर्वक वर्णन सोमेश्वर ने किया है। इसके अतिरिक्त, परिवाट[9] ब्राह्मण,[10] विशाग,[11] प्रांगण,[12] चाटक[13] आदि विभिन्न प्रकार के विटों का उल्लेख किया है और उनकी वेशभूषा एवं कार्यों पर भी प्रकाश डाला है।

---

१. वही ५।२०।१२६१-१२६९। २. वही ५।२०।१२७०-१२७३।
३. वही ५।२०।१२७६-१२८५।
४. वही ५।२०।१२८६-१२९३।
५. वही ५।२०।१२९५-१३००। ६. वही ५।२०।१३०१-१३०६।
७. वही ५।२०।१३०७।
८ वही ५।२०।१३०८-१३३०। ९. वही ५।२०।१३३१-१३३३।
१०. वही ५।२०।१३३३-१३३५।
११. वही ५।२०।१३३५-१३३६।
१३ वही ५।२०।१३३७-१३३८। १४. वही ५।२०।१३३८-१३४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन विटों के अतिरिक्त कुछ कुट्टिनियां भी वेश्या के गृह के द्वार पर उपस्थित रहती थीं, जो अपनी नाट्यमयी गति तथा अनेक प्रकार के तीक्ष्ण वाक्यों द्वारा राजा को अंदर जाने से रोकती थीं। ये कुट्टिनियां बड़ी ही स्वार्थिनी होती थीं और सदैव आए हुए व्यक्ति से अधिकाधिक द्रव्य मांगती थी।

सर्वदा स्वार्थनिरता सर्वदा वंचनोद्यता ॥[१]

यह द्रव्य के लोभ में सब कुछ कर सकती थीं[२]। राजा के समक्ष ये अनेक प्रकार के हाव-भाव दिखाती थीं और निश्चित धन लेकर तब उसे अन्दर जाने देती थीं[3]। उस धन के अतिरिक्त राजा और भी धन देने का वचन देता था।

ततोपि प्रचुरं वित्तं दास्यामि तव वांछितम् ॥[४]

द्वार के सभी लोगों को संतुष्ट कर देने पर वेश्या के सेवक राजा के समक्ष आकर उसके अंग-प्रत्यंगों की प्रशंसा करते थे[५] जिसको सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होता था,[६] वे सेवक राजा को ताम्बूलादि देकर उसे सुन्दर तोरण से सुशोभित वाट द्वारा अंदर लाते थे और राजा दंतिदंत-निर्मित पलंग पर बैठ जाता था। राजा के उचित रूप से बैठ जाने पर वेश्या सम्पूर्ण श्रृंगार से सुसज्जित होकर राजा के समक्ष आती थी :

ततोपविष्टपर्यंके दंतिदंतविनिर्मिते ।
ततः पण्यांगना कांता समायाति नृपान्तिकम् ॥[७]

राजा का श्रम दूर करने के हेतु सुगन्धित जल लेकर अपने अशोक पल्लव के सदृश सुन्दर हाथों से उसका पाद प्रक्षालन करती थी[८] और लज्जापूर्वक राजा

---

१. वही ५।२०।१३८०-१३९०।
२. द्रव्याहरणलोभेन किं किं न कुरुते हि सा।
वही ५।२०।१३९२
३. वही ५।२०।१३९३-१३९५।
४. वही ५।२०।१३९६।
५. वही ५।२०।१३९९-१४०४।
६. इति विज्ञापितो भृत्यैः भूमिपालः पृथक् पृथक्।
... ...
भृत्यानां वचनं श्रुत्वा प्रमोदं परमाप्नुयात् ॥
वही ५।२०।१४०५-१४०६।
७. वही ५।२०।१४१०।
८. वही ५।२०।१४११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के समीप ही रुचिर एवं रम्य आसन पर बैठकर राजा को सुगन्धित कर्पूर-मिश्रित ताम्बूल प्रदान करती थी।[1] राजा प्रसन्नता से उस ताम्बूल को ग्रहण कर उसके संस्पर्श से प्रसन्न होकर उसमें काम की वृद्धि के लिए उसका हाथ छूता था। कर पीड़न करते समय राजा चाटु वाक्यों का प्रयोग करता हुआ धीरे-धीरे उसके समीप जाता था और उसके बिंबाफल के सदृश रक्त ओष्ठों का स्पर्श कर आलिंगन द्वारा उसके कुचद्वय को पीडिंत करता था। इसके अतिरिक्त राजा उसके जंघा स्थलों का भी शनैः शनैः स्पर्श करता था और उसके लज्जा निवारण के हेतु उसकी नीवीका स्पर्श कर नीवीमोचन करता था और अपने हस्त पल्लवों से उसके पृष्ठ भाग पर सरल प्रहार करता था।[2] इस प्रकार उसमें संभोग की लालसा उत्पन्न कर उसके हृदय को आनन्दित करने के लिए राजा सुखपूर्वक संभोग करता था।[3] रति क्रीड़ा समाप्त कर चुकने के पश्चात् राजा उससे अत्यन्त मधुर वार्तालाप करता था। तत्पश्चात् उसे पर्याप्त मात्रा में कांचन, भूषण, तथा वस्त्रादि देकर उसका स्पर्श कर प्रसन्न होकर राजमन्दिर को चला आता था। लौटते समय भृत्य वर्ग को भी खूब धन देता था।[4] सोमेश्वर ने राजा के लिए वेश्याओं की जाति तथा स्वभाव को जान कर देश काल के अनुसार रति करने का आदेश दिया है।

... ...

विज्ञाय देश कालौ च रतिं कुर्वीत भूपतिः॥[5]

सोमेश्वर ने अबला, कामिनी, मुग्धा, तथा विदग्धा इन चार प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख किया है। राजा को उन्हें भली भाँति जानकर उसी के अनुसार रति क्रीड़ा करनी चाहिए:

अबला कामिनी मुग्धा विदग्धा चेति नायिकाः।
ज्ञात्वा तदनुसारेण संभोगं समुपाचरेत्॥[6]

---

१. वही ५।२०।१४१३।
२. वही ५।२०।१४१४-१४२३।
३. संभोगलालसां कृत्वा तस्याश्चित्तानुरंजनम्।
कुर्वीत सुखसभोगं नानाकारणबंधुरम्॥
वही ५।२०।१४२४।
४. वही ५।२०।१४२५-१४३३।
५. वही ५।२०।१४३४।
६. वही ५।२०।१४३५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन चारों ही नायिकाओं की कफ, पित्त तथा वात के अनुसार द्रुत, मध्यम तथा विलम्बित प्रकृति को समझकर राजा को रति क्रीड़ा करनी चाहिए।[१] इन सभी के साथ विभिन्न-विभिन्न प्रकार से संभोग करने का वर्णन सोमेश्वर ने किया है।[२] इस रति क्रीड़ा को सोमेश्वर ने उद्यान, शाद्वलस्थान, जन रहित प्रांगण, कदली पत्र की छाया, कुसुम से पूर्ण स्थान तथा हर्म्य में करने का आदेश दिया है।[३]

रति-क्रीड़ा को करने के लिए सोमेश्वर ने स्त्रियों की जातियों के अनुसार राजा के लिए अनेक प्रकार की रति-सम्बन्धी चेष्टाओं का वर्णन किया है। राजा रति क्रीड़ा करते समय प्रिय वाक्य, पीड़न, रदच्छेद आदि का प्रयोग करता था[४], किन्तु पद्मिनी स्त्री के साथ रति करते समय राजा नखच्छेद, दंश, नखक्षत चेष्टाओं का प्रयोग न करता था :

पद्मिन्यां सुरतं कुर्याज्जले वा तापसंन्निधौ ।
गृहे वा मणिदीपाद्यै धनकांचनमंचके ॥
... ...
नखच्छेदविनिर्मुक्तं दशनक्षतवर्जितम् ॥[५]

मृगी स्त्री के साथ राजा कुचाकर्षण, ताड़न, नखछेदन, तर्जन चाटुवाक्य तथा दशनच्छेद का प्रयोग करता था।[६] चित्रिणी स्त्री के साथ राजा विविध शय्या का सेवन कर उपभोग करता था :

---

१. ५।२०।१४३६।

२. वही ५।२०।१४४३-१४४५।

३. उद्याने शाद्वलस्थाने प्रांगण जनवर्जिते।
... ...
... ...
वही ५।२०।१४४६-१४४८।

४. वही ५।२०।१४४८,१४४९।

५. मानसोल्लास ५।२०।१५०,१४५१।

६. कुरंगजातियुक्तायामंगनाम्वारतिं चरेत्।
कुचाकर्षणसंयुक्त गुरु श्लेषसमन्वितं ॥
उपेतं ताडनं क्वापि क्वापि नखरलक्षणो।
तर्जनैश्चाटुभिः क्वापि काचिद्दशनखंडनैः ॥
वही ५।२०।१४५२.१४५३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चित्रिण्यां चित्तहारिण्यां चित्रं रतमाचरेत्।
चित्रगेहेषु रम्येषु तस्याश्चित्तानुरंजनम्॥
भूगृहे प्रासते रम्ये तथा च पवकांतरे
विशाले मुखशाले वा शय्यासु विविधासु च ॥[1]

संकीर्ण जाति वाली स्त्रियों के साथ राजा उन्हीं के अनुरूप रति क्रीड़ा करे।[2]

इन सभी जाति की स्त्रियों की प्रकृतियों के अनुसार रति क्रीड़ा करते समय राजा समय का भी ध्यान रखता था। कफ प्रधान स्त्रियों के साथ रात्रि में, पित्त-प्रधान स्त्रियों के साथ अधिक रात्रि जाने पर तथा वात प्रधान स्त्रियों के साथ रात्रि में रति क्रीड़ा करता था।[3]

रति के समय के पश्चात् सोमेश्वर ने सत्त्व के अनुसार देव, गंधर्व तथा यक्ष इन तीन प्रकार के सत्त्व वाली स्त्रियों के साथ रति करने के स्थान का वर्णन किया है। देवसत्व वाली स्त्रियों के साथ राजा, पवित्र सुन्दर एवं मनोहर स्थान में, गंधर्व सत्त्व वाली स्त्रियों के साथ गंध युक्त, सुगन्धित, गति वाद्य से गुंजित स्थान में तथा यक्ष सत्त्व वाली स्त्रियों के साथ विलेपनादि करके गृह, भूगृह अथवा वृक्षादि के नीचे राजा रति क्रीड़ा करे।[4]

इस प्रकार से राजा स्त्रियों की प्रकृति, जाति, स्वभाव, लक्षण तथा सत्व का विचार करके उसी के अनुसार स्त्रियों के साथ रति क्रीड़ा करता था।

सोमेश्वर के रति सम्बन्धी प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि यह क्रीड़ा विशेष रूप से राजा वेश्या के साथ ही करता था। वेश्याओं का प्राचीन भारतीय समाज में एक विशेष स्थान रहा है। प्रत्येक प्रकार की गीत नृत्यादि सम्बन्धी गोष्ठियों में इनको बुलाना एक आकर्षक एवं प्रधान कार्य समझा जाता था। नाट्यशास्त्र में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि वेश्याओं में जो सबसे अधिक गुणवती एवं सभी कलाओं में निपुण होती थी उसी को गणिका के नाम से संबोधित किया जाता था। नाट्य शास्त्र में गणिका के गुणों पर निम्न प्रकार से प्रकाश डाला गया है—

---

१. वही ५।२०।१४५४,१४५५।

२. वही ५।२०।१४५६।

३. रजन्यादि कफाढ्यायाः सपित्तायामहर्निशि।
... ...
वही ५।२०।१४५७।

४. वही ५।२०।१४५८.१४६१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आभिरभ्युच्छ्रिता वेश्या शीलरूपगुणान्विता ।
लभते गणिका शब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥
पूजिता च सदा राज्ञा गुणवद्भिश्च संस्तुता ।
प्रार्थनीयाभिगम्या च लक्ष्यभूता च जायते ॥[१]

राजा इन गणिकाओं का बड़ा आदर करता था। पुराणों में भी गणिकाओं के प्रसंग प्राप्त होते हैं। उस समय की गणिकायें भी अत्यन्त योग्य, चतुर, एवं सभी कलाओं में दक्ष तथा अत्यन्त सुन्दर होती थीं, किन्तु उनका वेश्या ही नाम दिया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण में पिंगला नामकी एक वेश्या का प्रसंग प्राप्त होता है—

पिंगला नाम वेश्याऽऽसीद् विदेहनगरे पुरा ।
तस्या मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनन्दन ॥[२]

बुद्ध कालीन समय में गणिका को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। कुमारी गोपा को गणिका के समान ही निपुण बतलाया गया है—

शास्त्रेण विधिज्ञकुशलता यथैव……[३]

अतः बुद्ध काल में गणिका 'गण' अथवा 'राष्ट्र' की सम्पत्ति मानी जाती थी। बौद्ध साहित्य में बिम्बसार द्वारा अपनी राजधानी में ही गणिकाओं की संस्था बनवाने का प्रसंग प्राप्त होता है।[४]

वात्स्यायन के समय में गणिका का समाज में बड़ा सम्मान होता था। राजा के दरबार में भी गणिका का बड़ा आदर था।[५] वात्स्यायन ने एक परिग्रहा, अनेक परिग्रहा तथा अपरिग्रहा इन तीन प्रकार की वेश्याओं का वर्णन किया है।[६]

मृच्छकटिक में वसन्तसेना नामक गणिका के प्रेम की गाथा का वर्णन है। उसका समाज में सम्मान था। चारुदत्त की वृद्ध माता उसे 'आर्या' कहकर संबोधित करती थी, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह सदैव ही समाज में उच्च स्थान पाती रही है। मनु ने गणिका के अन्न को भी दूषित बतलाया है—

गणान्नं गणिकान्नञ्च विदुषाच जुगुप्सितम् ।[७]

१. नाट्यशास्त्र, गणिका के गुण, पृ० ३६७ ।
२. श्रीमद्० पु० ११।८।२२ ।
३. ललितविस्तर १२।१३९ ।
४. महावग्ग ६।३०,८।१ ।
५. कामसूत्र, सू० २१.२२ ।
६. कामसूत्र । लाभविशेष वर्णनीय प्र० ५७ अ० ५ ।
७. मनु० ४।२०९ ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सोमेश्वर के समय में भी संभवतः उनकी राजधानी में गणिकाओं की संस्थायें होती थीं और राजा स्वयं पहले उनके समक्ष जाता था। इसके अतिरिक्त गणिका के स्थान तक जाने तथा मंत्री को भेज कर मंत्री द्वारा प्रत्येक बात का पता लगाने का प्रसंग इस बात की ओर संकेत करता है कि वेश्या के यहां जाकर उसके साथ रति क्रीड़ा करना उस समय के समाज में निंदा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। उनके समय में वेश्याओं को बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

गणिकायें तथा वेश्यायें वास्तव में नारीत्व के अपमान की प्रतीक हैं। यद्यपि समाज उन्हें उच्च स्थान ही देता था। अजंता की गुफा[1] में राजा शस्त्रपाणि द्वारा एक नर्तकी को दंड दिए जाने का चित्र चित्रित है। पांच स्त्रियां उसके आस पास खड़ी हुई दिखाई गई हैं और वह लज्जित होकर दीनता पूर्वक खड़ी है। संभवतः यह राजा के प्रेम प्रस्ताव को ठुकराने का ही फल हो सकता है। अतः इन गणिकाओं के जीवन का इतिहास सदैव ही ज्योतिर्मान दीपक से उत्पन्न होने वाले कालिख की भांति रहा है।

---

१. अजंता गुफा नं० २।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट

MANUSCRIPTS SEEN

1. Vis'va Bhāratī S'antiniketan, Calcutta :

Two Manuscripts :—

A. Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi, Pages 42
No. 1736 (a)
Size $12\frac{1}{2}''$ × 6″, lines per page 14
Script–Devanāgarī
Incomplete
No date

B. Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi
No. 1736 (b)
Pages 26
Size $12\frac{1}{2}''$ × 5″, lines per page 9.
Script–Devanāgarī
Incomplete.

2. Asiatic Society of Bengal—1, Park Street, Calcutta

Two Manuscripts

A. Title–Mānasollāsa
No. 3991–73–D–2
Script–Devanāgarī
Pages–1 to 30
Size–30 × 2 × 9 × $1\frac{1}{2}$=800
No date
Incomplete.

B. Title–Mānasollāsa
No. 1. G. 50
Script–Bengali
Pages 1–25
No date
Incomplete.

3. Government Oriental Manuscripts Library Madras :

Title–Mānasollāsa
D. No. 18552 (Palm leaf Manuscript)
Very old and damaged.
No date.
Only third Prakaraṇa,

4. Government Oriental Institute, Mysore

Three Manuscripts

A. Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi.
No. B 948
Script–Devanāgarī
Pages–10 to 291
Date–30. 11. 1918.
Incomplete
Copied from Tanjore Sarasvati Mahāvidyālaya Manuscript.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

B. Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi.
No. A 200
Folios 1 to 110
Script–Devanāgarī
Incomplete

C. Title–Mānasollāsa
Script–Canarese
No. A 626
Last Portion Complete

5. T. M. S. S. M. Library, Tanjore

Four Manuscripts

A. Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi.
No. 659
Material–paper
Incomplete.

B. Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi
No. 660
Material–paper
Incomplete

C. Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi
No. 9362
Palm–leaf Manuscript
Incomplete
Nandināgarī Script

Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi
No. 10779
Palm–leaf Manuscript
Incomplete
Grantha script.

6. Government Sanskrit College, Banaras

Title–Mānasollāsa
Pages–1 to 44
Size–10.5 × 4.5
Script–Devanāgarī
Lines per page 8
Incomplete.

7. Bhandarkar Oriental Research Institute Poona

Two Manuscripts

A. Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi
Script–Devanāgarī
Incomplete.

B. Title–Abhilaṣitārtha–Chintāmaṇi
Script–Devanāgarī
Last portion complete

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सहायक ग्रन्थ सूची

१ मानसोल्लास खण्ड १ : गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़, बड़ौदा–१९२५ ई०

२ मानसोल्लास " २ : " " " " –१९३९ ई०

३ अभिलषितार्थचिन्तामणि : ओरियण्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन्स, मैसूर–१९२६ ई०

४ ऋग्वेदसंहिता : सायणाचार्य भाष्य सहिता–द्वितीय संस्करण–मैक्समूलर द्वारा सम्पादित

५ यजुर्वेदसंहिता : महीधर भाष्य सहित–वेबर द्वारा सम्पादित

६ अथर्ववेदसंहिता : सायणाचार्य भाष्य सहित, बम्बई

७ ऐतरेय ब्राह्मण : " भाष्य (आनन्दाश्रम प्रेस, पूना)

८ शतपथ ब्राह्मण : " भाष्य सहित, रायल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।

९ तैत्तिरीय आरण्यक : सायणाचार्य भाष्य सहित, आनन्दाश्रम प्रेस, पूना।

१० बृहदारण्यकोपनिषद् : गीता प्रेस, गोरखपुर।

११ छान्दोग्य उपनिषद् : आनन्दाश्रम प्रेस पूना।

१२ पारस्कर गृह्यसूत्र : श्रीधरशास्त्री पाठक द्वारा सम्पादित।

१३ बौधायन गृह्यशेषसूत्र : ओरियण्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन, मैसूर–१९२० ई०।

१४ आश्वलायन गृह्यसूत्र : निर्णयसागर प्रेस।

१५ आपस्तम्ब गृह्यसूत्र : ओरियण्टल लाइब्रेरी सीरीज़, मैसूर।

१६ शांखायन गृह्यसूत्र : बनारस संस्कृत सीरीज़।

१७ भारद्वाज गृह्यसूत्र : डॉ० सैलोमोन्स द्वारा सम्पादित, १९१३ ई०।

१८ गोभिल गृह्यसूत्र : बी० आई० सीरीज़।

१९ काठक गृह्यसूत्र : डॉ० कैलेन्ड द्वारा सम्पादित, १९२५ ई०।

२० मानव गृह्यसूत्र : गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़, बड़ौदा।

२१ खादिर गृह्यसूत्र : मैसूर ओरियण्टल लाइब्रेरी सीरीज़।

२२ हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र : डॉ० किस्ते द्वारा तम्प्रादित, वियना १८८९ ई०।

२३ आपस्तम्ब धर्मसूत्र : हरदत्त की टीका सहित, चौखम्बा प्रकाशन।

२४ बौधायन धर्मसूत्र : चौखम्बा प्रकाशन।

२५ विष्णुधर्मोत्तर : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

२६ गौतम धर्मसूत्र : आनन्दाश्रम प्रेस।

२७ विष्णु धर्मसूत्र : डॉ० जौली द्वारा सम्पादित।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

२८ वैखानस स्मार्तसूत्र : कलकत्ता, १९२७ ई० ।
२९ कौशिक सूत्र : प्रो० ब्लूमफील्ड द्वारा सम्पादित, १८९० ।
३० वैशेषिकदर्शनम् : विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित, चौखम्बा प्रकाशन बनारस, १९१९ ।
३१ मित्रमिश्र : वीरमित्रोदय, चौखम्बा प्रकाशन, बनारस ।
३२ मनुस्मृति : पं० तुलसी राम शर्मा द्वारा सम्पादित, दिल्ली ।
३३ मनुस्मृति : कुल्लूकभट्ट की टीका सहित (निर्णयसागर संस्करण)
३४ मनुस्मृति : मेधातिथि भाष्यसहित, अंग्रेजी अनुवाद, गंगानाथ झा।
३५ याज्ञवल्क्य स्मृति : मिताक्षरा टीका सहित–निर्णयसागर संकरण ।
३६ " " : (वीरमित्रोदय टीका) चौखम्बा प्रकाशन, बनारस ।
३७ " " : अपरार्क की टीका–आनन्दाश्रम प्रेस ।
३८ " " : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९२९ ।
३९ हारीतसंहिता : दी धर्मशास्त्र–एम० एन० दत्त, कलकत्ता १९०८–जिल्द १ ।
४० उशनस् संहिता : वही
४१ अङ्गिरस संहिता : "
४२ यम संहिता : "
४३ अत्रि संहिता : "
४४ समवर्त संहिता : दी धर्मशास्त्र–एम० एन० दत्त०, कलकत्ता, १९०८, जिल्द १ ।
४५ कात्यायन संहिता : वही
४६ बृहस्पति संहिता : "
४७ दक्ष संहिता : "
४८ शातातप संहिता : "
४९ लिखित संहिता : "
५० शंख शंहिता : "
५१ गौतम संहिता : "
५२ आपस्तम्ब संहिता : "
५३ वशिष्ठ संहिता : "
५४ विष्णु संहिता : " जिल्द २ ।
५५ व्यास संहिता : "
५६ पराशर संहिता : "
५७ शुक्रनीति : श्री वेंकटेश्वर प्रेस ।
५८ अग्निपुराण : आनन्दाश्रम प्रेस ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

५९ श्रीमद्भागवत पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर।
६० ब्रह्माण्ड पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
६१ ब्रह्मपुराण : आनन्दाश्रम प्रेस।
६२ गरुड़ पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस।
६३ लिंग पुराण : " "
६४ नारदीय पुराण : " "
६५ कालिका पुराण : " "
६६ कूर्म पुराण :
६७ मार्कण्डेय पुराण : बी० आई० सीरीज़, कलकत्ता।
६८ मत्स्य पुराण : आनन्दाश्रम प्रेस।
६९ वायु पुराण : " "
७० विष्णु पुराण : गोपाल नारायण ऐन्ड को०, बम्बई।
७१ मनु का राजधर्म : डॉ० श्यामलाल पाण्डेय।
७२ शुक्र की राजनीति : "
७३ भीष्म का राजधर्म : "
७४ दीघनिकाय : एन० के० भगत द्वारा सम्पादित, बम्बई, १९४२।
७५ ललितविस्तर : डॉ० लेफमैन द्वारा सम्पादित, १९०२।
७६ सोलंकियों का प्राचीन इतिहास–जिल्द प्र० : पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा–वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १९०७।
७७ चौलुक्य कुमारपाल : श्री लक्ष्मीशंकर व्यास–भारतीयज्ञानपीठ, काशी, १९५४।
७८ मुहूर्तचिन्तामणि : चौखम्बा प्रकाशन, बनारस।
७९ मातंगलीला : त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज़, १९१० ई०।
८० नकुलकृत अश्वशास्त्रम् : तंजौर सरस्वती महल सरीज़, १९५२ ई०।
८१ भारत की चित्रकला : रायकृष्णदास–भारती भंडार, प्रयाग, २००७ वि०।
८२ हर्षचरित–एक सांस्कृतिक अध्ययन : वासुदेव शरण अग्रवाल–पटना, १९५३।
८३ प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९५२।
८४ कौटिल्य-अर्थशास्त्र : चौखम्बा प्रकाशन, बनारस।
८५ अश्ववैद्यकम् : जयदत्तसूरि।
८६ हस्त्यायुर्वेद : पालकाप्य मुनि।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

८७ प्रबन्धकोष : सिन्धी जैन ग्रन्थमाला ।

८८ मेघदूत : डॉ० के० एन० काटजू सीरीज़, कलकत्ता १९५१ ।

८९ रघुवंश : चौखम्बा प्रकाशन, बनारस ।

९० हरिहरचतुरंगम् : मद्रास गवर्नमेन्ट ओरियण्टल सीरीज़, १९५० ।

९१ वेदधरातल : पं० गिरीशचन्द्र अवस्थी—काशी सं० २०१० ।

९२ वीरमित्रोदय : मित्रमिश्र—चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ।

93 Early History of the Dekkan : R. G. Bhandarkar.

94 Antiquities of India : L. D. Barnett–London 1913.

95 The Dharma Śāstra : English Translation of the Hindu Smṛtis–M. N. Dutta Calcutta–1906.

96 The Smṛtichandrikā Anhika Kanda : An English Translation–J. R. Gharpure–Poona, 1946.

97 The Kalās : A. Venkatasubbiah–The Vasanta Press, Adyar, Banaras, 1911.

98 Contribution to a Bibliography of Indian Art and Aesthetics : Haridas Mitra–Viśva–Bhāratī, Shāntiniketan, 1915.

99 Hindu Social Institutions : Valavalkar–Longmans, Green & Co. Ltd., 1939.

100 Social Life in Ancient India–Studies in Vātsyāyana's Kāmasūtra : H. C. Chakladar–Greater India Society, Calcutta, 1929.

101 History of Dharmaśāstra : P. V. Khne–Vol. I

102 do : do Vol. II Part I

103 do : do Vol. II Part II

104 do : do Vol. III

105 do : do Vol. IV

106 Rāgas and Rāginīs : O. C. Gangoly–Nalanda Publications, Bombay, 1935.

107 India in Kalidasa : B. S. Upadhyaya–Kitabistan, Allahabad, 1947.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

108 The Mahabharata–As it was, and ever shall be–A critical study : P. N. Mullick–Calcutta, 1934.

109 The Civilization of Ancient India : Louis Renou–English Trans. Spratt–Calcutta, 1954.

110 Studies in Kautilya : M. V. Krishna Rao–Kautilya Mandali Publications, Mysore.

111 Hindu Civilization : Dr. Radha Kumud Mookerji–Longmans, Green & Co., London, 1936.

112 A History of Indian Civilization : Dr. Radha Kamal Mukerji, 1956.

113 War in Ancient India : Dikshitar–Macmillan & Co. Ltd., 1948.

114 Alberuni's India Vol. I English Edition : Sachau–London, 1910

115 Alberuni's India Vol. II : -do-

3733 प्रा 172 State ... m, Library, Lko.

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

JOURNALS

1 Annals of Bhandarkar-Oriental Research Institute.
2 Jonrnal of Bihar and Orissa Research Society.
3 Harvard Journal of Asiatic Studies.
4 History Today.
5 History.
6 India Quarterly.
7 Indian Antiquary.
8 Indian Archives.
9 Indian Art and Letters.
10 Indian Historical Quarterly.
11 Indian Historical Records Commission-Proceedings of Meeting.
12 Indo-Asian Culture.
13 Journal Asiatique.
14 Journal of Indian History.
15 Journal of Oriental Research, Madras.
16 Journal of Literary History.
17 Journal of Sri Venkateshwar Oriental Institute.
18 Journal of the American Oriental Society.
19 Journal of the Andhra Historical Research Society.
20 Journal of the Annamalai University.
21 Journal of the Asiatic Society of Bengal.
22 Journal of the Bombay branch of the Royal Asiatic Society.
23 Journal of the Greater India Society.
24 Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland.
25 Journal of the United Provinces Historical Society.
26 Journal of the University of Poona.
27 Language.
28 Bulletin of London School of Oriental Studies.
29 New Indian Antiquary.
30 Journal of Punjab Historical Society.
31 Royal Asiatic Society of Bengal Year Book.
32 Royal Historical Society-Transactions.
33 Transactions of the Indian History Congress.
34 Proceedings of the All Indla Oriental Conferences.
35 Viśwa Bhāratī Quarterly.
३६ कल्याण।
३७ साहित्यसम्मेलन पत्रिका, प्रयाग।
३८ नवनीत-हिन्दी डाइजेस्ट।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow